

श्री आध्यात्मिक पाठ सग्रह

[भक्ति, पूजा राग्य, अग्यात्म आदि विषयके
चुने हुए पद्य पाठ भजन स्तोत्र आदिका
अपूर्व सङ्कलन]



संग्रह —

श्री प श्रेयामकुमारजी जैन शास्त्री न्यायतीर्थ
मिरतपुर (बिजनौर)



प्रकाशक—

श्री मगनमल हीरालाल पाटनी
जि० जैन पारमार्थिक दृष्टान्तगत
श्री पाटनी जि० जैन ग्रन्थमाला
साराट (भारवाड)

८४

५

५१
००

प्रथमवार
१००

मई १९५१ श्री बीर वि० म० २४३३

मूल्य
७)

—॥ ॐ ॥—

मूद्र—

नमीचट बाबलीराल
एम० वे० मिल्स, प्रेस मदनगज

प्रकाशकीय



आज हमें यह अपूर्व सुंदर समग्र ग्रंथ प्रकाशन करते हुए हृष्य हो रहा है, यों तो अभी समाजमें अनेकों समग्र ग्रंथ बहुत काफी मात्रामें प्रचलित हैं, लेकिन यह उन सबसे हो अपनो अपूर्वता रखता है, अध्यात्मरसिक मुमुक्षुके लिये यह पुस्तक एक प्रकारकी गाइड बुकके रूपमें काम आवेगी, अपने समयका सदुपयोग करनेके लिये इसमें भक्ति, पूजा, वैराग्य, अध्यात्म आदि विषयोंके अनेक चुने हुए छोटे २ बड़े, पाठ, भजन, स्तोत्र आदि भी हैं तो अनेक बड़े २ समयसार, प्रवचन सार जैसे महान् ग्रंथोंका सरल पद्यानुवाद भी है ताकि हरएक मुमुक्षु अपनी २ रुचिके अनुसार सब प्रकारकी सामग्री इसमें प्राप्त करके समयका पूर्ण उपयोग कर सके।

मेरी बहुत समयसे ऐसी इच्छा थी कि एक ऐसे ग्रंथका समग्र करके प्रकाशन किया जावे कारण अध्यात्मरसिक पुरुषके लिये अपनी रुचिके अनुकूल सामग्री इकट्ठी करनेके लिये अनेकों पुस्तकोंको टटोलना पड़ता था और उन सबको अपने साथ २ रखना असंभव जैसा हो था। अब, यह एक ऐसी पुस्तक होगी जिस एक ही में मुमुक्षु अपनी रुचिके अनुसार सर्व प्रकारकी सामग्री प्राप्त कर सकेगा।

इसके समग्र करनेमें बहुत समय व परिश्रम बठाना पड़ा है। अनेक प्रयोगोंको चुन २ कर मैंने श्री प० श्यामसुन्दरजी को दिये और

एक ही पद्य स्तोत्र
यादि दोनों ने
विषयको

जिसका नाम पद्य आदि
पद्य, गुरु, शक्ति, शक्ति, पद्म, पूजन
इस प्रकारसे
जाया है।

(१) हमारे धर्म प्रकरणम समाप्त है, भोगोंसे
विशक्त बन करानेकी मुख्यता वाले पद्यादिकों
का समग्र है।

(२) हमारे अध्यात्म प्रकरणम अपनी आत्माके
गाय पदुवान का मुख्यता वाले एवं सात्विक
विषयके प्राक्पक्ष, स्तोत्र एवं प्रथानिका समग्र है।

उपरोक्त प्रकरणमिं यह स्थाना पर संहृत श्लोक भ। समग्र
किये गये हैं लेकिन समझने समझना हो इसलिये मन्त्रों विन्नी भाषामें
नीका भी साथही साथ लगा दा गई है। इस ग्रन्थमें आये हुए अनेक
पद्यादिकों की कविवे नाम सहित एक २ पद्या प्रथम चरणकी
सूची बनवाकर लगाई गई है। ताकि किसी भा विषयके किसी
भी कविके किसी भी पद्यको ढूँढनेमें कोई अमुविधा न हो। तथा
प्रत्येक कविके द्वारा रचित कविता स्तोत्र आदि किन किन पृष्ठोंपर
छपे हैं इसकी भी सूची बनवाकर लगादी गई है। इस ग्रन्थकी ५००
प्रतियोंका तो तीनों प्रकरणोंका एक पुस्तकके रूपमें प्रकाशन किया गया

है तथा ४०० प्रतियोंका हरण प्रकरणका एक २ अलग २ पुस्तकके रूपमें प्रकाशन किया है ताकि निम्नासुओंको सुविधा रहे ।

इस ग्रन्थके तीनों प्रकरणोंमें ३२ आचाया व कविया की ५४ पुस्तकां में से ६०४ स्तोत्र आदिका पत्र मर्या ७७५ में संग्रह किया गया है, इसमें बहुत सी पुस्तकें जैसे नीलक विलास, पूष विलास आदिके इसी प्रकार अमृतचन्द्राचार्यके समयसार पर रचे गये वलश, वनारसादासजी द्वारा रचित समयसार वलशावा पत्रानुवाद आदिको पूराका पूरा इस ग्रन्थमें नहीं लिया गया है, बल्कि उनमें से चुन २ वर ग्राम २ पद्यादि हा पुस्तकका आकार बहुत बढ जानेके भयसे लिये गये हैं अतः जो पाठक विशेष रुचिवा न हों, वे विशेष अध्ययनके लिये उन ग्रन्थराचा की प्राध्याय कर ।

अतम म संग्रहके कता आ ५० अंशामनुमारकी शास्त्रीको उनके परिश्रमकी सराज्ज करत हुए धन्यवाद ज्ञता हैं तथा उसके मैनेजर डाबू नेमीचंदजी बाबलीवाल भा धन्यवान्के पात्र हैं ।

इस ग्रन्थके छपनेमें कुछ अशुद्धिया रह गई हैं उनके लिये हम पाठकोंसे क्षमा मागते हैं तथा निवेदन करते हैं कि वे शुद्धिपत्र द्वारा शुद्ध करने प्रयत्न उपयोग कर ।

भवदाय —

नेमीचंद पाटनी

प्रधानमंत्री

श्री मंगनमल हीरालाल पाटनी दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट

मारोठ (मारवाड़)

विषय-सूची

भक्तिप्रकरण पृष्ठ १ से १४१

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
एमोकार महामन्त्र	१	भागचद भजनमाला	१३ २३
दौलत मिलास	२-१३	दर्शनस्तुति १	१३
दर्शन स्तुति	२	दर्शनस्तुति २	१६
निनवर आनन भान	५	प्रभु तुम मूरत दगसा	१७
निरखत निनचद्र बदन	६	बीतराग जिन महिमा थारी	१७
जबत आनन्द जर्नानि	६	तुम गुनमनिनिधि	१८
पास अनादि अविद्या मेरी	७	स्वामी जी तुम गुन अपरपार	१८
साँधरियाके नाम जपेते	८	धरसत ज्ञान सुनोर हो	१९
मैं आयो, जिन शरण तिहारा	९	प्रभु थाकू लखि मम	१९
हे जिन तेरे मैं शरण आया	९	मैं तुम शरण लियौ	१९
हे निन मेरी, पेसी बुधि कीजे	९	लखिकै स्वामी रूपको	२०
शिवमगदरभावन, रावरो दरस	१०	साधु स्तुति (भागचदजी)	२०-२३
मोहि तारोजी क्यों ना	१०	ऐसे जैनी मुनि महाराज	२०
यारा तो चैनाम मरधान पणोछे	११	श्रीगुरु हैं उपगारी ऐसे	२१
त्रिमुवन आनंदकारी जिन छवि	१२	ऐसे साधु मुगुरु कथ मिमि हैं	२१
जिन छवि लखत यह	१२	श्रीमुनि राजत समता सग	२१
आज मैं परम पदारथ पायो	१३	धन धन जैनी साधु	२२

		पृष्ठ
तिथि	६	३५
समय	७	३५
माधु स्तुति (मानव ज्ञान)	८	३५
चित - गणपत्याग १०	९	३५ ३७
कवता तिल ११	१०	३५
धान मुनि तिल १२	११	३६
माधु स्तुति (मानव ज्ञान)	१२	३७
धनि धनि न मुनि	१३	समयसार नाटक
माधु स्तुति (भूवरदामजी) २१-२७	१४	(५० बगारसादासा) ३७ ४५
४ सुतावर कथ मिलि है	१५	भैरव विज्ञान जग्यो
ते गुरु मेरे मन बसो	१६	(सम्बन्धनाष्टकी स्तुति)
माधु स्तुति (वधजानी)	१७	३७
मुनि वन आये वना	१८	स्वारथ के माने ३७
शस्त्र स्तुति	२७ ३५	कवि स्वरूप वखान ३८
जिनादेश जाजा (बनारमादासजी) २७	२७	समयसार नाटक ग्रन्थकी महिमा ३८
वीर हिमाचलनै निकसा	२८	निनवाणाका वखान ३८
केवलिक-कये बाझय गग	२९	तीर्थकरके देहकी स्तुति ३९
अकेला हा हूँ मैं	३०	निनम्बरूप यथार्थ कथन ४०
नित पीजौ धो धारी	३१	द्वितीय अजीव द्वार ४० ४१
सौंपी सो गगा यह वातराग	३२	ज्ञान अजीवकू पण जाने है
महिमा है अगम	३३	सात सपूणज्ञानकी अत्र
	३४	म्या निरूपण ४०

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
पुण्यपाप एकत्वकरण चतुर्थद्वार		चतुर्दश गुणस्थानाधिकार	
पाप पुण्य द्वारत्रिपे प्रथम ज्ञान		जाके मुग दरससों	४५
रूपचद्रकी कलाकू नमस्कार ४१		जो अडोल परजक	४५
पंचम आश्रवद्वार	४१-४२	एकीभाषस्तोत्र भाषा	
आश्रव सुभटको नाश करनहार		(भूषरदासजी) ४६	
ज्ञान सुभट है तिस ज्ञानकू		मक्तामरस्तोत्र भाषा	
नमस्कार ४१		(गिरधरजी शर्मा) ५१	
छट्टा सगरद्वार		छहदाला (युधजनजी) ६० ७२	
सबर द्वारके आदिमें ज्ञानकू		पहिली दाल	६१
नमस्कार ४२		दूमरा दाल	६३
मप्तम निर्जराद्वार		तीसरी दाल	६५
निःशक्तिवादि अष्टाग सम्यक्स्त्री		चौथी दाल	६८
की महिमा ४२		पाँचवीं दाल	६६
अष्टम बघद्वार		छठी दाल	७०
सम्यक्की [भेदज्ञानी] कू नमस्कार ४३		श्री घृहस्त्रयंभूस्तोत्र	
नवमो मोक्षद्वार		श्री समतभद्राचाय ७२ ८८	
भेदज्ञान आरासों दुफारा करे ४३		शतद्वन्द्वेय-चल हि सौख्य ७२	
दशमो सर्वनिशुद्धिद्वार		श्री अभिनन्नाथ भगवानकी	
जो निरचै निर्मल सदा ४३		स्तुति ७३	
बारहमो साध्यसाधकद्वार		श्रीसुपारर्जनाथ भगवानकीस्तुति ७६	
जाके मुक्ति समीप आदि पद ४४		श्रीशातलनाथ भगवानकी स्तुति ७९	
		श्री वासुपूज्य भगवानकी स्तुति ८२	

विषय	पृष्ठ
सम	३५
साधु स्तुति	३५
जिन र र र र र र र र	३५ ३७
कक्यों मिले माला	३५
धनि मुनि निराला	३६
साधु स्तुति (गाना १२१)	३७
धनि धनि त मुनि	३७ समयसार टाटन
साधु स्तुति (भूवरदामजी) २४ २७	(५० बगरसादासजा) ३७-४५
वे सुनवर कथ मिलि है	४५ भेद जितात भग्यो
वे गुरु मेरे मन बसो	४६ (सम्यग्दृष्टि की स्तुति) ३७
साधु स्तुति (पुष्पजनना)	स्वारथ के साचे ३७
मुनि धन आये बना	४७ कवि ग्वरूप बखान ३८
शास्त्र स्तुति २७ ३५	समयसार नाटक प्रथकी महिमा ३८
जिनादश जावा (धनारमादामजी) २७	जिनवाणीका बखान ३८
धीर हिमाचलनै निकमी २६	तीर्थकरके देहकी स्तुति ३९
केवलिक-कये बाटवय गग २०	निनस्वरूप यथाथ कथन ४०
अकेला हो हूँ मैं , २१	द्वितीय अजीव द्वार ४० ४१
नित पीजी धी धारी २३	ज्ञान अजावहू पण जाने है-
सौचा सो गगा यह वातराग २४	तार्त सपूर्णज्ञानकी अत्र
महिमा है अगम २४	म्या निरूपण ४०

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
मुण्यपाप एकत्वकरण चतुर्थद्वार		चतुर्दश गुणस्थानाधिकार	
पाप पुण्य द्वारविषे प्रथम ज्ञान		जाके मुग्य दरससों	४१
रूपचद्रकी कलाकू नमस्कार ४१		जो अढोल परजक	४५
पंचम आश्रवद्वार	४१-४२	गफीमाधस्तोत्र भाषा	
आश्रव सुभटको नाश करनहार		(भूधरदासजी) ४६	
ज्ञान सुभट है तिस ज्ञानकू		भक्तामरस्तोत्र भाषा	
नमस्कार	४२	(गिरधरजी शर्मा) ५१	
छट्टा सगरद्वार		छहढाला (बुधजनजी) ६० ७२	
सवर द्वारके आदिमें ज्ञानकू		पहिली ढाल	६१
नमस्कार	४२	दूसरी ढाल	६३
सप्तम निर्जराद्वार		तीसरी ढाल	६५
निःशक्तितादि अष्टांग सम्यकरवी		चौथी ढाल	६८
की महिमा	४२	पाँचवीं ढाल	६६
अष्टम बघद्वार		छठी ढाल	७०
सम्यक्की [भेदज्ञानी] कू नमस्कार ४३		श्री घृहस्वयभूस्तोत्र	
नवमो मोक्षद्वार		श्री समतमद्वाचार्य ७२ ८८	
भेदज्ञान आरासों दुफारा करे ४५		शतद्वन्द्वेप-चल दि सौग्य ७२	
दशमो सर्वविशुद्धिद्वार		श्री अभिनदननाथ भगवानकी	
जो निश्चै निर्मल सदा	४३	स्तुति ७५	
बारहमो साध्यसाधकद्वार		श्रीसुपारवनाथ भगवानकीस्तुति ७६	
जाके मुक्ति समीप आदि पद ४४		श्रीरीतलनाथ भगवानकी स्तुति ७९	
		श्री वासुपूज्य भगवानकी स्तुति ८२	

नेराम्न प्रकरण पृष्ठ १४२ से ३२३



दीलत-बिलास १४२ से १४६ और सत्रै जगद्वन्द मिटावो
 हे मन सेरी को बुटेव यह १४२ चेतन यह सुधि सौन सयानी
 मानले या सिल मोरी १४२ राचि रखी परमादि तू अपनो
 छाहि दे या सुधि मोरी १४२ निज हित कारज घरना भाई
 योहि समझायो सौ सौ बार १४३ हो तुम शठ अविचारी जियर
 हे नर, अपनीद क्यों न १४४ अपना सुधि भूल आप
 न मानत यह जिय निपट अनारी १४५ मर कीजो जा यारी, ये मो
 अरे जिया, अग घोमेकी टाटी १४५ मर कीजो जा यारी, चिनरे

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
सखी जो या जिय मोरेकी बातें १५१		हो मैया मोरे १५२	
सुनो जिया ये सतगुरुकी बातें १५२		मन ! मेरे राग भाव निवार १५३	
चेतन अब घरि सहज समाधि १५३		कर रे ! कर रे ! कर रे ! १५४	
ज्ञानी जीव निवार भरम तम १५४		माई ज्ञानका मार्ग सुदेखा रे १५५	
हम तो कहैं न निजगुन भाये १५५		कहिये को मन सुरमा १५६	
हम तो कहैं न निज घर आये १५६		हमारो कारज कैसे होत १५७	
भागचन्द भजनमाला १५६-१५९		हाट बनायके १५८	
सारी दिन निरफला १५६		याही जगमाहि १५९	
आवे न भोगनमें सोहि गिलान १५७		यह ससार असत है १६०	
मान न कीजिये हो परधीन १५७		चेतनजी तुम जेते हो १६१	
अरे हो अज्ञानी तूने १५७		इन्द्रिय और कर्मके कष्ट १६२	
जीव ! तू भ्रमत सदीव अकेला १५७		इन्द्रिय और कर्मके दुःख १६३	
जे दिन तुम विवेक दिन खोये १५८		अपना दुःख १६४	
भवघनमें नहीं भूलिये माई १५८		'मोहन' के दुःख १६५	
यह मोठ उदय दुख पावे १५९		सुखजन किन्तु १६६ से १६७	
प्रेम अब त्यागहु पुत्रसका १५९		काह कर्मके दुःख १६८	
दानतविलास १६० से १६८		सत्त्विक चरित्र १६९	
विपतिमें धर धीर १६०		कर्मके दुःख १७०	
नाहि ऐसी जनम बारबार १६०		दुःख के दुःख १७१	
जोबा ! शू कहिये सनै माई १६१		कर्मके दुःख १७२	
जीव ! तैं मूढ़पना कित पायो १६१		कर्मके दुःख १७३	

[illegible]

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
तेज तुरग सुरग भले रथ	१८६	कुशील निन्दा	१९३
कचन भट्टार भरे मोतिनके	१८६	कुक्कवि निन्दा	१९४
देखो भर जोधनमे	१८६	कचन कु मनकी सपना	१९४
सैन वचन अजनवटी	१८७	गुर सपकार	१९४
जोइ दिन कटे सोइ	१८७	सपाय जीतनेका सपाय	१९४
दृष्टि घटी पलटी तनरी छवि	१८७	मिष्ट वचन	१९५
रूप को न खोज रह्यो	१८८	धैर्यधारणोपदेश	१९५
जवानोंकी दुर्दर्शा	१८९	होनहार दुर्निवार	१९५
मनुष्य जन्मकी सार्थकता	१८९	धैर्य शिक्षा	१९६
कर्तव्य शिक्षा	१८९	महामूढ वरण	१९६
चार रत्न	१८९	चौबीस तीर्थकरोंके चिह्न	१९६
साँचे देवका लक्षण	१९०	द्रव्यलिङ्गी मुनि	१९७
सप्तव्ययमन	१९०	अनुभव प्रशसा	१९७
जुआ निषेध	१९०	महाचद जेन भजनावली	१९८
मास निषेध	१९१	निज घर नाय पिछान्या रे	१९८
भदिरा निषेध	१९१	भाई चेतन चेत सके	१९८
वेश्या निषेध	१९१	जीव तू भ्रमस भ्रमत	१९९
आयेट निषेध	१९२	जिनेश्वर पद संग्रह	१९९-२०२
चोरी निषेध	१९२	अपना भाव हर घरना	१९९
परग्रीसेधन निषेध	१९३	जगत की मूठी सब माया	२००
परग्री त्याग प्रशसा	१९३	आपके हिरदै सदा	२००

१	१	२०८
२	२	२०८
३	३	२०९
४	४	२०९
५	५	२१०
६	६	२१०
७	७	२१०
८	८	२११
९	९	२११
१०	१०	२११
११	११	२११
१२	१२	२११
१३	१३	२११
१४	१४	२११
१५	१५	२११
१६	१६	२११
१७	१७	२११
१८	१८	२११
१९	१९	२११
२०	२०	२११
२१	२१	२११
२२	२२	२११
२३	२३	२११
२४	२४	२११
२५	२५	२११
२६	२६	२११
२७	२७	२११
२८	२८	२११
२९	२९	२११
३०	३०	२११
३१	३१	२११
३२	३२	२११
३३	३३	२११
३४	३४	२११
३५	३५	२११
३६	३६	२११
३७	३७	२११
३८	३८	२११
३९	३९	२११
४०	४०	२११
४१	४१	२११
४२	४२	२११
४३	४३	२११
४४	४४	२११
४५	४५	२११
४६	४६	२११
४७	४७	२११
४८	४८	२११
४९	४९	२११
५०	५०	२११
५१	५१	२११
५२	५२	२११
५३	५३	२११
५४	५४	२११
५५	५५	२११
५६	५६	२११
५७	५७	२११
५८	५८	२११
५९	५९	२११
६०	६०	२११
६१	६१	२११
६२	६२	२११
६३	६३	२११
६४	६४	२११
६५	६५	२११
६६	६६	२११
६७	६७	२११
६८	६८	२११
६९	६९	२११
७०	७०	२११
७१	७१	२११
७२	७२	२११
७३	७३	२११
७४	७४	२११
७५	७५	२११
७६	७६	२११
७७	७७	२११
७८	७८	२११
७९	७९	२११
८०	८०	२११
८१	८१	२११
८२	८२	२११
८३	८३	२११
८४	८४	२११
८५	८५	२११
८६	८६	२११
८७	८७	२११
८८	८८	२११
८९	८९	२११
९०	९०	२११
९१	९१	२११
९२	९२	२११
९३	९३	२११
९४	९४	२११
९५	९५	२११
९६	९६	२११
९७	९७	२११
९८	९८	२११
९९	९९	२११
१००	१००	२११

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
जीव अपनी भूलसे ही दुःखी है	२१५	पंचेन्द्रिय सवादके कतिपय पद	२४३
आत्मपद ही तपाये है	२१६	इश्वरनिर्णय पचीसीके	२४३
परमें अपनापन दुःखका कारण है	२१८	दृष्टातपचीसीके कतिपय पद	२४३
बहिरात्मा-कथन	२१८	मनबत्तीसीके कतिपय पद	२४४
ब्रह्म विलास	२२० से २४७	स्वप्नबत्तीसीके कतिपय पद	२४५
पुण्यपचीसिका के कतिपय पद	२२०	फुटकर विषय	२४६
शत अष्टोत्तरी	२२२	समयसार नाटक	२४७ से २७६
द्रव्यसमूह	२२६	हितोपदेश कथन	२४७
फुटकर कविता	२२६	द्वितीय अजीवद्वार	
परमार्थपदपङ्क्ति के कतिपय पद	२२६	गुरुद्वारा परमार्थकी शिक्षा कथन	२४७
कालाष्टक	२३१	चतुर्थ पुण्यपापद्वार	
उपदेश पचीसिका के कतिपयपद	२३२	शिष्यके प्रश्नकू गुरुका उत्तर	
अनित्य पचीसिका के	२३३	पापपुण्य प्रकारवर्णन	२४८
सुपयकुपय पचीसिका के	२३४	सप्तम निर्जराद्वार	२४८-२५२
मोहभ्रमाष्टक	२३४	जीवकी शयन दशाका स्वरूप	२४८
पुण्यपापचगमूला पचीसिका के		जीवकी जाग्रत दशाका स्वरूप	२४९
कतिपय पद	२३५	सप्त भय	२४९
जिनधर्म पचीसिका के	२३६	सात भयके जुदे जुदे स्वरूप	२४९
वैराग्य पचीसिका के	२३७	इह भवके भय निवारणका मन्त्र	२५०
परमात्मा छत्तीसीके	२४०	पर भवके भय निवारणकू मन्त्र	२५०
नाटक पचीसीके	२४२	मरणके भय निवारणकू मन्त्र	२५०

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
कुवना कारी कुवरी	२६३	जूना आमिष मदिरा	२७०
कुटिला कुरूप अग	२६४	अशुभमें हारि शुभ जीति	२७०
बहु कुब्जा बहु राधिका	२६४	चतुर्दश गुणस्थानाधिमार	
जैसे नर तिलार	२६४		२७१ से २७६
ज्ञानघत अपनी कथा	२६५	कोई जीव ममकीत पाई	२७१
हिरदे हमारे महा	२६५	सत्य प्रताति अवस्था	२७१
ज्ञान भान भासत	२६५	आपा परिचे निज विषे	२७१
गुण पर्यायम	२६७	चारित्र मोहकी चार	२७२
तज विभाव हूचे भगन	२६७	सात प्रवृत्ति छपरासहि	२७३
केदु मिरयादृष्टि जीव	२६७	आवचने २१ गुण	२७३
धारहसी माध्य साधकद्वार		बाईस अमर्यके नाम	२७३
	२६७ से २७०	प्रतिमा और प्रतिमाके भेदोंके	
चेतन जा सुम जागि	२६७	लक्षण	२७४
माया द्याया एरु हैं	२६८	मासका गरधि	२७६
लोकनिसों बहुत नातो न तेरो	२६८	घट घट अतर जिन	२७६
जे दुर्बुद्धि जीव	२६८	बनारसी निलाम	२७६ से २८१
हासीमे विपाद बसे	२६८	जामे सदा-उतपात	२७९
जो उत ग चढि फिर पतन	२६९	मात पिता सुत	२७७
पाँच प्रकारके जीव	२६९	ये ही हैं कुगतिकी	२७७
दूधा सिद्ध कहे	२७०	ज्या मतिहीन विवेर	२७८
धूधा साधक मोक्षो	२७०	ज्यों जरमूर खखारि	२७९

५७ ॥ दत्तपादश्याम, एत समाधि

५८ ॥ गानर वैराग्यस्य कतिपय

५९ ॥ ३०३

५९ ॥ ३०३

५९ ॥ ३०३

५९ ॥ गानरासनके कतिपय श्लोक

(श्री गुरुभद्राचार्य) ३०४

५९ ॥ ३०३

५९ ॥ सत्त्वभाषना या शृङ्खला सामाधिक

५९ ॥ ३०३

५९ ॥ पाठ (श्री भक्तिसंगतिआचार्य) ३११

५९ ॥ ३०३

५९ ॥ गानार्णव (श्री शुभचन्द्राचार्य) ३१५

५९ ॥ ३०३

५९ ॥ सत्त्वज्ञान तरनिष्ठी

५९ ॥ ३०३

५९ ॥ सत्त्वज्ञान तरनिष्ठी

५९ ॥ ३०३

५९ ॥ (श्री ज्ञानभूषण भट्टारक) ३१५

५९ ॥ ३०३

५९ ॥ द्वादशानुप्रेक्षा (आकुदकुदा०) ३१५

५९ ॥ ३०३

५९ ॥ प्रवचनसार " ३१५

५९ ॥ ३०३

५९ ॥ शीतपादुके " ३१५

५९ ॥ ३०३

५९ ॥ मूलाधार, द्वादशानुप्रेक्षा

५९ ॥ ३०३

५९ ॥ (श्री बट्टकेरस्वामी) ३१५

५९ ॥ ३०३

५९ ॥ बट्टकेरस्वामी मूलाधार, समयसार

५९ ॥ ३०३

५९ ॥ अधिकारमें कहते हैं ३१५

५९ ॥ ३०३

५९ ॥ भगवती आराधना

५९ ॥ ३०३

५९ ॥ (श्री शिवकोटि आचार्य) ३१५

५९ ॥ ३०३

५९ ॥ पितृ पद्योंका सकलन ३०३ ३२४

अध्यात्म प्रकरण पृष्ठ ३२५ से ७७५



विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
ढौलत विलास	३२५ से ३२७	ज्ञान सरोवर मोई हो	३३३
जानत क्यों नहि रे	३२५	हम लागे आत्मरामसा	३३३
बिन्मूरत जगधारीकी	३२५	मगन रहु रे ।	३३४
मेरे कन हूँ या	३२६	आत्म जानो रे ,	३३४
चित्त धितकै	३२७	री । मेरे घट ज्ञान	३३५
घानत विलास	३२८ से ३४७	तुम ज्ञानविभव पृली	३३५
गलतानमता कब आवैगा	३२८	जगतम सम्यक्	३३५
मोहि कब ऐसा दिन	३२८	भाई । अब में ऐसा	३३६
सो ज्ञाता मेरे मन माना	३२९	आत्म जान रे जान रे	३३६
कर कर आत्महित रे	३२९	हम न किसीके	३३७
जानत क्या नहि रे	३३०	में तिज आत्म	३३७
आपा प्रभु जाना	३३०	देखे सुग्री सम्यक्वान	३३८
अब हम आत्मको पहचाना	३३१	अब हम अमर भये	३३८
आत्म अनुभव करना	३३१	देखो भाई । आत्मराम	३३९
अब हम आत्म पहचान्यो	३३२	यह अशुद्ध मैं शुद्ध	३३९
आत्मरूप अनूपम है ,	३३२	लहृत भेदविज्ञान	३४०
धिक । धिक । जीवन	३३२	नो जाने मो जीवहै	३४०
		ग्यानरूपचिद्रूप	३४०

१	१	१५०
२	२	१५०
३	३	१५१
४	४	१५१
५	५	१५२
६	६	१५२
७	७	१५३
८	८	१५३
९	९	१५४
१०	१०	१५४
११	११	१५४
१२	१२	१५४
१३	१३	१५४
१४	१४	१५४
१५	१५	१५४
१६	१६	१५४
१७	१७	१५४
१८	१८	१५४
१९	१९	१५४
२०	२०	१५४
२१	२१	१५४
२२	२२	१५४
२३	२३	१५४
२४	२४	१५४
२५	२५	१५४
२६	२६	१५४
२७	२७	१५४
२८	२८	१५४
२९	२९	१५४
३०	३०	१५४
३१	३१	१५४
३२	३२	१५४
३३	३३	१५४
३४	३४	१५४
३५	३५	१५४
३६	३६	१५४
३७	३७	१५४
३८	३८	१५४
३९	३९	१५४
४०	४०	१५४
४१	४१	१५४
४२	४२	१५४
४३	४३	१५४
४४	४४	१५४
४५	४५	१५४
४६	४६	१५४
४७	४७	१५४
४८	४८	१५४
४९	४९	१५४
५०	५०	१५४
५१	५१	१५४
५२	५२	१५४
५३	५३	१५४
५४	५४	१५४
५५	५५	१५४
५६	५६	१५४
५७	५७	१५४
५८	५८	१५४
५९	५९	१५४
६०	६०	१५४
६१	६१	१५४
६२	६२	१५४
६३	६३	१५४
६४	६४	१५४
६५	६५	१५४
६६	६६	१५४
६७	६७	१५४
६८	६८	१५४
६९	६९	१५४
७०	७०	१५४
७१	७१	१५४
७२	७२	१५४
७३	७३	१५४
७४	७४	१५४
७५	७५	१५४
७६	७६	१५४
७७	७७	१५४
७८	७८	१५४
७९	७९	१५४
८०	८०	१५४
८१	८१	१५४
८२	८२	१५४
८३	८३	१५४
८४	८४	१५४
८५	८५	१५४
८६	८६	१५४
८७	८७	१५४
८८	८८	१५४
८९	८९	१५४
९०	९०	१५४
९१	९१	१५४
९२	९२	१५४
९३	९३	१५४
९४	९४	१५४
९५	९५	१५४
९६	९६	१५४
९७	९७	१५४
९८	९८	१५४
९९	९९	१५४
१००	१००	१५४

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
वधाधिकार	३८२	ज्ञानशक्तिको महिमा	४०८
मोक्षाधिकार	३८८	द्रव्यका स्वरूप	४०८
सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार	३९०	पञ्चपरमेष्ठी कथन	४०९
ज्ञानदर्पण	४०१ से ४१६	सामायिक कथन	४१०
आत्मरुचिका माहात्म्य	४०१	सप्तमङ्गीका स्वरूप	४१०
आत्मभाव भानेकी प्रेरणा	४०१	आप ही आपरूप होता है	४११
चित्ररूपकी ज्ञानसाधना	४०२	विदानदका माहात्म्य	४११
आत्मसिद्धिका उपाय ज्ञान		अनुभवकी महिमा	४१२
भावना है	४०२	उद्यममें ही सिद्धि है	४१३
स्वसवेदन भाव ही सुखका		विदानदस्वरूपमें ही मगन रहो	४१४
निधान है	४०२	आत्माकी महिमा	४१४
सिद्धके समान अपनी आत्म		ब्रह्म विलास	४१५ से ४५८
भावना करो	४०३	पुण्यपचीसिकाके कतिपय पद्य	४१५
आत्माकी शुद्ध भावना	४०३	शिव अष्टोत्तरीके	४१६
ज्ञानी जीव ससारसमुद्रके		चेतनकर्मचरित्रके	४१७
तिरैया हैं	४०४	पुटकर कविता	४१९
आत्मानुभवकी जीव ही सच्चे		परमार्थपदपत्तिके पद्य	४१९-४२१
आत्मसुखके विलासी हैं	४०४	अब मैं छादथो	४१९
अनादिहीका मेरा विदानदरूप है	४०४	या घटमें परमात्मा	४२०
स्वसवेदनज्ञानका माहात्म्य	४०६	जाको मन लागी	४२०
आत्माका स्वरूप	४०७	जगतगुरु, कब निज	४२०
आत्मघनको निहारो	४०८	जो जो देख्यो	४२१

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
सम्यक्दर्शनस्वरूप व्यवस्था	४६२	अनुभव विधान कथन	४६६
जीवद्रव्यव्यवस्था, अग्नि-प्रात	४६३	ज्ञाताका विश्वास कथन	४७०
पुन जीवद्रव्य-व्यवस्था,		ज्ञानविश्वास कथन	४७०
वनवारी दृष्टांत	४६४	तृतीय कर्त्ताकर्म क्रियाद्वार	४७०
अनुभवव्यवस्था, सूर्यदृष्टांत	४६४	भेदविज्ञानका माहात्म्य	४७०
ज्ञाताविश्वास कथन	४६४	प्रथम आत्माके कर्मको कर्त्ता	
गुणगुणी अभेद कथन	४६४	माने, पीछे अकर्त्ता माने है	४७२
ज्ञाताका चित्तवन, कथन	४६५	ज्ञानकी सामर्थ्य	४७१
द्रव्य पयाय अभेद कथन	४६५	जीव और पुद्गलका जुदा जुग	
द्रव्यगुणपर्याय भेद कथन	४६५	लक्षण	४७२
व्यवहार कथन	४६६	कर्त्ता, कर्म और क्रियाका	
निश्चयरूप कथन	४६६	विचार	४७३
शुद्धास्वरूप कथन	४६६	यथा कर्म तथा कर्त्ता एकरूप	
शुद्ध अनुभव प्रशंसा कथन	४६६	कथन	४७३
ज्ञाताकी व्यवस्था	४६६	मिथ्यात्वी जीव कर्मको कर्त्ता	
भेदज्ञानप्रशंसा कथन	४६७	माने है, सो भ्रम है	४७३
परमार्थकी शिक्षा कथन	४६७	सम्यक्स्वी भेदज्ञानने कमके	
निश्चय आत्मस्वरूप कथन	४६७	कर्त्ताका भ्रम दूर करे है	४७४
ज्ञानव्यवस्था कथन	४६८	शिष्यप्रभ कर्त्तृत्व कथन	४७४
द्वितीय अजीवद्वार ४६८ से	४७०	पुन शिष्य प्रभ	४७५
वस्तुरूप कथन	४६८	शिष्यका सदेह निवारणे के	
अनुभव प्रशंसा कथन	४६८	लिये गुरुका यथार्थ उत्तर	४७५

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
छट्टा मवरदार १ ४८४ से ४८६		ज्ञानरूप दीपकका स्वरूप १९१	
ज्ञानसे जड़ और चेतनका		मद्गुरु मोक्षका उपदेश करे हैं ४६१	
भेद समझे, तथा मवर		ज्ञानी कर्मका वर्त्ता नहीं है ४६२	
है तिस ज्ञानकी महिमा ४८४		ज्ञानीका आचार विचार ४६३	
मवरका कारण सम्यक्त्व है		अष्टम बंधद्वार ४९३ से ४९९	
वार्ते सम्यग्दृष्टिकी महिमा ४८४		ज्ञानचेतना व कर्मचेतनाका वर्णन ४६३	
मुक्तिके उपाय भेदज्ञानकी महिमा ४८५		कर्मबंधका कारण रागादिक	
भेदज्ञानकी क्रिया दृष्टांत कहै हैं ४८५		अशुद्ध उपयोग है ४६४	
मोक्षका मूल भेदज्ञान है ४८६		कर्मबंधका कारण अशुद्ध	
सप्तम निर्जराद्वार ४८६ से ४९३		उपयोग है ४९५	
निर्जराका कारण सम्यक्ज्ञान		आलसी अर उद्यमाका स्वरूप ४९५	
है तिस ज्ञानकी महिमा ४८६		जबलग ज्ञान है तबलग वैराग्य है ४९५	
सम्यक्की है सो ज्ञान अर		मिथ्यादृष्टिके अहं बुद्धिका वर्णन ४९६	
वैराग्यकू साथे है, ४८७		निसकू मोक्षकी विफलता नहीं,	
विषयके अरुचि विना चारित्र		ते साधु हैं, ४९६	
का बल निष्फल है ४८७		सम्यक्स्त्री आत्मस्वरूपमें कैसे	
भेदज्ञान विना समस्त क्रिया		स्थिर होय है ४९६	
(चारित्र) असार है, ४८७		आत्मान शिद्ध चाल ४९७	
ज्ञान विना मोक्ष प्राप्ति नहीं, ४८८		जे पिंड से मुझाहि, ये बात	
अनुभवो ज्ञानी का सामर्थ्य ४८८		साची है ४९७	
ज्ञानी का अवाङ्मन्य गुण ४९०		आत्मस्वरूपकी भ्रमक ज्ञानसे	
		होय है ४९८	

[illegible]

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
सकल वस्तु	५०८	शिष्य कहे	५११
कर्म करे फल	५१८	द्रव्य ज्ञेय	५१३
मेयाकार ज्ञानकी	५०८	अज्ञो तन	५१५
शुद्ध द्रव्य अनुभूति	५०८	भारहमो साध्य-भाषक द्वार	
जैसे वायु किरण	५०८	५१६ से ५१०	
कोव मूरख यों कहे	५०९		
जहाँ शुद्ध ज्ञानका	५१०	साध्य शुद्ध	५१६
ज्ञायक भाव जहाँ	५१०	ज्ञान दृष्टि	५१६
धृष्टा मोहकी	५११	चाकसो फिरत	५१६
जीव ज्ञानादि स्वरूप सम	५११	विनसि अनादि	५१७
मै इच्छात करणीयों	५११	जाके घट अतर	५१७
सम्पन्न कहें ज्ञानने	५११	संसार समुद्रमे पार होनेके लक्षण	५१७
कहे विप्लवका मै इहें	५१२	आत्मसुखकी प्राप्ति का उपाय	५१८
जयहोते श्वेतम्	५१२	स्वपर प्रकाशक	५१८
शुद्ध ज्ञानके देह छद्म	५१२	मित्र स्वरूप	५१८
काइ हय ज्ञान	५१२	करम अवस्थामें	५१८
जैसे मुग्ध धान	५१२	चतुर्दश गुणस्थानाधिकार	
जै ज्ञानवासी	५१२	५२० से ५२१	
आचारज कहें	५१२	मिथ्यामति	५२०
शुद्धात्म अनुभूति	५१२	चौदह गुणस्थानक	५२०
समयसार नाटकका एकादशमो		आत्मतत्त्व सुधर	५२०
स्याद्वाद काइ	५१३	जैसे बटवृक्ष	५२०

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
भेदविज्ञानका लाभ	५७४	जो ऐसे अनुभव कोन गुण	
परद्रव्योंमें अनुराग करनेका फल ५७६		स्थानमें कई हैं ?	६००
आत्मनिष्ठ रहनेका फल ५८०		जो अनुभव तो निर्विकल्प है	
परमानन्द प्राप्तिका फल — ५८०		तहाँ ऊपरके और नीचेके	
सत्त्वका सार — ५८१		गुणस्थाननिके भेद कही ?	६००
परमानन्द स्तोत्र ५८२ से ५८८		जो निर्विकल्प अनुभवविषे	
परमात्माका स्वरूप ५८५		कोई विकल्प नहीं तो	
पण्डितप्रवर, टोडरमलजी की		शुद्धस्थानका० इत्यादि	
रहस्यपूर्ण चिट्ठी ५८९ से ६०५		प्रश्न ?	६०१
स्वानुभवदशाविषे प्रत्यक्ष परो		एक जाति है जैसे केवली सर्व-	
क्षादिक प्रश्ननिके उत्तर ५९०		शेवकों प्रत्यक्ष जानें हे तेसे	
जो शुभाशुभरूप सम्यक्तका		चौधेवाला भी०	६०२
अस्तित्व कैसे पाइए ? ५९१		निश्चय सम्यक्तका अर व्यवहार	
सर्वविकल्पहीके द्वारपर निर्विकल्प		सम्यक्तका स्वरूप	६०५
परिणाम होनेका विधान ५९२		कोइ साधर्मों कहै हैं आत्माकों	
जो सर्वविकल्प निर्विकल्पविषे		प्रत्यक्ष जानें तो कर्मवर्ग	
जाननेका विशेष नहीं तो		एकों क्यों न जानें ?	६०५
अधिक आनन्द कैसे होय है ? ५९९		द्वितीयाके चन्द्रमाकी ज्यों	
जो अनुभवविषे भी आत्मा		आत्माके प्रदेश योरे सुते	
परोक्ष ही है तो प्रत्यक्ष		कही ?	६०५
विषे अनुभवक प्रत्यक्ष		श्री स्वानुभव दर्पण (श्री योग	
कैसे कहिए ? ५९९		सारका हिन्दी अनुवाद)	६०५

पृष्ठ

१८

१८

श्री सामासिक पठ साधन

(भाषाभूषण-प्रतिष्ठा) ६२

श्री सामासिक पठ साधन

श्री शेषोप (भाषाभूषण-प्रतिष्ठा)

श्री मन्त्राक्षर-प्रतिष्ठा श्री व्यास

सिद्धि-प्राप्तिके प्रतिष्ठा

(हिन्दी लिप्याङ्गी-प्रतिष्ठा) ६३ श्री सन-... ११ अक्षरार्थ

मध्यम प्रथम

(भाषाभूषण-प्रतिष्ठा) ६४ श्री देवसेनाचार्य सारवसारमें

परमपूज्य आचार्योक्त आभ्यास

पद्योक्त सक्कल ६५-६६से७४४

श्री कुन्दकुन्दाचार्य समयसारमें

कहते हैं ६५०

श्री कुन्दकुन्दाचार्य पद्योक्तिकाव

में कहते हैं ६५८

श्री शिवकोटि आचार्य भगवती

आराधनामें कहते हैं ६६०

श्री पूज्यपादस्वामी समाधि

रातकमें कहते हैं ६६६

श्री शुभसदाचार्य आभ्यास

आसनमें कहते हैं ६६८

११ अक्षरार्थ

११ अक्षरार्थ कहते हैं ६१

११ अक्षरार्थ

११ अक्षरार्थ कहते हैं ६२

११ अक्षरार्थ

११ अक्षरार्थ कहते हैं ६३

११ अक्षरार्थ

११ अक्षरार्थ कहते हैं ६४

११ अक्षरार्थ

११ अक्षरार्थ कहते हैं ६५

११ अक्षरार्थ

११ अक्षरार्थ कहते हैं ६६

११ अक्षरार्थ

११ अक्षरार्थ कहते हैं ६७

११ अक्षरार्थ

११ अक्षरार्थ कहते हैं ६८

११ अक्षरार्थ

११ अक्षरार्थ कहते हैं ६९

११ अक्षरार्थ

११ अक्षरार्थ कहते हैं ७०

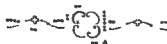
११ अक्षरार्थ

११ अक्षरार्थ कहते हैं ७१

११ अक्षरार्थ

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
१ शुभचन्द्र आचार्य		श्री वर १	५५५
ज्ञानार्थमें कहते हैं -	६२९	समाप्त	७१२
२ ज्ञानभूषण भट्टारक सत्त्व		श्री वर १	५५५
ज्ञान-वर्णितामें कहते हैं	६९७	अनगार	७१५
३ पद्मनदि मुनि धर्मापदेशा-		श्री वर १	५५५
सत्त्वमें कहते हैं -	७००	पञ्चांग	७१६
४ अक्षयमन्त्रिमें कहते हैं	७००	श्री गुरु	७१७
५ धम्मरसायणमें कहते			७१८
हैं	७०४	श्री गुरु	७१८
६ अक्षयचन्द्राचार्य पुष्पाय			७१९
सिद्धयुगायमें कहते हैं -	७०८	श्री वर १	७२०
७ पद्मनदि मुनि सद्बोध-			७२१
चन्द्रोदयमें कहते हैं -	७०६	श्री गुरु	७२२
८ पद्मनदि मुनि सवामक-			७२३
संस्कारमें कहते हैं -	७०८	श्री गुरु	७२४
९ पद्मनदि मुनि सिद्धमुक्तिम			७२५
कहते हैं	७०८	आचार्यकल ५० वर १	७२६
१० पद्मनदि मुनि निश्चय			७२७
पञ्चाशत्में कहते हैं	७०९	धरजी घमासतों करने हैं	७२८
११ वट्टेरावामी भूलाचार			७२९
सूक्ष्मत्याग्यायमें कहते हैं	७११	यति और भावकका भाव	७३०
		सागर धर्मको धारण करने योग्य	७३१
		आवक १८ आनन्दक गुण	७३२

विषय	पृष्ठ
पात्रित धात्री दशा	७३०
करनेका फल	७३१
गोप्य भावसे प्रियार्थ प्राप्त	७३१
करनेका फल	७३१
गोप्य फल	७३१
मन्त्रप्रकाश लक्षण	७३२
वृत्तश्रुता और कृतप्रताका फल	७३२
दया धारण करनेमें अपूर्ण	७३३
युक्तिका निर्देश	७३३
दूसरोंके प्रति उत्तम व्यवहार करो	७३३
पौष उद्भव फलोंके दोष	७३३
जितबर्मके उपदेश सुननेके पात्र	७३४
शायकका घम	७३४
ममयमारकलश	७३५
(श्री अमृतचन्द्रावाय) ७३५ से ७४४	
श्री प्रयत्नसार पद्य ज्ञानरत्न	७३५
प्रवापन ७४५ से ७५५	





आध्यात्मिक पाठ संग्रह

❖ ❖ भक्ति प्रकरण ❖ ❖



ॐ नमोकार महामन्त्र ॐ

नमो अरहताय, नमो मित्राय, नमो आहारीयाय,
नमो उग्रभायाय, नमो लोच मन्त्रसाहस्य ।

चत्वारि मगल-अरहत मगल, मित्र मगल, माह मगल,
केरलि-पण्णतो धम्मो मगल ।

चत्वारि लोमुत्तमा-अरहत लोमुत्तमा, मित्र लोमुत्तमा,
साह लोमुत्तमा, केरलि-पण्णतो धम्मो लोमुत्तमा ।

चत्वारि सरण पञ्चजामि-अरहन्त-मरण पञ्चजामि,
सिद्धसरण पञ्चजामि, माह-सरण पञ्चजामि,
केरलि पण्णतो धम्मो सरण पञ्चजामि ।

दौलत विलास

दर्शनस्तुति (दौलतरामजी)

ॐ दाहा ॐ

मदन्त जयजयक तपि, निजानन्द रसलीन ।

मो जिनेन्द्र जयन्त नित, अरिरजरहमतिहीन ॥१॥

ॐ पदरि द्रष्ट ॐ

जय रीतिराग विज्ञानपूर ।

नय मोहतिमिगको हरन छर ॥

जय ज्ञान यन्तानन धार ।

दृग सुग गीरन मण्डित अपार ॥२॥

जय परम शांत मुद्रा ममेत ।

भविजनको निच अनुभूति हेत ॥

भवि भागनयन नोमे वशाथ ।

तुम मुनि हूँ मुनि मिश्रम नशाय ॥३॥

तुम गुण चितन निच पर विवेक ।

प्रगट मिषट आपट अनेक ॥

तुम जग भूषण दूषण त्रिगुक्त ।

मर महिमा युक्त विवल्प मृक्त ॥४॥

अगिरुद्ध शुद्ध चेतन स्वप्न ।

परमात्म परम पावन अनूप ॥

शुभ अशुभ विभार अभाउ सीन ।

स्वाभाविक परिणति मय अछीन ॥५॥

अटादश दोषनिमुक्त रीर ।

स्वचतुष्टय राजत गँगोर ॥

मुनि गणधरादि मेरुत महन्त ।

नरफललङ्घिमा घरत ॥६॥

तुम शामन मेय अमेव जीव ।

जिउ गये जाहि जैहे मदीव ॥

अरमागरमे दुख छार गारि ।

तारनरो अररत आप टारि ॥७॥

यह लसि निजदुखग हरण राज ।

तुम ही निमित्त राख्य इलाज ॥

जाने तारै म शरण आय ।

उचरा निज दुख जो चिर लहाय ॥८॥

म भ्रम्यो अपनपो रिमरि थाप ।

अपनाये सिद्धिफल पुण्य पाप ।

तनजरो परको ररता पिठान ।

परमे अनिष्टता इष्ट ठान ॥९॥

आकुलिन भयो अज्ञान धारि ।

ज्यो मृग मृगतृष्णा जानि गारि ॥

नन परिणतिम आपो चितार ।

स्वहृ न अनुभवो मरुदमार ॥१०॥

तुमको बिन जान जा स्लेज ।

पाय मो तुम जानन निनेश ॥

पशु नारद नर मुग्गति भँकार ।

मर घर पर मरयो अनन्त बार ॥११॥

अर काल लानि रलन दयाल ।

तुम नशन पाय भयो गुग्याल ॥

मन गात भयो मिटि मकल डड ।

चाग्यो म्वातमरम दुर निरुन्द ॥१२॥

ताने अर ऐमी करहु नाथ ।

पिछुरं न कमी तुम चरण माथ ।

तुम गुणगणयो नहि अर दर ।

जग तारनको तुम विगद प्य ॥१३॥

आत्मर अहित त्रिपय रपाय ।

इनम मेरी परिणति न आय ॥

म रहँ आपम आप लीन ।

मो करो होउँ ज्या निजाधीन ॥१४॥

मेर न चाह कहु और दृग ।

गन्धय निधि दीजे मुनीश ॥

मुक्त काजरु कारन मु आय ।

शिर करहु, हरहु मम मोहताप ॥१५॥

गशि शानिकरन तप हरन हन ।

स्वयमेव तथा तुम कुशल दत ॥
 पीतत पिपूष ज्यों रोग जाय,
 त्यों तुम अनुमरत मर नशाय ॥१६॥
 त्रिभुवन तिहुँकाल मैंभार कोय ।
 नहिं तुम विन निज सुसगाय होय ॥
 मो उर यह निश्चय भयो आज ।
 दुर जलधि उतारन तुम जिहाज ॥१७॥
 ❀ दाहा ❀
 तुम गुणगणमणि गणपती, गनन न पारहि पार ।
 'नौल' मल्पमति किम कहै, नम त्रियोग मैंभार ॥१८॥
 ॥ इति ॥

(१)

नितरा आनन-भान निहारत, ^१भ्रमतमधान नमाया है ॥ टेक
 चचन रिग्न प्रमरनत भविजन, ^२मनसगेन सरसाया है ।
 भवदुःखकारन सुरसनिमतारन, कुपथ सुपथ दग्गमाया है ॥१॥
 निनमाड ^३कज जलसरमाई, निशिचर ^४गमर दुराया है ।
 'नस्कर प्रगल कषाय पलाये, निन ^५धनसोध चुराया है ॥२॥
 लसियत 'उदु न कुमार रुहें अर, मोह उदुक लनाया है ।

॥ मुख्यार्था मूय । १ अज्ञानरूपी अधमर समूह ।

२ हृदयवमल । ३ काई दूर पक्षमें-अज्ञानरूपी राई ।

४ सामर्थ्य । ५ चार । ६ ज्ञानरूपी धन । ७ तारे ।

नमः कोरसो शास्त्र नश्या निच, पगिननि चरणी पाया है । ३
 र्मवयस्त्रजसाप वधगिरि भगि थलि मुंचन पाया है ।
 दाल उजाम निनातम प्रनुभर, उर जग अन्तर द्रया है ॥४॥

(८)

निगमन चिनयन्त रत्न, स्वपगसुस्त्रि आर्त ॥ निरगत ० ॥ १ ॥
 प्रगटा निज आनसो, पिठान ज्ञान मानसी,
 रला उगेत होत काम 'जामिनी पलाई ॥ निरगत ० ॥ १ ॥
 मास्वत आनड ररा, पायो रिनम्यो रिपाद,
 आनम अनिष्ट इष्ट, रूपना नगाई ॥ निरगत ० ॥ २ ॥
 माशी निचमाश्री, समायि मोहव्याधिसी,
 उपाधिसो प्रिरागिर्क, अराधना मुहाई ॥ निरगत ० ॥ ३ ॥
 धन दिन डिम आज सुगुनि, चित जिनराज अर,
 सुधरे मय वाज नील, अचल गिद्धि पाट ॥ निरगत ० ॥ ४ ॥

(९)

जरत आनन्त-जननि दष्टि परी माट ।
 तरत मणय तिमोड भस्मता रिलाट ॥ जरत ० ॥ ८ ॥
 मै हूँ चित्तागिह मित्र, परत पर जड स्वरूप
 दोउनरी छरना मु, नानी दुरगट ॥ जरत ० ॥ ९ ॥

१ आत्मा । २ भक्ता । ३ कमलधरूपा कमलादे
 कोप बर हुन ध उतसे । ४ अव्ययीवरूपा भोला । ५ मुद्र ।
 ६ रात्रि ।

रागादिक घघ हेत, बघन बहु निपति देत ।
 मय हित जान तासु, हेतु ज्ञानताई ॥ जवतें ० ॥ २ ॥
 मय सुखमय शिव है तसु, कारन निशि 'भारन डमि,
 तच्चर्या विचारन जिन, बानि सुधि कगट ॥ जवतें ० ॥ ३ ॥
 निपयचाहजालत द, हो अनतजालतें 'सु,
 धाबुम्यास्पदाकगाह, तें प्रशाति थार्ट ॥ जवतें ० ॥ ४ ॥
 या पिन जगजालमें न, शरन तीनकालमें सैं,
 भाल चित भजो मदीव दौल यह मुहाई ॥ जवतें ० ॥ ५ ॥

(४)

पासग्रनादिनिश मेरी, हरन 'पास परमेशा हैं ।
 चिद्विलाम सुखराशप्रकाशवितरन 'त्रिमोनदिनेशा हैं ॥ टेक ॥
 दुर्निवार 'कदर्पमर्षको दर्पनिठरन 'रुगेशा हैं ।
 'दुष्ट शठ कमठ-उपद्रव प्रलय-समीर-मुमूर्खनगेशा हैं ॥ पा० ॥ १ ॥
 ज्ञान अनत अनत दर्श बल, सुख अनत 'पदमेशा हैं ।
 'स्यानुभूति-रमनी-यर' भवि-मन-गिर पवि 'शिरसदमेशा हैं

१ निर्जरा । २ स्याद्वाटरूपी अमृतम अग्रगाहन करनेसे ।
 ३ अनादि अविवारूपी फौसी । ४ पार्वनाथ भगवान ।
 ५ तीन लोकके सूर्य । ६ कामदध रूपी सर्पको । ७ गरुड़
 पत्नी । ८ दुष्ट, शठ ऐसे कमठके उपद्रवरूपी प्रलयकालका आधी
 को सहन करने वाले मुमेरुपवत हो । ९ लक्ष्मीके ईश । १० रत्ना
 नुमबरूपी स्त्री के पति । ११ मय्योंको समार रूपी परतरे नष्ट
 करनेकी वज्रके समान । १२ मोक्ष महलके स्वामी ।

ऋषि मुनि यति अनगार मन्त्र निम, सेवत 'पाटशेमा' है ।
 उचनचन्द्रत भव गिगमृत, नाशन नम उलेशा है ॥पाम०॥
 नाममत्र ज जप भव्य तिन, अघ अहि नगत 'अशेमा' है ।
 मुर अहमिन्द्र सगन्ध चट्ट हन, अनुक्रम होहि जिनेशा है ॥
 लोभ अलोभ त्रय-नायक प, रत निवभाचिदशा है ।
 रागविना मयस्जन तारक 'मारक' मोह न द्वेषा है । पाम०॥
 मद्र ममृष्ट विमर्दन अर्द्धोक्त पूरनचन्द्र सुवेशा है ।
 दौल नम पत्तासु जासु, शिखल 'ममेन्द्र' अलशा है ॥पाम०॥

(४)

मौर्यारिया नाम जपल, लूट जय मयसोरिया ॥सौ०॥
 'दरित' दुरत पुन तुगत 'कृत' गुन, भानमनी निधि आगरिया ।
 विमृत है परदाह चाह अट गटगत ममग्म गागरिया ॥
 कृत उलङ्घ कर्म 'कलमायन' प्रगटत शिखर 'डागरिया ।
 कृत घटाधन मोह छोह हट, प्रगटत मेन्द्रान धरिया ॥
 'कपाकटाक्ष' तुमारीहीत - जुगलनागनिपटा टारया ।
 'धार' मय मां मुक्तिरमार, दौल नम तुम पागरिया ॥मौ०॥

१ चरण कमल । २ वचनरूपी अमृत । ३ मय ।
 ४ मार्ग चाले । ५ सम्मन्त्रित । ६ पाप । ७ द्विपत्त ह ।
 ८ मुनि हाता है । ९ पीते हैं । १० बालिग । ११ मालना
 रास्ता । १२ रागद्वय । १३ तुम्हाग नाम धारण करके ।

(६)

म आयो, जिन शरण तिहारी ।

मैं चिरदुखी विभावभायत, स्वभाविक निधि थाप निमारी ।^१
 रूप निहार धार तुम गुन सुन, बैन होत मरि शिखमगचारी ।
 यों मम फारजकें कारन तुम, तुमरी सेन एक उर धारी ॥^२
 मिल्यौ अनन्त जन्मत अरसर, अर विनऊँ हे भयसरतारी ।
 परमें इष्ट अनिष्ट कल्पना, दौल कहै छट भेट हमारी । मं० ३।

(७)

हे जिन तेरे मैं शरण आया ।

तुम हो परम दयाल जगतगुरु, मैं भवभर दुख पाया ॥टेक॥
 मोह 'महादुष्ट' घेग मोहि प्रभु, 'भयकानन' भटकाया ।
 नित निच ज्ञानचरननिधि तिसर्यौ, तनयनकर अचनाया ।^१
 'निजानन्द' अनुभविष्य तज, 'रिषय' हलाहल खाया ।
 मेरी भूल मूल दुखदाई, निमित्त 'मोह' विधि थाया । हं० २।
 मो दुष्ट होत शिथिल तुमरे दिग, और न हतु लगाया ।
 शिखमगदृष शिखमगदर्शक तुम, सुयश मुनीगन गाया । हं० ३।
 तुम हो सहज निमित्त जगहितके, मो उर निरय भाया ।
 भिन्न हाँटुँ विधित सो कीजे, दौल तुम्हें मिर नाया । हं० ४।

(८)

ह जिन मेरी, ऐसी बुधि काजै ॥ ह जिन० ॥ टेक ॥

< महा दुष्ट । २ ममागपी वन । ३ अमृत । ४ रिष ।
 ५ धर्म ।

गगद्गेपनाशननत रचि समतारमम भीजे ॥ ह जिन० ॥ १ ॥
 परमे त्याग अपनपो निमम लाग न करहूँ छीजे ॥ २ ॥
 क्रम क्रमफलमाह न गर, ज्ञानसुधारम पीनै ॥ ३ ॥
 मध्यमशन तान अननिचि, नाश प्राप्ति करीज ॥ ४ ॥
 मरु कारनरु तुम कारन घर, अरज टालनी लीन ॥ ५ ॥

(५)

जिममदरमाउन गगरो दरम ॥ शिर० ॥ टेक ॥
 पर पद चाह टाह गद नाशन, तुम वचमेपज पान मरम ।
 गुणचित्तत निन अनुमप्रगट, विधट, विधिठा दृग्धतरम ।
 टौल अयाची सपति साची, पाय रहै थिर गच मरम ॥ ३ ॥

(१०)

मोहि तारा जी क्यों ना, तुम तारक त्रिजगत्त्रिकालमे ॥ टेक ॥
 म भवउदधि परधौ दुख भोग्यौ, मो दुख जात क्यौ ना ।
 जामनमरन अनन्तना तुम, जाननमाहि छिप्यौ ना । मो० ।
 त्रिपय त्रिमरम त्रिपम भग्यौ म, चर्यौ न ज्ञान सलोना ।
 मरी भूल मोहि दुख देर, कर्मनिमित्त भली ना ॥ मोहि० ॥
 तुम पटकझ घरे हिरट निन, मो मरताप तप्यौ ना ।
 सुरगुहृक 'चनरनकर, तुम जमगगन नप्यौ ना । मो०

१ अपनापन । २ आपसी । ३ पुटल सचधी चाहना
 गहरूपी रोग नाश करने लिये । ४ निसका बखन न । सर ।
 ५ चरणकुमल । ६ वचनरूपी विरणासे । ७ भाषा नहीं गया ।

पुगुरु कुदेन कुश्रुत सेये मै, तुम नर हृदय कर्म नः
 परमपराग ज्ञानमय तुम जा, न विनश्वर न नः
 मोमम पतित न और दयानिधि, तत्त्वज्ञ तुम नः ।
 दौलतनी अरदाम यही है, फिर न्यून गमीन नः ॥ २१ ॥

(१८)

धारा तो वनामें सरगान करे द,
 गहारे छगिनिरसत द्विज सनन ॥
 तुमधुनिधन परचदन नन्दन
 वर समता-रमन्त नमन ॥ २२ ॥
 रूपनिहागत ही नृषि हृद मे,
 निजपरचिह्न नृद नमन ॥
 म चिदक अमल अमन नन्द
 इन्द्रियसुख नन्द नमन ॥ २३ ॥
 ज्ञानपरागसुधुनतुम निन्द
 प्रापतिहित सुख नन्दन ॥
 मुनि बहभाग लीन निन्द नन्द
 दौल धन लपन गमाव ॥ २४ ॥

१ पापी । २ पारिवर्तन वाता । ३ आपन । ४
 रूप मेघ । ४ परपरागोरी कर्माणि अप्रिच्छा युमान वाता ॥
 ५ चैतन्य स्वरूप । ६ नृषि ज्ञानसुख तुम जडका स्वयं वर
 हैं मेग नदी, मुझे सुख तुम नहीं दान । ७ निगुद, निमेष

(१०)

विभुवन आनन्दमयी निन छात्र, यारी नैन निहारी ॥८॥
 नान अप्रमद उर्य भयो अर, या दिनरी प्रलिहारी ।
 मो उर मोड रथो जु नाय मो, रया न जान उचारी ॥९॥
 मुन घनयोग मोरमुद ओर न, व्यो निधि पाय भिगारी ।
 नाहि लगन कट भग्न माह्न, होय मो भवि अविहारी ॥१०॥
 नाहा मुन्दरता सु पुन्दर, शोभ लजामनहारी ।
 निन अनुभति मुगच्छवि पुलकित, उदन मदन अविहारी ॥११॥
 गल इकल न गाला भाला, मुनिमनमो प्रमारी ।
 अम्न न ननन मन अमे ना रक न 'लर' मम्हारी ॥१२॥
 नाह विविभिमाय को गति न, लगियत हु जगतारी ।
 एनत 'पानरपुत्र पलायत, ध्यायत शिरभिस्तारी ॥त्रि०॥१३॥
 राम अनु सुरत चितामनि, इरुमर मुखरतारी ।
 तुम छवि लगन, मोदत जो मुर, मो तुमपद दातारी ॥१४॥
 महिमा कहत न लहत पार मुर, गुरुहरी बुधिहारी ।
 धार र' रिम दोल चहँ डम, दहू दशा तुमधारी ॥त्रि०॥१५॥

(१३)

निन छवि लखन यह बुधि भयी ॥ जिन० ॥ ८॥
 मैं न रह रिक्कमय तन, जहँ परमरममयी ॥ जिन० ॥ ९॥

१ दृष्ट । २ पार नरी । ३ अत्रुमा गाथा । ४ त्रिगुल ।

५ चर । ६ उमर । ७ पाषाण समूह । ८ बृहस्पतिकी भी ।

९ धैर्यस्वरूप ।

अशुभशुभफल कर्म सुखदुःख, पृथग्ना मय गरी ।
 गगदोष विभार चालित, चानता विथ यथा । विन० २० ॥
 परिगहन आकुलता दहन, विनिशि जमता नया ।
 द्रौल परवअलम आनैट, लगे मयविनि जरी । विन ॥ २१ ॥
 (१२)

आज मैं परम पदार्थ पायाँ, प्रयुक्तानन विनिजायाँ । विन० ॥
 अशुभ गये शुभ प्रगट मय हैं, मदक कन्यार करी । ॥ १ ॥
 ज्ञानशक्ति तप ऐसी जारी, चैननपत्त गगारा । विन० ॥
 अष्टकर्म रिपु जोधा जान गिर अजर बनसौ । विन० ॥ २ ॥

भागचन्द भजनमात्र

दर्शनस्तुति

ॐ नमो ॐ

विश्वमावच्छापी, एक विमल तिष्ठ ।

ज्ञानानन्तर्यामी मदा, जयसल विनय ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं नमः ॐ

मफली मम 'लोचन द्वद, मम कुक्षे विनय ॥

मम तनमन शीतल मम, अमृतम मय जय ॥ २ ॥

तुम बोध अमोघ यपारा, मम ज्ञान मय निर्याग ।

आनन्द अतिन्द्रिय राने रल श्रुत मय न न्याय ॥ ३ ॥

ॐ नमो नमः ।

आर्यामित्र गुणन अनन्ता, अतर्लन्मी भगवता ।
 गान्धि विभूति गहु मोहं गनन समर्थ करि को है ॥५॥
 तुम वृच्छ अशास्त्र सुगन्ध सर शोक हरनरो दच्छ ।
 तहा चचरीर गुच्चार । मानों तुम मोत्र उच्चार ॥५॥
 शुभ गन्धगुण गन्धर मिहसन गोम पत्रि ।
 तह गीतराग अरि मोह, तुम अन्तरीक्ष मन मोह ॥६॥
 ग कृन् कृन् अगन्त चामग्रज सर सुहात ।
 तुम उपर मधरा दार, घर भक्ति भार अघ दार ॥७॥
 मुक्ताफल माल ममेत । तुम उर्ध्व छत्रय सेत ।
 माना तारान्वित चन्द, त्रय मूर्ति परी दुति घृन्द ॥८॥
 शुभ दिव्य पद्म गद्गु गार्ज । अतिगण गुत अविक निराज ।
 तुमरो जम घोक मानौ । त्रैलोक्यनाथ यह जानौ ॥९॥
 हरिच दन सुमन सुहाये । दशदिशि सुगन्धि महभाये ।
 अलिपुत्र निगुञ्जत जामै । शुभ वृष्टि होत तुम मर्म ॥१०॥
 मामदल गीति अगद । द्विप जात कोट मार्तण्ड ।
 जग लोचनको सुगन्धारी । दिव्यातम पदल निगारी ॥११॥
 तुमरी दिव्यधनि गानै । गिन इच्छा भरिहित काज ।
 जीगानिक तन्त्र प्रभाशी । अमरमहर सूर्यरलासी ॥१२॥
 इत्यादि विभूति अनन्त । गान्धि अतिशय अगदत ।

१ मूर्ति । २ विरण । ३ इन्द्र । ४ मोती । ५ पुष्प
 ६ मूर्ति का समूह ।

त्यत मन भमतम भागा । हित अहित ज्ञान उर जागा ॥१३॥
 तुम मर लायक उपगारी । मैं दीन दुग्गी ममारी ।
 तार्त सुनिये यह अरजी । तुम शरण लियो जिनबरजी ॥१४॥
 मैं जीन द्रव्य गिन अग । लागो अनादि विधि सग ।
 ता निमित्त पाय दुख पाये । हम मि-यातादि महा ये ॥१५॥
 निजगुण कबहूँ नहिं भाये, मर परपदार्थ अपनाये ।
 रति अरति करी सुखदुखमें, हूँ करि निनधर्म निमुख मैं ॥१६॥
 पर-चाह-दाह नित दाहों । नहिं शात सुधा अगगाहौ ।
 पशु नागक नर सुरगनमें, चिर भ्रमत भयो भ्रममतमें ॥१७॥
 रीनें बहु जामन मरना । नहिं पायो साचो शरना ।
 अथ भाग उदय मम आयो । तुम दर्शन निर्मल पायो ॥१८॥
 मन शात भयो उर मेरो । बाढ़ो उछाह शिक्केरो ।
 पर विषय रहित आनन्द । निज रम चाखो निगदन्द ॥१९॥
 मुक्त काजतनें कारज हो । तुम देन तरन तारन हो ।
 तार्त ऐमी अथ कीजे । तुम चरनभक्ति मोह दीने ॥२०॥
 दग ज्ञान-चरन परिपूर । पाऊँ निश्चय भयचूर ।
 दुखदायक विषय कषाय । इनमें पगनति नहिं जाय ॥२१॥
 सुरराज ममान न चाहो । आतम समाधि अवगाहो ।
 पर इच्छा तो मनमानी । पूरो मर केवलज्ञानी ॥२२॥

ॐ दोहा ॐ

गनपति पाग न पावहीं, तुम गुनजलधि विशाल ।
 भागचन्द तुव भक्ति ही, कर हर्म बाचाल ॥२३॥

८ दर्शन स्तुति

ॐ गीनिमा ॐ

तुम परम पावन दस निन यरि रज गहम्य मिनाशन ।
 तुम जान रग चलनीच त्रिभुवन उमलवन प्रतिमामन ॥
 आनन निजच अनन गन्ध अचिन मतत परनये ।
 पल अतुल कलित स्वमारुत नहि खलित गुन अमिलित अपे ॥
 मर राग रग हनि परम श्रवन ग्यभाय घन निमल दशा ।
 इच्छारहित मर्यादित सिरत, उच सुनत ही भ्रमनन नशा ॥
 पमान्त-गहन-मुदहन प्यात्पद, बहन मय निषपर दया ।
 जाके प्रमाद त्रिपाद निन, मुनिजन मपनि शिखपद लहा ॥
 भूपन वसन सुमनादिविन तन, ध्यानमय मुद्रा दिष ।
 नामाग्र नयन सुपलर हलय न, तेन लगि खगगन छिप ॥
 पुनि वदन निरगत प्रणम जल, वरखत सुहरखत उर घरा ।
 नृधि स्वपर पारखत पुन्यआरर, रलिरुलिल दुग्खत जग ।
 इत्यादि बहिरन्तर असाधारन, सुविभय निधान जी ।
 इन्द्रादिवद पदारविद, अर्निद तुम भगवान जी ॥
 मैं चिर दुखी परचाहव, तुम धर्म नियत न उर धरो ।
 परदेवसेन करी पहुत, नहि काज एक तहो मरो ॥४॥
 अर भागचन्द्र उदय मयो, मैं शरन आथो तुम तन ।
 इक दीलिये सरदान तुम जस, स्वपददायक पुष भने ॥
 परमाहि इष्ट अनिष्ट-मति तजि, भगन निज गुामें रहा ।
 रग-ज्ञान-चर सपूर्ण पाऊँ, भागचन्द न पर चहो ॥५॥

(३) राग प्रभाषी ।

प्रभु तुम मूरन दगसों निरखे हरखै मोरो जीयरा ॥ टेक ॥
 'भुजत कषायानल पुनि उपजै, ज्ञानसुधारस सीयरा ॥ १ ॥
 चीतरागवा प्रगट होत है, शिखल दीसै नीयरा ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
 भागचन्द तुम चरन कमलमें, बसत सन्तजन हीयरा ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥

(४) राग झुमरी ।

चीतराग जिन महिमा थारी, वरन सकैं को जन त्रिभुवनमें ॥
 तुमरे अतट चतुष्टय प्रगट्यो, निशेषावरनच्छय छिनमें ॥
 मेघ पटल विघटनैं प्रगटत, जिमि 'मातंड प्रकाश गगनमें ॥
 अप्रमेय ज्ञेयनकें व्यापक, नहिं परिनमत तदपि ज्ञेयनमें ॥
 देखत नयन अनेक रूप जिमि, मिलत नहीं पुनि निज विषयनमें ॥
 निज उपयोग आपने स्वामी, गाल दिया निश्चल आपनमें ॥
 है अममर्थ घास निकमनको, लवन घुला जैसे 'जीवनमें ॥
 तुमरे भक्त परम सुख पावत, परत अभक्त अनन्त दुखनमें ॥
 जैमो मुरा दरखे तैसौ है, भासत जिम निर्मल दरपनमें ॥
 तुम कषाय बिन परम शांत हो, तदपि दक्ष कर्मरिहतनमें ॥
 जैसे अतिशीतल तुषार पुनि, 'जार देत' 'झुम भारि' 'गहनमें ॥
 अब तुम रूप जथारथ पायो, अत्र इच्छा नहिं अन कुमतनमें ॥
 भागचन्द अप्रतरस पीकर, फिर को चाहे विष निज मनमें ॥

१ नष्ट होजाती है । २ सूय । ३ जल । ४ जला देता है ।

५ पृष्ठ । ६ बनमें ।

(५) गगनगला ।

तुम गुणमनिनिधि हो अरहन्त । टर ।

पार न पायत तुमगे गनपति चार जान वरि मत ॥१॥
 नान कोष मय रोष रहित तुम अलग अमूर्ति अनित ॥२॥
 हरिगत अगन्त तुम 'पञ्चाग्नि' पद्मेष्टि भगवत ॥३॥
 भागरथ 'अमन्त्रि'रम, उमदु मदा जयवत ॥४॥

(६) गगनमाट ।

स्वामानी तुमगुन अपरपार, चन्द्राञ्जल अत्रिहार । टर ।
 वर तुम गर्भमाहि आय, तर मर मुग्धन मिलि आये ।
 गतन नगरीमें उरपाये, अमित अमोघ मुद्धार ॥म्या०॥१॥
 जन्म प्रभु तुमने 'नर' लीना, न्दवन मदिरुप हरि कीना ।
 भक्त हरि 'मयी' महित भीना गोलाजपनयकार ॥म्या०॥२॥
 जगत छनभगुर नच जाना भय तर नगनशुती याना ।
 म्दन लोकातिर सुर ठाना, न्यागरानरो भार ॥म्या०॥३॥
 पातिया प्रकृति जपे नामी, चरागर वस्तु सपे मामी ।
 वर्मकी वृष्टि रगी गामी, कलनाम महार ॥म्या०॥४॥
 अधाता प्रकृति सुविषटाट, मुक्तिराता तर ही पाई ।
 निराहुल आनन्द अमहाट, तीनलोफ मरदार ॥म्या०॥५॥
 पार गनवर ह नोठ पार, रुदा लागि भागचन्द गाये ।
 तुम्हार चरणाजुल ध्याये, भयमागरमों तार ॥म्यामी०॥६॥

१ चरणकमल । ८ इन्द्र । ९ इन्द्राणी ।

(७) राग मल्हार ।

यगत ज्ञान सुनीर हो श्री जिनमुखनसों ॥टेरु॥
 जीतल होत सुगुद्धिमेदिनी मिटत भगतपपीर ॥वर०॥१॥
 म्यादवाट नय दामिनि दमरु, होत निनाद गंभीर ॥वर०॥२॥
 रुकानदो वहै चहुँ दिशितैं, मरी मो दोई तीर ॥वर०॥३॥
 भागचन्द अनुभयमन्दिरको, तजत न सत सुधीर ॥वर०॥४॥

(८) राग घनाश्री ।

प्रभु थाक लखि मम चित हरपायो ॥टेरु॥
 सुन्दर चितारतन अमोलक, रंकपुष्प जिमि पायो ॥प्र०॥१॥
 निर्मलरूप भयो अर मेरो, भक्तिनदीजल न्हायो ॥प्र०॥२॥
 भागचन्द अब मम करतलमें अचिचल गिक्थल आयो ॥३॥

(९) राग जाड़ा ।

मैं तुम शरन लीपौ, तुम माचे प्रभु अरहन्त ॥टेरु॥
 तुमर दर्शन ज्ञान, -मुझमें दरगजान झलकत ।
 अतुल निराकुलमुख आस्वादन, गीरज अरज अनत ॥मं०॥१॥
 रागद्वेष विभार नाश भये, परम ममरसी मत ।
 पद देवाधिपत पायों किये, दोष दुष्पादिक अत ॥मं०॥२॥
 भूषण चमन गच्छ कामादिर, करन रिकार अनन्त ।
 तिन रिन तुम परमौदारिक तन, मुद्रा गम शोमत ॥मं०॥३॥
 तुम वानीत धर्मवीर्य जग, भादि त्रिकाल चलत ।

निनरन्त्याहनु इन्द्रादिक, तुम पदसेन करत ॥मै०॥४॥
 तुम गुण अनुभरत निज-पर-गुण, दरसत अगम अचिन ।
 भागचन्द निरूपप्राप्ति प्रर, पाँच हस भगवत ॥मै०॥५॥

(१०) राम गीपचन्दी मोंठकी ।

लखिक स्वामी रूपको, मेरा मन भया चगा जी ॥टे०॥
 विघ्नम नष्ट गरुड लखि जसे, भगत सुजगा जी ॥ल०॥१॥
 शीतल भाव भव जय न्दायौ, भक्ति सुगगा जी ॥ल०॥२॥
 भागचन्द अरु भरे लागौ, निजरसरगा जी ॥ल०॥३॥

(११) साधु स्तुति ।

ऐसे जैनी मुनिमहाराज, सदा उर मो रसो ॥टक॥
 निन समस्त परद्रव्यनिमार्हा, अहनुद्धि तजि दीनी ।
 गुण अनत जानादिक मम पुनि, स्वानुभूति लखि लोनी ॥१॥
 जे निजनुद्धिपूर्व रगोदिक सकल विभाव निवारै ।
 पुनि अनुद्धिपूर्व रनाशनको, अपने शक्ति मरहारै ॥ऐ०॥२॥
 कर्म शुभाशुभ बध उदयम, हर्ष विपाद न राखै ।
 सम्यग्दर्शनज्ञानचरनतप, भावसुधारम चारै ॥ऐ०॥३॥
 पाकी इच्छा तजि निजबल भजि, पूरव कर्म मिरारै ।
 सकल कर्म तैं भिन्न अवस्था, सुखमय लखि चित चारै ॥४॥
 उदासीन शुद्धोपयोगगत सयके दृष्टा ज्ञाता ।
 बाहिररूप नगन ममताकर, भागचन्द मुमुक्षात ०॥५॥

१० राग-खमाच ।

श्रीगुरु हैं उपगारी ऐसे धीतराग गुनधारी वे ॥ टेक ॥
 म्मानुभूति रमनी गग कीडैं, ज्ञानसम्पदा भारी वे । श्री० । १ ।
 ध्यान पीजगमें जिन रोकैं, चित राग चचलचारी वे । श्री० । २ ।
 तिनके चरनमरोरु ध्यावैं, भागचन्द अघटारी वे । श्री० । ३ ।

११ राग-फलिंगड़ा

ऐसे साधु सुगुरु क्य मिलि हैं ॥ टेक ॥
 आप तैं अरु परको तारैं, निप्रेही निर्मल हैं ॥ ऐसे० । १ ॥
 तिलतुपमात्रभंग नहिं जिनकैं, ज्ञान ध्यान-गुन-चल हैं । ऐ० । २ ।
 शात दिगम्बर मुद्रा जिनकी, मन्दरतुल्य अचल हैं । ऐ० । ३ ।
 भागचन्द तिनको नित चाहै, ज्यों कमलनिरो अल हैं । ऐ० । ४ ।

(१४) गुरु-स्तुति राग सारंग

श्रीमुनि राजत समता सग । कायोत्सर्ग ममायत अग ॥ टेक ॥
 करतैं नहिं कछु कारज तारैं, आलम्बित भुज कीन अमग ।
 गमन काज कछु हू नहिं तारैं, गति तजि छाके निज रसरग ॥
 लोचनत लखियौ कछु नाहीं, तारैं नासा दग अचलग ।
 मुनिव जोग रखौ कछु नाहीं, तारैं प्राप्त इकत सुचग ॥
 तहैं मध्याह्नमार्हि निज ऊपर, आयो उग्र प्रताप पतग ।
 कैधौ ज्ञान पवनबल प्रजुलित, ध्यानानलमौ उछलि फुलिंग ॥
 चित निराहुल अतुल उठन जहैं, परमानन्द पियूपतरग ।
 भागचन्द ऐसे श्रीगुरुपद, उदत मिलत स्वपद उत्तग । श्री० ।

(१४)

धन धन जेनी मातु असाधित, तत्त्वार्थविलामी हो ॥२३॥
 दजन-बोधमई निनपूरति, जिनका अपनी मामी हो ।
 यामी अन्तर ममन्त वस्तुमें अहबुद्धि दुग्दही मो हो ॥धन०॥
 चिन अशुभोगयोगरी परनति, मत्तामहित विनाशी हो ।
 होय रत्नाच शुभोपयोग तो, तहें भी रहत उदासी हो ।धन०
 छदन जे अनादि दुग्दही, दुग्धि वधरी कामी हो ।
 मोह बोधरहित चिन परनति, मिमल मयक-विलामी हो ॥
 रिषय-चाहन्तर गह गुनारन, माम्य सुधारम-रामी हो ।
 भागचन् ज्ञानानन्दी पर, माधत मदा हुलासी हो ।धन०

(१५) गग पर

मम आराम विहारी, माधुनन मम आराम विहारी ॥२४॥
 एर कल्पतरु पुष्पन सेंगी, जवन भक्ति विस्तारी ।
 एक कठरिष्य मपे नागिया, त्रौवत्पनुत भारी ॥
 रायत एक इति गेडनम, मरहाक उपगारी ॥मम०॥१॥
 माग्मा हरिगुल सुगार, पुनि मगल मजारी ।
 व्याघ्रालरुति महित नन्दिनी, त्याल नकुलकी नारी ॥
 तिनजे चारुमल आश्रयंत, अरिता मरुल निगारी ॥मम०॥
 अनय अतुल प्रमोद विगार, ताको घाम अपारी ।
 राम धरा विर गटी मो चित, आनमनिधि अविकारी ॥
 मनन ताहि लैर रम जे, नी रम बुद्धि कुगारी ॥मम०॥

निज शुद्धोपयोगरस चाग्रतः, परममता न लगारी ।
 निज मरधान ज्ञान चरनात्मक, निश्चय शिरमगचारी ॥
 भागचन्द ऐसे श्रीपति प्रति, फिर फिर दोक हमारी ॥मम०॥

(१६) साधुमुक्ति (दौलतरामजी)

निन रागदोषत्यागा वह सतगुरु हमारा ॥ निन० ॥ टेक ॥
 तन रागरिद्ध छायत निज राज मँभारा ॥ जिन० ॥ १ ॥
 रहता है यह मनखण्डमें, धरि ध्यान कुटारा ।

जिन मोह महातरुको, जड़मूल उगारा ॥ जिन० ॥ २ ॥
 मर्माङ्ग तज परिग्रह दिगमर धारा ।

अनतज्ञानगुणममुद्र धारि भँडारा ॥ जिन० ॥ ३ ॥

शुक्लाग्रिको प्रजालक उसु कानन जारा ।

ऐसे गुल्फो ढोल है, नमोऽस्तु हमारा ॥ निन० ॥ ४ ॥

(१७)

कनधौ मिले मोहि श्रीगुरु मुनिपर, करि है भगवधि पाग होटे ॥
 भोगउदाम जोग जिन लीनों, छाड़ि परिग्रह भारा हो ।

इन्द्रियदमन वमन मद सोनों, निषय कषाय निजारा हो ॥

रुचन काच वराग जिनक, निष्क वटक 'मारा हो ।

दुर्धर तप तपि भयम् निज घर, मनचतनकर धारा हो ॥

ग्रीष्म गिरि हिम भरितावीर, पायस तस्तर ठाग हो ।

रुक्णाभीन चीन तस यावर ईयापथ समाग हो ॥रु०॥

‘मार मार’ प्रत धार शील हृद, मोह महामल दारा हो ।
 माम उमाम उपाम वाम रत्न, दामुदर रत्न अदारा हो ॥
 आरत रौद्र लेश नहिं जिनके, धर्म शुक्ल चित धारा हो ।
 ध्यानार्त्त गूढ़ निच प्राप्त, शुभउपयोग त्रिचारा हो ॥
 आप तरहि औरनरो तारहि, भयजलभिधु अपारा हो ।
 दौलत तेमे, पैनजनिनको, नितप्रति धोक हमारा हो ॥

(१८)

रनि मुनि जिनसी, लगी लौ शिख ओ रैन ॥ घनाटेर ॥
 मम्यगर्शनज्ञानचरन निधि, घरत हरत भ्रमचोरन ॥ १॥
 यथाचातमुद्राजुत सुन्दर मदन ‘गिजन गिरिकोरन ॥
 तनरगन अरि स्वजन गिनत सम, निंदन और निहोरन ॥
 भयमुखचाह मरुहातनि उल सजि, करत क्षिप्रघतप घोरन ॥
 परम प्रिरागभाव पत्रित नित चूरत क्रम कठोरन ॥
 छीन शरीर न हीन चिदानन, मोहत मोह भूकोरन ॥
 नग तप हर ‘भरि कुमुद निशासर, मोहन ल चकोरन ॥

१ कामदेवको मारकर । २ घर तप तपि समकित गति
 जिन चित, करि मनचचतन सारा हो । माममाम उपाम वासवन
 तमा भी पाठ है । ३ आर्त्तध्यान । ४ रौद्रध्यान । ५ लगन ।
 “नै” यिमनि मय जगह ‘को के अथर्म है । ७ नम्र दिगम्बर ।
 ८ निचर । ९ प्रार्थना करनेको । १० परम वैराग्यके यात्रकर्त्ता
 कह्ये । ११ भयरूपा कमाजिनीको ‘रग्या ।

(१९) साधु-स्तुति (चानतरायजी)

धनि धनि ते मुनि गिरिनवासी ॥टेक॥

मार मार जगजार आरते, द्वादश तत्तप अम्यामी ॥१॥
 कौडी लाल पास नहिं जाके जिन छेदी आसापासी ।
 आतम आतम, पर-पर जानै, द्वादश तीन प्रकृति नामी ॥२॥
 जा दुख देख दुखी सन जग हूँ, सो दुख लख सुख हूँ तासी ।
 जाका सन जग सुख मानत है, सो सुख जान्यो दुखरासी ॥३॥
 बाहज भेष कहत अतर गुण, सत्य मधुर हितमितभासी ।
 दानत ते शिष्यपथधिक हैं, पाँच परत पातक जासी ॥४॥

(२०) साधु-स्तुति (भूषणदासजी)

वे मुनिवर कब मिलि हैं उपगारी ॥टेक॥

माधु दिगम्बर नगन निरम्बर, सरभूषणधारी ॥१॥
 कचन काच उरावर जिनके, ज्यों रिपु त्यों हितकारी ।
 महुल ममान मरन अरु जीवन, सम गेरिमा अरु गैारी ॥२॥
 मम्यज्ञान प्रधान पवन उल, तप पावक परजारी ।
 शोध जीव सुवर्ष सदा जे, काय-कारिमा टारी ॥३॥
 जोरि जुगल कर भूषण निनै, तिन पद दोक हमारी ।
 माग उदय दरसन अब पाऊँ, ता दिनकी बलिहारी ॥४॥

१ रामदेव । २ मदिमा, बढाई । ३ गाली । ४ अग्नि ।

अथ भूषणद्वयं दूरी गुरुस्तुति गगनमस्तु ॥

न गुरु मेरे मन बसो, न भवचलधि जिहाज ।

आप निर्गहिं पर तारही, एसे श्री श्रविराज ॥१॥

मोह महारिपु जानिके छाड़्यो मर धरवार ।

हाय दिगम्बर बन रसे, आत्म शुद्ध निवार ॥२॥

गगन गगन मिल गुरु गिरयो, भोग भुजग समान ।

रुद्रीतर समार है, न्यायो मर यह जान ॥३॥

गन्तव्यनिधि उर ग, अरु निरग्र प्रियाल ।

मारग कामगममरो, स्वामी परमदयाल ॥४॥

पंच महाग्रन्थ आर्य पांचा मयिनि समेन ।

तीन गुणति पाल मन्त्र, अचर अपर पदहत्त ॥५॥

धर्म धर दण्डनादनी, भार माना मार ।

महं परीपह वीर द्व, चारित-रतन भंडार ॥६॥

जठ तप रवि आकरो, सूर्य मरार नीर ।

शल-गिरग मुनि तप तप, दाम्भिकनगर शरीर ॥७॥

पारम, रन डगमो, रसे जलधर धार ।

तद्वल निर्वय तर यती, बाजे कमा व्यार ॥८॥

शात पद कपि-मन्त्र गल, गहै मर वनराय ।

ताल तन्मयनिक तट, ठाड़ ध्यान लगाय ॥९॥

इह गिरि दुद्ध नप नप, तीनोंकाल मैमार ।

लाग मन्त्र मन्त्र तनमो ममत निवार ॥१०॥

परम भोग न चितये, आगम गाल नहि ।
 चङ्गतिरे दुखमों डर, मुरति लगी शिखमाहि ॥११॥
 रग महलमें पाँढते, कोमल सेज निछाय ।
 ते पच्छिम निशि भूमिमें, मोर्वे मरिकाय ॥१२॥
 गजचढ़ि चलते भरवसाँ, सेना मजि चतुर्ग ।
 निरखि निरखि पग वे धरै, पाल कल्या अग ॥१३॥
 वे गुरु चरण जहा धरै, जगम तीरथ जेह ।
 मो रज मम मस्तक चढो, भूधर मार्ग गढ ॥१४॥

(२०) (पुष्यनची)

मुनि बन आये घना ॥मुनि०॥टेका॥

शिवनगरी व्याहनरौ उमगे, मोहित भगिनु जना ॥मु०॥१॥
 गननय मिर सेहरा बाधै, मजि मरर मनना ।
 मग रराती डादशे भावन, अरु दशधर्मपना । मु०॥२॥
 सुमति नारि मिलि मगल गायत, अजपा गीत घना ।
 रग दोषकी आतिशवाजी, छूटत अगनि-कना ॥मु०॥३॥
 दुगिनि कर्मका दान रटत है, तोपित लोभमना ।
 शुफल ध्यानकी अगनि जलाकरि, होमै कर्मघना ॥४॥
 शुभ कृत्या शिव नरि वरी मुनि, अमुत हरप घना ।
 निच मंदिरमें निश्चल राजत पुष्यन त्याग घना ॥५॥

१ शास्त्रमुनि (५० नारायणीदासजी)

निनादग जाता निनेन्द्रा विग्याता,

विशुद्ध प्रमुद्रा नमो लोभमाता ।

दुराचार दुन्दरा शंकरानी,
नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी । ११ ।

सुधाधर्ममंसाघनी धर्मशाला,
सुधातापनिर्नाशनी मेघमाला ।

महामोहविषसनी मोक्षदानी,
नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी । १२ ।

अखण्डवशाखा व्यतीतामिन्नाषा-
रथा संस्कृता प्राकृता देशमाषा ।

चिदानन्द-भूपालकी राजधानी,
नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी । १३ ।

ममाधानरूपा अनूपा अशुद्धा-
अनेमान्तया म्यादवादाङ्गमुद्रा ।

त्रिधा मयथा द्वादशाङ्गी वरानी,
नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी । १४ ।

अज्ञेया अमाना अदमा अलोमा,
श्रुतज्ञानरूपा मतित्रानशोभा ।

महापायनी मावना मय्यमानी,
नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी । १५ ।

अतीता अजीता मदा निर्गिरा
निर्गिराटिकापिडिनी 'सङ्गधार' ।

पुरापापनिक्षेपकर्तृ कृपाणी,
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी । ६ ।

अगाधा अबाधा निरघ्रा निराशा,
अनन्ता अनादोश्चरौ कर्मनाशा ।

निष्का निरका चिदका भगानी,
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी । ७ ।

अशोका मुदका शिवेका विधानी,
जगज्जन्तुमित्रा विचित्रायनी ।

ममस्तावलोका निरस्तानिदानी,
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी । ८ ।

जैनवाणी जैनवाणी सुनहिं जे जीव,
जे आगम रुचिबरें जे प्रतीति मन माहिं यानहि ।
अवधारहिं जे पुरुष समर्थ पद अर्थ जानहि ॥
जे हितहेतु बनारसी, दहिं धर्म उपदेश ।
ते मय पावहिं परम सुख, तज मसार र्लेश ॥

(२) शास्त्रानुस

वीर-हिमाचलंत , निकमी,
गुरु गौतमक मुख-कुण्ड डरी है;
मोह महाचल मेद , चली,
जगजी अढ़ता तप दूर करी है ।
ज्ञान पयोनिधि मोंहि रली,

बहु भग-तगमनिमो उल्लास है ,
 ता शुचि शारद गगनदी प्रति ,
 मैं अञ्जलि कर शीघ्र धरी है ॥१॥
 या जग मन्दिरम अनिराग ,
 यन्मान यैषे ल्यो अतिमार्ग ,
 वीचिनरी पुनि दास शिखा मम ,
 जो नहि होत प्रकाशन हारी -
 तो रिय भौनि पदारथ पौति ,
 कडा लहते ? रहत अगिचारी ;
 या मिथि मन्त कहैं धनि है ,
 प्रति हँ जिन केन बडे उपकारी ॥२॥

(३)

कैवलि वन्ये, वाष्प्य गग ,
 जगदम्बे, अथ नाश हमारे
 मत्प म्बरूपे मगल-रूपे ,
 मने मन्दिरमे तिष्ठ हमारे ॥१॥
 जगन्नामी गौतम गणधर ,
 इष्ट सुवधा पुत्र तुम्हारे ,
 जगत स्वय पार दूर करके ,
 द उपदेश बहुत जन सारे ॥२॥
 कुन्दकुन्द अमलकन्द अर ,

विद्यानेदि आदि मुनि मारे,

तब कुल कनुद चंद्रमा ये शुभ,
शिवासुत द स्वर्ग मिधारे ॥३॥

तूने उत्तम तत्त्व प्रकाशे,
चमके भ्रम मय छव क टार,
तेरी ज्योति निरख सज्जा-बग,
परि शशि छिपते नित्य रिचारे ॥४॥

भर मय पीडित, व्यथित चित्त जन,
जब जो आये शरण त्रिदारे,
छिन भरमें उनके मर तुमन,
चरणा करि मकट मर टार ॥५॥

जब तरु विषय स्थाय नष्ट नहि,
रुमे शत्रु नहि जाय निशारे,
तब तक 'प्रानानन्द' रहै नित,
भर जीवनत समता धार ॥६॥

(८) शास्त्र भक्ति (निम्नलिखी छन्द) ।
अकेला ही हूँ मैं कर्म मय आये सिमटिकें ।
लिया है म नरा शरण अम माता सटकिरु ॥
अमायत हूँ मोरा - राम दुख दत्ता जनमरु ।
कर्म भक्ती तरो, हूँगे दस पाता भ्रमनरु ॥१॥

१ यह भक्ति शास्त्र का चतुर्थ साधन ध्यान की चालिख ।

दुग्गी हुआ भारी, अमल किन्ता हूँ जग में ।
 मदा जाना नार्ही, अकल घराही अमनर्म ॥
 करा क्या माँ भोगी, चलत बग नार्ही मिटन का ।
 रगे भक्ती तेरी, गो दुख माता अमनका ॥२॥
 मुनो माता मोरो, अरज करता हूँ दरदर्म ।
 दग्गो जानों मोरों, डरप कर आपो शरनर्म ॥
 कृपा ऐमो कीजे, दरद मिट जाय मरनका ।
 करा भक्ती तेरी, करो दुख माता अमनका ॥३॥
 पिलाय जो मोरों, मुनुधिकर प्याला अमृतका ।
 मिटाय जो मेरा, मरब दुख मारा हरिनका ॥
 परो पात्रों तेरे, दरो दुख सारा किरनका ।
 रगे भक्ती तेरी, करो दुख माता अमनका ॥४॥

सबैया ।

मिथ्या-तम नाशवेसो ज्ञानरे प्रकाशरसो
 आपा पर भामवेसो मानुमी बरानी है ।
 उहो द्रव्य जानवेसो बधनिधि भानवेसो,
 स्वपर पिछानवेसो परम प्रमानी है ॥ ५ ॥
 अनुभा बतायवेसो जीमके जतायवेसो,
 काह न मतायवेसो मव्य उर आनी है ।
 जहाँ तहाँ तारवेसो पारक उतारवेसो,
 मुम विस्तारवेसो बेदी जिनमानी है ॥ ६ ॥

ॐ नमो ॐ

यह जिनगानीकी श्रुती, अल्पबुद्धि परमान ।
 'पन्नालाल' मिनती कर, दे माता मोहि ध्यान ॥७॥
 हे जिनगानी भारती, तोहि जपों दिनरंग ।
 जो तेरा शरणा गहै, मो पावै सुख चैन ॥८॥
 जा बानीके ध्यानत, छूके लोकालोक ।
 मो बानी मस्तक चढ़ो, सदा देत हों धोरु ॥९॥

(५)

नित, पीजों धीधारी, 'जिनगानि' सुधामम जानके । नि०।टेका
 'धीरमुखारविदत्त' प्रगटी, जन्मजरा 'गदटारी' ।
 गौतमादिगुरु उर-घट व्यापी, परम सुचि करतारी ॥ नि०॥१॥
 'सलिलसमान' 'कलिलमलगजन', बुधमनरजनहारी ।
 भजन निभ्रमधूलि प्रभजन, मिथ्याजलदनिवारी ॥ नि०॥२॥
 'कल्याणकतरु' उपरनधरिनी, 'तरनी' भगजलतारी ।
 'धधरिदारन', 'पैनी' छैनी, मुक्तिनर्सनी सारी ॥ नि०॥३॥
 रूपगंस्वरूप प्रकाशनको यह, मानुमला अविकारी ।

१ जैनशास्त्रोक्तो । २ अमृत ममान । ३ महावीर ग्यामी
 के मुख्यकर्मन्त्रसे । ४ राग । ५ जलके समान । ६ पापरूपी मेल
 को नष्ट करने वाली । ७ "भगलतगहि उपाधन धरनी" ऐसा भी
 पाठ है । ८ नीरा । ९ कर्मवध । १० साखी छैनी ।

मुनि-मन-कुमुदिनि मोदन शशिमा, 'गमसुगमसुमन' सुवारी ॥४॥
 जाको सेवन निमन निजपद, नमत अपिमा मारी ।
 तीनलोरूपनि पूजन जाको, जान रिजगहितकारी ॥नि०॥५॥
 सोरि जाभयो महिमा जाका कहि न मकें 'परिधारी' ।
 दोल अरपमनि कम रहै यह अधम उधारनहारी ॥नि०॥६॥

(६) राग यचरा ।

माची तो गगा यह वीतरागमानी,
 अपिच्छिन्न धाग निज धर्मकी बहानी ॥माची०॥टेक॥
 जामें अति ही निमल अगाध ज्ञानपानी,
 जहाँ नहीं मशपाहि पक्की निशानी ॥माची०॥१॥
 मत्तभग जहँ तरंग उल्लसत सुगदानी,
 मतचित 'मरालवृन्द' रमै नित्य ज्ञानी ॥ माची० ॥ २ ॥
 जाक अगाहनै शुद्ध होय प्रानी
 मागचन्द्र निहै घटमाहिं या प्रमानी ॥ माची० ॥ ३ ॥

(७) राग ईमन

महिमा है अगम निनागमकी ॥ टेक ॥
 जाहि सुनत जड़ भिन्न पिछानी, हम विन्मूरति आतमकी ॥म०॥१॥

(मुनिवोंकी मनस्वी कुमादिनाको प्रफुल्लित करनेके लिये
 चन्द्रमारा प्रकाश । समता-सुगरूपी पुष्पावली । ३ अन्द्री
 यात्रिका । ४ अनुभव करत हैं । ५ तीनभुवनके राजा इन्द्रादिक ।
 ६ वरधारि इन्द्र । ७ राजहमारा समूह ।)

रागादिक दुःख कारन जानै, त्याग बुद्धि दीनी भ्रमकी ।
 ज्ञान, ज्योति जागी उर अतर, रुचि बाढ़ी पुनि शमदमकी । म० १२
 कर्म बधकी, भई निरञ्जरा, कारण-परपरा-क्रमकी ।
 भागचन्द शिखलालच लागौ, पहुँच नहीं है जहँ जमकी । म० १३ ॥

(८) राग दीपचन्द्री कानेर ।

जानके सुखानी, जैनरानीकी मरधा लाहये ॥ टिका ॥
 ना दिन काल अनते भ्रमता, सुख न मिलै कहैं प्राणी । १॥
 स्वर पर निवेक अलख मिलत है जाहीके सरधानी । ना० १२ ॥
 अखिल प्रमान सिद्ध अतिरिद्धत, स्याँ पद शुद्ध निशानी । ३॥
 भागचन्द सत्यार्थ जानो, परमधरमज्जगानी । जा० ॥ ४॥

(९) लाघती ।

घन्य घन्य है घड़ी आजकी, जिनधुनि श्रवण परी ।
 तत्प्रतीत भई अब मेरे, मिथ्यादृष्टि टरी ॥ टिका ॥
 जड़तँ मिश्र लरीं चिन्मूरति, चेतन मूरम भरी ।
 अहंकार ममकार बुद्धि पुनि, परमें सब परिहरी ॥ घ० ॥ १॥
 पापपुण्य विधिबध अवस्था, भासी अतिदुखमरी ।
 वीतराग विनानभासमय, पगति अति विस्तरी ॥ घ० ॥ २॥
 चाह-दाह विनमो वग्मी पुनि, समतामेवभरी ।
 बाढ़ी प्रीति निराकुल पदमौ, भागचन्द हमरी ॥ वन्य० ॥ २॥

धानत विलास

(११) राग सोरठ

खल्यो चिरकाल, जगजाल चहुँगतिनिपे,

आज निनराज तुम शजन आयो ।।टेका।। सखी दुग घोर,
नहि छोर आर ऊहत, तुममो कछु छिप्यो नहिं तुम बतायो
॥८०॥१॥ तु ही नसारताम नही दूमगे, ऐमो मुह भेद
न सिन्हा चुकयो ।।रूपो॥२॥ मरुल मुर असुर नरनाथ
पदत चरन । नाभिनन्दन निपुन मुनिन ध्यायो ॥८०॥३॥
तु ही सरर त गगन्त गुणन्त प्रभु खुले मुक्त भाग अर
रग पायो ॥रूपो॥४॥ सिद्ध ही शुद्ध ही शुद्ध अविर्द्ध
ही, इश जगदीश बहु गुणनि गायो ।।रूपो॥५॥ सर्व
चिन्ता गद वृद्धि निर्मल भन, जब हि चित जुगल चरननि
लगायो ॥रूपो॥६॥ भयो निहचिन्त दानत धनन शन
गहि, तार अर नाथ तेरो कहायो ॥रूपो॥७॥

(७)

अरहत सुमर मन गार रे ।।टेका।। ग्याति लाभ पून
तजि भाइ, अन्तर प्रभु लौ लार रे ॥अरहन्त॥१॥ नरभ
पाय अकारथ खोर, विषयभोग जु बनार रे । प्राण ग
पटित है मनगा, छिन छिन छीजि आव रे ॥अरहत॥२॥
जुवनी तन धन मुत मित परिजन, मन सुरग रथ धार रे
यह ममार सुपनकी भाया, ओख मोचि दितगार
॥अरहन्त॥३॥ ध्याव ध्याव रे अब है दागर, नाही मर
गाव रे । दानत बहुत कहा लौ कहिये, फेर न कछु उ
र ॥अरहन्त॥४॥

(७६)

प्रभु तेरी महिमा कहिय न जाय । टेका । धृति करि
 सुगो दुखी निंदातैं, तेरैं समता माय ॥ प्रभु० ॥ १ ॥ जो तुम
 ध्यावैं, धिर मन लावैं, सो किंचित् सुख पाय । जो नहिं
 ध्यावैं ताहि करत हो, तीन भजनको राय ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
 अजन चोर महाअपराधी, दियो स्वर्ग पहुँचाय । कथा-
 नाथ श्रेणिक ममट्टी, कियो नरक दुरदाय ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥
 सेज असेज कहा चलै जियकी, जो तुम करो ॥ न्याय ।
 धानत सेवक गुन गहि लीजै, दोष सब छिटकाय ॥ प्रभु० ॥ ४ ॥

समयसार नाटक (प० बनारसीदासजी)

मन्याष्ट्रीकी स्तुति ॥ सवेया २३ सा ॥

भेद विज्ञान जग्यो जिन्हके घट, सीतल चित्त भयो
 जिम बदन । केलि करे शिखारगमें, जगमाहि जिनेअरके
 लघुनदन ॥ मत्स्य स्वरूप सदा जिन्हके, प्रगट्यो अमदात
 मिथ्यात निवृद्धन । शात दशा तिनकी पहिचानि, करे कर-
 जोरि बनारसि बदन ॥ ६ ॥

सवेया ३१ सा

स्वारथके साचे परमारथके साचे चित्त, माचे साचे
 चन कह साचे जैनमती है । काहूके निरुद्धी नाहि परजाय
 उद्धी नाहि, आतमगवेषी न गृहस्थ है न यती है ॥ रिद्धि
 मिद्धि षुद्धि दीसे घटमें प्रगट सदा, अतरकी लब्धिमाँ

अचार्य लक्ष्मणी है । दाम भगवतके उदाम रहै जगतमौ
 सुगिया मटव ऐसे जीव गमकिनी है ॥७॥ जाँक घट प्रगट
 रिपु गल परमेमो, हिन्द हरप महा मोहरो हस्तु है ।
 माया मुप माँ निन महिमा अडोल जाने, आपु ही में
 आपनो स्वभाव ले वस्तु है ॥ जैसे जलरस रसकल
 भिन्न कर, तैसे जाय अचीन रिलखन करतु है । आतम
 मरति माधे ग्यानको उदो आराधे, सोई भमरिनी भर
 मागर तरतु है ॥८॥ धर्म न जानत गमानत परमरूप,
 और और ठानत लगद पक्षपातका । भूषो अभिमानम न
 पाव बरे धरनीमें, हिरनेमें करनी विगारे उतपानकी ॥
 फिर डानाडोलमौ परमके फलोत्तनिम, हब रही अस्थायी
 ज्यु रभूल्या रसे पातकी । जाँकी छाती तानी मारी टुटिल
 कुमारी मारी, ऐमो प्रभवाँती है मिथ्याती महापातकी ॥९॥

कवि वर्णन सरीया २३ सा

चेतनरूप अनूप अमूर्त, मिद्वसमान सदा पद मेरो ।
 मोह महातम आतम अग, स्थिो परसग महातम घेरो ॥
 गानकला उपजी अर मोदि, वैं गुण नाटक आगमकेरो ।
 जामु प्रमाँ सधे गिरमारंगे, वेगि मिटे भयनाग जसेरो ॥११॥

समयमार नाटक अधकी महिमा ।

॥ सरीया ३१ सा ॥

मोह चेलिव गमोन करमसे करेगोन, जाक रस भोन

वृष लोन ज्यों धुलन है । गुणमो गरथ निरगुणको सुगम
 पथ, जाको जस कहत सुरेश अकुलत है । याहीके जु पची
 ते उढन ज्ञान गगनमें, याहीके रिपची जगजालमें रलत
 है । हाटकमो रिमल विराटकमो रिमतार, नाटक सुनत
 द्विये फाटन सुलत है ॥१५॥

जिनबाणीका धणेन ॥

॥ सषया २३ सा ॥

जोग धरें रह जोग सुं भिने, अनत गुणात्म केवलज्ञानी ।
 तासु हर्द ब्रह्मसो निकसी, भरिता मम हर्ब थुत मिथुर्ममानी ।
 याते अनत नैयातम लखख, मन्ये मरूप मिद्धात परानी ।
 बुद्धि लखे न लखे दुरबुद्धि, मदा जगमाहि जगे निनराणी ॥३॥

तीर्थकरके देहकी स्तुति ।

॥ मर्वाया २१ सा ॥

जाके देह छुतिमों दशो दिशा पभिय भई, जाके भेज
 आगे मय तेजधत रुकें हैं । जाको रूप निरखि थकित महा
 रूपवते, जाके वपुं बामसों सुवाम और लुके हैं । जाकी
 दिध्यध्वनि सुनि थरणमो सुख होत, जाके तेन लछन
 अनेय आयें द्विग दुकें हैं । तेई जिनराज जाक कहे निव
 हार गुण, निश्चय निरखि शुद्ध चेतनसों चुके हैं ॥२५॥

शुद्ध परमात्म स्तुतिका दृष्टान्त कहकर निश्चय अर
 व्यपहारको निर्णय करे हैं ॥

ॐ करिंत छन्द ॐ

तनु चेतन व्यग्रहा एकमे, निहचे भिन्न भिन्न है दोड़ ।
तनुजी स्तुति निरहार नीयस्तुति, निरत दृष्टि मिथ्या वृत्ति मोड़ ।
चिन मो जीय नीय मो जिनर, तनु जिन एक न माने कोड़ ॥
सा कारण तनरा जो स्तुति, सो जिनरकी स्तुति नहि होइ ॥

जिन स्वरूप, ग्यार्थ कथन ।

ॐ दाहा ॐ

जिनपद नाहि शरीरमो, जिनपद चेतन माहि । ॥
चिन वर्णन रह्यु अर है, यह जिनवर्णन नाहि ॥२७॥
तीर्थकरकी निरुपय गुण स्वरूप स्तुति कथन ।

॥ सर्वथा ३१ मा ॥

जामे लोमालोकक स्वभाव प्रतिभासे सब, जगी ज्ञान
शक्ति विमल जमी आरमी । दर्शन उद्योत लियो
अतराय अत क्रियो, गयो महामोह भयो परम महाशुपी ॥
मन्यासी सहज जोगी जोग्य उदासी जामे, प्रकृति पच्यासी
लग रही जरि छारमी । मोहै घट मंदिरमें चेतन प्रगटरूप,
ऐसो जिनराज ताहि पदत बनासी ॥२९॥

॥इति श्रीममयमार नाटका प्रथम जीवद्वार ममाप्त भया॥१॥

द्वितीय अजीवद्वार प्रारम्भ ।

ज्ञान अनीयक पण जाने है तार्त सपूर्ण ज्ञानकी अरस्था
निरूपण कर है ।

॥ सूर्या ३१ मा ॥

परम प्रतीति उपजाय गणधरकी सी, जतर अनादि की विभावता मिटारी है । मेदज्ञान-दृष्टिमें शिवेककी, शक्ति साधि, चेतन अचेतनकी दशा निरवारी है ॥ कर्म को नाश करि अनुभौ अम्याम धरि, हियेमें हरखि निज शुद्धता सँभारी है । अतराय नाश, गयो शुद्ध परकाश भयो ज्ञानको विलास ताको बदना हमारी है ॥२॥

अथ पुण्यपाप गकत्व करण चतुर्थद्वार प्रारम्भ ॥४॥

पाप पुण्य द्वार निषे प्रथम ज्ञानरूप चद्रके कलाक नमस्कार करे है । ॥ करिछे ॥

जाक उदै 'होत' घट अतर, गिनसे मोह महा तम रोक । शुभ अर अशुभ कर्मकी दुविधा, मिटे सहज दीसे इक योक ॥ जाकी फला होत संपूरण प्रतिभासे सय लोक अलोक । सो प्रबोध शशि निरखि, बनारसि मीम् नमाय देत पग धोक ॥२॥

अथ पंचम आश्रवद्वार प्रारम्भ ॥५॥

आश्रय सुभटकी नाग करनहार ज्ञान सुभट है तिय ज्ञान क नमस्कार कर है ॥ सूर्या ३१ मा ॥

जे जे जगामी जीय थायर जगमरूप, ते ते निज यम करि राखे बल तोगिके । महा अभिमानी ऐमो आश्रय

अगाध जौधा, गोपि रण धर्म टाडो मयो मृदु मोरिफे ॥
 आयो तिडि यानक अचानक पम घाम, ज्ञान नाम सुभट
 समायो उलु फोरफ । आयर पछायो ग्यर्थम तोहि
 डारयो तोहि निसर जनारी नमत कर ओरिफे ॥२॥

अथ गृहोत्तरद्वार प्रारम्भ ॥३॥

मर डारके आदिम जानरु नमस्कार करे हे ।

॥ सर्वथा ३१ सा ॥

जानको अहित अध्यात्म रहित ऐसी, आश्रम महा-
 तम अमृद अमृत है । ताको विस्तार मिलिवेको परगट
 मयो ब्रह्मको विकास । अमृत है ॥ जाम मर रूप
 जे मयमें मर रूपमें प मरनिमो अलिप्त अकाश संहत
 है । मोई जानमानु शुद्ध मयको मेप, घर, ताही रुचि रेख
 को हमारी दखवत है ॥२॥

अथ मत्तम निर्जराद्वार प्रारम्भ ॥७॥

निश्चिन्तादि अष्टाग सम्पत्तीसी महिमा कह, है,

क्षण्य क्ष ॥

जो परगुण स्वागत, शुद्ध निज गुण गहत प्रच ।

त्रिमल ज्ञान अनुरा, जाम घट महि प्रकाश द्वय ॥

जो पूर्य कृतकर्म, निर्जरा धारि पहावत ।

जो नर वध निरोधि, मोक्ष मार्ग मुख धावत ॥

निश्चिन्तादि । जम अष्ट गुण, अष्ट कर्म अरि सहरत ।

सो पुरुष विचक्षण तामु पद, बनारसी बंदन करत ॥५६॥

अथ अष्टम बंधद्वार प्रारम्भ ॥८॥

अभ्यन्त्री [भेदज्ञानी] कू नमस्कार करे है ।

॥ सर्वथा ३१ सा ॥

मोहमद पाड जिन्ह ससारी विश्व कीने, चाहते
अज्ञानवान निरद बहत है । ऐमो बंधबोर निराल महा
जाल सम, ज्ञान भेद करे चंद राहु ज्यों गहत है ॥
तासी बल भजिबेकों घंटमे प्रगट भयो उदत उदार जाको
उदिम महत है । सो है समकित सूर ध्यानन्द अंदर ताहि
निरसि बनारसी नमो नमो कहत है ॥२॥

अथ नवमो मोक्षद्वार प्रारम्भ ॥ ९ ॥

॥ १ ॥ ॥ सर्वथा ३१ सा ॥

भेदज्ञान आरामों दुफारा करे ज्ञानी जीव, आत्म क
रम धारा भिन्न भिन्न चरचे । अनुमौ अभ्यास लद परम
धम्म गेहे करमे भरमको सुजोनों खोलि खरचे ॥ योही
मोक्षमग धावे केवल निरुद आये, पूरण समाधि लहे परम
सो परचे । भयो निरदोर याहि करनो न कहु और, ऐमो
निश्चयनाथ ताहि बनारसि अरचे ॥२॥

अथ दशमो सर्वविशुद्धिद्वार प्रारम्भ ॥ १० ॥

ॐ दोहा ॐ

जो निश्च निर्मल मदा, आदि मध्य अर अन्त ।

मो चिद्रूप बनारसी, जगत माहि जैत ॥२॥
अथ परमार्थो माध्य साधक द्वार प्रारभ ॥१०॥

ॐ नमो भगवते

नाह मुक्ति समाज, अई भरस्थिति घट गई ।
तथा माया मोष, मुगुन मेघ मुक्ता बधन ॥३॥

ॐ नमो भगवते

व्या २६ वदा मर्म, मैव अत्यन्त सार ।
स्यो मृगुन बाणी खिर, जगत जीव हितकार ॥४॥
शब्द माहि मृगुन काँ, प्रगटरूप निजधर्म ।
मुनत शिष्यण अहं, मूढ न जाने मर्म ॥१०॥
जैसे काह नगरके बायो द्वै पुरष भूलं, तामें एक नर
सुष्ट एक दुष्ट उरको । दोउ किं पुरके समीप परे कुपटमें,
काह और पविरुको फले पत्र पुरको ॥ मो तो कह तुमारो
नगर ये तुमार डिग, मारग दिगार्थ मयभात्र खोज पुरको ।
एते पर सुष्ट पहचाने पै न माने दुष्ट, हिन्द प्रमाण तैसे
उपदेश गुरुको ॥१३॥ जैसे काह जगलर्म पापमको मर्म
पाइ, अपने सुभाय महामेघ परखत है । आमल कपाय
रुद्र तावण मधुर छार, तैसा रस बादे जहाँ जैसा दरखत है ॥
तसे जानत नर जानतो बखान कर, रम कोउ माही है न
कोउ परखत है । बोही बुनि सुनि कोउ गह कोउ गह
सोइ, काहूँ विपाद होइ कोउ हरखत है ॥१४॥

चतुर्दश गुणस्थानाधिकार प्रारम्भ ॥

॥ सवैया ३१ सा ॥

जाके मुख दरसमों भगतके नैन नीकों, धिरताई
 जानी बड़े चचलता चिनमी । मुद्रा देखे केवलौफ़े मुद्रा
 याद आव जहाँ, जाके आगे इन्द्रकी बिभूति दीसे तिनसी ॥
 जाको जस जपत प्रकाश जगे हिरदमें, मोड़ मुद्र मति होइ
 हुतिजो मलिनमी । कहत बनारसी गुमहिमा प्रगट जाकी,
 मो है जिनकी छवि सु पिघमान जिनमी ॥२॥ जाके ऊ
 अतर मुद्राट्टिकी लहर लमि, तिनमी विध्यान मोह निद्राका
 समारपी । मैलि जिन शामनकी फैलि जाक घट भयो,
 गरवको त्यागि घट दरवको पारया ॥ आगमके अतर पर
 हैं जाके श्रवणमें, हिरद भडारमें समानी वाली आरपी ।
 कहत 'बनारसी' अलप भय धिति जाकी, माइ तिन प्रतिमा
 प्रयाणे जिन मारपी ॥३॥

॥ सवैया ३१ सा ॥

जो अडोल परजक मुद्राशली भाववा, अथवा सु
 काउसर्ग मुद्रा धिर पाल है । घट सपन कर्म प्रकृतीक
 उठे आये, रिना डग भर अतरिख जायै चान है ॥ जासी
 धिति पूरज करोड आठ वर्ष पादि, अतर मुद्रन जघन्य जग
 जाल है । मो है दन अठाइ दूषण रहित ताकी, बनारसि
 कह मेरी बढना निकाल है ॥१०७॥

एकीभाव स्तोत्र

(रुचिर भूषणम-कृत हिन्दी-पद्यानुवाक)

शान्तिगण मुनिगणरु, चरन-कमल चित लाय,
 भाषा गुरूभाषत्री, कर स्व-पर सुगदाय ।
 नो अति एकीभाव मयो मानो अनिगारी ।
 मो मुक्त कर्म-ग्रन्थ करत भय-भय दृष्ट मारी ॥
 ताहि निहारी भक्ति-चगत-रसि जो निरगार ।
 तो अय और स्नेह सैन मो नाहि रिहार ॥१॥
 तुम जिन जोति-मह्य दुग्ति-अविषार निगारी ।
 मो गनैम-गुरु कहे तब-विश-धनेधारी ॥
 मेर चित-घर माहि यमो तेनोपय याग ।
 पाप-तिमिर अन्धकार तनो मो क्याह पागत ॥२॥
 आनंद आश्रु बन्ध घोय तुममो चित मानै ।
 गदगद सुग्गी सुपश-मय पडि पूजा ठानै ॥
 ताक महुनिधि व्याधि-व्याल चिन्काल निगामी ।
 मान धानक छोड़ देह-बोध के रामी ॥३॥
 दिगिर्त आपनहार भये भवि-भाग उदयल ।
 पहले ही सुर आय कनकमय कोय महीतल ॥
 मन-गृह ध्यान-दुआर आय निगसो जगनामी ।
 जो सुगन तन करो कौन यह अचरन स्वामी ॥४॥

प्रभु सब जगद-धिना, हेतु चान्धन उपकारी ।
 निराकरन मरिह, शक्ति जिनगज, तिहारी॥
 भक्ति-गचित मम चिह्न-सेव नित धाम करोगे ।
 मेरे दुख-मन्ताप देखि किम घीर धरोगे ? ॥५॥
 भय-वनमें चिरकाल भ्रमो कछु कहिय न जट्ट ।
 तुम धुति-कथा-पियुष-वापिका भागन पाई ॥
 शशि तुषार घनमार-हार शीतल नहि जा सम ।
 करतनद्वीन ता माहि क्यो न भयताप धुम्क मम ॥६॥
 श्रीनिहार पन्ध्याह होत शुचि-रूप सकल जग ।
 कमल कनक आभार सुरभि श्रीराम घरत पग ॥
 मेरो मन-मरंग परस प्रभुको सुख पाय ।
 अथ सो कौन कल्याण जो न दिन २ दिग आरा ॥७॥
 भर तब मुखपट धसे राममद सुमट सँहार ।
 जो तुमको निरसत, मदा प्रिय दास तिहारे ॥
 तुम वचनामृत पान भक्ति-अनुनिमो पीव ।
 तिन्हें भयानक ब्रू 'रोग रिपु कैसे छीर ॥८॥
 मानधम्म पापान 'थान' पापान पटन्तर ।
 ऐसे और अनेक रतन दीख जग-अन्तर ॥
 दरसत दृष्टि प्रमान मान-भट तुरत मिटावै ।
 जो तुम निरुद न होय शक्ति यद्वक्योकर पाय ॥९॥
 प्रभुतन पर्वत परम पवन उरमें निरहै है ।

तामो नगछिन मकन गोग रज बाहिर ह्वे है ॥
 चोक ध्यानाहन बगो उर अम्बुज मारी ।
 कौन जगत उपकार करन ममग्र मो नारी ॥१०॥
 चाम-जगद गुरु महे मर ते तुम नानो ।
 पाद निचे हुक दिये लग आयुधसे मानो ॥
 तुम दयान, जगपान स्वामि मे जेतन गही है ।
 जो कन्दु करनो हाय कगे परमान गही है ॥११॥
 मरन समय तुम नाम मत्र जीवकन पायो ।
 पापाचारी खान ज्ञान तज अमर रहायो ॥
 जो मणिमाना सेय जपे तुम नाम निरन्तर ।
 इन्द्र सम्पदा लहे कौन मशय इस अन्तर ॥१२॥
 जो नर निर्मल ज्ञान मान शुचि चाग्नि सार्थ ।
 अतगधि सुगम मार गती क् भी नहि लार्थ ॥
 मो गिर बाटन पुण्य मोक्ष पट केम उचार ।
 मोह मुहर दिह करी मोक्ष-मन्दिरके द्वारे ॥१३॥
 शिखर-कनो पथ पाप तमसो अनि छायो ।
 दुर्य-मरुप बहु रूप-साहसा विरट उतायो ॥
 स्वामी, सुगमा तहो कौन जन मारण लागे ।
 प्रभु प्रभन-मणिदीप जौनक आग आगे ॥१४॥
 रम पञ्च भू माहि दबी आत्म-निधि मारी ।
 दरुत अनिसुख होय विमृतजन नोहि उपारी ॥

तुम नेत्रक ततकाल ताहि निहचै करि धारै ।
 प्रीति-कुदालमों गोठ बध भूकठिन विदारै ॥१५॥
 म्यादवाद-गिरि उपज मोच-मागरलों धाई ।
 तुम चगमांमुज-परस, भक्ति-गंगा मुखटाई ।
 मो चित निर्मल थयो 'न्हौन-कचि-परब तामैं ।
 अब वह हो न मलीन कौन, जिन, सगय यामैं ॥१६॥
 तुम शिवसुखमय प्रगट करत प्रभु चितन तेरो ।
 मैं भगवान् समान, भार यों धरत मेरो ॥
 यदपि झूठ है, तदपि नृप्ति निश्चल उपजाव ।
 तुव प्रमाद सकलक जीव बाछित फल पावै ॥१७॥
 चचनजलधि तुम देव सकल त्रिभुवनमें व्यापै ।
 भग-तरंगिनि विरथ बाढ-मल मलिन, उद्यापै ।
 मन-सुमेरुमो मयै ताहि जे 'सम्यग्जानी ॥
 परमामृतमों तृपत होहि ते चिरलों प्रानी ॥१८॥
 जो कुटेव छाँड़ि दीन बसन-भूपन अमिलारै ।
 धरिमीं भयभीत होय, सो आयुध राखै ॥
 तुम सुन्दर सर्वंग, शत्रु समरथ नहिं कोई ।
 भूपन-बसन गदादि ग्रहन काहेको होइ ? ॥१९॥
 मुरपति सेना करै, कहा प्रभु, प्रभुता तेरी ।
 मो सुलाघना लहै, मिटै, जगमों जगफेरी ॥
 तुम भयजलधि जिहाज तोहि शिरकत उचरिये ।

तुहा जगतजन पाल, नाथ, धुतिकी धुति करियो ॥२०॥
 वचन-जान जड रूप, आप चिन्मूर्ति भोंड ॥
 ताते धुति आलाप नाहि पहुँच तुम तोंड ॥
 तौ भी निर्मल नाहि भक्ति रम भीने बायक ॥
 मन्तनरो सुरतकममान बाजिन सर-दायक ॥२१॥
 कोप रभी नहि करो, प्रीति रुख नहि धारो ॥
 अति उदाम बचाइ निश, जिनराज, तिहागे ॥
 तपि आन जग चहै ते तुष निकट न लडिये ॥
 यह प्रभुता जगतिलक कहाँ तुम गिन मरदहियो ॥२२॥
 सुर तिय गावें सुजस सरगति ज्ञान-भरूपी ॥
 जो तुमको धिर हाथ नमैं भरि आनंद-रूपी ॥
 ताहि चेमपुर चलन राट राखी नहि हो, है, ॥
 श्रुतकं सुमरन माहि मो न करहु नर मोहै ॥२३॥
 अतुल चतुष्टय रूप तुम्हें जो चितमैं धारै ॥
 आदरमों निहंकाल माहि जग धुति विस्तारै ॥
 मो मुक्त शिष्य भक्ति रचना कर पुरै ॥
 पनमर्यादक अद्वि पाय निहचै दुख चूर ॥२४॥
 अटो जगतपति पूज्य, अग्रधिज्ञानी मुनि हारे ॥
 तुम गुन कीर्तन माहि, कौन हम मद बिचारे ॥
 धुति छलमा तुम गिषैं दय आदर विस्तारे ॥
 शिर मुख पूरनहार कल्प-तरु यही हमारे ॥२५॥

रादिराज मुनिंत अनु वयाकृष्णी मार,
 रादिराज मुनिंत अनु चार्मिक विद्यामारे ।
 रादिराज मुनिंत अनु हैं कान्यनके छाता
 रादिराज मुनिंत अनु हैं भविजनक राता ।
 मूल अर्थ रहसिधि कुमुम, भाषा सूत्र मँभार ।
 भक्तिमाल 'भूषण' मरी, करो कठ मुगकार ॥

भक्तामर स्तोत्र

(पवि गिरिधर शर्मा दत्त हिन्दी पद्यानुशासक)

हैं भक्त - देव - नन - मौलि - मणिप्रभाके,
 उद्योत-कारक, विनाशक पापके हैं,
 आधार जो भर पयोधि पड़े जनोके,
 अन्धी तरा नम उन्हीं प्रभुके पदोके ॥१॥
 श्री आदिनाथ त्रिशुकी स्तुति में कल्पा,
 की देवलोरूपविने स्तुति है जिन्हाकी
 अत्यन्त सुन्दर जगत्तय चिचहारी,
 सुमोक्षसे, मकल शाम्भु रहस्य पाक ॥२॥
 हैं बुद्धिहीन, फिर भी तृष पृज्यपाद ।
 तैयार हैं स्वयनसे निर्लज्ज होकर
 हैं आर करेन जगमें तब माल करे, जो,
 लेना वह मलिन-मस्थित चन्द्र निम्न ॥३॥

होव बृहस्पति ममान सुमुखि तो भी,
 हैं कौन जो गिन सक तब मद्गुणों को ?
 कल्पान्तराणु-वश मिन्धु अलक्ष्य जो हैं,
 है सौंन जो तिर सक उमको भुजासे ? ॥४॥
 हैं शक्तिहीन फिर भी करने लगा हैं,
 तरी गमा, स्तुति, हुआ उस भक्तिके पै
 क्या मोहक वश हुआ शिशुको रचाने,
 हैं मामना न करता मृग मिहमा भी ? ॥५॥
 हैं अल्पबुद्धि, दुध मानसरी हैंमीका,
 हैं पात्र, भक्ति-तर है मुक्तको उलाती,
 जो गोलता मधुर कोरिल है मधूमें,
 है हनु आम्र-कलिका उस एर उमका ॥६॥
 तरी विय स्तुति, विभो, बहु जन्मके भी,
 होते निशाश मर पाप मनुष्यके हैं,
 भीर ममान अतिश्यामल ज्यों अँधेरा,
 होता विनाश रविके करसे निशाश ॥७॥
 यों मान, की स्तुति शुरू मुक्त अल्पधीने,
 तेरे प्रभाव वश, नाथ, यही हरेगी,
 मल्लोखरे हृदयको, जल विन्दु भी तो,-
 मोती ममान नलिनीदलप सुहात ॥८॥
 दुर्दोष दूर तब हो स्तुतिरा रनाना,

तेरी कथा तक हरे जगके अघोंको,
 हो दूर धर्य, कन्ती उसकी प्रभा ही,
 अच्छे प्रफुल्लित सरोजनको मर्गे में ॥९॥
 आश्चर्य क्या, धुनरत्न, भले गुणोंसे,
 तेरी किये स्तुति बने तुझसे मनुष्य !
 क्या काम है जगतमें उन मालिकोंका,
 जो आत्म तुल्य न करें निज आश्रितोंको ? ॥१०॥
 अत्यन्त सुन्दर, रिमो, तुझको मिलोक,
 अन्यत्र आँख लगती नहीं मानवोंकी,
 चीराग्निका मधुर सुन्दर बारि पीके,
 पीना चाह जलधिका जल कौन खारा ? ॥११॥
 जो शान्तिके सुपरमाणु, प्रमो, तनूमें,
 तेरे लगे, जगतमें उतने रही ये,
 सौन्दर्य-सार जगदीश्वर चित्तहतां,
 तेरे समान हमसे नहीं रूप कोई ॥१२॥
 तेरा कहाँ सुरा सुरादिक नेत्र-रम्य,
 सर्वोपमान विजयी, जगदीश, नाथ !
 त्यों ही कलकित कहाँ वह चन्द्ररिम्ब,
 जो तो पडे दिव्यमें द्युतिहीन पत्रिका ॥१३॥
 अत्यन्त सुन्दर कलानिधिमी रत्नासे,
 तेरे मनोत्र गुण, नाथ, फिरें जगोंमें,

हैं आमरा त्रिजगतीश्वरमा निन्हासो,
 रोर उन्दें त्रिजगमें फिरत न कोट ॥१४॥
 दवाहना हर मकी मनसो न तेरे-
 आश्वय नाव, इगम बुद्ध भी नहीं है
 रूपान्तर परनसे उड़त पहाड,
 प मन्दगात्रि हिलता तरु है रमीक्या ? ॥१५॥
 रती नहीं, नहि घुसी, नहि तल पूर,
 भारी हवा तरु नहीं मरजी बुझा है,
 मार त्रिलोक प्रिय है करता उपेला
 उत्कृष्ट दापक प्रियो, गुतिगारि तू है ॥१६॥
 तू हो न श्रम, तुझको गहता न गह
 पाते प्रकाश तुमसे जग एकमात्र
 तरु प्रमार रता नहि पादलोंस,
 तू सूर्यमे शरिर है महिमा-निधान । ॥१७॥
 मोहान्धकार हरता, रहता उगा ही,
 जाता न राहु प्रगमे, न रुप धनोसे
 अच्छे प्रकाशित कर जगसो, सुहावे
 अत्यन्त कान्तिधर, नाथ, सुमेन्दु तेरा ॥१८॥
 रया भानुमे दिगसमें, निशिम गशीसे,
 तर, प्रभो, सुसुगसे तम नाश होते,
 अच्छी तरा पक गया जग-बीच घान,

है काम क्या जल भरे इन बादलोंसे ॥१९॥
 जो ज्ञान निर्मल, विमो, तुझमें सुहाता,
 माता नहीं वह कभी पर-देवतामें,
 होती मनोहर छटा मणि-मध्य जो है,
 सो काचमें नहि, पड़े रति विम्बकेभी ॥२०॥
 देखे मले, अपि विमो, पर-देवता ही,
 देखे जिन्हें हृदय आ तुझमें रमे ये,
 तेरे रिलोकन किये फल क्या प्रभो जो,
 कोई रमे न मनमें पर-जन्ममें भी ? ॥२१॥
 माएँ अनेक जननीं जगमें सुतोंको,
 हैं किन्तु वे न तुझसे सुतकी प्रसूता,
 मारी दिशा घर रहीं रतिका उजेला,
 पे एक पूरव-दिशा रविको उगाती ॥२२॥
 योगी तुझे परम-पूरुष है बताते,
 आदित्य-वर्ण मलहीन वमिल हारी,
 पाके तुझे, जय करें सर मौतक्रे भी,
 है और ईश्वर नहीं वर मोक्ष मार्ग ॥२३॥
 योगीश, अर्च्य, अचित्य, अनङ्गकेतु,
 ब्रह्मा, असुर्य परमेश्वर, एक, नाना,-
 ज्ञान स्वरूप, विष्णु, निर्मल, योगवेत्ता,
 त्यों आद्य, मन्त्र तुझसे कहते अनन्ता ॥२४॥

त तू है विबुध-प्रजित-बुद्धिबाला,
 सखाय-वर्तन शकर भी तूही, है,
 त मोक्ष-मार्ग विवि-कारक है मित्राता
 है व्यक्त, नाश, पुरुषोत्तम भी तूही है ॥१५॥
 यलोम्य शक्ति-हर नाथ, तुझे नमू मैं
 ह, धूमिक विमल रत्न, तुझे नमू मैं,
 ह ईश सर्व जगत्, तुझसे नमू मैं
 मेरा मयोदधि मिनाश, तुझे नमू मैं ॥१६॥
 आश्चर्य क्या गुण सभी तुझमें समाये
 अन्यत्र क्योंकि न मिली उनसे चगा ही,
 दया, न, नाथ, मुख भी तब स्वप्नमें भा,
 या आमरा जगतका मय दोषने तो ॥१७॥
 नीचे अशोर तल्ल तन है सुहाता
 तेरा विमो, विमल रूप प्रकाश-वर्ता,
 फनी हुई शिखरा, तमका विनाशी,
 मानो समीप घनक रवि विम्व ही है ॥१८॥
 मिहामन-स्फटिक रत्न-जडा - उमीमें,
 माता, विमो, स्नरु-कान्त, शरीर तेरा,
 ज्यो - रत्न-पूर्ण उदयाचल - शीर्ष जा,
 पैना ध्वस्वीय किरणें रवि विम्व मोहें ॥१९॥
 तेरा सुवर्ण-यम दह, विमो, सुहाता,

है, श्वेत कुन्द-मम चामरके - उडसे,
 सोह सुमेरुगिरि, काचन कान्तिधारी,
 ज्यो च द्रुकान्ति-धर निर्भरके बहेसे ॥३०॥
 मोती मनोहर लगे जिनमें, सुहाते,
 नीके, डिमाशु सम सरज-ताप हारी,
 हैं तीन छत्र गिरपे अति रम्य तेरे,
 जो तीन लोक परमेश्वरता बताते ॥३१॥
 गम्भीर नाड भग्ता दश डी दिशा में,
 मत्तमगरी विजगरी महिमा बताता,
 भ्रमेशनी कर रहा जय घोषणा है,
 आकाश बीच रजता यशस नगारा ॥३२॥
 गन्धोद निन्दु युत मालुतरी गिराई,
 मन्दारकाटि तरुना कुसुमानलीकी,
 होती मनोरम महा सुरलोक्से हैं,
 रपा, मनो तब लसे बबनानली है ॥ ३३ ॥
 त्रैलोक्यनी भव प्रणामय वस्तु जीती,
 भामण्डल प्रबल हैं तब, नाथ, ऐसा !
 नाना प्रचण्ड, रवि-तुल्य सुदीप्ति धारी,
 हैं जीतता शशि सुशोभित रावको भी ॥३४॥
 हैं स्वर्ग-भोच पथ-दर्शननी सु नेता,
 मदर्मके कथनमें, पटु है जगोंक,

दिव्यधनि प्रसूत अर्थमयी, प्रमो, है,
 तेरी, लह भस्म मानर बोध निमसे ॥३५॥
 पूले हुए कनकके नर पद्मकसे,
 शोभायमान नगरी स्त्रिय-प्रभासे-
 तने जहाँ पग धर अयने, विमो, है,
 नीरु वहाँ विपुल पङ्कज कल्पते हैं ॥ ३६ ॥
 तेरी विभूति हम भोति, विमो, हुई जो,
 मो धर्मके कथनमें न हुई किमीकी,
 होते प्रकाशित, परन्तु तमिस्र हता,
 होता न तज रति तुल्य कहीं प्रदोका ॥३७॥
 दोनों कपोल भरते मदसे मने हैं,
 गुजार खूब करती मधुपायली हैं-
 ऐसा प्रसन्न गज होकर क्रुद्ध आवे,
 पार न किंतु मय, आविष्ट लोक तरे ॥३८॥
 नाना करीन्द्रल-कुम्भ निदारेके, की
 पृथ्वी सुरम्य जिसने गज मोतियोंसे
 ऐसा मृगेन्द्र तक चोट करे न उसपर,
 तेर पदाङ्गि जियका शुभ आमरा है ॥३९॥
 भालें उठें, चहुँ उठें जलते अँगारे,
 दायाहि जो प्रलय बहि ममान भासे,
 ममार मसम करने हित पाँस आवे,

त्वत्कीर्ति गान शुभ वारि उसे शमावे ॥४०॥
 रक्ताक्ष क्रुद्ध पिक कण्ठ ममान काला,
 फुड्कार सर्प फणमो कर उच्च धावे,
 नि शक हो जन उसे पगसे उलौंघे,
 स्वन्नाम नाग-दमनी जिमरे हिये हो ॥४१॥
 घोड़े जहाँ दिनहिने, गरजे गजाली,
 ऐसे महाप्रधल मन्य धगधिपोंके
 जाते सभी बिगर हैं तर नाम गाये,
 उपा अवकार, उगत रगिक कंगेसे ॥४२॥
 उल्लं लगे यह रह गज गत्तक हैं,
 तालागसे, निक्ल हैं तग्यार्य योद्धा,
 जीते न जाँय गिपु, मगर गीच ऐसे,
 तेरे प्रभो, चरण सेरफ जीतते हैं ॥ ४३ ॥
 हैं फाल नृत्य करते मकरादि जन्तु
 त्यों पाडगमि अति भीषण मिन्धुम हैं,
 तफानमें पड गये जिनके जहाज,
 वे भी, प्रभो, स्मरणसे तर, पार होते ॥४४॥
 अत्यन्त पीडित जलोदर भारसे हैं,
 हैं दुर्दशा, तज चुके निज जीविताशा,
 वे भी लगा तर पदाब्ज-रज सुधाको,
 होते, प्रभो, मदन तुल्य सुरूप देही ॥ ४५ ॥

मारा शरीर बरडा दृढ़ मॉक्लोसे,
 रेडी पड डिल्ल गट, चिनरी मुजोंर,
 रत्नास मय जयते जयते उन्होंके,
 जल्दी स्वय भय पडे मय वन्द्य-वेडी ॥४६॥
 जो युद्धिमान इम मुस्तयको पद हैं,
 होक निमीत उनसे भय भाग जाता,
 दायाप्रि मित्रु अहिका, रण-रोगका, त्यां,
 पचास्य, मत्त गजका सय रन्धनोंका ॥४७॥
 तेरे मनोज्ञ गुणसे स्तर-भालिङ्ग ये,
 गूँधी, प्रभो, निरिधर्ष मुपुष्पवाली,
 मैने समक्ति, जनरुण्ड धरे इसे जो,
 सो 'मानतुङ्ग' सम प्राप्त करे मुलक्ष्मी ॥४८॥

महानि पुधनन कृत

छट्टाला

भगलाचरण, मोरठा ।

सर्प द्रव्यमें मार, आतमको हितकार हैं,
 नमहु ताहि चितधार, निय निरजन जानके ।

पहिली ढाल

चौपाइ १७ मात्रा।

आयु घटत तेरी दिन रात, होय निचीत रसो क्यों प्रात !
जोरन, धन, तन, किंकर, नारि, मर हँ जल बुदबुद उनहारि ।
पूगन आयु रथ खिन नाहि, दिये कोटि धन तारथ मौहि,
इन्द्र चक्रपति ह कहा करै, आयु अतने ब हूँ मैं ॥ १ ॥
यो ससार अमार महान, मार आपमें 'आपा' जान
सुखत दुख, दुखत मुख होय, 'ममता' चागें 'मति' नहिँ करय ।
अनवराल गति गति दुख लखो, पारस काल अनतो क्या
सदा अकेलो 'चेतन' एक, ते मौही गुन वसत अवका ।
'तू' न किमीरा, सो नहिँ 'तोय', तौ मुखदुख 'ता' छेँ हार,
यातें 'तो' को 'तू' उर धार, पर इन्धनिदमाह 'निकर' ।
हाड मौम तन लिपटी चाम, हरि मृत-मल-भूमि, धान,

१ अपनी आत्मा या मनको समझानेके लिए, 'म' आत्म
भिन्न, 'तेरी' कहकर सम्बोधन किया गया है। निश्चित । २
संग्रह आदि । ३ पानीका बुलबुला, 'अनारि' = ममता, 'आपा' र
सब पानाके बुलबुले समान नष्ट होनवाले हैं । ४ ख-रुखा,
गिरन = नख, अर्थात् निश्चित आयुमें एक क्षण का ब्याप नहीं हो
सकत । ५ आत्मामें अपनापन । ६ गलतफहमी कारणसे
स्वर्ग, नरक, मनुष्य और तिर्यच गति । ७ पाप । ८ आत्मा
याना में रख्य । ९१ आत्मा । ९२ तेरा । ९३ अन्धकार भिन्न
शरीर आदि समझने सभी पदार्थ । १० 'तू' । ११ मृत
मूल मलसे भरा घर ।

माहृ गि न रहै, राय होय, पासा तज मिलै 'गिय लोय ॥६॥
 दिन अनदित तन-बुल नन माहि, गोटी 'बानि हरो क्यों नाहि ?
 पात पृष्ठल-कर्मन जोग, प्रनयँ दायर मुय दुय रोग ॥७॥
 पाया 'इन्द्रिनरु तन कन, पिच निरोधि, लागि गिर गैल
 'तो' म तग त ररि मल, कहा रयो ह्व कोलू बेल ॥८॥
 ननि कपाय, मनरी चल चाल, प्यायो अपना रूप 'रमाल
 कैं कर्म-बन्धन दुय-दान, बहुरि प्रशरी कैंल-ज्ञान ॥९॥
 तग जनम दुयो नहि लहौ, ऐमो 'गेतर नाहीं कहौ,
 पाहा जनम भूमिका रचो, चलो निरुमितो "विधितै बचो ।
 मर व्योहार त्रियासा 'ज्ञान, भयो अनती रार प्रधान,
 'निषट काठन 'अपनी ' पदचान, राको पायत होत कल्यान
 धरम सुभाव आप ' सरधान, धर्म नशील, न न्हान न दान,
 'बुधन' गुरुकी "मीर निचार, 'गहो घाम आतम हितरार

१ मा भी रिश नहीं रहता, सब हा जाता है । २ मातृ ।
 ३ युगी आन्त । ४ इन्द्रियके काम या दामता छापक । ५
 त्रिभुको बरा करके नाच मागम लग । ६ तू अपनी आत्मा
 आप रैर कर । ७ क्या मूठमूठना काल्हक बैलरी तरह अपने
 ज्ञानपरमि यात्यकी पडा । बाध हुए तुमराके लिए भमारम धूम
 रहा है । ८ मनहर । ९ क्षेत्र । १० इस जन्म मरणकी दुख
 पूर्ण भूमिम रच रहा है । ११ आठ कर्मसि । १२ सम्यग्ज्ञान
 रहित गान्ध्या त्रिधा या चान्द्रिमा ज्ञान । १३ अत्यन्त । १४
 मरूप । १५ धर्मका मरूप आ माता अद्वान है । १६ शिक्षा ।
 १७ महण करा ।

दूसरी ढाल ।

जोगारामा (नरेन्द्र छन्द)

सुन, रे 'जोर, कहत हूँ तोमों, तेरे हितके 'कान,
हूँ निश्चल मन, अब तू धारै, तब कछु-इक तो 'लाज ।
जो दुखतै चार-तन पायो, वरन सकै मो नाही,
ठारै चार मुगो अरु जीयो, एक साँभके माहों ॥ १ ॥
काल अनन्तानन्त रह्यो यों, पुनि 'मिन्नय्य हवो,
उद्गिरि असंती निपट अजानी, छिन छिन जीयो, 'मृगो ।
ऐम जनम गयो करमन रग, तेरो वश नहि चाल्यो,
पुष्य उदय सैनी पशु हवो, तब हूँ ज्ञान न 'भाल्यो ॥ २ ॥
जघर मिल्यो तिन तोहि मतायो, निबल मिल्यो, तैं खायो,
मान तिया-मम भोगी 'पापी, तातैं नरक 'मिघायो ।
रोटिक पीछू काटत जैमे, ऐमी भूमि तहाँ है,
रुधिर-राघ-"परवाह बहुत है, दुरगंध निपट जहाँ है ॥ ३ ॥
घाय करत अमि-"पत्र अगमैं, शीत-उष्ण तन "गालैं,

१ हे मेरी अन्तरात्मा, सुन । २ लिण । ३ कुछ तो शरम आयेगी ।
४ प्रथमी, जल, अमि, वायु और शृणादि घनस्पति-शरीर । ५
अठारहवार । ६ सा इन्द्रिय, ते-इन्द्रिय और चौ-इन्द्रिय जीव । ७
पैदा हुआ, और मरता रहा । ८ फिरभी ज्ञान नहीं पाया । ९ यहा
तक पापा कि, माताके साथ भी स्त्रा-जैसा भाग करनेवाला, - फिर
और और पापारी तो गिनती ही क्या ? १० गया । ११ मृग
और पीवकी नदी । १२ बहुत ही अधिक । १३ तलवार-जैसी
धारवाले पत्ते । १४ सरदी-गरमी जैसी कि शरीर गल गल जाता है ।

राट काट करके कर गहि, मोई पायज जाल ।
 तथायोग भागर धिति मगत, दगरी अ न न आर,
 कर्म रिपाक 'जमाही हरे' तो मानव-गति तब पाई ॥४॥
 मात उरगमें रहै गीत हरे, निकमत ही 'विल्लाव',
 हमा, दान, गला, रिमफोटर, डोरिनिर्ते मंच 'जाई ।
 तो जोदनम भागिनिके मंग, निशि दिन भोग 'गचार',
 अन्धा हरे ध ध दिन सोर, बुझा नार हलार ॥ ५ ॥
 नम पकर, नर जोर न चाल, मैनामन 'धतार',
 मन्द रपाय होय तो भाड, मन्त्रक- 'पद पाई ।

१. करीत या आता । २. आग, चारै=ब्रह्माता है । ३. यथायोग्य
 अर्थात् जिस नरकम नितने सागरकी आयु है, उसको पूरा भोगता
 है । ४. ऐसा ही काइ प्रसन्न शुभ कर्मका लय आवै, तब । ५.
 गर्भावस्थाम माँ के पेटम सिमटा हुआ उन्दा देंगा रहता है । ६.
 फलफूलता है । ७. बचपनम इन मर आपसियोंसे बच जाय
 तब कहीं । ८. तो दीनरम रातदिन स्त्रीके साथ भोग विलासमें
 लीन हो जाता है । ९. रोजगार-ब्ययमें । १०. अतमें बुझा हो
 जाता है, तब शरीर गिधिस हो जानेस धम-ध्यान कुछ भी करते
 नहीं बनता । ११. अतिम स्थामें जब मरनेका समय आता है
 तब (समाधि भरणसे सद्गति प्राप्त करना तो दूर रहा) जवान बन
 ११. जानसे अपूर मासारिक कामाकी पूर्तिके लिए इरादें करने
 दुर्लभ मनुष्य नामसे हाथ धाकर दूसरा पयायन चला, जाना है ।
 १२. मयनगामी, यथा-तथा औः ज्योतिष ।

परकी सम्पत्ति लंछि अति शूर, कै रनि-काल गैरार,
 आयु अन्त मालां भुरभावे, तब लसि-लसि पद्वतार ॥६॥
 'चर' तहाँतें 'धार' होवै, रलि-है काल मनन्ता
 या विधि पच 'परावृत' परत, दुखको नाही अन्ता ।
 काल लज्जि, जिन गुरु किपातें, आप 'आप' को जानै,
 तर ही 'बुधजन' भवदधि तरिकै, पहुँचि आप शिव 'धानै' ॥७॥

लीमरीं डाल

(पद्वरि छ-)

या विधि भर-वन माहि ओं
 चम मोह गहल सुत मरी
 उपदेश तथा सहजे शोभ,
 तर ही जागे ज्यों उग्र शोभ ॥ १ ॥
 जम चितगत अपने माहि आप,
 हैं-चिदानन्द, नहि पुण्य-पाप
 मेरो नाही है राग-भाव
 ये तो विधि-वश उपजे विचार ॥ २ ॥
 हैं नित्य निरजन, मिय ममान,

१ कुत्ता है । २ या भोगस्वप्नमें सम्यग्वैराग्य है । ३
 मरने पर । ४ पच परिवर्तन-रूप, धृति काल, यत्न और भाव ।
 ५ करण लक्षिकी प्राप्ति होनेपर । ६ मनु स्थान । ७ मोह-रहित
 आत्मा विभाव । ८ य तो कर्मों के कारण निर्गुण भाव उत्पन्न हुए
 हैं । ९ रागद्वेषरहित शुद्धता । १० कर्ममन्त्ररहित मित्र ।

गगनगर्भा आख्याद ज्ञान,
 निश्चय सुर इष्ट, पोहार मेर,^१
 गुन गुनी, अण अणी, अक्षर^२ ॥ ३ ॥
 मातृप, मृग, नागक, पशु प्रजाप,
 त्रिगु वरा, वृद्ध, बहुरूप कार,
 धनतन, दरिद्री, दाम, गर,
 न तो रिदम्यना, मुक्त न मार ॥ ४ ॥
 रम, फगम, गच, वरनाटि नाम,
 भर नाही, मै ज्ञान धाम,
 हृष्ट रूप, नहि होत और,
 सुभमे प्रतिनिश्चित मरुल ठौर ॥ ५ ॥
 तन पुलकित, उर हरपित मदीर,
 ज्यो मर्द रङ्ग घर^३ रिधि अतीर,
 जग प्रवल अप्रत्याग्यान राय,
 तन चिन-परनति ऐसी उपाय ॥ ६ ॥
 सो सुनो भवित, चित धारि कान,

१ ज्ञानाधारणी कर्मने मेरा अनन्त ज्ञान इष्ट रक्ता है । २ निश्चय
 यसे आभास शुद्ध रूप ही मत्स्य है उसमें कोई भेद नहीं । भेद
 सिक्त व्यवहारजन्यकी अपेक्षासे है । ३ गुण=आभास ज्ञान इरान
 गुणी=आत्मा, अक्षर=अभेद । अथान् निश्चयनयसे गुण और
 गुणीमें कोई भेद नहीं । ४ असत्य । ५ ज्ञानका स्थान, ज्ञानमय ।
 ६ रिद्धि । ७, अप्रत्याग्यानाधारण कपायके उदय होनेपर ।
 ८ आत्माका परशुति ।

चरनत हूँ ताको विधि विधान,
 मर करै काज, घर माहि वास,
 ज्यों भिन्न कमल जलमें निवाम' ॥ ७ ॥
 ज्यों मती अङ्ग माहीं सिंगारि,
 अति करत प्यार ज्यों नगरि-नारि,
 ज्यों धाय लढानत आन, पाल,
 त्यों भोग करत नाही सुशाल ॥ ८ ॥
 जहँ उदय मोह चेष्टित प्रभार,
 नहि होय रचहु त्याग भार,
 तहँ रुँ मन्द खोटी कषाय,
 घरमें उदाम है, अधिर ध्याय' ॥ ९ ॥
 मरकी रजा जुत-न्याय नीति,
 जिन गासन गुरुकी दिढ़ प्रतीति,
 बहु 'रुँ' अर्घ पृदल प्रमान,
 अन्तरमुहूर्त ले 'परम धान' ॥ १० ॥
 वे धन्य जीर, धनि भागें मोय,
 जाके ऐसी परतीति जोय,
 ताकी महिमा हव सुगं लोय,
 'बुधजन' भाँप मोर्ते न होय, ॥ ११ ॥

१ सासारिक सब काम करता हुआ भी, मर्दच पर परणतिसे
 अपना मित्र समझता है। २ अनित्य जानकर। ३ भ्रमण
 करता है। ४ मोक्ष।

नौथी हार

(मोठा)

उगयो आतम सुर, मयो मिध्यात तम,
 अथ प्रगटे गुन भूर, तिनमें क दुःख कहन है ॥ १ ॥
 गरी मनम गहि, तत्पराय-मर्यादामें,
 निरगंठा चित माहि, परमात्ममें गत रहै ॥ २ ॥
 नेह न करत गिलान, नाभिमानिन मृनि-तन लरै,
 नाहीं होत अज्ञान, तत्त्व-नृत्तच विचारमें ॥ ३ ॥
 उरमें दया विशेष, गुन प्रगटे आंगुन दरै
 शिथिल धर्मत दर, जम-तम दिदु करै ॥ ४ ॥
 माधरमी पहिचान, धरै हत गौमत्त लो,
 महिमा होत महान, धर्म-ज्ञान एमें करै ॥ ५ ॥
 मद नहि जो नृप तात, मद नहि भूपति-ज्ञान को,
 मद नहि निर्मा लहात, मद नहि सुन्दर रूपको ॥ ६ ॥
 मद नहि जो विद्वान्, मद नहि तनमें जो मन्त्र,
 मद नहि जो परधान, मद नहि सम्पत्ति-कोपरो ॥ ७ ॥
 हूयो आतम-ज्ञान, तजि रागादि-निमान पर,
 ताँक हूँ क्यो मान, जान्यादिक वसु अधिरको ॥ ८ ॥

१ वाद्य, बाहरी । २ स्नेह-प्रेम । ३ गाय और बद्धे
 समान माधरमी भाइयामे प्रेम रखता है । ४ वैभव । ५ राग द्वे
 प्राप्ति विभाव, जो आत्मासे भिन्न है । ६ आठ, नसके जातिम
 आदि आठ अधिर मद नहीं हाने ।

बन्ध है अरहन्त, जिन मुनि जिन मिद्वान्त को,
 न न दत्त महन्त, कुगुरु कुदेव 'कुग्रन्थको' ॥९॥
 कनिष्ठ आगम दत्त, कुत्तित गुरु पुनि 'सेवका,
 परमाष्ट मेव करे न समाहितज्ञान हवे' ॥१०॥
 शरा इमा सुमार, करा अमार मिथ्यानरा,
 नन्द ठाक पाँच, 'पुवजन' मन-बच-कापने ॥११॥

पाँचवीं दान :

(चाल छन्द)

निग्नचमनुष दोउ गतिमें, त्रत धारक मरधा चितमें
 शो भगनिर्तनीर न पीर, निशि भोजन तजत मदीर ॥१॥
 सुत अमल यस्तु नहि नार, जिन-भक्ति त्रिकाल रचाये,
 मन-चर-नन रुपट निवार, कृत कारित मोद मैरार ॥२॥
 वैसा उपशमत कपाया, तैसा तिन त्याग जनाया,
 शो मान बिसनमो त्याग, कोउ अणुत्रतमें मन पागै ॥३॥
 शप जाय कभू नहि भारे, गिरया धार न महार,
 स हितनि शूटन बोले, भुग्य माँच रिना नहि खोले ॥४॥

१. मन्थानष्ट मिथ्या देव-गुरु शास्त्रको नमस्कार नहीं करता ।
 २. कुगुरु-कुशास्त्री सेवा नहीं करता । ३. अनदना पानो
 नुपका । ४. मिथ्यात्व-पोषक काम रख करने, हमसे कराने
 का हमारे किये हुए कामके अनुमोदन करनेसे आपकी बेचारे
 लाह है । ५. निमर्दी पैसी कपाये शान्त हड्ड है, वह वैसा त्याग
 करता है ।

जल 'मृत्तिका' बिन मनमहानि दिपो लेय नहि करह,
 ज्योती बनिता निनारी, लघु बहिन, बड़ी महतारी ॥५॥
 निमनाका जार मलोचै, ज्यादा परिग्रह सो मोचै,
 निगरी मरजादालार, राह नहि पाँर हिलारै ॥६॥
 नादमें पुर, सर, 'मरिता, नित रासत अर्घत डरता,
 मर अनरयदड न करि है, छिन छिन निज धर्म सुमरि है ॥७॥
 दर बान, फाल, सुख भावै, ममता मामापर ध्यारै,
 पोषण एकाका हो है, निष्किचन मुनि ज्यों सोहै ॥८॥
 परिग्रह परिमान विचारै, नित नेम भोगफा धारै,
 मुनि आयन 'विरिया' जार, तर जोग अमन मुर लार ॥९॥
 ये उत्तम किरिया करता, नित रहै पापत डरता,
 जर निरुद मृत्यु निन जानै, तब हो मर ममता भारै ॥१०॥
 ऐसे पुरपोचम केरा, 'बुबजन' चरननरा घेरा,
 बे निश्चय मुर पर पारै, थोर दिनमें शिर जारै ॥११॥

छठी दाल

(बाल "अहो जगतगुरु दूष")

अधिर ध्याय परजाय, भोगते होय उदासी,
 नित्य निरजन जोनि, आनमा घटमें भासी ॥१॥
 सुत दासादि उन्नाय, सरनिते मोह निवार
 त्यागि शहर घन धाम, गामबन बीच विचार ॥२॥

१ मिट्टी । २ आ । ३ नदी । ४ समय । ५ छोड़ने ।

भूपन वसन उतारि, नगन हरी आत्म नीन
 गुरु द्विग दीक्षा धारि, शीश-कच लौच दुर्लभ ॥१॥
 त्रम-थावर का घात, त्याग, मन-वचन नैन
 श्रुत वचन परिहार, गहै नहि जल दिन डल ॥२॥
 चेतन अह तिय भोग, सज्ज, गति-नेत्र दुर्लभ
 अहि कचुरि ज्यों जान, चित्त पै पछि डल ॥३॥
 गुपति पलन के काज, कपट मन वचन डल
 पौचा सुमति संगति, परीषद गति डल ॥४॥
 छाँडि मरुल जजाल, आप कहे डल
 अपने हित में आप, कहे डल ॥५॥
 ऐसी निवचल काय, धाने डल
 मानौ पाथर रबी, कियो दिगडे डल ॥६॥
 चार घातिया नोशि, बलने बडे निडाग,
 दे जिन मत् आदग, भविष्ये डल ॥७॥
 नहुरि अघाते तोरि, ममर डल
 अलस अगडित नेति, श्रु कहे डल ॥८॥
 माल अनन्तानन्त, कहे डल
 अधिकारी अकिनाश, अवनमन सुम लहि डल ॥९॥
 ऐसी भावन भाय, ऐव डल
 ते ऐसे ही होय दुष्ट कर्मों हरि डल ॥१०॥
 निनके उर विश्वास, सम निगासन नहि

त भोगातुर होय, मर्त दूय नरकन मर्ही ॥१३॥
 सुट-दुय पर मिपाक, अर मत कल्प जोया,
 रुटिन-कठिनत मर्ति, जनम मानुष तै लीया ॥१४॥
 मो मिया मा जोय, जोय आपा पर, भाई
 गई । लाभ केरि, उदधिर्म, दूरी राई ॥१५॥
 भला नरकना राम, सहित ममकित जे पाता,
 पुर बने जे दत्त, नृपति, मिश्यामत-भाता ॥१६॥
 नहा सरच धन होय, नही काहुतें लरना,
 नहा दीनता होय, नही घरका परिहरना ॥१७॥
 समकित महन सुभाय, 'आप' का अनुमर करना,
 या मिन जप-तप वृथा, कष्टरु मर्ही परना ॥१८॥
 फोडि बाउकी बात, अरे 'बुधनन' उर धरना,
 मन बच-तन सुध होय, गहो जिनमतका सरना ॥१९॥

ॐ दोहा ॐ

ठारामै पचाम, अधिर नर मयत जानो,
 तीज सुक्ल वैशाख, 'ढाल पट' शुभ उपनानो ॥१॥

श्रीवृद्धत्स्वयभूस्तोत्रसे (श्री समंतभद्राचार्यकृ
 शतहृदोन्मेष चल हि मौख्य,

तृष्णामयाप्यायनमात्रहेतु ।,

तृष्णामिष्टद्विध तपत्यजस्र,

, तापस्तदायामयतीत्युपादी ॥ ११

अर्थ—निश्चयसे इन्द्रिय विषयोंका सुगम विजलीकी चमकके समान क्षणभर भी स्थिर रहने वाला नहीं है। तृष्णारूपी गेगके बढ़ानेका एक मात्र कारण है। इन्द्रिय-विषयोंके सेवनसे तृप्ति न होकर उल्टी तृष्णा बढ़ जाती है। तृष्णाकी बढ़ावारी निरन्तर सताप उत्पन्न करती है और वह ताप इस ममारको अनेक दुखोंकी परपरासे पीड़ित रक्ता रहता है। ऐसा आपने (पीड़ित जनताको उसके दुखका मर्चा निदान बताते हुए) उपदेश दिया है ॥१३॥

(४) श्री अभिनन्दननाथ भगवानका स्तुति

गुणाभिनन्दादभिनन्दनो भवान्

दयावर्धं क्षातिसरंगीमशिश्रियत् ।

ममाधिनवस्तदुपोपपत्तये

द्वयेन नैर्मध्यगुणेन चायुजत् । १४ ।

अर्थ—आपके जन्म लेते ही लोकमें सुखादि गुणोंकी बढ़ावारी हो जानेसे आप 'अभिनन्दन' इस सार्थक नामके धारी हो। आपने क्षमापयी वाली दयावर्धको अपनाया है। हे जिनेन्द्र ! आप आत्मध्यानमें लीन हैं और उस आत्मध्यानकी प्राप्तिके लिये ही आपने राक्ष आम्पन्तर दोनों प्रकारक परिग्रहको छोड़कर अपनेको निग्रंथपनेके गुणसे मुशोभित किया है ॥ १४ ॥

जनेमने नत्कृत्वा जेऽपि च,
ममेश्वरिन्ध्यामिनिवेशिकग्रहात् ।

प्रमदगुरे स्यान्न निश्चयेन च,

ममस्तत्प्रमजिग्रहद् भवान् ॥ १७ ॥

अर्थ—अज्ञान (जड़) शरीरमें और शरीर' समर्थसे पैदा होने वाले मुख दुःखादिक तथा स्त्री पुत्रादिमें 'यह मम' म इत्यादि 'हम' प्रसारके 'मिथ्या' अभिप्रायको लिये हुए होनेसे तथा क्षणभंगुर पदार्थोंमें निश्चय होने रहनेका निश्चय कर लेनेके कारण जगतके प्राणी कष्ट उठा रहें, हे उन्हें आपने जीवादि पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप बतलाकर सच्चे मार्गपर लगाया है ॥ १७ ॥

क्षुधादि दुःख प्रतिकारन स्थिति

न चेन्द्रियार्थप्रभवाल्पसौरयत ।

ततो गुणो नास्ति च देहदेहिनो-

रितीदमित्थं भगवान् व्यजिज्ञपत् ॥ १८ ॥

अर्थ—भूख प्यास आदिके दुःखोंको मिटानेके लिये भोजन पानादिका सेवन करनेसे और इन्द्रियके विषयभोगों से उत्पन्न होने वाले अति थोड़े एवं अठसिकारी क्षणिक सुखके सेवनसे इस शरीरधारी जीवकी स्थिति शरीरमें सदा नहीं रहती और न ठसि ही होती है । ऐसी दशामें क्षुधादि दुःखोंके इस क्षणस्थायी प्रतिकार और इन्द्रियविषयजन्य

अल्पमुखके सेरनसे न तो वास्तवमें इस शरीरका कोई उप
कार रहता है और न शरीरधारी जीवका ही कुछ भला
होता है । इस प्रकार हे भगवन् ! आपने मिथ्या भ्रमके
चक्रमें पड़े हुए जगतको रहस्यकी यह मर गत समझाई
है ॥ १८ ॥

जनोऽतिलोलोप्यनुबन्धदोषतो,

भयादकार्येण्विह न प्रवर्तते ।

उहाप्यमुद्राप्यनुबन्धदोषवित्,

कथं सुखे ससजतीति चाब्रवीत् । १०

अर्थ—अन्यन्त आत्मिकके बशसे विषयसेरनमें अत्यन्त
लोलुपी भी मनुष्य इस लोकमें गजदण्डोटिके भयसे
दुष्कर्मोंमें प्रवृत्ति नहीं करता, फिर जो मनुष्य इस लोक
तथा परलोकमें होनेवाले विषयामतिके भयकर परिणामों
को भल्ल प्रकार जानता है वह कैसे विषयमुखमें आसक्त हो
सकता है ? नहीं हो सकना, ऐसा आपने जगतकी उपदश
किया है ॥ १९ ॥

स चानुबन्धोऽस्य जनस्य तापकृत्

तृपोऽमिष्टद्वि सुखतो न च स्थिति ।

इति प्रभो लोकोहित यतो मतं,

ततो भवानेव गति मता मत ॥ २० ॥

अर्थ इन्द्रिय भोगोंमें यामकपना और तप्याकी यद्गारी दोनों ही हम लोलुपी प्राणीके लिये दुःखदाई हैं । इन्द्रिय विषयजन्य दोषमें मुग्धके मिलनेपर भी हम प्राणी की स्थिति मुग्धमय नहीं होती, प्रत्युत उसका मताप बढ़ जाता है । हम प्रसार जगतके लोगोंका उपकार करने जाना चाहें आपका शासन है, इसलिये हम अभिनन्दन प्रभो ! आप ही नगतर शरणभूत हैं, ऐसा सत्पुरुषाने माना है ॥ २० ॥

(७) श्री सुपार्श्वनाथ भगवानकी स्तुति

स्वास्थ्य यदात्यतिक्रमेण पुसा,

स्वार्थो न भोगः परिभङ्गुरात्मा ।

सृपोनुपह्लास च तापशानि

रितीदमारयद्भगवान्सुपार्श्व ॥ ३१ ॥

अर्थ—जो कमादिमलसे छूटकर अपने अनन्तज्ञानार्थ स्वरूप म्वात्मानमें अत्यन्त अविनाशी स्थिति है यही जीव त्माओंका निजी (सच्चा) प्रयोजन है । क्षणभंगुर इन्द्रिय सुखोंका भोग निजी प्रयोजन नहीं है । क्योंकि भोगों भोगनेसे भोगाकाक्षाकी यद्गारी होती जाती है और उस चाहकी दाह शांत नहीं होती है । यह स्वार्थका अस स्वरूप परम शोमनीय शरीरके अङ्गाके धारक श्री सुपार्श्वनाथ है ॥ ३१ ॥

अजहम अंगमनेययन्त्र,

यथा तथा जीवन्त शरीरम् ।

पीमत्सु पूति क्षयि नापक च

स्नेहो वृथात्रिति हित त्वमाग्य ॥३०॥

अर्थ—ऐसे जड़ यंत्र (हाथी, गदा, मशीन आदि)

शमपुरुष द्वारा चलाया जाना है उपायकार चीवके द्वारा
पारण किया हुआ यह जड़ शरीर है साथ ही यह शरीर
शनि पिनाचना है, दृग्घमय है, नाशवान् है, दुःखी
रोग है। इस शरीरमें, राग कम्पा आदि हैं सभी हितकी
विषा आपने दी है ॥ ३० ॥

अलक्ष्यशक्तिर्भवितव्यतेय

हेतुद्रव्याविहृतमकार्षन्तिदा ।

अनीश्वरो जतुरन्क्रियार्त

सहस्य कार्येष्टिति माभ्ययादी ॥३१॥

अर्थ—(अतर्क और बुद्धि) गीना कारणोंसे

अपट होता हुआ कार्य निष्का चिह्न है ऐसे इस दयकी
शक्ति अलक्ष्य है अर्थात् कोटिके टाले नहा टनती। (ऐसे
कार्य करनेमें जिसकी कुछ भी मायमर्थ नहीं है ऐसा)
अशक्तिमान्जीव-कार्योंके मयोगकी पारर (व्यर्थ ही)
यहकारसे पीडित होता है। ऐसा आपने यथार्थ कहा है।

मायार्थ—आचार्यश्रीने इस स्तुतिमें ममार, दह,

भोगोंकी अमारता, दिखलाते हुए आत्मन्चि कराई है।

नो पुनः शरीरकी अनादित्व पर भोगोंकी मायमयी इच्छा

करनेमें अपनी शक्तिसे लगाव रहे हैं उनकी समझाया है कि वायु मयोरूप परद्रव्योंसे तेरे पास लानेमें तेरा किञ्चित् भा मामर्थ्य नहीं है क्योंकि हर एक कार्यकी प्रगटताम ही कारण होते हैं एक तो अंतरंग अर्थात् उपादान कारण दूसरा बहिरंग अर्थात् निमित्तकारण अतः जो वायु संयोगरूप परद्रव्य तेरे निम्न प्रगट हुए हैं, वे अपने उपादानकारणसे तेरे नजदीक प्रगटे हैं, उनकी प्रगटताके कालमें तेरे पूर्ववत् पुण्यपापरूप कर्म निमित्तमात्र है, इसप्रकार सब द्रव्योंकी सहजस्वभाविक व्यवस्था अलक्ष्य है, फिर भी यह जीन व्यर्थ ही अहंकारसे दुःखी होता रहता है कि मैंने इस बाह्यमामपीको इकट्ठा किया, इसको दूर किया ॥ ३३ ॥

विमेति मृत्योर्न ततोऽस्मि मोक्षो,

नित्य शिष चाञ्छति नास्य लाभ ।

तथापि बालो भयकामघरयो,

पृथा स्वयं तत्पत इत्थयादी, ॥३४॥

अर्थ—समारी प्राणी मौतसे सदा डरता रहता है परतु उस मृत्युसे छुटकारा नहीं, नित्य ही कल्याण या मोक्ष चाहता है परतु इच्छा द्वारा उसका लाभ नहीं होता । फिर भी यह मूढ़ प्राणी मय और इच्छाके नशीभूत हुआ अपने आप व्यर्थमें ही दुःखी होता रहता है । ऐसा आपने उपदेश दिया है ॥ ३४ ॥

सर्वस्य तत्त्वस्य भयान् प्रमाता,

मातेव बालस्य हितानुशास्ता ।

गुणावलोकस्य जनस्य, नेना

मयाऽपि भक्त्या परिणयतेऽद्य । ३५

अर्थ—आप जीपादि विद्वत्तत्त्वोंके सशयादि रहित ज्ञाता हैं । जैसे माता बालक को हितकारी शिक्षा देती है उसी तरह आप अज्ञानी भक्त जीपोंको आत्महितका उपदेश देने वाले हैं । और आप ही सम्यग्दर्शनादि गुणोंके खोनी भक्तजनको गुणोंकी प्राप्ति का यथार्थ मार्ग दिखाने वाले हैं । इसीसे मैं भी इस समय भक्तिपूर्वक आपकी स्तुतिमें प्रवृत्त हुआ हूँ । अर्थात् आपकी स्तुति करनेसे मुझे भी आत्मीय गुणोंकी प्राप्ति का मार्ग सूझ पड़ा है ॥३५॥

(१०) श्री शीतलनाथ भगवानकी स्तुति

न शीतलाश्चन्दनचद्रररमयो,

न गान्धमम्भो न च हारषष्टय ।

यथा मुनेस्तेऽनघ वाक्यररमय,

शमाम्बुगर्भा शिशिराविपश्चिताम् । ४६

अर्थ—हे निर्दोष श्रीशीतल भगवन् ! आप प्रत्यक्ष ज्ञानी मुनिकी परम शांत जलसे भरी हुई वचनरूपी किरणें भेदज्ञानी पंडितोंके लिए मसारताप नाश करनेके हेतु जैसी शीतल (सुख शांति देने वाली) होती हैं, उसी चंदन तथा चन्द्रमाकी किरणें शीतल नहीं हैं, न गंगाका पानी शीतल

करनेमें अपनी शक्तियों लगाये हुए हैं उनको समझाया है कि चात सयोगरूप परद्रव्योरा तेर पाप लानेमें तेरा किञ्चित् भी सामर्थ्य नहीं है क्योंकि हरएक कार्यकी प्रगटताम दो कारण होन हैं एक ता अतरग अथात् उपादान कारण दूसरा बदिरग अथात् निमित्तकारण अतः जी बाह्य सयोगरूप परद्रव्य तेर निकट प्रगट हुए हैं, वे अपने २ उपादानकारणस तेरे भनदीक प्रगटे हैं, उनकी प्रगटताके कालमें तेरे पूर्ववद् पुण्यपापरूप कर्म निमित्तमात्र हैं, इसप्रकार मय द्रव्योंकी मङ्गलस्वामाधिक व्यवस्था अलंघ्य है, फिर भी यह जीव व्यर्थ ही अहंकारसे दुःखी होता रहता है कि मैंने इस बाह्यसामग्रीको इकट्ठा किया, इसको दूर किया ॥ ३३ ॥

विभेति मृत्योर्न नतोऽस्ति मोक्षो,

नित्यं शिष्य गच्छति नास्य लाभः ।

तथापि बालो भयकामवश्यो,

श्रुत्या स्वयं तत्प्यत इत्यर्थादी ॥ ३४ ॥

अर्थ—ममारी प्राणी मौतसे सदा डरता रहता है परंतु उस मृत्युसे छुटकारा नहीं, नित्य ही कल्याण या मोक्ष चाहता है परंतु इच्छा द्वारा उसका लाभ नहीं होता । फिर भी यह मूढ़ प्राणी मय और इच्छाके पशीभूत हुआ अपने आप व्यर्थमें ही दुःखी होता रहता है । ऐसा आपने उपदेश दिया है ॥ ३४ ॥

सर्वस्य तत्त्वस्य भवान् प्रमाता,

मातेर बालस्य हिनानुशास्ता । ॥ ३५ ॥

गुणावलोकस्य जनस्य नेना,

मयाऽपि भक्त्या परिणयतेऽद्य ॥३५॥

अर्थ—आप जीवादि निम्न तत्त्वोंके मगपादि रहित
ज्ञाता हैं । जैसे माता बालक को हितकारी शिक्षा देती है
उसी तरह आप अज्ञानी भग्न जीवोंको आत्महितका
उपदेश देने वाले हैं । और आप वही मन्मदृशनादि
गुणोंके खोजी भग्नजनकी गुणोंकी प्राप्ति का यथार्थ मार्ग
दिखाने वाले हैं । इसीसे मैं भी इस समय भक्तिपूर्वक
आपकी स्तुतिमें प्रवृत्त हुआ हूँ । अर्थात् आपकी स्तुति
करनेसे मुझे भी आत्मीय गुणोंकी प्राप्ति का माग ब्रह्म
पड़ा है ॥३५॥

(१०) श्री शीतलनाथ भगवानकी स्तुति

न शीतलाश्चन्दनचद्ररमयो,

न गान्धर्म्मो न च हारपट्टयः ।

यथा मुनेस्तेऽनघ वाक्परमय,

शमाम्बुगर्भा शिशिराविपश्चिनाम् ॥३६॥

अर्थ—हूँ निर्दोष श्रीशीतल भगवन् ! आप प्रत्यक्ष
ज्ञानी मुनिकी परम शांत जलसे मरी हुई वचनरूपी किरणें
भेदज्ञानी पंडितोंके लिए ममारताप नाश करनेके हेतु जैसी
शीतल (सुख शांति देने वाला) होती हैं, वैसी चन्दन तथा
चन्द्रमाकी किरणें शीतल नहीं हैं, न गंगाका पानी शीतल

करनेमें अपनी शक्तिसे लगाये हुवे हैं उनको समझाया है कि बाह्य मयोगरूप परद्रव्योंसे तेरे पास लानेमें तेरा किञ्चित् भी सामर्थ्य नहीं है क्योंकि हरएक कार्यकी प्रगटतामें दो कारण होते हैं एक तो अतरंग अर्थात् उपादान कारण द्वारा चङिग अर्थात् निमित्तकारण अतः जो बाह्य सयोगरूप परद्रव्य तेरे निकट प्रगट हुए हैं, वे अपने उपादानकारणसे तेरे नजदीक प्रगटे हैं, उनकी प्रगटताके फलमें तेरे पूर्ववद् पुण्यपापरूप कर्म निमित्तमात्र हैं, इसप्रकार सब द्रव्योंकी सहजस्वामाधिक व्यवस्था अल्प है, फिर भी यह जीव व्यर्थ ही अहंकारसे दुःखी होता रहता है कि मैंने इस बाह्यसामग्रीको इकट्ठा किया, इसको दूर किया ॥ ३३ ॥

विभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो,

नित्यं शिव याञ्जति नास्य लाभः ।

तथापि बालो भयकामवश्यो,

बुधा स्वयं तप्यत इत्यपि दी ॥३४॥

अर्थ—ममारी प्राणी मौतसे मदा टरता रहता है परंतु उम मृत्युसे छुटकारा नहीं, नित्य ही कल्याण या मोक्ष चाहता है परंतु इच्छा द्वारा उसका लाभ नहीं होता । फिर भी यह मूढ़ प्राणी भय और इच्छाके जशीभूत हुआ अपने आप व्यर्थमें ही दुःखी होता रहता है । ऐसा आपने उपदेश दिया है ॥ ३४ ॥

सर्वस्य तत्त्वम्य भवान् प्रमाता,

मातेर बालस्य हितानुशास्ता ।

गुणावलोकस्य जनस्य नैना

मयाजि भक्त्या परिहृतं ह

—अर्थ—आप बीरादि विश्व तत्त्वोंके नरूपों को ज्ञाता हैं। जैसे माता बालक को हितकारी सिद्धि देते हैं उसी तरह आप यत्रानी मन्त्र बीरादि इत्यादि उपदेश देने वाले हैं। और आप ही मन्त्रोंके गुणोंके सोजी भक्तजनको गुणोंकी शक्ति-रक्षा कर दिखाने वाले हैं। इसीसे मैं भी इस शक्ति-रक्षा आपकी स्तुतिमें प्रवृत्त हुआ हूँ। अर्थात् आपकी कृपासे मुझे भी आत्मीय-गुणोंकी शक्ति-रक्षा पडा है ॥३५॥

(१०) श्री शीतलनाथ मन्दिरं मुने

न शीतलाश्चन्दनपट्टाङ्गः

न शास्त्रम् न च विदुः ।

यथा मुनेस्तैऽनघ शास्त्रे

शमाम्बुगमो श्रेष्ठो गच्छिनाम् । ४६

अथ—ह निगेष श्रुतेः । आप प्रत्यक्ष
जानी मुनि की परम शून्य हस्त धर्मों किरणों
भेदजानी पड़ितों के निज के हस्त धर्मों के हेतु जेमी
शीतल (सुगम शान्ति के हेतु) वमी चदन तब
चन्द्रमा की किरणों शून्य दे । १३ एकाका पानी

हैं और न मोक्षियोंक हारकी मालाएँ ही शीतल हैं। अर्थात्
ये ज्ञानत पदार्थ नाद शरीरिक तापको भले ही हरलें, परंतु
इनमेंसे जोड़ का समास्तापान्त्य दे सेंगे। मिटानेमें समर्थ
नहीं हैं यह शक्ति तो प्रापकें पवनरूपा शिरणोंमें ही है।
अतः मन्त्री गुणजाति प्रदान करनेके कारण माधक नाम-
वारी आप ही हो ॥ ४६ ॥

मुखाऽभिलाषाऽनल्पा मूर्च्छित,

मनो निज ज्ञानमयाऽमृताऽम्बुभि ।

अदिन्यपस्त्य विषदाह मोहित,

यथा भिषग्मन्त्रगुणै हरिग्रहम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—जैसे वय विष दाहसे मूर्च्छित हुए अपने शरीर
को विषके दूर करवाले मन्त्रोंके गुणोंसे विषरहित कर देता
है उसी प्रकार आपने इन्द्रिय विषसे मुक्तोंकी चाहरूपी
अग्निही जलनसे मूर्च्छाको प्राप्त (हयोपादयके ज्ञानसे शून्य)
हुए अपने मनको ज्ञानमय अमृतजलाक मिश्रणसे मूर्च्छा
रहित करके शांत किया है ॥ ४७ ॥

स्वजीविते कामसुखे च तृष्णया,

दिवा अमार्ता निशि शेरते प्रजा ।

स्वमार्ग नक्तदिवमयमस्तयान् ।

जागरेयाऽऽत्मनि शुद्धयर्त्तमनि ॥ ४८ ॥

अर्थात् मामागिक सुखोंके इच्छुक्त वर्गमें अनुष्ठान करने पर भा ममारम ही भ्रमते रहते हैं क्योंकि जैसा उनका लक्ष्य है वैसा ही फल प्राप्त करते हैं । जन्म-मरण के न चाहन वाला सो आपका समान त्रिगुप्ति धारणरूप आत्महित करने में ही तन्मय रहना चाहिये ॥ ४९ ॥

स्वमुत्तमज्योतिरजः कः निर्वृतः,
कः ते परे बुद्धिलभोद्धतक्षता ।

नतः स्वनि श्रेयसभावनापरै-

धुभ्रप्रवेकैर्जिन शीतलेट्यसे ॥ ५० ॥

अर्थ—ह श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्र ! कहां तो आप परमोत्कृष्ट रत्नलानक धनी, पुनर्जन्मसे रहित तथा परम सुखी ? और कहां २ दूसरे तनिसमी बुद्धिके अहंकारसे नाशमें प्राप्त होनेवाले ? कितना महान् अंतर है ! हमीलिये अपने आत्मरन्पाणकी प्राप्तिमें भाग्यनाम तत्पर गणधरात्मिक देवाक द्वारा आप पूजे जाते हैं ॥ ५० ॥

(१२) श्री वासुपूज्य भगवानकी स्तुति

शिवासु पूज्योऽभ्युदयक्रियासु,

त्व वासुपूज्यस्त्रिदशेन्द्रपूज्यः ।

मयाऽपि पूज्योऽष्टपद्या मुनीन्द्र,

दीपार्चिषा किं तपनो न पूज्य ॥ ५१ ॥

अर्थ—हे मुनिनाथ ! आप वसुपूज्य राजाके पुत्र श्री वासुपूज्य स्वामी ! मंगलमय गर्भ, जन्म, तप आदि कल्याणश्रीकी क्रियाओंके अगमर पर पूजाको प्राप्त हुए हैं, इन्द्रादि देवोंके द्वारा पूजे जाते हैं और मुक्त, तुच्छ बुद्धिके द्वारा (ममन्तभद्रसे) भी पूज्य हैं क्योंकि दीपककी ज्योतिसे क्या सूर्य नहीं पूजा जाता है ? अपि तु पूजा ही जाता है ।

विशेषार्थ—अमो ! कहीं आप अनन्तगुणके धनी और कहीं मैं अल्पबुद्धि ! तथापि भक्तिगण पूजा करता ही हूँ । जैसे लोग दीपककी अति तुच्छ लौसे सूर्यकी पूजा करते हैं वैसे मैं आपकी भक्ति कर लूँ तो कोई अचरजकी बात नहीं है ॥ ४६ ॥

न पूजयाऽर्धस्त्वयि वीतरागे,

न निन्दया नाथ विवान्तवैरे ।

तथाऽपि ते पुण्यगुणस्मृतिर्न,

पुनाति चित्तं दुरितान्जनेभ्यः ॥ ५७ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपमें राग भावका अभाव है अतः आपकी पूजा करनेसे आपको कोई प्रयोजन नहीं है । इसी तरह आपमें द्वेष भावका अभाव है इसलिये आपकी निन्दा करनेसे भी आपको कोई प्रयोजन नहीं है । यह मर ठीक है किन्तु फिरभी आपके पवित्र गुणोंका

स्मरण पापरूपी मैलना नाश करके हमारे चित्तमें पवित्र
र र ही देता है ।

निशेपाये—श्रीवराग भगवान् अपने पुनारीके ऊपर
प्रसन्न नही होते तथा अपने शत्रुके ऊपर कुपित नहीं
होते, फिर उनका भक्तिसे क्या लाभ ? आचार्यश्रीने इसका
समाधान किया है कि आपके पवित्र गुणोंके स्मरणसे
चित्तकी निमलता एवं शुद्धि होती है अतः आपकी
पूजा भजना हम अपने ही हितके लिये करने हैं ॥ ५७ ॥

पूज्यं जिन त्वाऽर्चयतो जनस्य,
आगम्यलेणो बहुपुण्यराजौ ।
दोषाय नाल कृणिका विपस्य,
न दुषिका शीतशिगाम्बुराशौ ॥५८॥

अर्थ—हे नाथ ! आपकी स्तुति पूजन करते हुए
आत्मादिमें द्वारा कुछ पापका उपार्जन अवश्य होता है,
फिर यह हानिकारक कम कारण नहीं कि पुण्यकर्मकी
बहुलतामें यह कुछ कार्यकारी नही रहता, जिन तरह कि
शीतल तथा कन्याखकारी जलसे भरे हुए समुद्र-जलमें
एक विपकी बूद सराय नहीं कर सकती ॥५८॥

यद्वन्तु बाह्य गुणदोषसूते
निमित्तमभ्यन्तरमूलहेनो ।

अध्यात्मवृत्तस्य नदद्वमृत ।

मन्मथन्तर केवलमप्यल ते ॥ ८० ॥

अर्थ—जो बाह्य-सामग्री पुण्य तथा पापमात्रकी उत्पत्तिका, निमित्तकारणो हती है वह अतः कारणमें होने वाले शुभाशुभादि-परिणाम लक्षण मूलकारणकी (उपादानकारणकी) मात्र सहकारी कारण है । वस्तुतः आपके मतमें तो अतृप्त, शुभ व-अशुभ परिणाममात्र ही पुण्य-पाप बंध करनेको, ममर्थ हैं, अर्थात् जीवोंके अतृप्त परिणाम ही, पुण्य तथा पाप-बन्धके मूलकारण हैं, बाहरी पदार्थ, शुभ व-अशुभ परिणामोंके होनेमें केवल सहकारी कारण हैं ॥ ७९ ॥

बाह्येनरोपाधिसमग्रतेय,

कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः ।

नैरान्यथा मोक्षविधिश्च पुनः,

नेन।ऽभिरन्यस्तदसृष्टिबुधानाम् ॥ ८० ॥

अर्थ—आपके दर्शनमें कार्योपत्तिमें बाह्य (निमित्त) और आत्मन्तर (उपादान) दोनों कारणोंकी समग्रता (पूरता) ही द्रव्यगत (द्रव्यमें प्राप्त हुआ) निजस्वभाव है । हमारी जीवों के लिये मोक्षका उपाय भी अन्य और कोई नहीं है । इसीसे हे परमशुद्धिमय अक्षि वासुपूज्य ! आप गणधरादि ज्ञानीजनाक द्वारा पूजा वन्दना किये जानेके योग्य हैं ।

भावार्थ—जो द्रव्य स्वयं कार्यरूप परिणाम हो उस

जाता है तथा उसी समय ग्राह अपनी स्वयंकी योग्यतासे तन्नुकूल परिणामता हुआ अन्य संयोगरूप द्रव्य उपस्थित होता है उसको निमित्तकारण कहा जाता है, ऐसी स्वतंत्र कारणकार्यकी व्यवस्था ही द्रव्यगत निजस्वभाव है अर्थात् दोनोंके स्वतंत्र परिणामन होते हुवे भी कार्योत्पत्तिक समय दोनोंकी समग्रता द्रव्यगत निजस्वभाव है। अतः जिसने अपने अंतरमें निश्चयस्वरूप मोक्षमार्ग प्रगट किया हो उसको आपकी भक्ति पूजा वदना आदि होते ही हैं, हमके सिवाय मोक्षका उपाय कोई अन्य नहीं है, इसीसे आप ज्ञानीजनों द्वारा पूजा वन्दना किये जाने योग्य हैं ॥६०॥

आगेकी स्तुतियोंसे

य एव नित्यक्षणिकादयो नयां,

मिथोऽनपेक्षा स्वपरप्रणामिनः ।

त एव तच्च विमलस्य ते सुने,

परस्परेभ्यां स्वपरोपकारिणः ॥ ६१ ॥

अर्थ--नो नित्य अनित्य, सत् असत् आदिक नय हैं वे परस्परमें यदि एक दूसरेकी अपेक्षा नहीं रखकर सर्वथा एकान्तरूपसे वस्तुका कथन करनेवाले हैं तो वे अपना और दूसरे दोनोंका नाश करने वाला होनेसे स्व पर वैरी हैं इसीलिये दुर्नय हैं। हे प्रत्यक्षज्ञानी विमलनाथ भगवन् ! आपके दर्शनमें वे ही नय परस्पर एक दूसरेकी अपेक्षा रखनेसे अपना व दूसरे दोनों का भला करनेवाला होनेसे स्वपर उपकारी हैं और इसीलिये तत्परूप सुनय हैं ॥६१॥

प्राप्तः परिहरन्ति न शान्तिगता-

निष्पिन्ति यथैव न च परिबृद्धिरेव ।

मनःशयपरिणापहरं निमित्त

मनःशयान् विषयमोक्षपराङ्मुखाऽनूत् ॥ ८२ ॥

न-गन्धर्वाः शान्तिं ज्ञानार्थं (निरन्तर हृदयकी)

शान्ति होती रहती है । इन्द्रियविषयोंकी प्राप्तिसे इन

जानकारों शान्ति नहीं होती, उल्टी बढ़ती ही होती है;

यह स्तुत्यमय ऐसा ही है । सेवन किये हुए इन्द्रियोंके

से (इह धर्मोंके लिये) मात्र शरीरके मतापको (सुख

की) विहानेमें निमित्त यह जाने है (मनकी दाह शान्त

माने समर्थ नहीं होते), ऐसा ममत्कर इन्द्रियविजेंता

से मानने इन्द्रिय-विषयोंके सुखसे उदासीनता धारण

प्राप्त । अर्थात् चक्रवर्तीके वैभवसे मुंह मोड़कर जिनदीक्षा

करता ॥ ८२ ॥

श्रुतिः स्तोतुं साधो कुशलपरिणामाय स तदा,

मेन्मा वा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य न सतः ।

हिमेव स्वाधीन्याऽवगतिः सुलभे आयमपथे,

उप नमिजिनम् ॥ ८३ ॥

अर्थ—स्तुति करते समय जिसकी स्तुति की जाती है

हो या न हो तथा उस स्तुतिसे फलकी

प्राप्ति भी होती हो या न होती हो, परतु भक्ति मान पूर्वक

स्तुति करनेमाने माधुवनके ड्राग की गई आपकी स्तुति शुभ परिणामोंका कारण अग्रह है । अर्थात् स्तुतिकारकी मायमहिम स्तुति मन्त्र परिणामोंको निर्मल करनेमें प्रधान निमित्त होती है । जब जगतमें हम प्रकार स्वाधीनतासे मोक्षमार्ग सुलभ है तब, ह मंदेव इन्द्रादि द्वारा पूज्य नमिनाय म्यामी । ऐसा सौन ज्ञानीजन है जो अपने परिणामों की उज्ज्वलताके लिये आपकी स्तुति न करेगा ? अर्थात् आत्मा मन्त्र आपकी स्तुति करेगा ॥११६॥

हार्दिक भावना

मैं वो दिन कर पाऊँ, घरको छोड़ बन जाऊँ ॥ मैं वो० ॥
अंतर नाहिर त्याग परिग्रह, नम्र स्वरूप बनाऊँ ॥ मैं वो० ॥
मरल रिभावमय परिणति तब म्याभावि चित लाऊँ ॥
परत गुफा नगर सुन्दर घर, दीपक चाद मनाऊँ ॥ मैं वो० ॥
भूमि सेव आराधन खदोरा, तस्मिन् मुखा लगाऊँ ॥ मैं वो० ॥
उपल लान मृग खाव सुखावत, एसा ध्यान लगाऊँ ॥ मैं० ॥
लुधा तपादिक मई परीषद, धारद भावन लाऊँ ॥ मैं वो० ॥
मम्यदर्शन ज्ञान चरण तप, दण्डनन्य दर लाऊँ ॥ मैं वो० ॥
चार धार्तिया कर्म नागर, कलज्ञान उपाऊँ ॥ मैं वो० ॥
घात अधाति लई शिर 'मकखन' फेर न जगम आऊँ ॥ मैं॥

पूजा प्रकरण



• देवशास्त्रगुरु पूजा •

ॐ जय जय जय । नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु ।

१ शमो अरहताण, २ नमो मिद्धाण ३ शमो आडरीयाण ।

४ शमो उरज्झायाण, ५ शमो लोए सन्वमाहूण ॥ १ ॥

ॐ ॥ अनामिन्मूलमग्नेभ्यो नम । (पुष्पाञ्जलि लिपेत्)

१ चत्तारि मगल-अरहतमगल, सिद्धमगल, साहूमगल
कैरलिपणत्तो धम्मो मगल । चत्तारि लोगुत्तमा-अरहतलो-
गुत्तमा, सिद्धलोगुत्तमा, साहूलोगुत्तमा, कैरलिपणत्तो
धम्मो लोगुत्तमा । चत्तारि मरण पव्वज्जामि-अरहतमरण

१ ह जिनेन्द्रभगवन् ! आप जयवत हाआ २ । आपके लिये
हमारा नमस्कार हो ३ । ० मैं अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय
और लोकवर्ती भवसाधु इन पंच परमेष्ठियों को नमस्कार करता
हूँ । १ प्रथम अरहत भगवान्, दूसरे सिद्ध परमेष्ठी, तीसरे साधु
परमेष्ठी और चौथे कइली भगवान् का कहा हुआ धर्म ये चार ही
इस मसारमें मगल (पापके नाश करनेवाले और सुख व न्ने
वाले) हैं, ये चार ही मर्यात्तम हैं और इन चार ही की शरण में
जाना है ।

पञ्चज्ञामि, मिदमरण पञ्चज्ञामि, मादुमरण पञ्चज्ञामि,
केनलिपण्णतो धम्मो मरण पञ्चज्ञामि ।

ॐ नमोऽन्त एवाह । (पुष्पांनलि लिपि)

अपवित्र- पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा,
ध्यायन् पचनमस्कारं मरणपापं प्रमुच्यते ॥ १ ॥

अपवित्र पवित्रो वा मर्वायस्था गतोऽपि वा,
य स्मरेत्परमात्मानं न गच्छाम्यतरे शुचि ॥ २ ॥

अपराजितमत्रोऽयं मरणविघ्ननिनाशनः ।
मगलेषु च मर्तेषु प्रथमं मगलं मतं ॥ ३ ॥

एवो परणमोकारो सत्त्वपापपणामणो ।
मगलानां च सर्वेषां प्रथमं होइ मगलं ॥ ४ ॥

चाहे पवित्र हो या अपवित्र हो, चाहे अच्छे
स्थान पर हो अथवा बुरी जगह हो, पच परमेष्ठीके वाचक नम-
स्कार मंत्रका ध्यान करनेसे जीव सब पापोंमें छूट जाता है ॥ १ ॥
चाहे पवित्र हो या अपवित्र हो अथवा किसी भी अवस्थामें हो,
इन सभी अशाश्वत जीव परमात्माका स्मरण करता है वह
यस समय वाक्य और भीतरसे पवित्र है ॥ २ ॥ यह मंत्र अपरा-
जित है और विघ्नाका नाश करने वाला है तथा सभी मगलानां
प्रथम मगल माना गया है ॥ ३ ॥ यह पच एमोकार मंत्र
मंत्र पापोंका नाशक है और सभी मगलानां मुख्य मंगल है ॥ ४ ॥

‘अहमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनम् ।

मिद्वचकस्य सद्बोजं मूर्तं प्रणमाम्यहम् ॥ ५ ॥

कर्माष्टकविनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मीनिर्केतनम् ।

सम्यक्त्वादिगुणोपेतं मिद्वचकं नमाम्यहम् ॥ ६ ॥

(पुष्पाञ्जलिं लिपेत्)

‘उदकचन्दनतंदुलपुष्पकैशरसुदीपसुधूपफलार्घ्यम् ।

धवलमगलगान्गाकुले जिनगृहे जिननाममहं यजे ॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्महाजिनमहस्त्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिरयं जगत्त्रयेण,

स्याद्वादनायकमनन्तचतुष्टयाहम् ।

१ ‘अहं’ ऐसे तो अक्षर अक्षरहूत परमेष्ठीके वाचक हैं और मिद्वचको रूपत्र परनेके लिये उत्तम धीनके समान हैं अतः मैं त्रियागमे नमस्कार करता हूँ ॥ ५ ॥ आठ कर्मरहित, मोक्ष लक्ष्मी के स्थान और सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, अगुरुत्व, अज्यायाध, अवगाहन, सूक्ष्म, वीर्य इन आठ गुणों सहित सिद्धममूहको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ६ ॥ २ मैं निर्मल मगलगानके शास्त्रसे गुञ्जायमान इस जिनमदिरम जिनेन्द्रके की जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैरद, दीप, धूप, फल तथा अर्घ्यके द्वारा पूजन करता हूँ । ३ मैं तीन लोकके नाथ, स्याद्वाच विद्याके नाथ, अनन्तचतुष्टयके धारक, जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार करके जिन भगवान्की पूजन विधि कहता हूँ, जोकि पूजन मूलसंघीय (आरुन्धतुष्टयमीका

श्रीमूलमरुदणा सुगनकरेतु-

अनन्दयनगिरिष मयाऽभ्यधापि ॥८॥

स्वस्ति त्रिलोकगुह्य जिनपुङ्गवाय,

स्वस्ति स्वभावमहिमोदयमुदिताय ।

स्वस्ति प्रकाशसद्वचोजितद्वयमाय,

स्वस्ति प्रमदललितादृतममाय ॥९॥

स्वस्त्युच्छलादिमलमोधसुधास्रवाय,

स्वस्ति स्वभावपरमागिभामकाय ।

स्वस्ति त्रिलोकनितर्तरुचिदुद्भवाय,

स्वस्ति त्रिकालमरुनायनरिस्ताय ॥१०॥

परम्परा वाले) मय्यन्ताष्ट जायाकी पुण्यवधका प्रधान कारण है ॥ ८ ॥ तीनलोकके गुह्य तथा कदायागो जीतनेवाले मुनीश्वरके श्यामीके लिये स्वाभाविक अनन्तगानान्तरूप महिमान्धमें भक्त प्रकार स्थित भगवानके लिए, स्वाभाविक प्रकाशस (अनन्तज्ञानमे) वृद्धिगत, रेखल-गननहित चिनेत्रके लिए और उज्ज्वल, मनोहर तथा अद्भुत आत्मीय वैभवके धारण करनेवाले श्री चिनेन्द्रदेवके लिए मंगल होये ॥ ९ ॥ उद्वलते हुए निमल केवलज्ञानरूपी अमृतक प्रकाशवाले एव स्वभाव और परभावके प्रकाशक और तान लाकरी जानने वाले करुणानन्द श्यामी तम त्रिकालरता सभी पदार्थों में तानद्वारा व्याप्त हुए चिनेन्द्र भगवानके लिए मंगल होये ॥ १० ॥

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूप,

मात्रस्य शुद्धिमधिकामधिगतुमाम ।

आत्मनानि विविधान्यस्तत्त्ववत्त्वान्,

भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञ ॥११॥

अहं पुराणपुरुषोत्तमपावनानि,

उत्सृज्य नूनमपिलान्ययमेक एव ।

अग्निं ज्वलद्विमलरुक्मलोधरह्वा,

पुण्य ममग्रमहमेकमना जुहोमि ॥ १० ॥

ॐ हा विधियज्ञप्रतिष्ठानाय चिनप्रतिमाग्रे पुष्पात्तलि क्षिपत ।

श्री वृषभो न स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजित ।

श्री ममव स्वस्ति, स्वस्ति श्री अभिनन्दन ।

श्री सुमति स्वस्ति, स्वस्ति श्री पद्मप्रभ ।

श्री सुपादर स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचद्रप्रभ ।

१ अपने भावोंकी परम शुद्धताको प्राप्त होनेका अभिलाषी मैं यथानुरूप द्रव्याकी शुद्धि प्राप्त करके अनेक प्रकारके अवलम्बना या आश्रय लेकर परमपूज्य पुरुष अहंतादिका पूजन करता हूँ ॥ ११ ॥ हे अहंन, हे पुगतन प्राचीन पुरुष, हे उत्तम पुरुष ! यह अटला एक मैं उन ममस्त पवित्र द्रव्योंका तथा समग्र पुण्यको ईर्ष्यामान, निर्मल केवलानुरूपी अग्निमें उपासित होकर हवन करता हूँ ॥ १० ॥

२ अनतज्ञानादिरूप आभ्यन्तर लक्ष्मी तथा च प्रातिहार्य, अतिशय और समशम्यकान्ति, राक्षसलक्ष्मीसे सुशोभित श्री वृषभनाथजी आदि चौरासे तीर्थद्वार हमारे मंगलके लिये होओ ।

श्री पुष्पदत्त स्वस्ति, स्वस्ति श्री शीतल ।

श्री श्रेयाम स्वस्ति, स्वस्ति श्री वासुपूज्य ।

श्री त्रिमल स्वस्ति, स्वस्ति श्री अनन्त ।

श्री उर्म स्वस्ति, स्वस्ति श्री शानि ।

श्री कुपु स्वस्ति, स्वस्ति श्री अग्नाथ ।

श्री मल्लि स्वस्ति, स्वस्ति श्री मुनिसुव्रत ।

श्री नमि स्वस्ति, स्वस्ति श्री नेमिनाथ ।

श्री पार्थ स्वस्ति, स्वस्ति श्री वर्धमान ।

(पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्)

आगे प्रयेन स्लोकके अन्तमें पुष्पाञ्जलि क्षेपण करना चाहिये ।

‘नित्याश्रकपाद्भुतकेशलोधा,

सुखन्मन पर्यपशुद्वयोधा ।

नित्याश्रधिवानबलप्रयोधा,

स्वस्ति प्रियासु परमर्पयो न ॥१॥

रोषमध्वान्योपममेकशील,

ममिन्नमश्रोतपदानुसारि ।

१. अग्निनाशी, अचल, अद्भुत केवलज्ञानके धारक, ईश्वरीयमा
मन पर्ययज्ञानधारी, नित्य अश्रधिवानने उलसे जागृत, ऐसे मह
श्रुति हमारे लिए हैम करें ॥ १ ॥ रोषमध्वान्योपम, एकशील
ममिन्नमश्रोतपदानुसारि इन चार प्रकारकी बुद्धि श्रद्धा
धारक श्रुतिमान हमारे लिए भगल कर ॥ २ ॥

चतुर्विध शुद्धिबल दधाना,

स्वस्ति क्रियासु परमर्पयो न ॥ २ ॥

१ मस्पर्शन संश्रयण च दूरा

दास्यादनघ्राणतिलोकनानि ।

दिव्यान्मतिज्ञानगलाद्वहत,

स्वस्ति क्रियासु परमर्पयो न ॥ ३ ॥

२ प्रजाप्रधाना श्रमणा ममृद्धा,

प्रत्येकशुद्धा दशसर्वपूरा ।

प्रवादिनोऽष्टागनिमित्तमित्रा,

स्वस्ति क्रियासु परमर्पयो न ॥ ४ ॥

३ जघारलिश्रेणिफलानुगतु ।

प्रसन्नगीजाङ्कुरचारणाङ्गा ।

नमोऽगणस्वरविहारिण्य,

स्वस्ति क्रियासु परमर्पयो न ॥ ५ ॥

१ दिव्य मतिज्ञानके बलस दूरस्पर्शन, दूरमश्रवण, दूर
आस्यादन, दूर आघ्राण तथा दूरविलासन आदि धारण करनेवाले
परमर्पि हमारे लिए मंगल करें । २ प्रजाश्रमणत्व, प्रत्येकशुद्धता,
नशपूर्वित्व, चतुर्गुणपूर्वित्व प्रवादित्व और अष्टागनिमित्तज्ञता
शुद्धिधारी मुनिर हमारे लिए होम करें । ३ जघा, श्रेणि, फल
जल, तन्तु, पुष्प, घाज, अङ्कुर, अग्निरात्रापर चलनवाले चारण
आदि धारक अष्टपराज तथा आकाशरूपी आगनम विहार करने
वाले मुनिराज हमारी कुशलता करें ।

‘अणिमि दत्ता वृज्जना महिमि,
लघिमि शक्ता ऋतिनो गरिमि ।
मनोऽगुणान्नित्य,
स्वस्ति त्रियामु परमर्पयो न ॥६॥

‘मन्त्रमन्त्रित्ववशित्वमेष्य,
प्राकाम्यमतद्विमयातिमात्ता ।
तथाऽप्रतीधानगुणप्रधाना ,
स्वस्ति क्रियामु परमर्पयो न ॥७॥
तीक्ष्णं च तप्तं च तथा महोग्र,
घोरं तपो योगपराङ्मस्यो ।

ब्रह्मापर घोरगुणात्थरत,
स्वस्ति त्रियामु परमर्पयो न ॥८॥

‘आमर्पसगपयपस्तगानी ।
निपनिपादष्टिनिपविपाश्च ।

१. अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा ऋद्धिम कुशल तथा मनोऽगल, वचनगल और कायगल ऋद्धिधारक योगिराज मद्देन हमारे लिए नेम कर । २ सकामरूपित्व, वशित्व, इशित्व, प्राकाम्य, अतधान, आति और अप्रतिघात ऋद्धिप्रधान मुनिवर हमारी कुशलता करें । ३ दाप्त, तप्त, महोग्र, महाघोर, तपाघोर, परमप्रमधार और ब्रह्मवर्ष ऋद्धिधारी ऋषिपुंगव हमारे लिए भगल प्रदान करें । ४ आमर्पपधि, सवर्पधि, आशीवि पत्रिप, दष्टिनिपत्रिप, द्वेलौपधि, रिहौपधि, जल्लौपधि, मल्लौपधि ऋद्धिधारक ऋषिपर हमारा कल्याण करें ।

मतिट्टमिड्जल्लमलोपधीशा,

स्वस्ति क्रियासु परमर्पयो न ॥ ९ ॥

क्षीर स्रगतोऽत्र घृत स्रगतो;

मधुस्रगतोऽप्यमृत स्रगतः ।

अक्षीणस्रवातमद्धानमाश्रय,

स्वस्ति क्रियासु परमर्पयो न ॥ १० ॥

इति परमर्पितस्तिमगलस्थितान ।

अथ देवशास्त्रगुरुपूजा भाषा

प्रथमद्वय आहत सुश्रुत मिद्वान्तज् ।

गुरु निग्रय महत मुक्तिपुरपथ ज् ॥

तीन रत्न जगमाहि मो ये भवि ष्याडये,

तिनकी भक्तिप्रसाद परमपद पाडये ॥ १ ॥

पूजा पद अरहन्तके, पूजा गुरुपदमार ।

पूजा देवी सरस्वती, नितप्रति अष्ट प्रकार ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुममूह । अत्रावतरावसर सखीपद (इत्याह्वानन)

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुममूह । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ (इति स्थापन)

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुममूह । अत्र मम मतिहितो भव भव चपद

(इति मन्त्रिभिकरणम्)

१. क्षीरस्रावी, घृतस्रावी, मधुस्रावी, अमृतस्रावी, अक्षीण-
स्रवात और अक्षीणमद्धानम् आदिधारी श्रीगुरुवर हमारे लिये
कल्याण प्रदान कर ।

सुरपति उरगनरनाथ तिनकर, उदनीक सुपदप्रभा ।
अतिशोभनीक सुगन्ध उज्ज्वल, देवि ठवि मोहित सभा ॥
उ नीर सीरभमुद्र घटभरि अग्र तनु बहुविधि नचू ।
अरहन्त श्रुतमिद्वान्त गुरु निरग्रथ नित पूजा रचू ॥१॥

मनिन यस्तु हस्तेन सव, जलस्वभाय मलछीन ।

जाया पनो परमपन्न, देव शास्त्र गुरु तीन ॥१॥

ॐ ह्रीं त्रेशास्त्रगुरुभ्यो जे मनरामृदुषिनाशनाय जल नि० स्वाहा ।

उ त्रिजग उदर मैकाय प्रानी, तपत अति दुद्धर सर ।
तिन अहितहरन सुवचन त्रिनक, परम शीतलता भरे ॥
तनु भ्रमर लाभित घास पावन मरम चन्दन घमि सचू ।
अरहन्त श्रुतमिद्वान्त गुरु निरग्रथ नित पूजा रचू ॥
चन्दन शीतलता करे, तपन वस्तु परवीन ॥जासा०॥२॥

ॐ ह्रीं त्रेशास्त्रगुरुभ्यो ममारनापविनाशनाय चन्दन निर्व० ।

यह मयममुद्र अपार तारण, के निमिच सुरिधि ठई ।
अतिदृढ़ परमपावन जथारथ भक्तिर नौका सही ।
उज्ज्वल अरपडित मालि तदुल पुज धरि श्रयगुण जचू ।
अरहन्त श्रुत मिद्वान्त गुरु निरग्रथ नित पूजा रचू ॥
त दुल मालि सुगन्ध अति, परम अरपडित बीन ।जामों०॥३॥

ॐ ह्रीं त्रेशास्त्रगुरुभ्यो उच्चयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्जपामीति स्वाहा ।

जे नियमन सुभव्य उर अजुज प्रमाणन मान है ।

जे एक मुल चारित्र भाषेत त्रिजगमाहिं प्रधान हैं ॥
 लहि कुन्द कमलादिक पटुप भर भर कुवेदनमा रचू ।
 अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु निरग्रथ नित पूजा रचू ।
 विविधभाति परिमल सुमन, भ्रमर जाम आधीन ॥ जामों ० ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामरागद्वेषमनाय पुष्प नि० स्याद्वा ।
 अतिमरल मदरुदर्प जाको लुघाउरग अमान है ।
 दुस्मह भयानक तामु नागनरो तु गरुड ममान है ॥
 उत्तम छहो रमयुक्त नित, नैवेद्यकरि घृतमें पचू ।
 अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु निरग्रथ नित पूजा रचू ॥

नानाविधि मयुक्त रम, व्यजन सरस नरीन ॥ जामों ० ॥ ५ ॥

ॐ हा देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुमारोगनिनाशनाय नैवेद्य नि० स्याद्वा ।
 जे त्रिजग उद्यम, नाग कीने मोहतिमिर महारली ।
 तिहि कर्मघाती दानदीपप्रकाशजोति प्रमारली ॥
 इह भाति दीप प्रजाल कचनके सुभावनमें रचू ।
 अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु निरग्रथ नित पूजा रचू ॥
 स्वपरप्रकाशक जोति अति, दीपक तमकरि होन ॥ जामों ० ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो माहान्धकारविनाशनाय दीप नि० स्याद्वा ।
 जो कर्म दूधन दहन अग्रिममूह मम उद्धत लस ।
 वर धूप तामु सुगन्धताकरि सरून पग्मिलता हँमें ॥
 इह भाति धूप चढ़ाय नित, मग्नलनमाहि नहीं पचू ।

अरहन्त श्रुतिद्वान्त गुरु निरग्रथ नित पूजा रचू ॥

अग्निमाहि परिमलह्न, चदनादि गुणलीन ॥जासों०॥७॥

ॐ ह्रीं त्र्यशाम्बुगुरुभ्याऽष्टमर्मदहनाय धूप नि० स्वाहा ।

लाचन सु रमना घान उर, उत्साहके करतार हैं ।

माप न उपमा जाय वरणी मङ्गलफलगुणमार हैं ॥

मो फल चदायत अर्थपूरन, परम अमृतरस सचू ।

अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु निरग्रथ नित पूजा रचू ॥

य प्रधान फल फलत्रिप, पचस्वरण रम लीन ॥जामों०॥८॥

ॐ ह्रीं त्र्यशाम्बुगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फल नि० स्वाहा ।

नल परम उज्ज्वल गघ अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरू ।

घर धूप निर्मल फल त्रिभिध, गहु जनमके पातक हरू ॥

इहमानि अर्थ चदाय नित भविस्वरन शिखरप्रति मचू ।

अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु निरग्रथ नित पूजा रचू ॥

गगुनिनि अर्थ मँजोपके, अति उज्जाह मन कीन ॥जासों०॥९॥

ॐ ह्रीं त्र्यशाम्बुगुरुभ्योऽनर्थप्राप्तये अर्थ नि० स्वाहा ।

❀ अथ जयमाला ❀

— मोहा —

त्र्यशाम्बुगुरु रतन शुभ, तीनरतन करतार ।

मिन मिन रहूँ आरती, अल्प सुगुण विस्तार ॥

— पद्मरि छन्द —

कर्मनको प्रेमठ प्रकृति नाशि, जीत अष्टादश दोष

राशि । जे परम सुगुण हैं अनंत धीर, कहत रहे छयालिम
 गुण गँगीर ॥ २ ॥ सुम सममरख शोभा अपार, शतड्ड
 नमत कर सीमधार । देवाधिदेव अरहत देव, वदों मनवच
 तनकरि सुसेव ॥ ३ ॥ चिनकी धुनि हूँ आंकाररूप, निर
 अक्षयमय महिमा अनूप । दश अष्ट महाभाषा समेत, लखु-
 भाषा सात शतक सुचेत ॥ ४ ॥ सो स्याद्वाढमय सप्तमग,
 गणधर गूये बारह सु अग । रवि शशि न हरै मो तम हराय,
 सो शास्त्र नमों बहुभीति स्थाय ॥ ५ ॥ गुरु आचारज उव
 भाष साध, तन नगन स्तनत्रयनिधि अगाध । ममारदेह
 चैराग धार, निरमाछि तपैं शिखर निहार ॥ ६ ॥ गुण
 छत्तिस पचिस आठनीस, भगवान तरन जिहान ईस ।
 गुरुकी महिमा वरनी न जाय, गुलनाम जपों मनवचन
 काय ॥ ७ ॥

मोरठा—कीनँ गक्ति प्रमान, शक्ति गिना सरधा धरे ।

द्यानत सरधागान, अजर अमरपद भोगरे ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

• इति देवशास्त्रगुरुकी भाषापूजा समाप्त •

श्री बीस तीर्थंकरपूजा भाषा ।

दीप अडाई मेर पन, अरु तीर्थंकर बीस ।

तिन सबकी पूजा करू, मनवचन धारे सीस ॥

ॐ ह्रीं विष्णुमानविशतितीर्थकरा । अत्र अत्रतर अत्रतर । सर्वोपद् ।

ॐ ह्रीं विष्णुमानविशतितीर्थकरा । अत्र तिष्ठत तिष्ठत । ठ ठ ।

ॐ ह्रीं विष्णुमानविशतितीर्थकरा । अत्र मम मन्निहितो भवत भवत
यपद् ।

ॐ फणीड नगेंद्र वद्य, पद निर्मल धारी ।

शोभीरु समार, मागुण है अगिहारी ॥

नीरोदधि मम नीरमा (हो) पूजो तृषा निवार ।

मामर जिन आदि दे, वीम रिदह भेकार ॥

आ निनराज हो मर, तारणतण्य निहान ॥१॥

ॐ ह्रीं विष्णुमानविशतितीर्थकरेभ्यो जन्मजगामृत्युविनाशनाय चत् ।

तानलोकर जीर पाप आताप मताये ।

निनरो माता दाता, शीतल रचन सुहाये ॥

राजन चदनमा जनु (हा) अमनतपन निरशर । मी० ॥२॥

ॐ ह्रीं विष्णुमानविशतितीर्थकरेभ्यो भवतापविनाशनाय चत् न नि

यह समार अपार, महाभागर निनस्वामी ।

तात तार बडी भक्ति-नीरा जगनामी ॥

तदुल अमल सुगधमो (हो) पूजो तुम गुणसार । मी० ॥३॥

ॐ ह्रीं विष्णुमानविशतितीर्थकरेभ्यो यः कथयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व ।

भक्ति सरोज प्रकाश, नन्यतमहर रजिसे हो ।

जति गार आचार, कथनरो तुमही बडे हो ॥

पुनसुवास अनेकसो (हो) पूजा पदन प्रहार । मी० ॥४॥

ॐ ह्रीं विष्णुमानविशतितीर्थकरेभ्यो कामबाणविध्यसनाय पुष्प०

काम नाग त्रिषधाम, नागको गरुड रहे हो ।

धुवा महादवज्वाल, तासको मेघ लह हो ॥

नेत्रज बहुधृत मिष्टसों (हो) पूजों भूखविहार । मीमधर० ॥५॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविशतितोर्थद्वारेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य ॥

उद्यम होन न देत, सर्व जगमाहि मरथो है ।

मोह महातम घोर, नाश परकाश करथो है ॥

पूजों दीपप्रकाशसों (हो) ज्ञानज्योति करतार । सी० ॥६॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविशतितोर्थद्वारेभ्यो मोहाधमरविनाशनाय दीप० ॥

कर्म आठ मघ काठ, मार विस्तार निहारा ।

ध्यान अगनि कर प्रकट, मरु कीनो निरगारा ॥

धूप अनूपम खेउतें (हो), दुख जर्नें निग्धागामी० ॥७॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविशतितोर्थद्वारेभ्योऽष्टकर्मविध्वसनाय धूप० ॥७॥

मिथ्यामादी दुष्ट, लोभज्झकार भरे हैं ।

सबको छिनमें जीत, जैनके मेरु खरे हैं ॥

फल अति उच्चममां जनों (हो) गठितफलदातार । सी० ॥८॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविशतितोर्थद्वारेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फल निर्वर्ध० ।

जल फल आठों दर्य, अरघकर प्रीति घरी है ॥

गणधर द्रव्यनहूतें, धुति परी न करी है ॥

द्यानत मेरु जानके (हो) जगते लेहु निकार । मी० ॥९॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविशतितोर्थद्वारेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्य निर्वर्ध०

ॐ प्रथम जयमाला आरती ॐ

— सोमदा —

तानसुगारचढ भरिऊसेतहित मेव हो ।

अमृतमभान प्रमद, तीर्थरुचिमी नमो ॥

— चौपाई (६ मात्रा) —

सोमधर सीमधर स्वामी, जुगमधर जुगमधर नामी ।

गङ्गा गङ्गा जिन जगजन तार, करम सुगङ्गा गङ्गा लटारे ॥१॥

जात सुजात केवलज्ञान, स्वयम्भू प्रभु स्वयम् प्रधान ।

अपमानन अपमानन दोष, अनन्तरीरज वीरजकोष ॥२॥

सौरीप्रभ सौरीमुखमाल, सुमुख मिशाल मिशाल दयाल ।

रजशर भग्निरिज्जर है, चन्द्रानन चन्द्रानन गर है ॥३॥

भद्रगङ्गा भद्रनिकरता, श्रीभुजग भुजगम, हरता ।

हृन्मर मरके ईश्वर छाजे, नेमि प्रभु जम नेमि निरान ॥४॥

रीरसेन वीर जग जान, महाभद्र, महाभद्र, रग्यनै ।

नमोजमोधर जमवरकारी, नमो अजितरीरज रत्नधारी ॥५॥

रनुप पाचमे काय मिगङ्गा, श्राव कोटिपूरव मर छान ॥

ममवमरण शोभित निनराजा, भग्नल तारनतरन जिहाजा ॥६॥

मम्यर, रत्नत्रयनिधिदानी, लोकालोक प्रकाशक ज्ञानी ।

शतद्वन्द्वनिरि रदित सौह, सुरनर पशु मरके मन मोह ॥७॥

— दोहा —

तुमको पूजै उदना, करै धन्य नर मोय ।

द्यानत सरघामन घरे, सो भी उरमी होय ॥

ॐ ह्रीं त्रिगमान विंशतितोर्वैकरेभ्यो महार्घं निर्दिशामोति स्याद् ॥

ॐ इति श्रीबीस तीर्थकरपूजा समाप्त ॐ

अथ श्रीसिद्धपूजा

(कवि जीहरीमलजी कृत)

तीनलोक ईश तनगतमल शीश सहो,

राज जगदीश जु समूह मिदरूप है ।

एकरूप रसुरूप गुण है अनन्त,

अवगाहन जघन्य उत्कृष्ट जु स्वरूप है ।

पद्मामन उदगामन लोकालोक दायक,

जे अजर अमर जु अमूर्ति अनूप है ।

आय तिष्ठ इष्टद्व मै करूँ पदान्जसेर,

चढ़ मै त्रिशूल ऐसे मिद शिखरूप है ॥

ॐ ह्रीं श्री एमोमिद्वाण सिद्धपरमेष्ठिन् मिद्धसमूह ! अत्र अवतरा

धतर मर्वाण् आद्वाननं ।

ॐ ह्रीं श्री एमोमिद्वाण सिद्धपरमेष्ठिन् मिद्धसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ

ठ ठ स्थापनम् ।

ॐ ह्रीं श्री एमोमिद्वाण सिद्धपरमेष्ठिन् सिद्धसमूह ! अत्र सम सति

हितो भव भव धपद् सतिधिररण ।

निजमनमणिमय मृद्गा ममरम नीर भरा,
 पूज् दुःख विविध निवार जामन मरण जरा ।
 श्री मिदममृद् अनन्त गुणात्म शुद्ध सही,
 तुम व्याप्त मुनिजन मंत्र पात्रत मोक्षमही ॥१॥

ॐ श्री रामप्रसादाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेश्वरिणे जामजरा-
 मृत्युविनाशनाथ उल्ल नि० ।

निज महजहि शुद्ध स्वभाव, चंदन नमि लाप्यो ।
 पद्म तुम पद्मधरि चारु, मय तप निमाप्यो ॥श्री०॥२॥
 ॐ ह्रीं गुणोमिद्वारा श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेश्वरिणे समार-
 ताविनाशनाथ चन्दन नि० ।

निर्मल निज महज स्वभाव, तदुल्ल शुद्ध लिये ।
 गुण अत्रय पद दरसार, तुम पद भेंट किये ॥श्री०॥३॥
 ॐ ह्रीं गुणोमिद्वारा श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेश्वरिणेऽक्षयपद-
 प्राप्तये अक्षुत्ताय नि० ।

चेतन निज मात्र मुसार, पुष्प सुगन्ध भरे ।
 मनमथ के नाशनहार, तुम पद भेंट धरे ॥श्री०॥४॥
 ॐ ह्रीं गुणोमिद्वारा श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेश्वरिणे कामराज-
 विश्वमनाय पुष्प नि० ।

आशममपूरितमिष्ट, शुद्ध नैवेद्य लिये ।
 पूज् परमात्म इष्ट, दोष दुष्टादि गये ॥श्री०॥५॥
 ॐ ह्रीं गुणोमिद्वारा श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेश्वरिणे दुष्टारण-
 विनाशनाथ नैवेद्य नि० ।

शुद्ध चेतनमें रुचिमार, दीप प्रकाश रग्यौ ।

पूज निजगुण दरमार, शाय स्वरूप गग्यौ ॥श्री०॥६॥

ॐ ह्रीं एमोसिद्धाण श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेश्वरिणे माहाय
कारविनाशनाय दीपं नि० ।

कर्मनकी घातकरूप, रूप सुगंध करी ।

खेतव हूँ ह गिवभूप ! आठौ कर्म जरी ॥श्री०॥७॥

ॐ ह्रीं एमोसिद्धाण श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेश्वरिणेऽष्टकर्म
दहनाय धूपं नि० ।

रत्नत्रय शुद्ध स्वभावर, निजगुण फल लीने ।

पूजत शिवफल सरमार, आतमरम भीने ॥श्री०॥८॥

ॐ ह्रीं एमोसिद्धाण श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेश्वरिणे मोक्षफल
प्राप्तये फलं नि० ।

चिंतामणि नम शुद्धमार, आठौं द्रव्य लिये ।

पूजत अरिगण जु नमार, निजगुण प्रकट किये ॥श्री०॥९॥

ॐ ह्रीं एमोसिद्धाण श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेश्वरिणेऽनघ्यपद
प्राप्तयेऽर्घं नि० ।

❀ अथ जयमाला ❀

— छन्द —

इंद्र फणिंद्र नरेन्द्र तीनू कर पूजा पाई ।

ऐसे तीरथनाथ नर्म तुम त्रिशुवन, राई ।

मिद्ध शुद्ध पद ध्याय मुक्तिलक्ष्मीसो पावे ।

सुर सत्ता चतन्य रोध निजगुण प्रगटाये ॥

— नारायण छन्द —

सु वीतराग शांतस्व रोधके निधान हो ।
 निरामय सु निर्णय निगम हो सुधाम हो ।
 प्रसन्न ता ममह मिद्व आपही मिशुद्र हो ।
 करो मिशुद्र मोहि नावऽनतज्ञान गुड हो ॥प्र०॥१
 तुर्म्हा निमोद हो निगम माम्यभाव रूप हो ।
 अपृच्छाक पूर्ण गुड आप ही स्वरूप हो ॥प्र०॥२
 अत्रय निष्कषाय हो जु कर्म पाम ना रही ।
 जो मंगसो प्रमम नाहि शुद्धरूप आप ही ॥प्र०॥३
 अनत मौग्यके समुद्र नतज्ञान घीर हो ।
 दु कर्मसो निवारि आप कापरुड वीर हो ॥प्र०॥४
 कलङ्कर्म धूलिसो समीरके समान हो ।
 नहीं जो शोक ना रिकार ना अमान हो ॥प्र०॥५
 गुज्ञाननेत्र तेज दख लोक वा अलोफसो ।
 जो मित्रमित्रज्ञान जीउद्रव्यथादिबोफको ॥प्र०॥६
 जु मोह हीन अगना सदा उदय स्वरूप हो ।
 जु वर्ण गर रूप नाहि आप ही अरूप हो ॥प्र०॥७
 मुनीन्द्र इन्द्र वा नरेन्द्र पादरुन्द पूजि है ।
 सुशुद्ध मिद्व ध्याने जु दुष्टकर्म पूजि है ॥प्र०॥८
 भये जु ज-म मरण नाशिके जु त्रिपुरारि हो ।
 सुशुद्ध कान मादि आप ही सु मार हो ॥प्र०॥९

जु और चाह नाहि मोहि सिद्धपद दीनये ।

जु आप हो कल्याणरूप मो कल्याण कीजिये ॥ प्र० ॥ १०

ॐ ह्रीं शमोसिद्धाय सिद्धपरमेष्ठिभ्यो महाचै निर्वपामीति स्वाहा ।

यह मिद्धममृतनी जयमाल जो भवि पढ़ि निज ध्यान धर ।

मर कर्म नशाव शिवपद पार 'जोहरि' परमानन्द कर ॥

॥ इत्यारम्भोद ॥ (पुष्पाञ्जलि)

ॐ इति श्रीसिद्धपूजा समाप्त ॐ

अथ सिद्धपूजा भाषा (न० २)

— छप्पय —

स्वय मिद्ध जिनमयन रतनमय विरि तिराजै ।

नमत सुरामुर भूप दरस लखि रवि शशि लाजै ॥

चार सतक पचास आठ भुलोक बताये ।

निनपद पूजन हेत धारि भवि मगल गाये ॥

मगलमय मगलकरण, शिवपद दायक जानिकै ।

आहवानन करिकै नम मिद्ध सकल उर आनिकै ॥

ॐ ह्रीं अनतगुणविराजमानसिद्धपरमेष्ठिन् अत्र अत्रतर अत्रतर

मनोपद ।

ॐ ह्रीं अनतगुणविराजमानसिद्धपरमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ

स्थापन ।

ॐ ह्रीं अनतगुणविराजमानसिद्धपरमेष्ठिन् अत्र मम सन्निहितो भव

भव वषट् सन्निधिकरण ।

— चाल नन्दीश्वरकी —

उल्लल जल शीतल लाय जिन गुण गावन है ।

सब मिद्धनरों सु चढ़ाय पुण्य वढ़ानत है ॥

सम्यक्त्व सु शायक जान यह गुण पडयतु है ।

पूजा श्रीमिदमहान बलि रनि जइयतु है ॥१॥

ॐ ह्रीं एमामिद्वार सिद्धपरमेष्ठिने जमरासमृत्तुविनाशनाय जन
निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

कम्पु सुकेशर मार चन्द सुगर्भर ।

पूजा श्रीमिद निहार आनंद मन गरी ॥

मय लाफलोप प्रकाश केवलज्ञान जग्यो ।

यह जानसुगुणमनमान निन रम माहि पर्गो ॥२॥

ॐ ह्रीं एमामिद्वार श्रीमिदपरमेष्ठिने समारतापविनाशनाय चन्द
निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

मुक्ताफाकी उनहार अक्षत धोय धरे ।

अनय पद प्रापति जान पुण्य भंडार मरे ॥

जगमें सु पदारव सार ते मर दरमार ।

मो सम्यक्दर्शन सार इह गुण मन सार्व ॥३॥

ॐ ह्रीं एमामिद्वार श्रीमिदपरमेष्ठिनेऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान
निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

मुंदर सु गुलार अनूप फल अनेक कह ।

श्रीमिद सु पतत भूप रट्टिग पुण्य लह ॥

तहाँ वीर्य अनन्तो मार यह गुन मन यानौ ।

समारममुन्ते पार नारक प्रभु जानौ ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं एमामिद्वार श्रीमिदपरमेष्ठिने रामशरणविधिसनाय पुष्पम
निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

कैतो गोमा पक्वान, मोदक मरम नेने ।

पूजा श्रीसिद्ध महान भूख मिथा जु हने ॥

भलके सब एकहि बार जेयक है जितने ।

यह घृष्टमता गुणसार मिद्वनको तितने ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं एमोमिद्वार श्रीसिद्धपरमेष्ठिने सुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम्
निवर्षामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

दीपक की ज्योति जगाय, मिद्वनको पूजा ।

कर आरति मन्मुख जाय निरभय पद दृजो ॥

रहु घाटि न राधि प्रमाख गुल्लपु गुण राखौ ।

हम शीत नरावत आन, तुम गुण मुख भाखौ ॥ ६ ॥

ॐ ॥ एमोमिद्वार श्रीसिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीप
निर्वापामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

चर घृष्ट सु दशविध लाय, दस दिस गंध बरे ।

रस रम जरावत जाय मानौ नृत्य करै ॥

इक मिद्वमे सिद्ध अनत सत्ता सब पावै ।

यह अगगाहन गुण मत मिद्वनके गारै ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं एमोमिद्वार श्रीसिद्धपरमेष्ठिनेऽष्टकर्मदहनाय धूप निर्व-
पामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

ले फल उत्कृष्ट महान मिद्वनको पूजा ।

लहि मोक्ष परम शुभधान प्रभु सम नहि दूजा ॥

यह गुण राधाकर हीन, बाधा नाग भई ।

मुख अन्यायाध सुचीन, गिरमुंदर मु लई ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं एमोमिद्राण्य भामिद्वपरमेष्ठिने महामायात्मनामये फल
नियपामीति स्थाहा ॥ ८ ॥

जल फल भक्ति ज्ञान जल अरुणत कर जोरी ।

तुम मनियो तीनटयाल निनी है मोरी ॥

समाप्ति दृष्ट महान इनसे दूर करो ।

तुम मित्र महामुग्य दान भय भय दृष्टदरो ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं गमामिद्राण्य भामिद्वपरमेष्ठिने महामुग्यनामयेऽर्थ निय-
पामीति स्थाहा ॥ ९ ॥

— अथ जयमाला ॥ दोहा —

नमीं मिद्व परमात्मा, अद्भुत परम ग्माल ।

तिन गुण अगम अपार है, भयभर जयमाल ॥ १ ॥

— छन्द पदरी —

जय जय श्रीमिद्वनमो प्रणाम । जय शिखरुमागरके
मुधाम ॥ जय बलि बलि जात सुरेश जान । जय पूनत

तनमन हरष आन ॥ २ ॥ जय चायन गुण मय्यकर

लीन । जय खलज्ञान सुगुण नमीन ॥ जय लोफालोर

प्रकाशमान । जय केवन अनिशय हिये आन ॥ ३ ॥ जय

मय तन्त्र दरभ महान । सोइ दरमनगुण ताजो सुनान ॥

जय वीर्य अनन्तो है अपार । जामी पछतर दूजो न मार

॥ ४ ॥ जय सूत्रमता गुण हिय धार । मय ह्ये लखे एर

हि सु नार ॥ इर मिद्वमे मिद्व अनन्त जान । अपनी

अपनी मत्ता प्रमान ॥ ५ ॥ अग्राहन गुण अतिशय

मिनाल । तिनके षट् उदौ नमत भाल ॥ कल्यु घाटि न
 बाध कहै प्रमाण । मो अगुस्तलघु गुण घर महान ॥ ६ ॥
 जय बाधागहित मिरानमान, मोह अन्यासाध कथो बखान ।
 ए उतु गुण है मिहार सत । निहचै जिनर भारे अनत
 ॥७॥ मय मिद्वनके गुण कह गाय । इन गुणकर गोमित
 है जिनाय ॥ तिनको भजिनन मन बचन काय । पूजत
 उमुनिधि अति हरप लाय ॥८॥ मुरपति फणपति चरो
 महान । बलहरि प्रतिहर मनमय मुनान ॥ गणपति मुनि
 पति मिलि धरत ध्यान । जय मिद्व शिरोमणि जग
 प्रधान ॥ ९ ॥

— सोरठा —

ऐसे मिद्व महान, तिन गुण-महिमा अगम है ।
 सनन कसो बखान, तुच्छबुद्धि कपि लाल जू ॥१०॥
 ॐ ह्रीं एमोमिद्वान् भ्रातिद्वपरमेष्ठिन मर्वमुगप्राप्तये महार्घं नि० ।

— दाहा —

रगताकी यह वीनती मुनो मिद्व भगवान ।
 मोहि बुलायो थाप दिग यही अरज उर आन ॥
 ॐ इत्याशीर्षा । इति श्री मिद्वपूजा सम्पूर्ण ॐ

श्री जिनेद्रपूजा

— छप्पय —

मोहकर्म निन हरयो, करयो रागादिक नष्टित ।

द्वेष मय परिहरगो, जामि क्रोधहिं क्रिय भिष्ट ॥

मानमृदता हृदिय, दरिय माया दुखदायिन ।

लोभ लहरगनि गरिय, गरिय प्रगटी जू रमायिन ॥

केवल पद अग्रनि दृष्ट, मयसमष्ट - तारनतरन ।

प्रयकाल चरन उदत 'भविष्य' जयजिनद तुह पयसरन ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनाय । अत्र अग्रतर अग्रतर । सर्गोपद्र । इत्याद्याननम्

ॐ ह्रीं श्रीनिनेन्द्र । अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठ ठ । स्थापनम् ।

ॐ ह्रीं श्रीनिनेन्द्र । अत्र गम मन्निहिनो भय भय पयद्र इति सन्निधिकरण

नीर चीरमागरफो निर्मल पवित्र अति,

सुदर मुगस भरगो सुरप अनाइये ।

गगरी तरगनक स्वच्छ सुमनोच जल,

कचन फलग वग भरक मगाइये ॥

और ह निशुद्ध अत्रु आनिये उद्याह सेती,

जानिये गिरेक जिन चरन चढ़ाइये ।

भौदुर ममुद्रनल अजुनिको दीजे,

इहौ तीनलोक नायकी हजर ठहराइये ॥

ॐ ह्रीं श्रीनिनेन्द्राय जन्मचरामृत्युविनाशनाय जल नि स्वाहा ॥२॥

परम सुशीतल सुगाम भगपूर भरगो,

अनि ही पवित्र सन दूपन दहतु है ।

महा वनराजनक वृत्तन सुगन्ध करे,

सगतिक गुण यह निरद उहतु है ॥

बावन जु चदन सुपावन करन जग,
 चदै जिनचर्ण गुण ताहीतें लहतु है ।
 मोह दुखदाहके निवारिवेको महा हिम,
 चदनतें पूर्वी जिन चिस यों कहतु है ॥

ॐ ह्रीं श्रीनिद्राय ससागत्तापविनाशनाय ध्वन नि० न्याहा ॥३॥

शशिहीसी किराँ कैंधों, रूपाचलउर्ण कैंधों,
 मेरुवट किराँ कैंधों फटिक प्रमाने हैं ।
 दूधकेसे फैन कैंधों चिंतामणि रणु कैंधों,
 मुक्ताफल ऐन कैंधों, हीरा हेरि आने है ॥
 ऐसे अति उज्ज्वल हैं तटुल पवित्र पुत्र,
 पृथ्व जिनेश पाद पातक पराने हैं ।
 अन्ध गुण प्रापति प्रकाश तेज पुत्र होय,
 अन्ध निन दस अन्ध डूठते अचाने हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीनिनेद्राय अक्षयपद्प्राप्तये अक्षयान् नि० न्याहा ॥४॥

जगतके जीव जिन्हें जीतके गुमानी भयो,
 ऐसो कामदेव एक जोधा जो कहायो है ।
 ताके शर जानियत फलनिके वृन्द बहु,
 कंतही कमल कुन्द केरा सुहायो है ॥
 मालती सुगन्ध चारु रेलिकी अनेक जाति,
 चपक गुलाब जिनचरण चढ़ायो है

तेरी ही शरण जिन जोर न, रसाय याको,
सुमनमों पूने तोहि मोहि ऐसो भायो है ॥५॥

ॐ हा श्रीचन्द्राय कामबाणविध्वसनाय पुष्प नि० स्वाहा ॥५॥

परम पुनोत जान मेचनरु पेंज आन,
तिन्हें पुनि पहिचान जिनयोग्य जानिये ।
अन्न औ रिशुद्ध तोय ताको परगान होय,
कहिय नैवेद्य सोई शुद्ध देख आनिये ॥

पूजत जिनेन्द्रपाय पातक पराने जाय,
मोक्षलच्छि ठहराय सत्य यों बसानिये ।
छुषारो न दोष होय ज्ञानतनपोष होय,
परम सतोष होय ऐसी रिधी ठानिये ॥६॥

ॐ हा श्रीचिन्मित्राय छुषारोगनिनाशनाय नैवेद्य नि० स्वाहा ॥६॥

दीपक अनाये चहुँगनिमें न आवे फहूँ,
बतिमा उनाय कर्मवति न बनत है ।
घृतनी मनिग्धतामों मोहकी सनिग्ध जाय,
ज्योतिरें अगाय अगानोतिमें सनत है ।

आरती उतारतें आरत सर जाय दर,
पाय ढिग धरे पापपकृति हनत है ।
गीतरागद्वय जूकी सेर रीजे दोषकमों,
दीपक प्रताप शिरगामी यों मनत है ।

ॐ हा श्रीचिन्मित्राय मोहावमारनिनाशनाय दीप नि० स्वाहा ॥

परम पवित्र हेम आनिये अधिक प्रेम,
जाति धूपदान जिमि शुद्ध निपजाडकें ।
उद्धि जे मिशुद्ध बनी तेन पुज महाधनी,
मानो घरी रत्नमनी ऐसी छवि पाडकें ॥
तामैं कृष्णागरुडी जु धनिकाट सेर कीजे,
वहै कर्मशठनिके पुजगहि ताइकें ।
पूजिये जिनैन्द्र-पांय धूपकें निधान सेती,
तीनलोकमाहिं जो सुगम वाम छायेकें ॥८॥

ॐ ह्रीं श्रीनिनेन्द्राय अष्टममहनाय धूपं नि० स्वाहा ॥८॥

श्रीफल सुपारी सेर दाडिम उदाम नेर,
मीतावन मगतरा शुद्ध सदा फल है ।
मिही नामपानी श्री मिजोरा आम अम्रतसे,
नारंगी जैमीरी कर्णफल जे कमल है ।
ऐसे फल शुद्ध आनि पूजिये जिनद जान,
विहँलोरुमधि महा सुकृतरो थल है ।
फल सेती पूजे शुद्ध मोक्षफल प्राप्ति होय,
द्रव्य मात्र सेये सुखमपति अचल है ॥९॥

ॐ ह्रीं श्रीनिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फल नि० स्वाहा ॥९॥

जल मुमिशुद्ध आन चदन पवित्र जान,
सुमन सुगंध ठान अचल अनूप है ।

निरखि नवेद्यके विशेष मेद जान सवे.

दीपक सँगारि शुद्ध और गंध धूप है ॥

फलले विशेष भाय पूजिये जिनद पाय,

उसु मेद ठहराय अरथ स्वरूप है ।

परम फलक परु ठरिके भयो अटक,

सेवक जिनद 'मैया' होत शिवभूष है ॥१०॥

— दाहा —

शुचि करके निज अंगरो, पूजहु थीजिनपाय ।

दर्वित भागतविधि महित, करहु भक्ति मन लाय ।

ॐ ह्रीं श्रीनिनेद्राय अनन्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा ॥१०॥

ॐ अथ जयमाला ॐ

— बोहा —

थीजिनदेव प्रणामकर, परमपुरुष आराध ।

कहाँ सुगुण जयमालिका, पच करखरिषु साथ ।

— पदरिछन्द —

जय जय सु अनत चतुष्ट नाथ । जय जय प्रभु मोक्ष प्रसिद्ध
साथ ॥ जय जय तुम केवलवान भास । जय जय केवल
दर्शन प्रकाश ॥ १ ॥ जय जय तुम बल तु अनत जोर । जय
जय गुग्य जाम न पार ओर ॥ जय जय त्रिभुवनपति तुम
निनद । जय जय भवि कुमदनि पूर्ण चद ॥ ३ ॥ जय जय
तमनाशन प्रगट मान । जय जय जितहद्रिन तू प्रधान ॥

जय जय चारित्र सु यथाख्यात । जय जय अथनिशि
 नाशन प्रभात ॥ ४ ॥ जय जय तम मोह निवार घोर ।
 जय जय अरिजीतन परम धीर ॥ जय जय मनमथमर्दन
 मृगेश । जय जय जमजीननरो रसेश ॥ ५ ॥ जय जय
 चतुरानन हो प्रतप्त । जय जय जगजीवन सखल रत्न ॥
 जय जय तुम मोघरूपाय जीत । जय जय तुम मान
 हरघो अजीत ॥ ३ ॥ जय जय तुम मायाहरन मूर । जय
 जय तुम लोभनिवार मूर ॥ जय जय शत इद्रन वदनीरु ।
 जय जय अरि मरुल निन्दनीक ॥ ७ ॥ जय जय जिनपर
 देनाधिदेव । जय जय तिहुँपन मरि करत सेन ॥ जय जय
 तुम ध्यावहिं भनिक जीन । जय जय सुख पावहिं तैं मदीय ॥ ८ ॥

— चत्ता —

ते निजरसरत्ता तज परसत्ता, तुम मम निज ध्यावहिं षट्में ।
 ते शिरगति पाँन बहुरन अनै, बसैं मिनुमुखके तटमें ॥ ९ ॥
 ॐ ह्रीं श्रीचिनेन्द्राय महामुग्गप्राप्तये पूणार्घ्यं निर्मपामीति स्वाहा ।

ॐ इति ॐ

ॐ अथ परमात्माकी जयमाला लिख्यते ॐ

— दोहा —

परम देव परनामकर, परम सुगुरु आराधि ।
 परम मधर्म चितार चित्त, कहैं माल गुणसाधि ।

— चौपाई —

एकहि नम्र अमर प्रदश । गुण अनत चेतनता भेश ॥
 शक्ति अनत लस बिह माहि । जा मम और दूसरो
 नाहि ॥२॥ अर्जन तानरूप व्यवहार । निश्चय सिद्ध समान
 निहार ॥ नहि रगता नहि करि है कोय । मदा सर्वदा अति
 चल नाय ॥३॥ जोरालोक ज्ञान जो धरे । रगहुँ न मरण
 जनम अमरतरे ॥ सुख अनतमय जाम सुभाय । निर्मोही
 नहु क्रीने राय ॥४॥ क्रोध मान माया नहि पाम । महज
 जहा लोमको नाम ॥ गुणधानरु मारगना नाहि । केवल
 थापु आपुही माहि ॥५॥ परका परम रच नहि जहो । शुद्ध
 मरूप कहाये तहो ॥ अग्निनाशी अग्निल अग्निकार । सो
 परमात्म है निरधार ॥६॥

— दोहा —

यह निश्चय परमात्मा, ताको शुद्ध विचार ।
 जामे पर परस नही, “भैया” ताहि निहार ॥७॥

❀ इति परमात्माश्री जयमाला ❀

निर्वाणक्षेत्र पूजा

— मारठा —

परम पूज्य चौबीसे, जिहै जिहै धानरु शिव गये ।
 मिट्ठभूमि निशदीम, मनचतन पूजा करौ ॥१॥

ॐ ह्रीं नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥

अर्थ १।

ॐ ह्रीं पद्मविष्णवे नमः ॥

स्वच्छन्दम् ।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशत्यक्षं कुरुते ॥ स्वस्त्यस्तु ।

भदन मवत वपट्ट ।

2. Defect

शुचि क्षीरदधि मम मंत्रं सिद्धं ।
ससारपापहतात्मकं । अष्टमार्गं भगं ।

ससारपारुताग्व्यानी
सम्मेदगद गिन्या

सम्भेदगद गिरिनाथ के किशोर् कर्ता ॥
पूजा मन्दा यौगीय किशोर् किशोर् कर्ता ॥

पूना मंदा चौरास किन्नेने भूमि निवामको ॥ १ ॥

॥ १ ॥
॥ २ ॥

मेशर स्फुर सुगव वं नृ शील विमर्ग ।

भयतापको मत्ताप मैय, हनु शीतल पिम्परी ।
ॐ ह्रीं वसुधैव कुटुम्बकम् ।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतिमर्षं ॥म०॥२॥
मोतीममान ॥म०॥२॥

मोतीममान असुदन्तु श्वनु आनंदपरि तर्गं ।
श्रौगुन हरौ गुन परास्मत्

ॐ ह्रीं शत्रुघ्नशान्तिनामैकान्तं । स० ।

शुभ फूलराम मुक्तामाला ॥३॥

शुभ फलराम मुकासवापा, ५५ सर मनकी हरीं

ॐ ह्रीं शतुभिः शान्तिं यन्त्रिंशत् मिनती करौ । स० १४

नेत्रन अनेक प्रकार झुप नि० स्वाहा ॥

नरन अनस प्रवरि मय परिद्वार

यह भूखदूख टार प्रभुजी, जोरकर गिनती करी। स०।५।

ॐ ह्रीं श्राचतुर्विंशतितीर्थं करनिवाणक्षेत्रेभ्यो नैवेद्य नि० स्वाहा ॥५॥

दीपकप्रकाश उज्ज्वल उज्ज्वल, तिमिरसेती नहिं डरी।

मशयनिमोहनिमग्गतमहर, जोरकर गिनती करी। स०।६।

ॐ ह्रीं श्राचतुर्विंशतितीर्थं करनिवाणक्षेत्रेभ्यो दाप नि० स्वाहा ॥६॥

शुभरूप परम अनूप पावन, मात्रपावन आचरी।

मय करमपुंज जलाय दीज्यो, जोरकर गिनती करी। स०।७।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थं करनिवाणक्षेत्रेभ्यो धूप नि० स्वाहा ॥७॥

बहु फल मेंगाय चढ़ाय उत्तम, चारगतिसो निरचरी।

निहर्ष मुक्तिफल ददु मोरो, जोरकर गिनती करी। स०।८।

ॐ ह्रीं श्राचतुर्विंशतितीर्थं करनिवाणक्षेत्रेभ्यो फल नि० स्वाहा ॥८॥

जल गंध अच्छत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरीं।

‘दानत’करो निग्भय लगतमो, जोरकर गिनती करी। स०।९।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थं करनिवाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ्य नि० स्वाहा ॥९॥

ॐ प्रथम जयमाला ॐ

— मोरटा —

श्रीगौरीसजिनेश, गिरिकैलाशादिक नमो।

तीरथ महाप्रदेश, महापुरुष निग्वाणतें ॥१॥

— चौपाई १६ मात्रा —

नमो श्रुपम कैलासपहार, नैमिनाथ गिरिनार निहार।

मासुपूज्य चपापुर चंदौ, सनमति पात्रापुर अभिनंदौ ॥२॥
 चंदौ अजित अजितपददाता, उंदौ समव भगदुसघाता ।
 चंदौ अभिनन्दन गणनायक, चंदौ सुमति सुमतिके दायक ॥३॥
 चंदौ पदमप्रकृति पदमाकर, चंदौ सुवास आशपासाहर ।
 चंदौ चन्द्रप्रम प्रभुचन्दा, उंदौ सुगिधि सुगिधिनिधि रुदा ॥४॥
 चंदौ भीतल अघतपशीतल, चंदौ त्रियास त्रियाम महीतल ।
 चंदौ गिमल गिमल उपयोगी, चंदौ अनत अनंत सुख भोगी ॥५॥
 चंदौ धर्म धर्मनिस्तारा, उंदौ शांति शांतिमनधारा ।
 उंदौ कुन्धु कुन्धु-रखनाल, उंदौ अर अरिहर गुणमाल ॥६॥
 चंदौ मल्लि काममलचूरन, चंदौ मुनिमुत्रत व्रतपूरन ।
 चंदौ नमि जिन नमित मुरासुर, चंदौ पाम पाम भ्रमजगहर
 भीमों सिद्धभूमि जा ऊपर, शिरार सम्मेदमहागिरि भूपर ।
 एक बार चंदे जो कोई, ताहि नरकपशुगति नहि होई ॥७॥
 नरपति नृप सुरशक्र कहावे, तिहुँजग भोग भोगि शिव पावै ।
 विघनविनाशन भगलकारी, गुणविलास चंदौ भगतारी ॥८॥

— घटा —

जो तीरथ जायै पाप मिटाव, ध्यायै गायै भगति कर ।
 तामे जस कहिये मपति लहिये, गिरिक गुणको दुध उचरै ॥१०॥
 ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंश ततीर्थकरनिर्वाणचेत्रभ्य पूणार्घि नि० स्वाहा ।

ॐ इति निर्वाणचेत्र पूजा समाप्त ॐ

अथ श्रीचन्द्रप्रभजिनपूजा

— अद्विज —

शुभ शतिसय चानीस प्रातिहारिज अधिकाही,
अनन्तचतुष्टयनुक्त दोष अष्टादस नाही ।
आह्वानन निशि करूँ नाथ सिर सुघरि मनही,
लोक मोहतमहरनटीप अदभुत समि जिनही ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र । अत्र अघतर अघतर । सर्वोपद्र ।
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र । अत्र निष्ठ तिष्ठ । ठ ठ ।
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र । अत्र मम मग्निहितो भव भव । वषट् ।

— गीता छ —

हिममयल निरगत तोय सीतल मधुर सुरगंधकी परं
भरि भृङ्ग जिनर चरण आर्गे धार दे भयमृति हरे ।
श्रीचन्द्रप्रभ दुतिचदको पदकमल नयनमि लागि रह्यो
आतकदाह निवारि मेरी, अगज सुनि में दुर सख्यो ॥ १ ॥
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जमनरामसुविनाशनाय जल नि
भयताप दाह दहत मोरू एक छिने न विमारही ।
धनमार मलय धरी जिनेसुर शजिहं दुग्गटागही ॥ श्री० ॥ २ ॥
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मसारतापविनाशनाय चण्डन नि
ममार उदधि अपार तरन मक्ति प्रभु तुमरी मही ।

शुभ मालिपुञ्ज जिनाग्रकरि हैं लहै वसुगुण वसुमही॥श्री०॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभञ्जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षत नि० स्थाहा ।

अति सुभट मार प्रचण्ड सरतें इने सुख नर पसु मर ।

शुभ कुतुमन्यौ पद पूजिहू जिन हरो मनमय दुख श्रै॥श्री०॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभञ्जिनेन्द्राय कामनाख विष्वसनाय पुष्प नि० ।

यह छुधा मोक्ष दहै नितही, नैक सुख नहि पावही ।

चरु मिलतें पद पूजिहू जिन छुधारोग नमारही॥श्री०॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभञ्जिनेन्द्राय छुधारोगविनाशनाय नीरशम् नि० ।

अति मोहतम मम ज्ञान डास्यो, स्वपर पद नहि बेरही ।

तुम चरण पूज रत्न दीपक, करो तमको छेर ही॥श्री०॥६

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभञ्जिनेन्द्राय माहाधनार विनाशनाय दीप नि० ।

शुभ मलय अगर सुगम सारम, वरी मलि गहु आरही ।

जिन चरण आगे रूप गेये, कर्म वसु जरि जावही॥श्री०॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभञ्जिनेन्द्राय अष्टरुर्मदहनाय धूप नि० ।

शुभ मोखमग अतराय गोक्यौ, मोहि निरगल जानिपैं ।

जिन मोक्ष दौ तर चरण पूज, फल मनोहर आनिकै॥श्री०॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभञ्जिनेन्द्राय माक्षफलप्राप्तये फल नि० ।

जल गंध तदुल पुष्प चरु ले, दीप धूप फलोष हा ।

कन धाल अर्घ्य ननाय सिरमुख, "रामचन्द" लहै मही॥श्री०॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभञ्जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्य निर्वपामीति स्था०

❀ पंचकल्याणक अर्घ्य ❀

— दोहा —

चैत असित पचमि चये, वैजयतते इद ।

उदर सुललना अवतरे, जजू त्रिविध गुणद्वंद ॥ १ ॥

❀ ह्रीं चैत्रकृष्णपंचम्या गर्भमंगलमडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय
अर्घ्यं निर्वपामीति स्याद्वा ॥ १ ॥

अमित पोह एकादशी, जनमे जुन त्रय ज्ञान ।

वामघ उत्तरकरि जजे, जजू जनम कल्याण ॥ २ ॥

❀ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्या जन्मकल्याणसहिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय
अर्घ्यं निर्वपामीति स्याद्वा ॥ २ ॥

चङ्गपुरी माम्राज्य तनि कृष्ण इकादशी पोह ।

धरयो उग्र तप वनविषं जजू नाशहित द्रोह ॥ ३ ॥

❀ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्या तप कल्याणसहिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय
अर्घ्यं निर्वपामीति ॥

फाल्गुण सप्तमि कृष्ण ही घाति हने लहि ज्ञान ।

मघातम बोधे घने जजहु ज्ञानकल्याण ॥ ४ ॥

❀ ह्रीं फाल्गुणकृष्णसप्तम्या ज्ञानकल्याणसहिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय
अर्घ्यं निर्वपामीति ॥

मुक्ल फाल्गुण सप्तमी, शेष कर्म हनि मोर ।

गये ममेदाचल थकी, जजू गुणनके कोर ॥ ५ ॥

❀ ह्रीं फाल्गुणशुक्लसप्तम्या मोक्षकल्याणसहिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय
अर्घ्यं निर्वपामीति ॥

❀ अथ जयमात्ता ❀

— दोहा —

रसुचिन वसु कर्म हानिके, वसे घरा रसु जाय ।

हरो हमारे कर्म वसु, नमू अंग वसु नाय ॥१॥

(चाल—अहो जगत गुरु न्येसी)

‘अहो’ चन्द्रदुतिनाथ ज्ञायक अतरजामी ।

सकललोक तिरकाल लखे जुगपत गुणधामी ॥

जे चर अचर अपार अनागततीत उपायो ।

लोभालोक निहारि लखे कछु नाहि छिपायो । २।

भाख्या ज्यौ करमाहि मिधारथ वारि निहारै ।

अथमा अगुरी रेख लखे फर जुत इकनारे ॥

एसौ ज्ञान अपार और रुहँ नाहिं सुन्यो हैं ।

दरमनको परताप तुह जिन माहि मन्यो है ॥३॥

मैं दुख पाये घोर चतुग्गति माहिं घनेरे ।

तुमते छाने नाहिं कहा भाखू जिन मेरे ॥

सब गिशुकी पै नात गयात पित-जननी जानै ।

भाग्या जिन नहिं देहितोय पय धानन राने ॥४॥

देखो करम अपार सुभट जड, चेतन नाहिं ।

चेतन होमरि रक, चोर निम बायत जाई ॥

मातो अमानि मझारि नरक दारुण दुख देही ।

मोड मरने नाहि धरम गिन निहचै ये ही ॥ ५ ॥

तिरजचाति मय गार मह गिन मजम धारे ।

भूख प्यास लदि मार थर द पीठ मकारे ॥

मारत मय मय वाय जाल मधि उटन परेरु ।

पररि रमाई लेय मरनि नाहि निहि वेरु ॥ ६ ॥

मानुषगति कुल नीच गिम्ल इन्द्री चरि नाहीं ।

भूपति आगे दारि तुम्ह काय धरि जाहीं ॥

यदि निशि चौकी देह मर मिय धाम महे ही ।

गिन दग्गन दुय येड घने चिरकाल लहे ही ॥ ७ ॥

मोड पुन्यवमाय गाल तपते सुर थायो ।

दस्ती घोटक पैल महिष असगरी थायो ॥

परन आन तु थाय तर माला मुरमानी ।

आरतिंत तनि गान कुसुममय पाय अनानी ॥ ८ ॥

पेस दुय अपार सह विरता नहि पाई ।

प्रोधमान छल लोभ वकी दिन दिन अधिकाई ॥

तुम करुणानिधि लेखि मरनि आयो ततकारी ।

दरगो कर निरवार अहो जगपति जगतारी ॥ ९ ॥

जगनायक जगन्नीम जगोन्म दष्टि निहारो ।

माझू मय गिगारि मगे म्हुत निग्यारो ॥

या म्हुमगति पाय मह दुख औरन हती ।

यह निहचै करि जानि लगे तुम वानी सेती ॥ १० ॥

करम विचारे कौन भूलि मेरी अधिकाई ।

अगनि मह घनघान लोहरी सगति पार्द ॥

ऐसे या वपुमग मह दुर औरन सेती ।

धनि धानी तुम दर मुनी गुफके मुख एती ॥११॥

तुम अनुकम्प पमाय, तज्ज दुर ध्यान रिझारो ।

ररनादिकन भिन्न, लखू चिद्रूप हमारो ॥

जोतिम्यरूपी दग, वमें याही घट माहीं ।

दृढ़ कौन सधान, लख तुम ध्यान उपाहीं ॥१२॥

नेरे ध्यान प्रताप, करम जरि जाय अनता ।

‘रामचंद’ करि ध्यान, लहे मुग नर गुणरता ॥

इहमन मुख अपार, और भन सुगणद पारि ।

अनुरूपते निरान जिनकेमुर वर करि गारि ॥१३॥

— दोहा —

यमुद्रव्य ले मुघ भागत, जन् तिहार पाय ।

देहु देन शिर मुक्त अगे, अहोचद दुति गाय ॥१४॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रमानेन्द्राय महार्घं निर्जपाभीति स्वाहा ।

ॐ इति श्रीचन्द्रप्रभपूजा समाप्त ॐ

श्री वासुपूज्य जिनपूजा

— छंद रूपकवित्त —

श्रीमतवासुपूज्य जिनरूपद, पूजनहत हिये उमगाय ।

भाषों मनचतन शुचि करिकै, जिनकी पाटलदन्या माय ॥

महिष नि, पा १५ गजोहर, लाल रत्न तन समता दाय ।
मो उल्लानिप्रिकृषाष्टकरि, तिष्ठदु सुपरितिष्ठ यहँ आय ॥१॥

ॐ हा २ वासुपूयनिन्द्र । अत्र अरतर अरतर । सरोपद् ।
ॐ हा ३ वासुपूयजनद्र । अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठ ठ ।
ॐ हा ४ वासुपूयजनद्र । अत्र मम सन्निहितो भर भय । धपद् ।

— प्रष्टक —

दन्द जोगीरामा । आचलीवध “निनपद पूर्णो लरलाइ”

गङ्गानल भरि कनक कुम्भमें, आसुर गध मिलाई ।
कर्मफलक विनाशन कारन, धार देत हम्पाई ॥जिन०॥
वासुपूज्य उमुपुजतनुजपद, बामर सेगत आई ।
बाल ब्रह्मचारी लगि जिनको, शिरतिथ मनमुख धाई ॥निन०॥
ॐ ह्रीं आवासुपूयनिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल नि० ।१॥
कृष्णागरु मलपागिर चन्दन, केशरसग घसाई ।
भर आताप विनाशन कारन, पूजोपद चित लाई ॥वासु०॥
ॐ ॥ श्रीवासुपूयनिनेन्द्राय ससारतापविनाशनाय चन्दन नि० ।२॥
देवजीर सुगदाम शुद्ध वर, सुमरनवार भराई ।
पुजधरत तुम चरनन आगै, तुरित अस्त्रपद पाई ॥वासु०॥
ॐ ह्रीं आवासुपूयनिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि० ॥३॥
पारिजात सतानकल्पतरु, जनित सुमन चहु लाई ।
मीनरुतुमदमननकारन, तुम पदपद्म चढ़ाई ॥वासु०॥
ॐ हा आवासुपूयनिनेन्द्राय कामपाणविघ्नमनाय पुष्प नि० ॥४॥

नव्यगन्धश्चादिक रमयति, नेत्रं तुरित उपाई ।
 क्षुधारोग निरमारनकाग्न, तुम्ह ज्ञो शिखरि ॥ रासु० ॥
 ॐ ह्रीं श्रीरामपूज्यनिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् नि० ॥२॥
 दीपकजोत उदोत होत पर, दशदिशमें छवि डारि ।
 निमिरमोहनार्णव तुमको लखि, जनों चरन हरपाई ॥ रासु० ॥
 ॐ ह्रीं श्रीरामपूज्यनिनेन्द्राय माहाधकारविनाशनाय दीप नि० ॥३॥
 दशविध गधमनोहर लेखर, वातहोत्रमें डारि ।
 अष्ट रम ये दुष्ट जगत्तु हैं, धूम गु धूम उदाई ॥ रासु० ॥
 ॐ ह्रीं श्रीरामपूज्यनिनेन्द्राय अष्टरमदहनाय धूप नि० ॥४॥
 सुरम सुपद्मसुपात्रन फल लै, कचनधार मराई ।
 मोच्छ महाफलदायक लग्न प्रभु, भेंट धरों गुनमाई ॥ रासु० ॥
 ॐ ह्रीं श्रीरामपूज्यनिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फल नि० ॥५॥
 जलफल दख मिलाय गाय गुन, श्रोतों अग नमाई ।
 गिरपदराज हंत है श्रीपति ! निकट धरो यह लाई ॥ रासु० ॥
 ॐ ह्रीं श्रीरामपूज्यनिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्य नि० ॥६॥

❀ पञ्चरुल्याणक ❀

— छन्द पाहता (मात्रा १५) —

कलि छट्ठ थमाइ सुहायो । गरमागम मंगल पायो ॥

दशमें दिवसे इत आये । शवड्ड जने मिर नाये ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीरामपूज्यनिनेन्द्राय गर्भमंगलमण्डिताय श्रीरामपूज्य
 निनेन्द्राय अर्घ्य नि०

कलि चौदश फागुन जानो । जनमें जगदीश मदानो ॥

- १३ मर जने तर जाई । हम पूजत है चितलोई ॥ २ ॥
- ॐ हा फाल्गुनकृष्णचतुर्थ्या जन्ममगलमण्डिताय श्रीवासुपूज्य
जिनेन्द्राय अर्घ्य नि०
- तिथि चादम फाल्गुन श्यामा । धरियो तपश्रीअमिरामा ॥
- २४ पुन सुन्दरक पय पायो । हम पूजत अतिसुख थायो ॥ ३ ॥
- ॐ हा फाल्गुनकृष्णचतुर्थ्या तपोमङ्गलमण्डिताय श्रीवासुपूज्य
जिनेन्द्राय अर्घ्य नि०
- यदि भादव दोइज सोहै । लहि केवल आतम जो है ॥
- अनअत गुनाकर स्वामी । नित बन्दों त्रिभुवन नामी ॥ ४ ॥
- ॐ ही भाद्रपदकृष्णद्वितीयाया वेशलधानमण्डिताय श्रीवासुपूज्य
जिनेन्द्राय अर्घ्य नि०
- मित भादव चौदशि लीनों । निरवान सु धार प्ररीनों ॥
- पुर चंपाधानरसेती । हम पूजत निजहित हेती ॥ ५ ॥
- ॐ ही भाद्रपदशुक्लचतुर्थ्या मोक्षमगलमण्डिताय श्रीवासुपूज्य
जिनेन्द्राय अर्घ्य नि०

❀ अथ जयमाला ❀

— दोहा —

चपापुरमें पच वर, कन्याएक तुम पाय ।

सत्तर धनु तन शोभनो, जै जज्ज जिनराय ॥ १ ॥

— छन्द मोतियदाम (वर्ण १०) —

महासुखमागर आगर ज्ञान, अनतसुखामृतधुक्त महान ।
महाफलमहित सुदितकाम, रमाशिवमग सदा विसराम

॥ २ ॥ मुनिंद फनिंद सनिंद नरिंद, मुनिंद जर्वे नित
पादरनिंद ॥ प्रभु तुम अन्तरभाष प्रिराग । सुमालहिंते त्रत-
शीलमों राग ॥ ३ ॥ कियो नहिं राज उदाससरूप ।
सुभाषन भाषत आतमरूप ॥ अनित्य शरीर प्रपच समस्त ।
चिदात्म नित्य सुराश्रित वस्त ॥ ४ ॥ अशर्न नहीं फोड
शर्न सहाय । जहा जिय भोगत कर्मविषाय ॥ निजातमकं
परमेशुर शर्न । नहीं इनके विन आपदहर्न ॥ ५ ॥ जगत्त
जथा जलपुद्गुद येत । मदा जिय एक लहै फलमेव ॥
अनेक प्रकार धरी यह देह । भमें भरकानन आन न नेह
॥ ६ ॥ अपावन मान कुघात भरोष । चिदात्म शुद्धसुभाव
धरीय ॥ धरै इनमौ जब नेह तवेत । सुआवत कर्म तरै
तसुमेव ॥ ७ ॥ जवै तनभोगजगत्तउदास । धरै तत्र सत्र
निर्जरआम ॥ करै जब कर्मक्लङ्क निनाश । धरै तत्र मोक्ष
महासुखराग ॥ ८ ॥ तथा यह लोक नराकृत नित्त ।
मिलोकियते पटद्रव्यत्रिचित्त ॥ सुआतमजानन बोधनिहीन ।
धरै किन तत्त्वप्रतीत प्ररीन ॥ ९ ॥ जिनागमजानरु सजम-
भाष । सवै निजज्ञान विना विरसाय ॥ सुदुर्लभ द्रव्य सुचेत
सुकाल । सुभाष मरै जिहते शिखहाल ॥ १० ॥ लयो सत्र
जोग सुपुन्य वणाय । कहो किमि ढीजिय ताहि गँवाय ॥
विचारत यों लगकातिक आय । नमें पदपकज पुष्प चढ़ाय
॥ ११ ॥ कयो प्रभु धन्य कियो सुनिचार । प्रबोधि ॥ येम

१८१ गुण- १ । २ मधर्मतनों' हरि आये । रन्यो
जोयती जोय २५ जनाय ॥ १२ ॥ धरि तव पाय सुखे-
२ ११३ । १८१ २ २५ सुमन्य मयोध ॥ लियो कि
५१-७५ २५ १८१ १८१ नित भक्त मोई सुगयाश ॥ १३ ॥

— उत्ताद —

नित नानन्द, पापनिन्द, रामपूज्य प्रतक्षपती ।
भरमरुतखाटन, आनन्दमटित, जै जै जै जैरुत जती ॥ १४ ॥
— हा गवामुपूज्यनि द्राव पूर्णोर्ध्व निरपामीति स्थाहा ॥ १५ ॥

— मारठा छंद —

वामपूज्य सार, अर्पा दरवनिनि । मारमों ।
सो पारि सुउमार, भुक्तिमुक्तिरो जो परम ॥ १५ ॥

इवासीर्ध्व पुष्पाश्रिति तिपे
ॐ इति श्रीगामुपूज्य निमज्जना समाप्त ॐ

अथ शातिपाठ भाषा

— चौपाइ (१६ मोरा) —

शातिनाथ सुख शशि उनहारी, शीलगुणप्रतमयमधारी ॥
लखन एकमो आठ मिरानि, निरगतनेयन कमलदल लाजै ॥ १ ॥
पचम, चरुवर्तिपदधारी, मोलम तीव्रर सुखकारो ॥
इद्रनरेन्द्रपूज्य निननायक, नमा शातिद्वि शातिविधायक ॥ २ ॥
निय मिटप पदुपनरी वरपा, दुदुमि आमन घाणी मरमा ॥

सौधमरगमा टट्ट ।

छत्र चमर भामडल भारी, ये तुम प्रातिहार्य मनहारी ॥३॥
 गाति जिनेश शातिसुखदाई, जगतपूज्य पूजा शिरनाई ॥
 परम गाति दीजें हम मबको, पढ़ तिन्हें, पुनिचारसघरो ॥४॥

— वसततिलम —

पूजें जिन्हें मुकुट हार किरीट लाकें ।
 इन्द्रादिदेव अरु पूज्य पदान्ज आकें ॥
 सो शातिनाथ वर वशजगत्प्रदीप ।
 मेरे लिये करहिं गाति मदा अनूप ॥५॥

— इन्द्रवज्रा —

मपूजकोंको प्रतिपालकोंको, यतीनको औ यतिनायकांको,
 राजा प्रना गष्ट सुदेशको ले, कीने सुखी हे जिन शातिको डे ॥६॥

— सगंधरा —

होवै मारी प्रनाको मुख, बलपुत हो धर्मधारी नरेणा ।
 होवै रपा ममैषे तिलभर न रहै व्याधियोंका अँदेशा ॥
 होवै चोरी न जारी सुमय वरतै, हो न दुष्काल भारी ।
 मारे ही देण वाँ जिनर वृषको जो मदा सौग्यकारी ॥७॥

— दोहा —

घातिकर्म जिन नाशकरि, पायो केननराज ।
 शाति करो सन जगतमें, वृषमादिक जिनराज ॥

— मदाध्वता —

गात्रोंका हो पठन सुखदा, लाभ सत्संगतीका ।
 मदृत्तोंका सुजम कहके, दोष ठाँकु सभीका ॥

येन प्यत्र तत्र द्वितक, आपसौ रूप ध्याऊ ।
ताली सऊँ चरण निनक, मोन जौली न पाउ ॥

— आर्या —

तरपद सर शिम मम हिय तेर पुनीत चरण म ।
तरली लान ३ , प्रभु जगली पाया न मुक्तिपद मेने ॥
अक्षय्य मारास दूषित जो मनु कहा गया मुक्से ।
नमा करा प्रभु मो सर स्नानरिपुनि छुडाउ मरदुग्से ॥
ह जगप्रभु जिनेउर, पाउ तर चरण शरण नलिहारी ।
मरणममावि, सुदुर्लभ, समोरा क्षय सुरोध सुरकारी ॥

(परिपुपाञ्चलि छिपेत)

❀ अथ विमर्जन पाठ ❀

— दाहा —

निन जान बा जानक, रही टूट जो कोय ।
तुम प्रसातै परमगुरु, मो मर पूरन होय ॥ १ ॥
पूजनविधि जान्यो नहीं, नहि जायो आह्वान ।
और विमर्जन हू नहीं, चमा कगे भगवान ॥ २ ॥
मनहीन धनदान हूँ, कियाहीन निनदव ।
क्षमा करहु राखहु मुझे, दहु चरणसी सेव ॥ ३ ॥
आय जो जो देवगन, पूजे भक्तिप्रमान ।
सो थर जायहु कृपासर, अपने अपने थान ॥ ४ ॥

— (१) गग काफ़ी ::—

प्रभूपै यह चरदान सुपाऊ,
फिर जगसीचरीचनहि आउ टेर। •

जल गधाधन पुष सुमोदरु,
टीप धूप फल सुन्दर लगाऊँ ।

आनंदजनरु कनरुभाजन वरि,
अर्थ अनर्थ बनाय चढाऊँ । प्र० ॥१॥

आगमके अम्यासमाहि पुनि,
चित पत्राग्र सदैर लगाऊँ ।

मंतनरी मगति तजिकै मैं,
अत कहूँ इस छिन नहि जाऊँ । प्र० ॥२॥

दोषवादमें मौन रहूँ फिर,
पुण्यपुस्तगुन निगिदिन गाऊँ ।

मिष्ट स्पष्ट मगहीमों भाषी,
बीतराग निज भाव उढाऊँ ॥ प्र० ॥३॥

बाहिजटटि छेचके अन्तर,
परमानन्द स्वरूप लखाऊँ ।

भागचन्द शिखराग्र, न तौलौ,
तौलौ तुम चरानुज धाऊँ ॥ प्र० ॥४॥

मर्मज्ञ-स्तुति

— समस्ततिलक —

अधुर एक नहीं मोह 'तणो रह्यो ज्या,
अज्ञान भर 'वली मस्मरूपे 'धयो ज्या,
आनद, ज्ञान निजगीर्य अनन्त 'छे ज्या,
त्या स्थान मागु—जिनना चरणबुजोमा ।

अर्थ—जहा मोहका एक अधुर नहीं रहा, जहा
आनाश जलकर मस्म हुआ, जहा अनन्त आनद, ज्ञान,
गीर्य है, वहा—जिनेन्द्रके चरणकमलामें स्थान मांगता हूँ ।

'जे आभामा जगत 'आ परमाणुतुल्य,
'ते अनलीन नभतु 'जहीं पूर्ण ज्ञान,
'सो द्रव्यना युगपदे त्रण काल जाणे,
ते नाथने नमन हो मुँज नम्र भावे ।

अर्थ—जिम प्रकाशम यह जगत परमाणु तुल्य है, उम
अनताकाशम जिसको पूर्ण ज्ञान है, सब द्रव्योंको युगपद
त्रिंशत् जानता है, ऐसे उम भगवानको मेरा नम्र भावसे
नमस्कार हो ।

दैवी 'ममोत्तरणमा नहिं राग किंचित्,
धूलि मलिन पर 'ज्या नहि द्वेष किंचित्,

१ नहीं, २ का, ३ जलकर, ४ हुआ, ५ है । ६ जिस,
७ यह, ८ उस, ९ जहापर (जिसको) १० मय, ११ मेरा,
हमारा । १२ में, १३ जहा ।

धूलि समोसरण केवल ज्ञेय 'जेमा,
ते ज्ञानने नमन हो जिनजी ! 'अमारा ।

अर्थ—देव निमित्त समवशरणमें किंचित् राग नहीं है, कमाच्छादित पर जहा किंचित् द्वेष नहीं है, किन्तु जिनमें मात्र ज्ञेय (ज्ञानके विषय) हैं ऐसे उम ज्ञान को हे जिनेन्द्रदय ! हमारा नमस्कार हो ।

— शिखरिणी —

मले 'सौ इन्द्रोना तुज चरण मा शिर नमता,
भले इन्द्राणी ना रतनमय स्वस्तिक बनता,
नधी '७ ज्ञेयोमा 'तुज परिणति सन्मुख जरा,
स्वरूपे डूबेला, नमन 'तुजने ओ जिनधरा !

अर्थ—चाह तुम्हारे चरणों में सौ इन्द्रोंके मस्तिष्क नमते हों, चाहे इन्द्राणीका रत्नमय स्वस्तिक बनता हो, किन्तु तुम्हारी इन ज्ञेयोंकी ओर थोड़ी भी परिणति नहीं है, स्वरूपावस्थित हे जिनेन्द्र ! तुम्हें नमस्कार है ।

— वसन्ततिलका —

जगना श्रगाध तिमरे प्रभु ! सूर्य तू छे,
अज्ञान अध जगनु प्रभु ! नेत्र तू छे,
मयसागरे पतितनु प्रभु ! नाथ तू छे,
माता, पिता, गुरु, जिनेश्वर ! सर्व तू छे ।

१ जिसम । २ हमारा । ३ सौ, शत । ४ इन । ५ तेरी तुम्हारा । ६ तुम्हें, तुम्हें, तुम्हको ।

अर्थ—१। नगक गाढ़ अधिकारमें तृप्त्य है, प्रभु !
अनगात्र जगत् २ नेत्र है, प्रभु ! मरमागरमें पतिताके
लिये न सौ ३, माता, पिता, गुरु आदि सब, जिनेश्वर
न है ।

तांरुको जगन्मा जयवन वर्तो,
ऊँकारनाद जिननो जयवत्त वर्तो,
जिनना समोसरण सौ जयवन वर्तो
ने तीर्थवारजगमा जयवन वर्तो ।

अर्थ—जगतके तीर्थवर जयवन्ते रह, जिनेन्द्रका
आकारनाद (ओंकारध्वनि) जयवन्त रह, जिनेन्द्रके
समोसरण जयवत्त रह, और जगतमें 'जिनधर्म' जयवन्त
रह ।

— (अण्डुप) —

समोसरण जिनेश्वर नु शास्त्रमा बहु^१ वर्णव्यु,
परन्तु^२ न मलार्णयनु, बिन्दुमात्र^३ तर्ही कस्य ।

अर्थ—जिनेश्वर के समवशरण का शास्त्रों में बहुत
वर्णन किया है, परन्तु इस (समवशरणरूप) महासागर
का बिन्दु मात्र बड़ा (शास्त्रों में) कहा है ।

१ सब । २ चिनवर्म (जैनमार्ग) । ३ वर्णित किया है ।
४ इम । ५ बड़ा ।

विना 'जोये न समजाये, समोसर्ण जिनेशनु,
भरते भाग्य न आ काले, महा भाग्य विदेहीन।

अर्थ—जिनेन्द्र का समवशरण बिना देखे ममभ्रमे
नहीं आसक्तता, इस कालमें भरत क्षेत्रमें कोई भाग्यवान नहीं
है, भाग्यशाली तो विदेह क्षेत्र वासी हैं।

— (वसतविलसा) —

जिनना समोसरणनु अहीं भाग्य छे ना,
दिव्यध्वनि अवणनु पण भाग्य छे ना,
तोये सीमधर अने रीरना ध्वनिना,
प 'हवा सुणाय मधुरा 'हनु आगमोमां।

अर्थ—जिनेन्द्र के समवशरण भी भाग्यसे यहा नहीं
है, दिव्यध्वनि सुननेका भी भाग्य नहीं है, तो भी सीमधर
और रीर जिन की धाणी की प्रतिध्वनि शास्त्रोंमें सुनते हैं।

१ देखे। २ प्रतिध्वनि। ३ अब भी।



प्रकरण

दौलत विलास

— २६ —

ह मन तग को फुट्य यह, 'करन'विषयमें धारै है ॥ह०॥८॥
 इनहाके वश नू अनादित निजस्वरूप न लखारै है ।
 परावीन छिन छीन ममाकुस, दुर्गति विपति चर्यार्य है ॥ह०॥९॥
 करस विषयमें फारन 'गारन', 'गरत परत दुर' पार्य है ।
 रमनाइन्द्रीवश रूप जलम फटक कठ छिदायै है ॥ह०॥१०॥
 गधलोल पक्षजमुद्रितर्म, अलि निज प्राण सपायै है ।
 नयनविषयवश दीपशिखामें, जग पतग जरारै है ॥ह०॥११॥
 'करनविषयवश हिरन 'अग्निमें, गलरर प्राण लुनार्य है ।
 दौलत तज इनको निनको मन, यह गुरु सीख सुनारै है ॥४॥

— ३० —

मान ले या सिख मोरी, भुक्त मत भोगन ओरी ॥मान०॥
 भोग 'भुनगभोगसम जानो, जिन इनसे रति जोरी ।

१ इन्द्रियाक विषयमें । २ हाथी । ३ गद्देमें पडकर । ४ मछली । ५ यदम्भलाभ । ६ जानने विषयसे । ७ वनमें । ८ सर्पने फणके समान ।

ते अन्त भर 'भीम' भरे दुख, परे अधोगति 'पोरी,
बघे दृढ़ 'पावक' होगी ॥ मान० ॥१॥

उनसे रपाय गिरागी जे जन, भये ज्ञानरूपधोरी ।
तिन सुख लहौ अचल अग्निनाशी, भरफासी दई तोरी,
रमं तिन मँग शिरगोरी ॥ मान० ॥२॥

भोगनकी अभिलाष हृन्को, त्रिजगमपदा थोरी ।
यातैं ज्ञानानन्द दौल अर, पियाँ पियूष कटोरी,
मिटै मग्न्याधि कठोरी ॥ मान० ॥ ३ ॥

— ३१ —

छाडि दे या बुधि भोरी, वृथा तनसे रति जोरी । छाडि० टक ।
यह पर है न रहै थिर पोषत, सकल कुमलकी भोरी ।
यामौ ममताकर अनादित, बघो कर्मकी टोरी,
सहै दुख 'जलधि' हिलोरी । छाडि० ॥१॥

यह जड है तू चेतन या ही, अपनायत बरजोरी ।
मन्यकदर्शन ज्ञान चरण निधि, ये हैं सपत तोरी,
सदा निलमाँ 'शिरगोरी ॥ छाडि० ॥२॥

सुखिया भये सटीर जीव जिन, यासौ ममता तोरी ।
दौल मीस यह लीजे पीने, 'ज्ञानपियूष' कटोरी,
मिटै परचाह कठोरी ॥ छाडि० ॥ ३ ॥

१ भयानक २ पौर (पैड़ी, सीढ़ी या ढोड़ी) ३ पापकी
ढोरमें । ४ समुद्र । ५ मुक्ति लक्ष्मी । निष्कलङ्क निगूञ्जन मुक्तात्मा
का अनन्त सुख । ६ ज्ञानरूपी अमृत ।

— २५ —

नोहि समझाय मौ ना नार, निया तोहि ममझायो० । टेक ।
 दग सुगुगरी परहितमें रति, हित उपदश सुनायो ॥ सौ० ॥
 निपय भुजग सय मुख पायो पुनि तिनर्म लपटायो ।
 स्वपदविचार रज्ज्वा परपटम, मरुत ज्यी मौरायो ॥ मौ० ॥
 तन घन सज्जन नहीं हँ तेरे, नाटक नेह लगायो ।
 क्या न तन भ्रष्ट 'चारुममामृत, जो नित सत सुहायो ॥
 अबहूँ ममक फटिन यह नरमर 'जिन 'वृष निना गमायो ।
 त मिलै मनि टार उदधिमें, दौलतफे पछतायो ॥ म० ॥

— २६ —

ह नर, भ्रमनाद क्या न, छाडत दुखदाई ।
 सेवत चिन्काल मोज, आपनी टगाई ॥ ह नर० ॥ टेक ॥
 मरुत अघ कर्म कहा, भेदे नहि मर्म लहा ।
 लार्ग दुखज्वाली न, डेहक तताई ॥ ह नर० ॥ १ ॥
 जमक रज गजते, सुभैरु अति गानते ।
 अनेक प्रान त्यागते, सुनै कहा न भाई ॥ ह नर० ॥ २ ॥
 परको अपनाय आप, रूपफे भुनाय हाय ।
 करनविषय दारु जार, चाहदौ उड़ाई ॥ ह नर० ॥ ३ ॥

१ निपयस्पा सप । २ शगरी । ३ समतारूपी अमृत
 ४ चिन्ताने । ५ घम । ६ 'मुन्दर अघ करम ग्यान' 'भेदे'
 'मर्मस्थान' एसा भी पाठ है ।

अब मुन निनगान, गाग द्वेपसो जधान,
मोचरूप निज पिछान दौल, भज प्रिमताई । हे नर० ॥४॥

— ३७ —

न मानत यह जिय निपट अनारी ।
मिख दत सुगुरु हितसारी ॥ न मानत० ॥ टेक ॥
कुमति कुनारि मग रति मानत, सुमतिमुनारि निमारी ॥१॥
नर परजाय सुरेश चहैं मो, तजि । वेषनिषय निगारी ।
त्याग अनाकुल ज्ञान चाह पर' आकुलता निमतारी ॥२॥
अपना भूल आप ममतानिधि, भगदुख भरत भित्तारी ।
परद्रव्यनकी परनतिसे शठ, वृथा बनत करतारी ॥ ३ ॥
निम रयाय दय जरत तहा अभिलाष छटा घत डारी ।
दुखमौ डर करै दुखकारन,—तैं नित प्रीति करारी ॥ ४ ॥
अति दुर्लभ जिनमन भगन करि, सशय मोह निगारी ।
दौल स्वपर हित अहित जानकै, होगदु शिखमगचारी ॥५॥

— ३९ —

अरे जिया, जग घोखेकी टाटी ॥ अरे० ॥ टेक ॥
अठा उद्यम लोख ररत हैं, जिममें निशदिन घाटी ॥ १ ॥
जानबूझकै अन्य बने हैं, आखन घाधी घाटी ॥ २ ॥
निकल जायगे प्राण छिनकमें, पढी रहैगी माटी ॥ ३ ॥
दौलतराम ममभ मन अपने, दिलभी खोल कपाटी ॥ ४ ॥

— ८५ —

नोहि ममभावा सौ मा गार, निया तोहि ममभायो० । टेक ।
 दास सुगुहरी परान्तिम रति, हित उपदश सुनायो ॥मौ०॥
 मियय भुवग मर दुस पायो पुनि तिनसी लपटायो ।
 मयपदविभाज मय्यो परपदमें, 'म' रग जरी योरायो ॥पौ०॥
 तन धन सचन नहा ई तेरे, नाटक नेह लगायो ।
 क्या न तन भ्रम 'चापममामृत, जो नित सत सुहायो ॥
 अग्रहूँ ममक कठिन यह नगम 'चिन 'धूर मिना गमायो ।
 त मिलग्य मनि टार उदधिमें, दौलतसो पछतायो ॥मौ०॥

— ८६ —

ह नर, भ्रमनाद क्यों न, छाड़त दुखदाई ।
 सेवत चिरमाल मोज, आपनी टगाई ॥ ह नर० ॥ टेक ॥
 मूरख अथ कर्म कहा, भेदे नहि मर्म लहा ।
 लागे दुग्गज्वालसी न, दहई तताड ॥ ह नर० ॥ १ ॥
 जमक रेग गजते, सुभस अति गाचते ।
 अनेक प्राण त्यागत, मुन कहा न मारि ॥ हे नर० ॥ २ ॥
 परसो अपनाय आप, रूपसो भुनाय हाय ।
 करनमिय दाक जार, चाहदो बड़ाई ॥ हे नर० ॥ ३ ॥

१ मिययरूपी सप । २ शराधी । ३ ममतारूपी अमृत
 ४ जिन्हाने । ५ धर्म । ६ 'मुग्धर अथ कर्म खान' 'भे'
 'मरमयान' ऐसा भी पाठ है ।

अब मुन जिनवान, गग द्वेपको जघान,
मोक्षरूप निज पिछान दौल, भज विरामताई ॥ हे नर० ॥ ४ ॥

— ३७ —

न मानत यह जिय निपट अनारी ।
मिख दत्त सुगुरु हितकारी ॥ न मानत० ॥ टेक ॥
कुमति कुनारि भग रति मानत, सुप्रतिसुनारि रिमारी ॥ १ ॥
नर परजाय सुरेश चहं मो, तजि जेयपरिषय विगारी ।
त्याग अनाकुल आन चाह पर-आकुलता विमतारी ॥ २ ॥
अपना भूल आप समतानिधि, मरदुख भरत मियाारी ।
परद्वयनसी परनतिसे गठ, कृथा बनत कृतारी ॥ ३ ॥
जिम कषाय द्रव जगत तहा अभिलाष छटा घृत डारी ।
दुखमैं डरं करं दुखमारन, तै नित प्रीति करारी ॥ ४ ॥
अति दुर्लभ जिनमन अमन करि, सगय मोह निमारी ।
दौल स्वपर हित अहित जानके, होयहु शिवमगचारी ॥ ५ ॥

— ३८ —

अरे जिया, जग घोखेकी टाटी ॥ अरे० ॥ टेक ॥
भूठा उद्यम लोक मरत हैं, जिममें निशदिन घाटी ॥ १ ॥
जानबूझके अन्ध बने हैं, आखन बाधे पाटी ॥ २ ॥
निकल जायगे प्राण डिनकम, पड़ी रहैगी माटी ॥ ३ ॥
दौलतराम ममभ मन अपने, दिलकी खोल कपाटी ॥ ४ ॥

और मर जगद्वन्द मिटाये, लो लावो निन आगम-
श्री ॥ और ० ॥ टका ॥ है अमारे जगद्वन्द बनकर, यह बहुत
गरज न पारन तोरी । 'मला' चपला, 'यौवन' सुधनु,
स्वयन पवित्रजन क्यों 'गति' ओरी ॥ १ ॥ विषय 'स्वाय'
दग्द दोरा ये, इनते तोर 'नेहरी' डोरी । परद्रव्यनको
तु अपनायन, क्यों न तज एमी बुधि मोरी ॥ २ ॥ 'पीत'
लाय सागरधिति सुरही, नरपरजापतनी अति योरी ।
अमर पाय दौल अर वृत्तो, फिर न भिन्नु' मणि मागर
येरी ॥ और ० ॥ ३ ॥

चैनन यह बुधि कौन मयानी, कही सुगुरु तित मीर
न मानी ॥ टका ॥ कठिन कास्ताली ज्यों पायी, नरभय
सुखल श्रवण जिनगानी ॥ १ ॥ भूमि न होत चादनीसी ज्यों
स्थी नहि घनी, लेपको आनी । स्मृरूप यों तू यों ही शठ
हटकर पकरत सोन पिरानी ॥ २ ॥ बानी होय अनान
राग रूप कर निज महज भ्यन्तता हानी । इन्द्रिय, जड़
तिन विषय अचेतन, तहां अनिष्ट इष्टता ठानी ॥ ३ ॥ चाहै

१ लक्ष्मी । २ विजयी । ३ इन्द्रधनुष । ४ कास्तालाय
'यायसे' अर्थात् जैसे ताड़पृष्ठसे ताड़फलका दूटना और कागज
से आकाशम हो पा लेना कठिन है वैसे ।

सुख, दुख ही अग्राह्य, अथ सुनि गिवि जो है सुखदानी ।
दौल आपकरि आप आपमें, ध्याय लाय समरमरम-
मानी ॥ ४ ॥

— ४९ —

राचि गहो परमाहि तू अपनो रूप न जान रे ॥ टेक ॥
अविचल चिनमृत गिनमृत, सुखी होत तम ठाने रे ॥ १ ॥
तन धन भ्रात तात सुत जननी, तू इनसो निज जाने रे ।
ये पर इनहि वियोगयोगमें यौ ही सुख दुख माने रे ॥ २ ॥
त्याह न पाये पाये तण्णा, सेगत ज्ञान जधान रे ।
विपति ज्वेत विधिरवहत पै, जान विषय रम गाने रे ॥ ३ ॥
नरमर निनश्रुतधरण पाय अर, कर निज मुहित मयाने रे ।
दौलत आतम ज्ञान मुधानम, पीरो सुगुरु बखाने रे ॥ ४ ॥

— ६६ —

निजहितमारज करना भाई । निजहित कारज करना ॥ टेक ॥
जनममरनदुख पावत जात, सो विधिरध^१ कतरना ॥ १ ॥
ज्ञानदरम अर राग फरम रम, निजपरचिह्न अमरना ।
सधिभेद बुविउनीते^२ कर, निज गहि पर परिहरना ॥ २ ॥
पग्रिही^३ अपगारी शकै, त्यागी अभय निचरना ।

१ रमवध । २ बुद्धिपूर्वा छैनीसे निज और परमा सधिभेद
करना । ३ पवित्रहृका धारी तथा परकी वस्तु ग्रहण करनेवाला
चोर ।

त्यों पगचाह बघ दुखदायक, त्यागत ममसुख भरना ॥३॥
जो ममधमन न चाह तो अर, सुगुरु सीख उर धरना ।
दौलत सारम सुभारम चारो, ज्यों निनस मममग्ना ॥४॥

— ७८ —

हो तुम गठ अविचारी जियरा, जिनरुप' पाय बुधा
खोजत हो ॥टेक॥ पी अनादि 'मदमोहम्बगुननिधि, भूल
येत नीं मोयत हो ॥१॥ स्पष्टित मोरयच सुगुरु पुका
रत, क्यों न सोल 'उर-दग जोयत हो । ज्ञान विमान
विषयविष चागत, सुरतरु' जारि कनर' घोयत हो ॥२॥
भ्यारध मगे मफल जनकारन, क्यों निज पापभार डोयत
हो । नरमर सुबुल जेनरुप नोका, लहि निज क्यों मयजल
डोयत हो ॥३॥ पुण्यपापफल रात'याधिरा छिनमें
हँसत छिनर रोयत हो । मयमसलिल लेय निज उररु,
कलिमल क्यों न दौल घोयत हो ॥४॥

— ७९ —

अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायां,
ज्यों शुक' नमचाल' निमरि नलिनी लटफायो ॥टेक॥

(निनरुप । २ मोहरूपा रागर । ३ दिव्यरा अर्थों ।
४ कल्याणलकी जलार । ५ घनूरा । ६ ताता । ७ चिडीमार
या बहेलियकि गिरादिर 'कम्पा' म उपर लगी हुइ गिरा
= आरारा (गङ्गे) की चाल ।

चेतन अगिरुद्ध शुद्ध दग्धगोधमय त्रिगुद्ध,
 तनि जड़ रस करम रूप, पुद्गल अपनायौ ॥१॥
 इन्द्रियसुर दुरमे निज, पाग गगनरमे चित्त,
 दायक भयप्रपतिवृन्द, बन्धसो उदायौ ॥२॥
 चाह दाह दाहै, त्यागों न ताह चाहै,
 ममतासुधा न गाहै जिन, निकट जो बतायौ ॥३॥
 मानुषभय सुकूल पाय, जिनरशामन लहाय,
 दौल निनम्यभार भज, अनादि जो न ध्यायौ ॥४॥

हम तो कहैं न हित उपजाये ।
 सुकूल सुदेन-सुगुरु सुमग हित, कारन पाय, गमाये ॥१॥
 ज्यों शिशु नाचत, आप न मानत, लखनहार गौराये ।
 त्यों श्रुतमाचत आप न गचत, औरतको समुझाये ॥२॥
 सुजम-लाहकी चाह न तज निज, प्रभुता नखि हरमाये ।
 निषय तने न रजें, निज पदमें, परपद अयद, लुमाये ॥३॥
 पापत्याग निज-जाप न कीन्हो, सुमनचाप तप साये ।
 चेतन तनसो कहत भिन्न पर, दह सनेही याये ॥४॥

१ राग द्वेष । २ भग्न होता है । ३ शास्त्र पढ़त है । ४ सुयश
 के लाभही । ५ मग्न हुये । ६ आत्माका जाप । “जिन चाप” ऐसा
 भी पाठ । (निनम्यका जाप) । ७ काम दुःखस दुःखी हुये ।
 ८ शरीर ।

यह चिर भूल भइ हमरी अरु रहा होत पछता
दौन यनी भयभोग ग्नी मत, यौ गुरु उचन सुनाये ।

— ५० —

मन कीजा जी पारी, ये भोगभुजग^१ मम जानक ॥ मत
भुजग डमत इरु पार नसत है ये अनत मृतुकारी^२ ।
तिनना तथा मइ इन सेये, ज्यों पीये जल पारी ॥ मत
गंग त्रियोग शोक बनको घन^३, ममतालताठारी^४ ।
कहरि करि^५ अरिह^६ न देत ज्यों, त्यों ये हैं दुख भारी
इनमें रने दब तरु^७ थाये, पाये शुभ्र^८ मुरारी ।
जे मरिचे^९ ते सुरपति^{१०} अरचे, परचे सुख अतिकारी
पराधीन छिनमाहि छीन है पापघररतारी ।
इन्हं गिर्न सुख आंक माहि तिन, आपतनी बुधि धारी
मीन^{११} मतग^{१२} पतग भ्रह्म^{१३} मृग, इन रग मये दुखारी
सेरत ज्यों किपाक ललित, परिपाक ममय दुखकारी
सुरपति नरपति रगपतिहकी^{१४}, भोग न आस निगारी
दौल त्याग अरु भज निराग भुग, ज्यों पावै शिवनागो

(सप्त । १ मृत्युके देनेवाले । २ यादल । ३ समताम्पी
काटनको कुहाडा । ४ सिद्ध । ५ हाथी । ६ शत्रु । ७ वृक्ष
मृति हु^{१५}) । ८ नरक । ९ नारायण । १० प्रेमागा हुय । ११
पूजा करमे हैं । १२ मछली । १३ हाथी । १४ भ्रमर । १५ वि

— ५६ —

मत, कीजौ जी यारी, धिनगेह देह जड़ जानिके ।।टेक।।
 मात-मात रज रीरजमा यह, उपजी मलफूलपारी ।
 अस्थिमाल पल-नसा जालसी, लाल लाल जल क्यारी ॥१॥
 र्मरुगधलीपुतली^१ यह, मूत्रपुरीष^२ मँटारी ।
 चममँडी रिपुर्धमघडी^३ धन, धर्म चुरावनहारी ॥ २ ॥
 जे जेपावन यस्तु जगतमें, ते इन सर्व गिगारी ।
 स्वद मेद कफश्ले^४मयो बहु, मन्गदव्यालपिटारी ॥३॥
 जा मयोग रोगभर^५ तोली, जा त्रियोग शिरकारी ।
 बुध तामों न ममत्त करें यह, मन् मतिनको प्यारी ॥४॥
 जिनपौपी त भये मदोपी, तिन पाये दुर भारी ।
 निन तप ठान ध्यानकर शोपी , तिन परनी शिरनारी ॥५॥
 सुरधनु^६ 'शरदजलद'^७ जलनुदनुद, त्यां भट निगनहारी ।
 यात भिन्न ज्ञान निज चेतन, दौल होहु शमधारी^८ ॥६॥

— ५७ —

संखौ जी या जियभोरसी बातें, नित करत अहित
 हित घातें ।।टेक॥ जिन गनधर मुनि दशप्रती संमक्ति

१ घृणाका घर । २ दाढ़-माम-नसकि समूहकी । ३ कर्म
 रूपी हिरनोको फँसानवाली जगह पर पुतलीके समान । ४ मूत्र
 और त्रिष्टाका घर । ५ पसाना । ६ चरबी । ७ दुग्ध । ८ मन्
 रोगरूपी माँके लिये पिटारी । ९ मसारूपी रोग । १० चीणकी
 ११ इन्द्रधनुष । १२ शरदयुक्तके बान्स । १३ समताके धारी

सुरभी नित जात । मो पय घान न पान करत न अघात^१
 पयपग म्यात ॥१॥ दुग्धस्वरूप दुःखफलद^२ जलमम^३,
 टिप्त न छिनस मिलात । तनत न जगत न भजत पतित^४
 नित, ग्यत न फिरत तहोत ॥२॥ दह-गेह धन-नेह ठान
 अति, अघ मचत दिन रात । कुगति विपतिकलकी न भीत
 निवित प्रमाददशात ॥३॥ कष्ट^५ न होय आपनो पर
 द्रव्यादि पृथक् चतुधा । अपनाय लहत दुर गठ नम-
 हतन चलायत लात ॥४॥ शिवगृहद्वार मार नमन यह,
 लहि दग दुर्लभतात । ग्योन ज्यो मनि काग^६ उदायत
 रोयत ररुपनात ॥५॥ चिदानन्द निर्द्वन्द्व स्वपद तेज, अप-
 रिपद पद^७ गत । कहत सुशिर गुरु गहत नहीं उर,
 चहत न सुख ममतात ॥६॥ जननेन सुन भवि रह भरहर,
 छुटे द्वन्द्वतात । तिनकी सुकथा सुनत न गुनत^८ न, आत्म-
 बोधकलात ॥७॥ जे जन समुक्ति ज्ञानगचारित, पारन
 पयपात^९ । तापरिमोद ह्यो तिनको जम, दौल त्रिमोन
 सिन्ध्यात ॥८॥

— ५२ —

सुनो विद्या य मतगुरुकी बात, हित कहत दयाल

१ गुप्त हाता है । २ दुग्धरूप फल देने वाला । ३ घादलेके
 समान । ४ स्वचतुष्टयमे । ५ आकाशके घाम करने का । ६ विपति
 स्थानम लीन । ७ मनन नहीं करता ।

दयातैं । सु० ट्रेफा यह तन आन अचेतन है तू, चेतन मिलत
न यातैं । तदपि पिछान एक आतमको, तजत न हठ शठ-
तातैं ॥१॥ चहुँगति फिरत भरत ममताको, निपय महासिप
यातैं । तदपि न तजत न रजत अभागे, दगत्रत बुद्धि-
सुधातैं ॥२॥ मात तात सुत आत स्वजन तुम, माथी
प्रारथनातैं । तू इन काज भाज गृहको सब, ज्ञानादिक
मम घातैं ॥३॥ तन घन भोग संयोग सुपन मम, धार न
लगत मिलातैं । ममत न कर भ्रम तज तू आता, अनुमन
ज्ञान कलातैं ॥४॥ दुर्लभ नरमव सुथल सुकुल है, जिन
उपदेश लहातैं । दौल तजौ मनमौ ममता ज्यों, निरखो
इददशातैं ॥ सुनो ० ॥ ५ ॥

— ७९ —

चेतन अब धरि महजममाधि, जतैं यह गिनश भयभ्याधि ।
मोह ठग्योरी व्यायक रे, पगको आपा जान ।
भूल निजातम अद्विको तैं, पाये दुख महान ॥चेतन०॥१॥
मादि अनादि निगोद दोषमें परयो कर्मवश आय ।
आमउत्ताममभात तहाँ भव, मरन छठारह पाय ॥चेतन०॥२॥
काल अनन्त तहाँ यों बीत्यो, जब भइ मन्द कषाय ।

१ रचायमान होना है । २ सम्यादर्शन-ज्ञान-आविष्कारूपी
अमृतमे । ३ आत्मग्यरूपम स्थिरता ।

४ अल अग्निल अग्निल पुन तर्हि हर्ष काल अमर्य गमय ।
 कमलम निरामि अग्नि नै पादं, जगत्तिर परदाय ।
 अल भन वर गाय अर टाने तम रण शुभ्र लहाय ॥४॥
 निर नगाला रा दुम पाये, निरम ररु नर धाय ।
 गर्भे ज म गिगु-गण रुद रुम, मरु रुद नहि जाय ॥५॥
 रुद किणित पुण्यपाकृत, चउगिधिदर रुहाय ।
 विषयआग मन ताम लही नई, मरुममय यिलनाय ॥६॥
 या अपार भवपाय रागमे, अम्यो अनते काल ।
 दालत अर निनमाय-नाय चदि नै मरातिररी पाल ॥७॥

— — —

ज्ञानी जीव निराग भगवतम वस्तुम्यस्य विचारत
 तेमै ॥१॥०॥८॥ सुत निय यषु धनाति प्रमट पर, ये मुमन
 हे भिन्न प्रदेश । इनरी परनति है इन आश्रित, जो इन
 भाय परनरै रमे ॥१॥०॥९॥ दह अयेतन येतन मै, इन परनति
 होय एरमा कैमै । पूरन गलन स्वभाव धरं तन, मै अज
 अरल अमल नम जैमै ॥१॥०॥१०॥ पर पगिनमन न इष्ट अनिट
 न, कृथा रागस्य द्रु मयेम । नर्म ज्ञान निन कैमै चधम,
 मुक्त हाय ममताय लयेमै ॥१॥०॥११॥ विषयचाह अरदोह नर्म

१ अमिनाय । २ वायुकाय । ३ जनपतिनाय । ४ पत्नी ।
 ५ नरक । ६ यहाँ । ७ पूरण होन और गलन होने रूप स्वभाव
 वाला पुद्गल होता है । ८ गरीर ।

नहि, निज निज सुधामिधुमें पैमे । अर जिनमन मुने श्रम-
ननंत मिटे रिभाय करु विधि तैसे । जा०॥४॥ ऐमो अमर
कठिन पाप अर, निजहितहत विलव करेमें । पछताओ
बहु होय मयाने, घेतन दौल छुटो भर'-भै में ॥जा०॥५॥

— १०७ —

हमतो कहैं न निजगुन भाये ।
तन निज मान जान तनदुखसुख, में बिलखे हरग्याये ॥८॥
तनको गगन^१ भरनलखि तनको, धरन मान हम जाये^२ ।
या भ्रमभौर^३ परे भगजलचिर, चहुंगति रिपत लहाये ॥९॥
दरशपोषप्रतमुधा न चार्यो, बिविध रिषय विष स्यापे ।
सुगुर दयाल सीख दइ पुनिपुनि, मुनिमुनि उर नहिं लाये ।२
बहिरातमता तनी न अन्तर, दष्टि न ह्वै निज ध्याये ।
धाम राम धन रामाकी नित, आश^४ हुताश जलाये ॥३॥
अचल अनूप शुद्ध चिद्रूपी मयसुखमय मुनि गाये ।
दौल चिदानंद स्वगुन मगन जे, ते जिय सुगिया धाये ॥४॥

— १०४ —

हम तो कहैं न निज घर आये ।
परघर फिरत रहत दिन बीते, नाम अनेक धराये ॥ टंक ॥
परपद निजपद मानि मगन ह्वै, परपरनति लपटाये ।

१ मसारूपी भयस । २ गलना (नष्ट होना) ३ व्यग्र
हु । ४ अज्ञानरूपी भय । ५ आगारूपी अग्नि ।

गुड़ गुड़ मुगस मनाहर, नैननमाव न भाये ॥ १ ॥
 नर पशु न नर निन चान्यो परजय रुदि लहाये ।
 अमल अमद अतुल अविनाशा, अतमगुन नहि गाये ॥ २ ॥
 पट्ट उडू भूल मट्ट हपरा फिर, रुहा काज पडताय ।
 गाल नना अचट्ट रिपयनरो, मतगुरु वान गुनाय ॥ ३ ॥

❖ भागचन्द भजनमाला ❖

— (२३) राग गंगोधि —

मार्ग तिन निरफल सोयसो करै छै ॥ १ ॥
 नरभर लहिरा प्रानी विनगान, मार्ग तिन निरफल ० टिक
 परमपति लगि निन चित माही, रिरया मूरत सोयसो करै
 छै ॥ २ ॥ 'समानलन' जगत मनाही, मुन्तर कामिन
 लायसो करै छै ॥ ३ ॥ 'नितमत्त' तीरेमनान न ठनि
 जलसो पङ्गल धोयसो करै छै ॥ ४ ॥ भागचन्द इमि ध
 रिना गठ मोहनात्मो मोयसो करै छै ॥ ५ ॥

— (२४) राग सारङ्ग —

आये न भोगनमें तोहि गिलान ॥ टेक ॥
 तीरवनाय भोग तजि दीन, निनत मन भय प्राज ।
 न निनत रुहुं डरपत नाही, दीमन अति बलवान ॥ १ ॥
 इन्द्रियतसि कान न भोग, रिपय महा अधमान ।
 मो जसे घनवारा डारे, पायरज्यास बुझान ॥ आर्य ० ॥ २ ॥

जे सुख तो तीवन दुरदाई, ज्यो मधुलिप्त रूपान ।
तान भागचन्द इनको तजि, आत्मस्वरूप पिछान ॥ ३ ॥

— (२८) राग मन्हाडा —

मान न कीजिय हो परवीन ॥ टेक ॥
जाय पलाय चचला कमला, तिष्ठै दो दिन तीन ।
घनजोरन छनमगुर मगदो, होत सुठिन छिन छीन ॥१॥
भक्त नरेन्द्र राट-पट नायक, तेहु मय मगहीन ।
तेरी पात पहा है भाई, तू तो महज हि दीन ॥ २ ॥
भागचन्द भार्दव रममाणर, माहि होहु लगनीन ।
तात जगत जालमें फिर कहूँ जनम न होय नरीन ॥मान०॥३॥

— (२९) राग मन्हाडा —

अर हो अज्ञानी तूने रठिन मनुषमर पायो ॥ टेक ॥
लोचनरहित मनुषकं कर्मों, ज्यों घटेर गग आयो ॥अर०॥१॥
मो तू खोसत रिपयनमाही घम नहीं चित लायो ॥ २ ॥
भागचन्द उपदेश मान अर, जो श्रीगुरु परमायो ॥अरे०॥३॥

— ३८ —

जीर ! तू भ्रमत मदीर अकेला, मग साथो कोई नहि
तेरा ॥ टेक ॥ अपना सुखदुख आपनि भुगतै, होत बुटम्य
न मेला । स्वार्थ मर्य मर बिठरि जात है, रिषट जात ज्यों
मेला ॥१॥ रखर कोइ न पूरन हृदंजय, आयु अतकी बला ।
पूरन पारि बंधन नहि नैये, दूदग चलसो टेला ॥नाच०॥२॥

नन वन जीवत विगिज जान ज्यो, इन्द्रजालका गेलो ।
भागवत इभि लग्नगि भाइ हो मतगुरुका चेला ॥ ३ ॥

— (१) राग मोरठ —

जे निन तुम विरज निन सोये ॥ टेक ॥
माह राखी पी अनान्ति, परपदमें चिर मोये ।
सुरसरड चिनपिट आपपड, गुन अनत नहि जोये । जे० ११
होय रहिमुंय टानि राग राग, कर्म बाज रहू पोये ।
तनु फल सुख दुख मामगी लम्बि, चितमें हग्य राय ॥ १२ ॥
परल ध्यान शुचि मलिलपूतें, आसुर मल नहि रोये ।
पर द्रव्यनिकी चाह न रोखी, रिगिध परिग्रह ढाये ॥ ३ ॥
अय निनमें निन जान नियत तहों, निन परिनाम समोये ।
यह शिखमारग ममरममागर, भागचन्द हित तो ये नि० १४ ॥

— ६८ —

भयनम नहि भूलिये भाइ । कर निज, कलसी यात्र । टेक ।
नर परजाय पाय अनि मुन्दर, त्यागहु मकल प्रमाद ।
रीतिनधम सेय गिर पायन, आनम जासु प्रमाद । भय० ११
अयें चूरन ठोक न पडमी, पासी अधिर रिपाद ।
महमी नरक वेत्ता पुनि तहों, सुणसी सौन किगाद ॥ २२ ॥
भागचन्द श्रीगुरु गिवा निन भटका काल अनाद ।
तू कना तू ही फल भोगन, सौन करं घरान ॥ भय० ॥ ३॥

— (३२) गग नीपन्दो —

यह मोह उदय दुख पाव, जगजीव अघानी । टेक ॥
 निज चेतनस्वरूप नहि नानं, परपदार्थ अथनार्व ।
 पर परिनमन नहो निज आश्रित यह नहै श्रुति अनुलार ॥१॥
 इष्ट जानि सुगान्धिक मौर, ते विधिवध धरार ।
 निमग्नितहन भार चित मग्गदृग्गनादि नहि धरार ॥२॥
 इन्द्रियवृत्ति फनके कान, विषय अनक मिलार्व ।
 ते न मिलै तर गेग विघ्न इरे ममपुग इरुपे न श्यावि ॥३॥
 मरुल रमे छय लच्छन लच्छित, मोच्छदशा नहि धरार ।
 भागरन् गेगे धमसेनी, काल अनन्त गमार्व यह ॥४॥

॥

— ७७ —

प्रम अर त्यागदृ पुद्गल का, अद्वितमूल यह जाना
 सुधीजन ॥ टेक ॥ हृमि-कूल कलित मयन नव दामन, यह
 पुतला मलरा । कामादिक भगमे तु न होता, चाम तना
 रलरा ॥ १ ॥ काल-रूपाल गुग विन इमका नदि, है
 विद्वान पलरा । धनिक मात्रमे विषट्र जान है, जिमि
 वृन्द वलरा ॥ २ ॥ भागचन् क्या माग जानके, तु
 पा मग ललरा । नान चित अनुमय पर ओ न इच्छुक
 गिरालका ॥ ३ ॥

❖ ध्यानत विलास ❖

— २० —
 विपत्तिम घर धीर, र नर । विपत्तिमें घर धीर ॥ टेक ॥
 सम्पदा ज्यों आपदार । निनग बै है धीर ॥ रे० ॥ १ ॥
 रूप छाया घटा उद ज्यों त्योहि सुख दुख धीर ॥ २ ॥
 दाप ध्यानत न्य किमसो, तोरि करम जजीर ॥ ३ ॥

— २१ —
 नहि णमो जनम बारवार ॥ टेक ॥
 कठिन रठिन लहो मनुष भर, विषय भजि मतिहार ॥ १ ॥
 पाय चिन्तामन रतन शठ, छिपत उदधि मैझार ।
 अध हाथ उदर थाड तजत ताहि गैंगार ॥ २ ॥
 करहुं नरक तिग्गजच बरहुं, करहुं सुगगिहार ।
 जगतमहिं चिरकाल अमियो, दुर्लभ नर अरतार ॥ ३ ॥
 पाय अमृत पाय धीर, कदत सुगुरु पुकार ।
 तनो विषय कषाय ध्यानत, ज्यों लहो भरपार ॥ ४ ॥

— ३२ —
 तू तो ममक समक र । माइ ॥ टेक ॥
 निशिदिन विषय भोग लपटाना, धरम वचन न सुहाई ॥ १ ॥
 कर मनका ल आसन मारयो, बाहिज लोरु निकाई ।
 कहा मयो वरध्यान धरत, जो मन धिर न रहाई ॥ २ ॥

मास मास उण्णाम हिने तैं, काया बहुत सुखाई ।
 क्रोध मान छल लोभ न जीत्या, कारज सैन नराई ॥३॥
 मन बच काय जोग थिर करै, त्यागो विषयखाई ।
 ध्यानत सुरग मोरग सुगदार्त, मदगुरु मीर बतार्ई ॥४॥

(१६) गुजराता भाषा-गीत ।

जीरा ।, अ कहिये तने भाई । टेक ॥ पोता नू-रूप
 अनूप तजीनै, शामाट विषयी थाई ॥ जीरा० ॥१॥ इन्द्रीना
 विषय विषयसी मोटा ब्राननू अमृत गाई । अमृत ओडी
 विषय विषयी, साता तो नथी पाई ॥ जीरा० ॥२॥
 नरक विमोदना दुग सह आव्यो, बली निहैन मग धाई ।
 गहमी बात रुडी न छ तमनै, तीन भरनना राई ॥ जीरा०
 ॥३॥ लाख बातनी बात ए छै मृकानै विषयखाई ।
 ध्यानत ते वारें सुग लाना, गम गुरु समझाई ॥ जीरा० ॥४॥

(१७)

जीरा । तैं मृदपना स्ति पायो ॥ टेक ॥ मय जग
 मयारथसी चाहत है, स्वाग्ध तोहि न भायो ॥ जीरा० ॥१॥
 अशुचि अनेत दुष्ट तनमार्हा, कहा जान विग्मायो । परम
 अतिन्त्री निजमुग हरिरे, विषय गेग लपटायो ॥ जीरा०
 ॥२॥ चेतन नाम भयो जड काह, अपनो नम गमाया ।
 तीन लोकको रात आडिरे, मोख मार्ग न लजायो ॥
 जीरा० ॥३॥ मृदपना मि गज बूट, तन नू मत

दानत सुख गनन गिर मिलमो, यो मन्गुरु चतलायो ॥
जाय० ॥२॥

(२१)

हो भैया मोर । नहु कैसे सुख होय ॥ देख ॥ लीन
कपाय अनीन निषयके, धम्म कर नहि कोय ॥ हो भैया०
॥१॥ पाप उतर लसि गोख भोदू । पाप तन नहि मोय ।
म्यान-यान ज्या पाहन मू घ, मिह हने रिपु जोय ॥ हो० ॥२॥
रम रत सुख दुख अधमेती, जानन हे मय लोय । र
रापर ले कप पगत हे, दुख पे हे मय दोय ॥ हो भैया०
॥३॥ रगुर कूटन कृधम सुलायो दर धरम गुरु सोय ।
उलट चाल तनि अर सुलट जो, दानत तिर जग-सोय ॥ ४॥

(६०) राग-मोरठा ।

मन । मेरे राग भाव निमार ॥ देख ॥ राग चिक्कनत लगत
हे रमभूलि अपार ॥ मन० ॥१॥ राग आस्रम मूल है-
राम्य मर धार । निन जान्यो भेयद, बह गयो नमम
हार ॥ मन० ॥२॥ दान पूजा शील जप तप, मात्र निषय
प्रहार । राग निन शिर सुख करत हे, रागत भेमार ॥
मन० ॥३॥ धीतराग कहा रियो, यह बात प्रगट निहार ।
मोड कर सुख हत दानत, शुद्ध अनुभव मार ॥ मन० ॥४॥

(७३)

कर रे । कर रे । कर रे । तू आत्म हित कर रे

१ तल (ममार ममुन) ।

॥ टेक ॥ काल अनन्त गयो जग अमर्त, भर भर क दुख
हर रे ॥ कर रे० ॥१॥ लाख कोटि भर तपस्या करत,
जितो कर्य तेरी जर रे । म्याम उम्याममाहि मो नामे,
जय अनुभर चित पर रे ॥ कर रे० ॥ २ ॥ काहै फट मह
उनमाहीं, राग दोष परिहर रे । कान होय ममभार पिना
नहि, भागौ पचि पचि मर रे ॥ कर रे० ॥ ३ ॥ लाग
मीरसी मीर एक यह, आतम निज, पर पर रे । कोट
ग्रथरो मार यही है, दानत लख मर तर रे ॥ कर रे०
॥ ४ ॥

(५७)

भाई ज्ञानका मार्ग मुहेला रे ॥ भाई० ॥ टर ॥ दर
न नहिये देह न दहिये, जोग भोग न नवला रे ॥ भाई०
॥ १ ॥ लटना नाहीं मरना नाहीं, करना रेला तेला रे ।
पढ़ना नाहीं गढ़ना नाहीं, नाच न गायन मेला रे ॥ भाई०
॥ २ ॥ नहाना नाहीं ग्याना नाहीं, नाहि कमना धेला रे ।
चलना नाहीं, जलना नाहीं, गलना नाहीं देला रे ॥ भाई०
॥३॥ जो चित चाहै मो नित दाहै, चाहै कर करि रेला
रे । दानन याम कान कठिनता, रे पराह अरेला
रे ॥ भाई० ॥४॥

(५९) राग प्रलारल

फटिवेरो मन मुग्धा, रगवेरो काजा ॥ टर ॥

रिपय छुडाव और प, आपन अनि माचो ॥ कहिर०
 ॥ १ ॥ मित्री मित्राक कहै, मुँह होय न मीठा । नाम
 रुई मुख रुहु दुखा, कहु सुना न दीठा ॥ कहिवे० ॥ २ ॥
 कहनशाले पहुँचै, करने को कोई । रुधनी लोक गिम्हा
 रना, करना नित होइ ॥ कहिवे० ॥ ३ ॥ कोटि जनम रुधनी
 पय, करनी विनु दगिया । कवनी विनु करनी कर,
 शानत मो सुगिया ॥ कहिवे० ॥ ४ ॥

(५८) राम गोती

हमारो कारख कमें होय ॥ टेक ॥ कारण पच सुखता
 मारगक, निनमक है दोय ॥ हमारो० ॥ १ ॥ हीन महनन
 लघु आपुषा, अल्प मनीषा जोय । कच्चे भारन मन्थे
 मारी, मय जग दग्यो होय ॥ हमारो० ॥ २ ॥ इन्द्री पर
 सुनिषयनि दौरै, मन कहथा न कोय । माधारन चिरकाल
 रन्थ्यो, मै परम रिना फिर मोय ॥ हमारो० ॥ ३ ॥ चिंता
 रही न कछु अनि आरि, अर मय चिन्ता सोय । दानत
 एक शुद्ध निजपट लखि, आपमें आप समोय ॥
 हमारो० ॥ ४ ॥ इति ॥

मर्वथा ।

घाट उनावके घाट लगायके घाट पिछायके उद्यम
 सीना । लनरो घाट मुदनरो घाट मुसाटनि फेरि । उगे
 पहुँ दीना ॥ ताहमे दानरो भाय न रचक पाथरकी
 कहँ नाव तरी ना । दानत याहीते नर्वम बेटनि, मोड

किरोड़न और सही ना ॥१॥ नर्मनमाहि कहै नहि जाहि
मह दुख जे जर जानत नाहीं । गर्म मभार कलम
अपार तले मिर या तर जानत नाहीं ॥ धूलके बीचमें
कीर नगीचमें नीच किया मच जानत नाहीं । घानत
नार उपाय करो जम आग्रहिगो जर जानत नाहीं ॥२॥

संख्या—३८ ।

याही जगमाहि चिदानन्द आप डोलत है भर्म भार
धर हरे आत्म मरतिसे । अष्ट कर्म रूप जे जे पुटलके
परिनाम तिनको मरूप मान मानत सुमतिसे ॥ जाही
मर्म मि. या मोह अंधकार नाजि गया गयो परकाश भानु
चेतनको तनको । नाही मर्म जान्यो आप आप पर पर
रूप मानि भय भावरी निरागे चारो गतिसे ॥३॥ रुन
गार यन नाहि धन तो न घग्माहि रानेरी फिर पट्ट
नारि चह गहना । दनेगल फिरि जाहि मिलत उधार
नाहि साक मिले चोर धन आवे नाहि लहना ॥ काऊ
पूत जारी भयो घग्माहि सुत धर्यो एक पूत मरि गयो
तासे दुख महना । पुत्री तर जोग मई व्याही सुता मरि
गई एत दु ग सुख माने तिसे कहा कहना ॥४॥ गिण्यको
पडावत है हमको गदावत है मानको बढ़ावत है नाना
छल छानके । कौड़ी कौड़ी मागत है कायर हो मागत है
प्रात उठे जागत है स्वारथ पिछान के ॥ कागद को

हैं केरें नग पोखत हैं केरें आप देखत हैं आपनी युगानिरे ।
 एक सेर नाज काज अपनी सरूप त्याज डोलत हैं
 लाज राज वम काज हान के ॥५॥ देखो चिदानन्द राम
 ज्ञान दृष्टि खोलिखरि तात मात आत सुत स्वारथ पमारा
 है । त तो इन्ह आप मानि ममता मगन भयो रखी भम
 मारि निज धर्म को विमारा हैं ॥ यह तो कुटुम्ब मर द ग
 ही का कारख है तनि मुनिगज निज मारज विचारा हैं ।
 तति वर्म मार स्वय मोच सुखका मोट लह भयपार
 निनधर्म ध्यान गारा हैं ॥६॥

कुण्डलिया-

यह समार अमार हैं, बदली वृक्ष समान ।

यामें मारपनी लये, मो भूरय परधान ॥

मो भूरय परधान मान कुमुमनि नभ दरें ।

मलिल मधे छत चहें भग सुन्दर गर परें ॥

अग्नि माहि हिम लगै मर्षपुर माहि सुग तड ।

ज्ञान जान मन माहि नाह समार मार यह ॥७॥

वर्तित ।

चेतननी तुम जोडत हो वन, सो धन चर्न नहीं तुम
 लार । जाओ आप ज्ञानि पोषत हो, सो तन जगिके दूर
 हैं छार । शिखरमोगसो सुख मानत हो नाओ फल हैं

दत्त अपार । यह समस्त भूत समस्तको, मानि कसो में
रहै पुरार ॥८॥

इन्द्रिय और वषायोंको चाह ॥ मरेया ३७ ॥

मनोरम काम चाहे रमना हू रम चाहे, नामिका सुगम
चाहे नैन चाहे रूपको । अरुण शब्द चाह काया तो
अमाद चाह, वचन मन चाह मन दौर धूपसे ॥ क्रोध
क्रौर क्रौरव कस्यो चाह मान मान गस्यो चाह, माया तो कपट
चाह लोभ लोभ कपसे । परिवार धन चाह आशा निषय
सुख चाहे, एते पारी चाहें नहीं सुख जीव भूपसे ॥ ९ ॥

इन्द्रिय और वषायोंको मन करनेका उपाय ।

जीव जोर्य म्याना होय पाँयो इन्द्री वमि कर, काम
रम गध रूप सुग गग हगिके । आसन बतार काय वच
से मिरारि मान, ध्यानमाहि मन लारि चचलता गरिके ॥
समा करि क्रौर मार निषय धरि मान गारे, मरुत
मो छन जार लोभ दशा दगिके । परिवार नेह त्यागे
निषय मैन छाड़ि जागे, तर जीव सुखी होय धरि रम
रगिके ॥१०॥

अपनी भूल

यमत अनंत काल पीतत निगोद माहि, अक्षर अनंत
भाग ज्ञान अनुसर है । छामठि महम तीन मौ छतीम पार
पजी, अतर मुहूरत में नन्मो अर मर है ॥ अंगुल अमर

भाग तहाँ तन धारत है, तहाँसेती क्यों ही क्यों ही क्यों
ही के निमर है । यहाँ आय भूल गयो लागि निषय भोग
निष, एमी गति पाय रहा ऐसे काम रहे हैं ॥११॥

मार्गान्ति छाड

पार पार कह पुनस्की दोष लागत है, जागत न जोर
नृ तो मोर्यो माह भगम । आतमसेनी मिश्रु गह गग
दोष रूप्य पय, इन्दी निषय मुय लीन पगपगम ॥
पात्रत अनेक कष्ट होत नाहि अष्ट नष्ट, महापद सष्ट भयो
भमे सिष्ट जगम । जाग जगपामी उदामी ह्येके निषयमों,
नाग, शुद्ध अनुभय जो आय नाहि जगमें ॥१२॥

—(०)—

बुधजन निलास

(५) निताला ।

काल अचानक ही ले जायगा, गाफिल होकर रहना
क्या रे ॥ काल० ॥ टेर ॥ ठिनहूँ तोरू नाहि रचाने, तौ
सुभटनरा रगना क्या रे ॥ काल० ॥ १ ॥ रंच मराड
करिने सान, नरकनर्म दूख मरना क्या रे । कुलजन
पधिरनिक हित काज, जगत जालमें परना क्या रे ॥
काल० ॥ २ ॥ छटाटिख कोउ नाहि रचया, और लोर
का शरना क्या रे । निशय हुआ जगतमें मरना, कष्ट
पर तर टगना क्या रे ॥ काल० ॥ ३ ॥ अथा ध्यान

रुख खिर, जारि, नौ कर्मनिर्कोहगनो क्या रे। अब
हित करि आरत चरि बुधजन, जन्म जन्ममें चरना क्या
॥ २ ॥ शाल० ॥ ४ ॥

(७) भजन ।

या नित चितवो उठिबे, मोर, मे, है कौन कहा न
आयो, कौन इमारे टोर ॥ या० ॥ टेक ॥ दीमत कौन
कौन यह चितवत, कौन कस्त है शोर । ईश्वर, कौन कौन
है सेवक, कौन करे ककभोर ॥ या नित० ॥ १ ॥ उप-
जत कौन मर को भार, कौन डर नखि घोर । गया नहि
आवत कन्हु नाही, पणिपुन मर ओर ॥ या नित० ॥ २ ॥
और और मे और रूप हवे, परनति करि नद ओर ।
स्याग धर डोली याहीत, तेरी बुधजन मोर ॥ ३ ॥

(८) गगन सारग ।

तन देख्यो अथिर धिनोरना ॥ कन ॥ १ ॥ चहिर
चाम चमक टिसलाये, माहीं मैल अलिये । बान्ह नवान
पुटापा मरना, रोगशोर उषनाकेना ॥ कन० ॥ २ ॥ अमर
अमुरति नित्य निरजन, एकरूप निज मानना । बन
करस रम गध न जारि, पुन्य पार नि मानना ॥ कन०
॥ ३ ॥ करि विवेक उर पाणि पगिला, मेर विद्वान

है ॥ गुरु० ॥ तोमैं तेरा जतन बतावे, लोभ कछु नहि
चावै है ॥ गुरु० ॥१॥ पर सुमानको मोरया चाहै, अपना
उमा बनारै है । मो तो कबहुँ हुवा न होसी, नाहक रोग
लगावै है ॥ गुरु० ॥२॥ छोटी खरी जम करो कमाई,
तैसी तेरै आवे है । चिन्ता आगि उठाय हियामैं, नाहक
जान जलावै है ॥ गुरु० ॥३॥ पर अपनारै सो दुख पावै,
धुधजन ऐसे गावै है । परको त्यागि आप थिर तिष्ठै, मो
अविचल मुख पावै है ॥ गुरु० ॥४॥

(२९) राग—आसावरी जलद नेताल्ला ।

— आगँ केहा करसी मया, आ जासी जब बाल रे ॥
॥ आगँ० ।टेका। हयों तो तँने पोल मचाई ज्यों तौ होय
समाल रे ॥ आगँ० ॥१॥ अठ कपट करि जीव सताये,
हरया पराया माल रे । सम्पत्तिसेती घाप्या नाहीं, तकी
बिरानी बाल रे ॥ आगँ० ॥२॥ सदा भोगमँ भगन रक्षा
नृ, लख्या नहीं निज हाल रे । सुमरन दान किया नहि
माइ, हो जासी पैमाल रे ॥ आगँ० ॥३॥ जोचनमें जुपती
भग भूल्या, भूल्या जब था बाल रे । अचहुँ धारो धुधजन
ममता, मदा रहहु सुख हाल रे ॥ आगँ० ॥४॥

(४०)

— बाबा ! मैं न काहू का, कोई नहीं मेरा रे ॥ बाबा०
॥टेका। सुर नर नारक तिरयक गतिमैं, मोकों करमन घेरा

१॥ १५० ॥ १॥ पिता भूत तिय कुल परित्त,
 २॥ १५१ ॥ २॥ त्वधन धन भवन जड़ न्याय,
 ३॥ १५२ ॥ ३॥ यादा० ॥ २॥ मुक्त विभाव जड़
 ४॥ १५३ ॥ ४॥ त्वधन धन के रा रे । विभारचक क्षत्रि
 ५॥ १५४ ॥ ५॥ त्वधन धन ज्ञान धन ज्ञान रे ॥ साया० ॥ ३॥
 ६॥ १५५ ॥ ६॥ त्वधन धन, निरगि चिदानन्द-तेरा रे ।
 ७॥ १५६ ॥ ७॥ त्वधन धन त्वधन पढी है, बुधजन का न अवेरा रे ॥
 ८॥ १५७ ॥ ८॥

(४४)

धर्म दिन कोई नहीं अपना, मर सपति धन धि
 नहि जा में, जिमा रैत मपता ॥ धर्म० ॥ ८॥ आगि दिया
 गो पाया माई, याही है निरना । अर जो यरीगा मो
 पायगा तवै धर्म करना ॥ धर्म० ॥ १॥ जेठु मर समार
 रुद्ध है, धर्म क्रियें, तिरना । परपीडा । विमनादिक सबै,
 तर्क विष परना ॥ धर्म० ॥ २॥ नृपके घर मागी सामग्री,
 तवै ज्वर तपना । अर दागिद्रीकें ह ज्वर है, पाप उदय
 अपना ॥ धर्म० ॥ ३॥ नाती तो स्वार्थ के साथी, तोहि
 रिपति भरवा । अर गिरि मरिता अगनि जुद्ध में, धर्महि
 का सरना ॥ धर्म० ॥ ४॥ चित्त बुधजन मन्तोष धारना,
 पर चित्ता हरना । रिपति पडे तो ममता रखना, प्रमातम
 अपना ॥ धर्म० ॥ ५॥

(५७) राग अहिग ।

तैं क्या किया नादान, तैतो अमृत तजि मिष लीना
 ॥ तैं० ॥ टेक ॥ लख-चौरसी जौनि, माहित, श्रावक कुल-
 में आया । अब तजि तीन-लोक, के माहित, नवग्रह-पूजन
 धाया ॥ तैं० ॥ १ ॥ धीतरांगके-दरशनहीतैं, उदासीनता
 आवैं । न, तौ जिनके-सनमुख झाडा, सुतको ग्याल
 खिलायें ॥ तैं० ॥ २ ॥ सुरग, सुम्पटा, सहजें पाउ, निश्चय
 मुक्ति मिलायें । ऐसी जिनवर-पूजनसेती, जगत, कामना
 चावैं ॥ तैं० ॥ ४ ॥ बुधजन मिलैं सलाह कई तन, तू धारि
 रिजि जावैं । जथाजोगको, अजथा, मानैं, जनम जनम
 दुख पावैं ॥ तैं० ॥ ४ ॥

(६६) राग-कनड़ी ।

उत्तम नरभव पायकै, मति भूलै रे रामा ॥ मति भू०
 ॥ टेक ॥ बीट पशूरी तन, जबर-पाया, तर, तू रखा
 निकामा । अब नरदंही पाय मयाने क्यों न भजै प्रभुनामा
 ॥ मति, भू० ॥ १ ॥ सुरपति, याकी-चाह, कतन, उर, कब
 पाऊं नरजामा । ऐसा रतन श्रावक, माई, क्यों खोवत रिन
 कामा ॥ मति भू० ॥ २ ॥ धन जोवन, तन, सुन्दर पाया,
 भगन भया लखि, मामा- । काल अचानक भटक
 खायगा, परे रहेंगे टामा ॥ मति० ॥ ३ ॥ अपने स्वामीके
 पदपूज, कौ दिये मिरामा । मति-कपट अब

ना ॥ मति० ॥५॥

(७५)

तुनि मूढ़ अज्ञानी ॥ तेरो० ॥ टेका ॥
 तारपी, नतकाल दुखखानी ॥
 न मिलि बच भय, ज्यों पयमाही
 नहि मानि, मिथ्या एकजा मानी
 ॥ १० ॥ ११ ॥ तू तो पुषजन दया दाता, तन जड सरधा
 प्रानी, त ही अविचल सुरी रहेंगे, होय मुक्तिरर प्रानी
 ॥ तरा० ॥ १२ ॥

(७६) राग—ईमन ।

तू मेरा कया मान रे निपट अयाना ॥ तु० ॥ देख ॥
 भय जन पाट मान मुत टारा, बहु पयिकजन जान रे ।
 इनते प्रीति न ला विछुरेगे, पापगो दूर-राने रे ॥ तु०
 ॥ १ ॥ इयसे तन आतम मति आने, यो जड़ है तू ज्ञान रे ।
 मोह उदय बरा भरम परत है, गुरु मिलवत मरधान रे ॥
 ॥ तु० ॥ २ ॥ षोडल रग सम्पदा जग की, छिनिमि जात
 बिलान रे । तमाशवीन बनि यातें पुषजन, सचत भमता
 दान रे ॥ तु० ॥ ३ ॥

(७७) राग—भारह ।

मति भोगन राचीनी, मय भवमें दुख दैत धनी ॥
 मति० ॥ टेका ॥ इनके फारन गति गति माही, नाहक नाची

जी । श्रुते सुखके काज धरममें पाद्री माची जी ॥ मति०
 ॥१॥ पुरवकर्म उदय सुख आया राजी, माची जी । पाप
 उदय पीड़ा भोगनमें, क्यों मन रुाची जी ॥ मति० ॥१॥
 सुख अनन्तके धारक तुमही, पर क्यों जाची जी । बुधनन
 गुरुका वचन हियामें, जानौ माची जी ॥ मति० ॥३॥

(८०)

मम्यग्ज्ञान बिना, तेरो जनम अकार्य जाय ॥ मम्य
 ग्ज्ञान० ॥ टेक ॥ अपने सुखमें मगन रहत नहिं परकी लेत
 बलाय । सीख सुगुरुही एक न मानै, भय भयमें दुख पाय
 ॥ मम्यग्ज्ञान० ॥१॥ ज्यों कपि आप काठ लीलाकरि,
 प्राय तजै बिलेलाय । ज्यों निज सुखकरि जालं भकगिया,
 आप मरै उलझाय ॥ मम्यग्ज्ञान० ॥२॥ रुठिनरमायो मव
 धेन उचारी, छिनमें दूत गमाय । जैसे रतन पायक भाइ,
 मिलखे आप गमाय ॥ मम्यग्ज्ञान० ॥३॥ दमशक्ति गुरुको
 निहचैकरि, मिथामत मति ध्याये । सुरपति राधा गवत
 याफी, ऐसी नर परजाय ॥ मम्यग्ज्ञान० ॥४॥

(८६) गग—मालमोम

अब नृ जान रे चेतन जान, तेरी होचित है नित हान
 ॥ अ० ॥ टेक ॥ रथ वाजि करी अमराारी, नाना विधि
 भाग जपारी । सुन्दर तिय सेन मँवारी, तन रोग भयी पा
 ग्यारी ॥ अ० ॥१॥ ऊँचे गढ़ महल बनाये, बड़ तोष

ने दुरमति मिर घूला रे ॥ भगन्त० ॥ ४ ॥

(३०) राग—धमला ।

आया रे जुड़ापो मानी सुवि वृधि विमरानी ॥ टेक ॥
श्रवणसी शक्ति घटी, चाल चाल अटपटी, दह लटी भूख
चटी, लोचन भरत पानी ॥ आया रे० ॥ १ ॥ दातनसी
पक्ति टूटी, हाडन की मधि छूटी, कायासी नगरि छूटी,
जात नहि पहिचानी ॥ आया रे० ॥ २ ॥ बालोंने वरन
फेरा, गगने शरीर घेरा, पुत्रह न आये नेरा, औरोंकी
कहा कहानी ॥ आया रे० ॥ ३ ॥ भूधर ममुक्ति अच, म
हित करगो क्य, यह गति हूँ है जय, तर पिछव है प्रानी
॥ आया रे० ॥ ४ ॥

(३१) राग—सोमठ ।

अन्तर उज्जल करना र भाई ! ॥ टेक ॥ कपट
कपान तज नहि तपलौ, धरनी ह्राज न मरना रे ॥
अन्तर० ॥ १ ॥ जप तप तीव्र जत्र प्रतादिक आगम
अर्थ उचरना रे । मिय कपाय कीच नहि धोयो, यों ही
पचि पचि मरना रे ॥ अन्तर० ॥ २ ॥ गहिर भय क्रिया
उर शुचिमो कीये पार उतरना रे । नाही है मय लोक
रजना, ऐसे चेदन वगना रे ॥ अन्तर० ॥ ३ ॥ कामादिक
मनमौ मन मैला भजन स्थि कया तिरना रे । भूख नील
वसनपर कैमै, केसर रंग उद्यगना रे ॥ अन्तर० ॥ ४ ॥

॥ टक ॥ कठिन कठिनकर नरम पार्दे, तुम लेगी आमान ।
 धर्म विमारि विषयमें राची, मानी न गुरुकी आन ॥ वृथा०
 ॥ १ ॥ चकी एक मतगज पायो, तापर ई धन दोयो ।
 बिना सिक्के बिना मतिहीको, पाय सुधा पग वोयो ॥
 वृथा० ॥ २ ॥ काहू शठ चिन्तामणि पायो, मरम न जानो
 ताप । रायस देखि उदधिमें फँस्यो, किर पीछ पछताय
 ॥ वृथा० ॥ ३ ॥ मात विमन आठो मद त्यागो, कुरुता
 चित्त निधारो । तीन रतन हिरदम धारो, आरागमन
 निगरो ॥ वृथा० । ४ ॥ भूधरदाम कहन भविजनमों,
 चेनन अर तो सम्हारो । प्रभुको नाम तरन तारन जपि,
 कर्मफन्द निरगरो ॥ वृथा० ॥ ५ ॥

जैन ज्ञातक (प० भूधरदामजी)

(५७) वैराग्यसामना ।

कम गृहवासमो उदाम होय मन सेउ, बेउ निजरूप
 गति गोकु मन-करीषी । रहि हो अडोल एक आमन अचल
 अग, सहिही परीक्षा शीतघाम मेघ भगीषी ॥ भाग्यममाज
 सान कनवी सुनै है आनि, ध्यान दल जोर जीतु सेना
 मोह अरीषी । एरुलविहारी जथाजात लिंगधारी नच, होउ
 इच्छाचारी जनिहारी हो या धरीषी ॥

(५८) राग और वैराग्यका अन्तर ।

रागउद भोगमार लागत सुहावनेमे, बिना राग ऐसे

न हि त्वं नाप्यस्ये ॥ एतन्मो पापं न त्वं सती
 अथ गतं न त्वं प्राप्तिं त्विहोत न्याये ॥ १॥ गतं
 न त्वं गतं न त्वं न त्वं, गतं मिष्टं सुखं असारं
 गतं न त्वं गतं न त्वं न त्वं, गतं न त्वं न त्वं, गतं
 'गतं न त्वं न त्वं न त्वं न त्वं' ॥ १॥

(१०) गतं न त्वं न त्वं (सर्वथा)

न हि त्वं न त्वं न त्वं न त्वं, पूर्यपुण्यं विना हि
 दत्तं न त्वं न त्वं न त्वं न त्वं, गतं त्वं गतं न त्वं
 न त्वं न त्वं न त्वं न त्वं, गतं त्वं गतं न त्वं, त्वं परि-
 त्तं न त्वं न त्वं न त्वं न त्वं, गतं त्वं गतं न त्वं, "गतं न
 त्वं" न त्वं न त्वं न त्वं ॥

(२०) गतं न त्वं न त्वं ।

मातृभिता न त्वं गतं न त्वं, उ जी सत मातृ कुधात भगी
 है । मातृभिता न त्वं गतं न त्वं, चामके बेठन बेठ घरी
 है ॥ नाति तो आय लगे अथ ही, एक घायम जीव पक्ष
 न घरी है । दहदशा यह दीयत आत, घिनात नहीं किन
 दुद्धि हरी है ॥

(११) समाप्तं न त्वं न त्वं न त्वं न त्वं । वचित्त-मनसः ।

काहूर पुत्र जायौ काहूके वियोग आयौ, काहू राग
 रग काहू गोत्रा रोई करी है । जहा मान उगत उछाह गीत
 मान दगे, माहू मर्म ताही धान हाय हाय परी है ॥

ऐसी जगरीतिको न देखि भयभीत होय, हा हा नर मूढ़
तेरी मति कौनै हरी है । मानुषजनम पाय मोहत निहाय
जाय, सोवत कतोरनकी एक एक घरी है ॥

(२०) मोरठा

फर फर जिनगुन पाठ, जात अमारथ रे जिया ।
आठ पहरम माठ, घरी घनेरे मोलकीं ॥२२॥
कानी कौड़ी काज, कोरिनको लिख देत रत ।
ऐसे मूरखराज, जगनामी जिय दखिये ॥ २३ ॥

दोहा ।

कामी कौड़ी रिपयमुख, भवदुरा करज अन्तर ।
निना दिय नहि छूटि है, लंगरु दाम उधार ॥२४॥

(२५) शिक्ता छापय ।

दश दिन रिपयविनोद, फेर बहु रिपतिपरपर ।
अशुचिगेह यह देह, नेह जानत न आप जर ॥
मित्र धनु मनमघ और, परिजन जे अमी ।
अरे अध सय धध, जान स्वारथके सगी ॥
पराहित अमान अपनौ न कर, मूढ़गज अत्र समझ उर ।
तजि लोकलान निज काजफर, आज दार है कहत गुर ॥

(२६) कवित्त मनहर ।

जौलां देखे नेरी काट्ट रोगमौ न घेरी जौलां जरा नहि
नेरी जामौ पराधीन परी है । जौला, जमनामा घेरी दय

लक्ष्मीको ॥ यौ पन दोइ निगोइ द्ये नर, डारत क्यौ नरै निच जीमो । आये हैं मेर अजौ गठ चेत, “गई सु गई अर राग रही, को” ॥

(३०) कविच-मातर ।

मातर नर दह सब कारजको जोग येह, यह तौ सिखात दात वेदनमै पँचें हैं । तामे तरनाड धर्मसेवनकी समै भाई, सेये तर निपे, जम माखी मगृ रचे हैं ॥ मोह मग मोये घनरामाहित रोज रोये, याँही दिन खोये राय कोदौ जिम मचें हैं । अरे सुन वारे अर आये मीम धीरे अजौ, मायघान हो रे नर नरकमौ बचें हैं ॥

(३१) मत्तगयद (सत्रिया) ।

बाप लगी कि बलाय लगी, मदमत्त भयौ नर भूलत त्यों ही । बृद्ध भयै न भन भगवान, निपे निप रान अघान न क्यौ ही ॥ मीस भयौ बगुलामम सेत, रद्यो उरअतर “याम” अजौ ही । मानुषमौ मुक्ताफलहार, गँवार तगा द्वित तोरत यौ ही ॥

(३२) ससारी जीवका चितवन ।

चाहत हैं धन होय किमी निघ, तौ मर कान मरै जियरानी । गेह चिनाय करू गहना बद्धु, व्याहि सुतासुत भँटिये भाजी ॥ चिन्तत यौ दिन जाहि चले, जम थानि

५ — 'अना नेल छिलारि गये, 'रहि
'उरि जे 'सार्' ॥ १॥

पञ्चमद (मर्यादा)

१५ मध, मत्त मतग उत्तग सरे ही ।

१६ 'अना' उन जोर उरोरन कोण
'उरि जे' उरि जे उरि नयौ ह नर, उरि चले उठि
'उरि जे' उरि जे उरि जे उरि जे उरि जे उरि जे
'उरि जे' उरि जे उरि जे उरि जे उरि जे उरि जे

(२८) 'अभिमान' निषेध । कश्चित्त मनहर ।

कचन मज्जर भये मोतिनके, पुज परे, घने लोग छार
सरे मारग निहारते । जात पढि होलत है मीने सुर
पोला है, काटुकी हू थोर नीके ना चितारते ॥ कौली घन
सामे कोऊ रहै थो न लागे तेइ, फिरै पाँच नागे पामे
परपग क्कारत । एते प अयान गरमाने रहै रिमौ पाय,
धिक है समझ ऐसी धर्म ना मँभारते ॥ ३४ ॥

(३५) कश्चित्त-मनहर ।

देखौ भरजोवनम पुत्रको त्रियोग आयौ, तैम ही
निहारी निज नारी कालमगम । जे जे पुन्यवान जीव दीसत
है या मदीपै, रक मये फिरै तेउ पनहीं न परम ॥ एते प

१ नाड २ मछान । ३ थटारी । ४ छोटी आवाजमें । ५
कय तर । ६ दूसराक पैर । ७ मूर । ८ जूता ।

अभाग धनजीवसौ घरे राग, होय न विराग जाने रहूंगो
अलगमै । अखिन विलोकि अव मुमै'री अधरी कर ऐसे
गतरोगरो इलाज कहा जगमै ॥३५॥

(३६) श्लोका ।

जैनचन अन्ननपटो अजि सुगुरु प्रवीन ।

रागतिमिर तऊ ना मिटै उड़ो रोग तरलीन ॥३६॥

(३७) श्रुति-मनहर ।

जोई दिन मटै मोई आरम अग्र्य घट बूढ बढ बीते
जम अजुलीकौ जल है । देह नित छीन होन नेन तेजहीन
होत, जोवन मलीन होत छीन होत उल है ॥ आन जरा
नेरी' तरु अतरु' अहेरी आनै परमौ नजीक जात नर-
मौ निफल है । मिलकै मिलापीजन पछत कुशल मेरी,
ऐसी दशामाहीं मित्र ! काहेकी कुशल है ?

बुढापा । (३८) मत्तगायद (मयैया) ।

दृष्टि घटी पलटी तनही छनि, कर भई गति लंक'
नई है । रुठ रही परनी घरनी अति, कर भयो परियक'
लंड है ॥ कोपत नारु' बहै मुख लार, महामति' मगति
छारि गई है । अग उपग पुराने परे, तिशना उर और
नपीन भई है ॥ ३८ ॥

१ जलजतु । २ पास ३ रोगरूपी शिकारी । ४ नरकर
(भुक्त कर) । ५ पलंग, शय्या । ६ गदन, ७ सुबुद्धि ।

जयानी को दुःशा । (४०) भक्तगण (सर्वेश) ।

देखहु जोर जग मटकौ, जमराज महीपतिकी अग
रानी । उज्जल केश निगान धरै, बहु गोगनभी सग फौज
पलानी ॥ कायपुरी तजि भावि चर्या निहि, आगत
जोगन भूप गुमानी^१ । लट लई नगरी मगरी, दिन दोय
मै खोय है नाम निशानी ॥ ४० ॥

मनुष्य जन्मकी मार्यवता । (४१) भाटा ।

हुमती हित तजि जोगन ममय, मंगरु रिपय रिहार ।
मल^२ साट नहि सोइये, जन्म-जगहर मार ॥ ४१ ॥

स्तव्यशिक्षा । (४२) फचित्त मनहर ।

दवगुरु साचे मान माचौ धर्म द्विये आन, माचौ ही
नखान मुनि साचे पथ आन रे । जीवनकी त्या पाल भूठ
तनि चोरी टाल, देख ना मिगनीगाल^३ तिमनाघटाय र ॥
अपनी बडाई परनिंदा मत कर भाई, यही चतुर्गई मठ
मामकी नचाय रे । माघ पटर्म^४ माघमगतिर्म^५ बैठ वीर,
जो है धर्मसाधनको नेरे चित्त चाय रे ॥ ४४ ॥

चार ग्ल । (४५) फचित्त मनहर ।

माचौ देव मोई जाम दीपसौ न लेग मोई, यहै गुरु
जोर उर काहसी न चाह है । मही धर्म वही जहाँ धरणा

१ अभिमानी । २ दुष्ट, नीच । पत्थर । ३ दूमरो को छड़की ।

प्रवान दही, अथ जगत् प्रत एवमौ नयाह है । ये ही
जगत् जन चार इनकी १०० गार, साचे लेहु थूठे डार
नरमौही लाह है । मात्त तवक पिना पशुके समान गिता
सात यादि वान औन ॥ ४५ ॥

सांच ॥ ४५ ॥ [४६] छणय ।
जो जगत् ॥ ४६ ॥ स्तवक जेम निहार ।
जगत्त ॥ ४७ ॥ पार उतारै ॥
आदि अत ॥ ४८ ॥ रचन सरकी सुखदानी ।
गुन यन ॥ ४९ ॥ नोगमी नादि निशानी ॥
मात्त महज तग किगौ तर्धमान क बुद्ध यह ।
ये चिद्ध जान जाक चरन नमा नमो मुक्त देव यह ॥ ४६ ॥

(४०) सप्रच्यमन । दोहा ।

जुआगेलन माय मत्त चया रिमन शिकार ।
चोर्ग पर रमनी रमन, मानौ पाप निवार ॥ ४७ ॥

(४१) जुआ निषेध छणय ।

समल पापमत्त, आपटात्त कुलच्छन ।
कलहवेत दारिद्र देत, दीमत निज अन्धन ॥
गुनममेत जम सेत, केन रवि रोहत जैमै ॥
औगुन निरर निरत, लेन लखि बुधजन एमै ॥
जुआ ममान इह लोवर्म, थान अनीति न पेगिये ॥

इम पिसनरायके खेलकौ, कौतुकहू नहि देखिये ॥५१॥

(५०) माम निषेध—छप्पय ।

जगम जियकौ नास, होय तम माम कहावैं ।

मपरस आकृति नाम, गन्ध उर धिन उपजावैं ॥

नरकचोग निरदई खाहिं, नरनीच प्रधरमी ।

नाम लेत तज देत, असन उत्तमकुलपरमी ।

यह निपटनिघ अपवित्र अति, 'कृमिकुलरामनिधाम नित ।

आमिष' अभक्ष यागो सदा, बरजौ दोष दयालचित ॥५२॥

(५३) मदिरानिषेध—दुमिल (मरैया) ।

कमिराम कुवाम मराप' दहै, शुचिता मय छीजत जात

मही । जिहिं पान कियै सुधि जात हियैं, जननी नन

जानत नार यही । मदिरा मम आन निषिद्ध कहा, यह जान

भले कुलमें न गही । धिक है उनको वह जीम जलौ,

'निन मूदनके मत लीन' कही ॥ ५३ ॥

(५४) वेश्या निषेध । दुर्मिल (मरैया) ।

धनकारन पापनि प्रीति कर, नहि नोखत नेह जथा

तिनकौ, लग चाखत नीचनके मुँहकी, शुचिता मय जाय

छियै जिनको ॥ मद मास बजारनि खाय सदा, अधले

रिमनी न कर धिनकौ । गनिका सग जे सठ लीन भये,

धिक है धिक है धिक है तिनको ॥ ५४ ॥

(११) प्राग्य निषेध—कश्चित् मनहर ।

जानम उमै पमो खान न मरीय जीय, प्रानननौ
 नग ॥ न पूनी जिय यहै है । कायर सुभाय धरै काहूँ
 न जाय ॥, लखीसौ डरै दात लिपि तुन रहै है ॥ काहूँ
 मी - गण पुनि काहूँ न पोष चहै काहूँक - परोष' पर-
 ॥ नहि रहै है ॥ नेकु स्वाद मारिवेसौ ऐमे मृग मारि-
 ग्या, हा हा र । कठोर तेरो कैम कर' यहै है ॥

(५६) चारी निषेध-द्वयम् ।

चिता तन न चौर, रहत चौमापत मारे ।

पीटे 'यनी मिलोय, ओर निर्दंड मिलि मागें ॥

प्रजापान करि षोड, -तोपमो रोष उडार्नि ।

५ मर महा दुःख पैगि, अत नीचो गति पाव ॥

अति विषमिभूत चोरी निम्न, प्रगट राम आनं नन ॥

परितो अदत्त अगार गिन, नीतनिगुन परमे न कर॥५६॥

(१७) परम्यीसैवन निषेध ।

॥ - वृत्तिपद्धति गुणगहन, दहन शयानलामी हैं ।

सुतमचद्रघनघटा, तद्दृग्वरन छर्द है ॥

• - धन मर मोग्यन पूष-धर्म दिन माझ समानी ।

शिवतिष्ठन्नमनिशम, धामः चैव यस्यानी ॥

(पराह । २ लो के लिये । ३ तलवार, हाथ । ४ दूध
या घन । ५ से जानें वाली ।

इहिमिनि अनेक औगुनमरी, प्रानहग्न फौमी प्रवल ।
मत्तं ररन् मित्र थद जान जिय, परगनितामा ग्रीनि पल ॥१७॥

(१८) परन्नात्याग प्रगमा—मिल (मयैया) ।

दिमि तीपर लोये' रनी यनिता जडजीर' पतग जहाँ
परतै । दग पायत प्रान गँगायत है, ररने न गँह हठमौ
नरत ॥ इहि भाँति रिचच्छन अच्छनके वश, होय
अनीति नही करते । पर ती' लरि ने वरता निरसै, यनि
हैं रनि हैं रनि हैं नर ते ॥ १८ ॥ दिदशीलशिरोमनि
रारजम, जगमें जम आरज ते' लहै । निनरु जुगलोचन
चारिज' है, इहि भाँति अचारज आप कहै ॥ परकामिनि
को मुगचद चिते, मुँट जाहि मटा यह देख गहै । धनि
जीवन है तिन जीवनमौ, रनि मायउने उरमाय बहै ॥१९॥

(६०) कुशीलनिन्दा—मनगर (मयैया) ।

जे परनारि निहारि निलज्ज, हँम रिगम युगिहीन
बडेर । जूठनकी निमि पातर पेरि, सुणी उर कुरुर होत
धनेरे । है जिनरी यह देख बहै, तिनसँ इम भौ अपरी
रति है रे । ह्व परलोकविष दृढ़ दड, ररै गतरुड मुग्ग
चलकेरे ॥६०॥

१ दीपर की शिखा । २ अक्षानी । ३ परग्री । ४

कमल । ५ इन्द्रियम ।

(८४) कुम्भनिन्दा ।

गा उठ नग अघ मयी, महज मय लोगन लाज
गैर । गाय गिता नर मोख रह, विमनादिक सेवन
नर । गाय गौर गचै रसकाव्य कहा कहिये तिनर
नर । अय अमृभनकी अखियानमें भोक्त है रज
र । म । ॥

(६५)

रुचन रुभनकी उपमा, कह देत उरोजनकी कनि
वार । उपर अयाम विलोचन है, मनिनीलम की टकनी
है छार ॥ यो सतर्जन कहे न कुपखित, ये जुग आमि
पपिड उधार । मायन मार दड मुँह डार, भये इहि ह
किधी कुच कार ॥

(६६) गुह अकार—कवित्त मनहर ।

ढईमा सराय राय पथी जीय रस्यो आय, रत्नय
निधि जाय मोख जाको घर है । मिथ्या निशि कारा जह
मोह अ धरार भारी, कामादिक तस्कर ममूहनरी ध
है ॥ सोय जो अचेत मोई खोय निज सपदाकी, तहा गु
पादरु पुनार दया कर है । माफिल न हज आत ऐमी है
अवेरी रात, “जाग रे रटोही यहाँ चोरनकी डर है” ॥

(६७) कथाय जातनेरा उपाय—मत्तगय सवेया ।

छेम निगम डिमा धुमनी विन, मोघ पिशाच उर न

टगौ । कोमलमात्र उषात्र विना, यह मान महामद कौन
हैगौ । आर्नम-सार-कुठौर विना छलमल निरुदन कौन
करेगौ । तोष शिरोमनि मत्र पदे विन, लोभ कयी विष
क्यों उतरैगौ ॥

(७०) मिष्ट वचन ।

काहेको सोलत घोल बुरे नर, नाहरु क्यों जस वर्म
गमारि । कोमल चैन बने किन ऐन, लगु कछु है न सने
मन मात्र ॥ तालु छिदे रमना न किंदे न घट कछु अरु
दरिद्र न आवि । जीम कह जिय हानि नहीं तुम जी मर
जीवनसौ सुख पात्र ॥

(७१) धैर्यधारणापदेश—रचित मनहर ।

आयो है अचानक भयानक अमाता कर्म, ताके दूर
परिवेको गली कौन अहरे । जे जे मन भाये ते कमाये पूर
पाप आप, तेई अब आवे निज उदयनाल लह रे ॥ एरे
मेरे गौर काह होत है अधीर याम, कौउरौ न सीर तू
अकली आप मह रे । भय दिल्गीर कछु पीर न विनिमि
जाय, ताहीत सयाने तू तनामगीर रह रे ॥

(७२) होनहार दुनिचार—रचित मनहर ।

कैसे कमे चली भूप भूपर त्रिस्थात भये, पैरी बुल
पाँप नेह भौहोंक त्रिकारमौ । लघे गिरि सायर' दिवा

आज किये हैं भट कोटिन हुआसा ।

५. ११. १. साथ ही न हार मानी, क्यों ही उतरे न

७ - ० सा । दयमौ न हारं पुनि दानेमौ न

— १८१ — न हारे एक हारे होनहारमौ ॥

७७) वैद शिक्ता—मत्तगयन् सर्वैया ।

८ लाभ लिलार लिख्यौ, लघु दीरघ सुकृत्कं

उ १४ । गो लहि ई कहु फेर नहीं, मरुदेशके ढेर सुमेर

॥ घाट न राह कही वह होय, कहा कर आसन

अथ निचारे । रूप विधौ भर मागर्म नर, गागर मान

॥पल जन्म सारि ॥

(७७) महामुद यणन—रवित्त मनहर ।

जीवन पितक ताम कहा पीत घासी रह्यो, तापे अध
 कौन कौन करै हर फेर ही । आपको चतुर जान औरनको
 मूढ़ मान, साक होन आई विचारत सबेर ही ॥ चामडीक
 चखुनंत चितनै समस्त चाल, उरसो न चौधै कर राख्यो
 है अंधर ही ॥ माहैं बान तानके अचानक ही ऐसी जम,
 दीसैं है मसान थान हाइनको डेर ही ॥

(८१) चौरीम सार्थरुगेके चिह्न—छापय ।

गडपुत्र^१ गजराज, राज^२ बानर मनमोह ।

भाव^१ कमल माधिया, सोम^२ सफरीपति सोहै ॥

(मूव । २ चलाने । ३ निगना । ४ बैल । ॥ घाड़ा ।

६ चरगा । ७ चट्टमा । ८ मगर ।

सुरतरु गैडा महिष, कौल^१ पुनि सेही जानौ ।

चक्र हिरन अत्र^२ मौन, कलश कच्छप उर आनौ ॥

शतपत्र^३ शर अहिगज हरि^४ रिपभदेव जिन आदि ले ।

श्रीमद्मानलौ जानिये, चि ह चारु चौगीस ये ॥८१॥

(८९) द्रव्यलिङ्गी मुनि मत्तगयद मधैया ।

शीत महै तन धूप दहै, तरुहेट रहै करना उर आनै ।

सुड कहै न अदत्त गहै, वनिता न चहै लर लोभ न

जानै ॥ मौन गहै पढ़ि भेद लहै, नहि नेम जहै प्रत रीति

पिछानै । यौ निरहै पर मोर नही, जिन ज्ञान यहै जिन

गीर गयानै ॥८९॥

(९०) अनुभय प्रशमा रुचि मनहर ।

जीवन अलप आयु बुद्धि बल हीन तामै, आगम

अगाधमिनु केमै ताहि डाक है । द्वादशाग मूल एक

अनुभौ अपूर्ण कला, भग्दाघहारी घनसारकी मलार^५

है ॥ यह एउ मीर लीज याहीनौ अभ्यास कीज, याकौ

रम पीजे ऐमो बीरजिन गारु है । इतनो ही सार ये ही

आनमनौ हितगार, यही लौ मदार^६ और आगै दूर

ढाक है ॥

१ मुअर, २ उररा, ३ कमल, ४ सिंह ५ कपूर ६ सुई,
७ काम की बात ।

जीवन कितक ताम कहा बीत बासी रह्यो, ताप अघ
 कौन कौन करे हर फेर ही । आपनो चतुर जानै औरनकी
 मूढ़ मान, साम्ह होन आइ विगारत सरेर ही ॥ चामहीके
 चखनत चितरे सकल चाल, उरसौ न चौध कर राग्यों
 है अंधर ही ॥ गह^१ बान तानके अचानक ही ऐसी जम,
 दीम^२ है ममान धान हाडनसौ ढेर ही ॥

(८१) धीमीम तावँर्योके बिह—छापय ।

गउपुय^३ मनगन, बान^४ बानर मनमोह^५ ।

का^६ कमल माथिया, सोम सकरीपति सोह^७ ॥

१ सुय । २ चलारे । ३ निस्ना । ४ बैल । ५ फोड़ा ।

६ चम्बा । ७ चम्मा । ८ मगर ।

सुरत रु गैडा माँहप, कौल पुनि सेही जाना ।

वच द्विरन अज मौन, रलग कच्छप उर आनी ॥
 गतपय^१ गल अहिराज हरि^२ रिपमदेव जिन आदि ले ।
 जीवद^३ मानलौ जानिये, चि ह चारु चौमीम ने ॥८१॥

(८९) द्रव्यहिंसी मुनि मत्तगयद मरीया ।

शीत महें तन धूप टहें, तरुहेट रहें करुना उर आनै ।
 मूड रहें न अदस गहे, वनिता न चहें लग लोभ न
 जानै ॥ मौन गहें पढ़ि भेद लहें, नहिं नेम जहें प्रत रीति
 पिछानै । यो निरहें पर मोख नही, यिन ज्ञान यहै जिन
 बीर रसानै ॥८९॥

(९०) अनुभव प्रशमा रुचि मनहर ।

जीवन अलप आयु बुद्धि नल हीन तामें, आगम
 अगाधमि^४नु केमें ताहि डारु है । द्वादशाग मूल एक
 अनुभौ अपूर्ण कला, भयदाघहारी वनमारसी^५ मलाक^६
 है ॥ यह एक सीख लीज याहीकौ अभ्यास कीन, याकी
 रस पीज ऐमो गीरनिन राक है । इतनो ही मार ये ही
 आतमकी हितकार, यही लौ मदार^७ और आयें हारु
 डारु है ॥

१ सुअर, २ रक्षा, ३ कमल, ४ मिह ५ कपूर ६ सुई,
 ७ काम की आत ।

जैन भजनावली

(६)

१. पिछान्या रे, मोह उदय होने तें मिय्या
 २. निच० ॥ टंक ॥ तू तो नित्य अनादि
 ३. गणना रे। पुद्गल जड़में राखि भयो तु
 ४. ॥ निच० ॥ १ ॥ तन धन जोरिन पु
 ५. निच माना रे। यह मय जाय रहन के ना
 ६. तस्याना रे ॥ निच० ॥ २ ॥ बालपने लडकन
 ७. जोरिन प्रिया जमाना रे। बृद्ध भयो सय सुधि गा
 ८. र्म शुनाना रे ॥ निज० ॥ ३ ॥ गई गई अय राख
 ९. रही तू समझ मियाना रे। बुद्ध महाचन्द्र विचारि जिन
 १०. पद नित्य रमाना रे ॥ निच० ॥ ४ ॥

(२७)

भाई चेत चेत मर्क तो चेत अय, नातर होगी सुगरी
 रे ॥ भाई० ॥ टंक ॥ लख चौराम्यमें अमता अमत
 दुगलम नरभय धारी रे। आय लई तहाँ तुच्छ दोष
 पत्रम काल मभारो रे ॥ भाई० ॥ १ ॥ अधिक लई त
 मौ अमनकी आयु लई अधिगारी रे। आधी तो सोने
 रोई तेरा धर्म ध्यान गिरारी रे ॥ भाई० ॥ २ ॥
 धारी गही पचास वर्षम तीन दशा दुगुकारी रे। बा
 अनाम जमान प्रियारम उदपने बलहारी रे ॥ भाई०

॥ ३ ॥ रोग अरु शोक सयोग दुःख बन्नि बीतत है दिन
मारी रे । गानी रही तेरी थापु मित्ती अरु सो ते नाहि
निचारी रे ॥ भाइ० ॥ ४ ॥ इतने ही में मिया जो चाहै
मो तू कर मुरझारी रे । नहीं फँसेगा फट बिच पड़ित
महाचन्द्र यह धारी रे ॥ भाई० ॥ ५ ॥

(=)

जीर तू झमत झमत मर गयो जो जय चेत भयो तन
गयो ॥ जीर० ॥ टेर ॥ सम्यकर्गन ज्ञान चरण तप
यह धन धूरि गियो । रिपय भोग गत रमने रमियो
छिन छिनमें अति मोयो ॥ जीर० ॥ १ ॥ क्रोध मान
छल लोभ भयो तन इन ही में उर भियो । मोहरायके
किन्कर यह मर इनके धमि बहे लुटोयो ॥ जीर० ॥ २ ॥
मोह निशोर सगारसु आयो आतम हित स्वर जोयो ।
घुम मठाचन्द्र चन्द्रमम होकर उज्ज्वल चिन रखोयो
॥ जीव० ॥ ३ ॥

~ ~ जिनेश्वर पद संग्रह ~ ~

(१६) लावनी राग भैरवा में

अपना भाग उर धरना प्यारे जी, अपना भाग मुर-
दान रहा । अपना भाग जिनने उर धारा, तिन पाया
शिव धान बढ़ा ॥ टेर ॥ नर भग पाय चतुर मति धूके,
यह मौका हितदान बढ़ा । जो करना मो निजहित कलर,

- ज ॥ अपना० ॥ १ ॥ धन जोयन
- 'मम ललचाता है । इन ही भावन
- प्ररी भरमाता है ॥ अपना० ॥ २ ॥
- द- लाया, इन समयें तु न्यारा है । ये
- तन प्यारे, तु सब जाननहारा है ॥ अपना०
- मढ़ेप मन्मोह छोड़कूँ, वीतराग परनाम
- पूजन प्रथम पद पावन, आप 'निनेश्वर' मरन
। अपना० ॥ ४ ॥

(८९) राग मरठो ।

जगतही भूठी मर माया, अर नर चंत वक्त पाया
॥ १ ॥ कचन परनी कामिनी, जोयनमें भरपूर । अतर-
ज्मि निहारत, मलमूगत मगहर, कुबी नर इनमें
ललचाया ॥ अरे नर० ॥ १ ॥ लन्भी तो चंचल रडी,
विनलीक उनहार । याके फर्त रचोजी, अपनी करो
सम्हार, विवरी मानुष भर पाया ॥ अरे नर० ॥ २ ॥
स्वच्छ सुगन्ध लगायकू, कण्ठके सुन मिगार । तिह तनम
तूरति कम्पी, सो गरीर है छार, रुधा क्या इनमें
ललचाया ॥ अरे नर० ॥ ३ ॥ तन 'नन ममता छाडिक्,
राग नेप निराग, शिव मार्ग पग गारियेनी, बर्म
निनेश्वर माग, सुगुरु ने ऐम मतलाया ॥ अरे नर० ॥ ४ ॥

(९०) पन् राग रेगता ।

आपके हिरदे मदा, सुविचार करना चाहिये । जापकर

अनुरूपता निरधार करना चाहिये ॥ ट ॥ त्यागक
 परका भक्तक, निज भावको निरमा करो । चढ़ि
 सीढीगता गिरा फि ना उतरना चाहिये ॥ आप० ॥
 ॥ १ ॥ धारिक समता मदन, तन दीनिने ममता मने ।
 लोभपियनिरुपि, नाहर ना गिरना चाहिये ॥ आप० ॥
 ॥ २ ॥ जान निनपरको मनन, रूपांतरा मुरत यही ।
 समार भागर पार यो, जल्दीसे निरना चाहिये ॥ आप०
 ॥ ३ ॥ श्रद्धा समझकर आचरन, जिनरानरा मारग
 यही । हितदाय निनेगर धर्मको, इत्यार रना
 चाहिये ॥ आप० ॥ ४ ॥

(२४) रेगता ।

निनधर्म रचपायके, स्वरुज ना किया ।

नरजन्म पायक वृथा, गमाय रथा किया ॥ ट ॥

अरहतद्वय सेन सर्व सुखकी मही, तजक कुटी कुटनरी
 अराधना गही ॥ पण अच तो परतद्र म्यन्त्र ज्ञानको हर,
 इनम रचे कुनीव जे, कुजोनिम पर ॥ जिन० ॥ १ ॥ परमग
 के परमगते, परमग ही किया । तजक सुगमरूपको,
 चलनार ही पिया ॥ निनधर्मम मोह काम लोभकी,
 भरोरम परो । तन इनको ये वर्ग नहे, लखि दूरसे
 दरो ॥ जिन० ॥ २ ॥ हिरदे प्रतीत कीनिये, सुद्वय र्म
 की । तनि रागदोष मोह, ओ कुटन कर्मको ॥ मजि सीत
 रागभाज जो, स्वरुज आपना । निविय पदके निकद, भाज

॥ ७ ॥ मनका मना निरोध, रोध मोच

॥ ७ ॥ पाप चीन, आप खोन कीनिये ॥

श्री. गुरुदेव ने कहा । शिष्याम कान

॥ गहा ॥ जिन० ॥ ४ ॥

(३०) पद राग म्याल ।

॥ १ ॥ दृष्टा गमाय महमा नहि पाय, मानुष जन्मसे

॥ १ ॥ मानुष जन्म निरोमी काया, उरखिये चतुर्गई ।

॥ २ ॥ यार्म पिछान किये जिन, काम कछू नहि आई जी ॥

मति दृष्टा० ॥ १ ॥ निनर धर्म दिगर तारों, यदि उर

गरनों भाइ । तौ आगम अनुमार दसगुरु, तत्परसि सुग

राट जी ॥ मति दृष्टा० ॥ २ ॥ खान पान अरु रिषयभोगके,

सेवनकी चतुर्गई । करर शूर पशु भी करते, यार्म कहा

बहाइ जी ॥ मति दृष्टा० ॥ ३ ॥ घणमगुर रिषयनिके कान,

निर्मय पाप कमाय । है नर कस्त रहा अनरय यह, शुभ-

शिक्षा न सुहाय जी ॥ मति दृष्टा० ॥ ४ ॥ बहुविधि पाप

कस्त हरखान, मय कुटव मिल खारै । दुर पायै जय नरक

वरामै, रोदन काम जु आयै जी ॥ मति दृष्टा० ॥ ५ ॥

मानुष देह रतनसम पाकर, जो निनहित कराय । कहत

‘जिनेश्वर’सो नरभयै, धारनसौ फल पावजी ॥ मति दृष्टा० ॥ ६ ॥

मनमोदनपत्रशती

(कविनर छत्रपति विरचित)

चार आराधना ग्रहण-शिक्षा ।

सवेया इन्तोसा ।

नरभर रत्नदीप आय चिदानन्द । कहा, मिथ्यापथ
काय-सद मग्न करत हो । कुगुरु कुटव कुणामनसे न ठग
आन, पाय भ्रुनवान इन वश क्यों परत हों ॥ इन वश
नर नारकादि परजायनिमें, जनमि जनमि फिरि फिरि क्यों
मस्त हो । सम्यक दर्श ज्ञान चारित दुविधि तप, रतन
अमोल काहे हिये न धरत हो ॥ ३३ ॥

जानी'पुरुष सपत्ति विपत्तिमें र्प विपाद नहीं करते
जसे भानु' उडे अर अस्त समै रक्त रूप, कोपाने'
धन आत-जान एक रूप है । तम पुष सपति विपति माँहि
समरूप, हरप विपाद दोऊ जानें भ्रम रूप है ॥ जौली
माँह करमसों नाश नाँहि सरवधा, तौली परनामनिमें रहै
दौरूप हैं । ज्ञान औ त्रिराग नल रोकि मर अस्त्रों,
वपरां मिटारि'हाल होय शिरभूष है ॥ ७३ ॥

जानीके वस्तुस्वभावका विचार ।

जीवन मरण लाभ हानि जम अपजम, तन धन पैरि-

११ ५ १ ३ । निज निज परिणामरूप मय परि-
 । १ होय कहै भाषी भगवान है ॥ काहूमेंतें
 । ३ प्रियोग होउ, मेर तो न यामें कहु
 । है । म तो एक ज्ञायक स्वभाव अविनाशी
 । १ विधि उटै परवान है ॥ ८५ ॥

यथार्थ ज्ञानका लक्षण ।

१०४ ज्ञान जब पुरे अस आत्मके, तब ये चिह्न
 भाष प्रकट है । भगवन भोगनमें सहज निराग भाव
 १०५ उमन पुनि लोभ उलटत है ॥ सयेकी न शोक अन
 १०६ न मोन जाके, अमय अक्रोव मन गरी सुलटत है ।
 १०७ तब दब उठार वर दयो वृष लाजभास, प्राणीनात प्यार
 उनमग उलटत है ॥ ८६ ॥

शिक्षा ।

तोहि इतनी ही जान करनी जरूर आत, और वनो
 न मनो हम न रुड़ डर है । जुक्ति नै- प्रमाणकरि वस्तु
 का स्वप्न जानि, स्वर पिछान करि भावना प्रसर है ॥
 परी जो अनादि धकी परगिष ममताकी, बानि निरवारि
 दुर अनोकुह^१ जर है । एतहीमें सय मिद्धि वसु रिद्धि नय
 निधि, या विना न मिद्धि सय विधा दोष घर है ॥ ९० ॥

१ वृद्धि । २ नाश । ३ कर्म । ४ मिथ्याभाग । ५ नय ।

६ वृत्त ।

ज्ञानविषय रमण करनकी शिक्षा ।

देखि तेरे घटम अखंड ज्ञान पुञ्ज जोति, जाग रही
जो प्रकामे मदा आप परकों । तीक्ष्ण स्वभावर जाकी
मरब तरफ मुख, मय ज्ञेय असिवेशी धरें शक्ति मरका ॥
मौह तरौ अग, नहिं दूसरौ प्रमग करि, दोषतें असग हरि
भरम अवरकों । ताहि रिपै रमि रिपेसामनासों रमि विवि-
धारन गमि बेगि जाउ शिरधरकों ॥ ९७ ॥

दुखका कारण ।

लोक धिति जेय निधि उद अनुमार मय, अपने
स्वभावरूप परिणमें सब ही । तहाँ मोह उदै करि निन
चाह अनुमार, परिणायी चाहे वे न परिणव कर ही ॥
होय तप आतुर रिपादित रिरोपपने, बेवै नहीं चाह त्याग
मुख गुर रनहीं । याही हेत धरौ भूत वर्तमान दुग्री भयौ,
भानी दुखी होय यो न ममै कछु फरही ॥ ११३ ॥

अपनी भूलसे दुखी ।

जैसे मदारी जो उगलि निन मुख तार, आपुही
उलझि पट्ट दुग्री होय मरै है । जैसे मूढ़ शुक गहि
नलिनीका नीचा होय, पर करि गृहो मानि पीजरामें परै
है ॥ जैसे काच भौन म्वान भूमि भूमि तन प्राण, दीपरुका

५ । तमें यह जीव भूलि आपना
नय चहुँगति दग भरे है ॥१७२॥

६ । तेका माहात्म्य ।

७ । ते नीप मुख परी मोती होय, केलिमें
८ । कमलोचना । ईगमें मधुर पुनि नीममें

९ । 'गक' मुख परी होय प्रान मोचना ॥

१० । 'पिपरि' परी मोती मम दिप, तपन तर्पण परी

११ । 'तु' सोचना । उत्पिष्ट मध्यम लघन्य जैसी रग

१२ । 'तु' फल लगे मनि पोच मति पोचना ॥१४७॥

अपराधीको मोक्ष नहीं होती ।

हानि राम जीवन मरण, जम अपजसः सुख दुख,
जयहार, इनका जुमल है । आपकरि आननके औरकरि
आपनरें, भये माने सरनवा पुधिसी न उल है ॥ कारज
औ फलण मरूपरी न पदचौनि, जाके ज्ञान नैननुमें छापी
मोहमल है । सो है अपराधी जिन आतम सरति बाधी,
पामी भयभीनके न लहै मोक्ष धल है ॥ १५६ ॥

आठ वस्तुओंको धिक्कार है ।

धिक्क वह रान जामें निमदिन चित रहै, धिक्क रकपन
जामीं सेवा पर करिये । धिक्क यह लक्षि बहु पैरकी करन

हार, धिक् अधनत्व जामें पेट हू न भरिये ॥ धिक् वह भोग जामें कुगति गमन होय, धिक् है अभोग जहाँ चाह नाहिं टरिये । धिक् वह सुरगम जासौ फेरि आगम हो, धिक् वह धर्म जासौ भ्रममेव धरिये ॥ १७९ ॥

मनुष्यका शरीर काने सांठेके समान है ।

यह भरतन घुन करि साये साँटे मम, दुखरूप गाँठ नमी भरौ सखत्र है । मूलमें न रस असानमें' प्रिम अर, मध्यकी अस्थि भरी व्याधिमी विचित्र है ॥ निषेय लोभमी निगारौ तौ निगारौ कोई, जामें नहीं रस स्वाद महा अपवित्र है । लगाय वर्म माधनमें करौ परभर रीज, तो अपार मार सुख भोगी यकलत्र है ॥ २१५ ॥

सुख दुःखका मूल कारण ।

होय मनचाही तहाँ मानत जगत सुर, अनचाही होय उहाँ दुख मानियत है । चाही अनचाही नहीं अपने परान रश, भवितव्य अर विधि सब आनियत है ॥ सुर दुःख हेत माँही राग द्वेष परिणाम, याही अमररि विधि बध रानियत है । जहाँ राग द्वेष नाहि तहाँ सुख दुःख नाहि, सुख दुःख मूल राग द्वेष जानियत है ॥ २३० ॥

लोक प्रवृत्ति और धर्म विधि ।

कोई देखादेखी कोई कुलकी प्रवृत्ति मार, अल्प

७ । तम यह जीव भूलि आपना
११ नहुँगति दर भरे है ॥१२२॥

१२ । माहात्म्य ।

१३ नीप मुख परी मोती होय, केलिमें
१४ रीचन। ईगम मधुर पुनि नीमम
१५ 'गङ्गा' मुख परी होय गान मोचना ॥
१६ 'निरि' परी मोती सम दिप, तपन तरपे परी
१७ तानना । उत्तिष्ठ मध्यम जघन्य जैमौ लग
१८ 'तुमै' फल लहे मति पोच मति पोचना ॥१४७॥

अपराधीको मोक्ष नहीं होती ।

हानि राम, जीवन मरण, जम अपजम, सुख दुख,
सपहार, इनका जुगल है । आपकरि औरनके औरकरि
आपनरें, भये मानें सरवधा बुधिसौ न बल है ॥ फारज
औ फारज मरूपकी न पदचौनि, जाके ज्ञान नैननुमें छायाँ
मोहमल है । सो है अपराधी निन आत्म सति बाधी,
पामी मयमानके न लहे मोक्ष थल है ॥ १५६ ॥

आठ वस्तुओंको धिक्कार है ।

धिक बढ़ गन जामें निमदिन चित रहै, धिक्करुपन
जामों सेग पर करिये । धिक्क उह लखि उह बैरकी करन

१ सर्प । २ कमल । ३ पत्ता पर ।

हार, धिर अधनन्व जामे पेट ह न नन्विः । चेह न
भोग जामों कुगति गन्न होन निद्रै कन्नेर द
चाह नाहि टरिरे । धिर वर सुखान बन्नेर केन कन्नेर
हो, धिर यह धर्म जामों स्वप्ने बन्नेर ॥ १८६ ॥

मनुष्यका शरीर काने मटिरे मन्नेर है ।

यह नखन पुन करि मुखे मटिरे क न दुख न
नमौ भगौ मखन है । मनुष्ये न न्नु कन्नेर दिग्ग
अर, मध्यसी अरग्या मी कन्नेर दिग्ग है ॥ नि
रम लोभमी विपारी नौ विपरी कटि कन्नेर मन्नेर
महा अपवित्र है । नगत्त कन्नेर कटि कन्नेर शत्रु,
तो अपार सार मुख भोगी नखन है ॥ १८७ ॥

मृग दुःखका मन्नेर है ।

होय मनवाही नदी मन्नेर कन्नेर मन्नेर प्रनवाही
होय नदी दुख मानियत है । नदी मन्नेर मन्नेर अपन
परि वग, मन्नेर य अ निदि मन्नेर है ॥ मुख
दुख हत मीश गगन्नेर कन्नेर कन्नेर विपरी यं
रानियत है । नदी मन्नेर नदी कन्नेर दुख नाहि,
मुख दुख मूल गगन्नेर कन्नेर है ॥ ॥

गोद मन्नेर कन्नेर मन्नेर ।

कोटि देवता मन्नेर कन्नेर कन्नेर शनि मान, अल

॥ १ ॥ कोई लान रोंद काज

॥ २ ॥ ग्याति लाम हन तनगौ ररत है ।

॥ ३ ॥ मयभाय ज्ञाता, ममतामगन मो

॥ ४ ॥ और प्रमाण जुक्ति प्रागममी ठीर

॥ ५ ॥ मयमागर तरत है ॥ २-१ ॥

मगररीका निषेध ।

॥ ६ ॥ तीर जोय मरगा अउय मोय, गरि न मरगौ कोय

॥ ७ ॥ रर रगमप । दह नगि जायगी विभूतिह पलायगी श्री,

गुण मयभाता कोइ ठहर न दागप ॥ लोर विरहार डमी

गुणनेनौ हान निमौ, इन्द्रजाल गशाल तिमौ तह नरी पारप ।

एमी अल्प शिस्ताप रहा मगररी गीर, राय भी जर अर

गुहित ममारप ॥ २६५ ॥

जनमानकी दश ।

बापिचरी दष्टिबरी देवत बनरी रनी, दीवत मरय

गुगरूप जामी रगा है । अतम्ग दष्टि करि, दरौ नेर नीक

करि, याले उपरात कौन दुस महि कमा है ॥ राजदर

पयटर आगिटर चोटर, र्जुन उपात्रि टर करि मन

कमा है । जम पट भूषणादि नाना भौति मोग रज, पीडौ

वात रिथारौ पुरषरी जौ रमा है ॥ २६७ ॥

तिर्यचोक दु ए ।

महाशीत महाताप महारोग तन व्याप, पीठपर भार दूरि

दश तक चलना । तन अममरय थौ परै है पगय उग
महत कुमेल मार सात पल कल ना ॥ पीडे भूय प्यामके
न धिरता गहत छिन, काटत ममक' डोंम काम रछु सल
ना । तीचण कपाय उडी चाहैं प न मिल कछु, धिग पशु
भर जामें रहै नित जलना ॥ २७१ ॥

देह की दशा ।

कारागार' मम यह देह तामौ कहा नेह' अस्थिरूप'
धून पापाखनिसौ सँगारी है । वेदी नयाजाल हरि पुरित
रुधिर माम, चाम हरि आरत मलमूत क्यारी है । मडन
रुमार खान पानके अघार बटु, रोगनिमौ भरी दुग दोष
निमा भरी है । रची विवि नेरी रैर आयुरूप उगी अति,
अग अँधेरी तौऊ लगै तोहि प्यारी है ॥ २७२ ॥

महा प्रशुभ ।

अशुभके उटै निज तजका अमार होय, ताहते विशेष
पति अमारमें गनिये । घनरा अलाभ पुनि उद्यम अमार
माँहि; अधिक अधिक पाप कर्म उदे मानिये ॥ साहस और
तनतेम बल बुद्धि नाश पिपै, मरतें अधिक पाप उदे
अनुमनिये । तातें हूँ हुम्पार तजि मनके निमार गोर, महा-
द स दोषकार पापहत बनिये ॥ २८७ ॥

समाप्तनारूप उराहना ।

मृत तन मनमध तेरे, वात पित्त कफ
र ॥ पीढ़े बुझा तथा गीत उष्णही न
गर अपवित्र मल धर है ॥ शुभ औ
पापकर्मफल उदै रूप तेरे हरम दुख-
न तैपानी परमाशुके धार्ता अरे, धनि तनी
५० शीत वर है ॥ २२३ ॥

५१, मन, जनकी अवस्था ।

मन क मान ज्यो दगन निनि जाय, पापही
उपाय पर जेहि कहा धनही । हाड माम मृत बीठे मग
जहु दोषाही, रोगनही धान कहा पोषे इम तनही ॥ परे
पाप मामम स्वाशुके सग मर, काह अपनागत है पादि
इन जनही । आटे मोनि नेर अर माम वा सघरे नर,
फेरत न काह धूप और निन मनही ॥ २५० ॥

धर्ममे हृद करनेकी शिक्षा ।

निर्ग सुख-तन कष्टही वष माधन ह्वे, ऐसी भय मानि
न निमुग होउ त्रय ही । धर्म सुख कारण है सुख धर्म
भारज है, कारण न कागज त्रिोधी होय कर ही ॥ कार-
णने कारणही मिद्धि भरववा जानि, चूझी न कदाचि यो

१ मिष्टा । २ वृथा ।

वसानें जन मघ ही । तातें तनि आलम अनादर धरम
मौहि, होउ मायधान यों उचारे गुस्सव' ही ॥ ३०७ ॥

धर्मकी शिक्षा ।

रमत निगोद रास बीनी है अनतफाल, काललान्ति
पाय लहि मित्रि' उपगमता । धरि भूमि तेज रापु अनो
हुह' नीगराय', निकलचतुरु मौहि काल बहु गमता ॥
नाग्न प्रयग मौहि कायधरी बहुमय, नग्मौ मिलाप ज्या
उफाली बीज जमता । पाप क्यों गुमायत अकारथ अयान
भीत, रगौ क्यों न परम वरम गहि समता ॥ ३११ ॥

धमात्माका सुर ।

जिनकें प्रवृत्ति एकदेशह धमसी है, तिनकें न धन
तौउ सुरी चक्रधरत । त्रिप भोग वस्तु छते अनछते समरूप,
मरवै न सुख दुख होता कभी परते ॥ गटकौ न सोच
जाकें आगेसी न चाह कछु, वर्तमान जैमें तम वरतें उररतें ।
मोहसी मरोरमें मदर सायधान रहै, अरिनके सनमुख जमें
भूर थरत ॥ ३१५ ॥

धर्मका स्वरूप ।

रहित त्रिदोष आतम सुभाय धरमके, दृग ज्ञान चारित
त्रिभेद गुण परना । सशै मोह मिथम रहित सरधान दृग,

१ गुरुसी वाणी । २ कम । ३ वृद्ध । ४ जलकाय । ५ भुना हुआ ।

१ तान चागित कपायसौ निररना ॥ एकदश सर्वदश
 २ ॥ ३ ॥ तोरुम, साधन विशेष निरहार धर्म निरना ॥
 ३ ॥ ४ ॥ रि वर अमय मयान मोहि, तारि धर्म साधनमे
 ४ ॥ ५ ॥ रना ॥ ३१७ ॥

धर्मके प्रति प्रेरणा ।

जैम निन तन मन धनके उपायवेमें, हरदम रज राखे
 १ ॥ २ ॥ नित रे । तेमें रहैं महत्त मन धूप साधनमें, धिर
 ३ ॥ ४ ॥ रुनि राग नौ फितरु मय चित रे ॥ जहाँ दग ज्ञान उप
 ५ ॥ ६ ॥ नोगम न गम द्वेष, मोटै उतस्मिष्ट रूप रेखली उकत' रे ।
 ७ ॥ ८ ॥ न प्रमाण जुगनिमों साविरुनि गहौ भव्य, दहौ भ्रमभाव
 ९ ॥ १० ॥ हाउ जीवन' मुक्त रे ॥ ३१२ ॥

प्रिययी प्रति शिक्षा ।

अर प्रियानुगमी चिदात्मद वार ! तोहि, कहा मार
 १ ॥ २ ॥ पार मीस रहैं तेरे हिनरी । तोहि, न रति जानै कहा
 ३ ॥ ४ ॥ हौनहार तेरी, रुझि रहोर पलटै न गति चितरी ॥ मिल
 ५ ॥ ६ ॥ ललपग प न गहैं रच अग जैमे, चरमक कजदल' मथनी
 ७ ॥ ८ ॥ चिरतरी । मया प्रसरम तोहि कहरी न गम दिये, करै न
 ९ ॥ १० ॥ नरम रात भूमे न चितरी ॥ ३३४ ॥

वीतराग देवकी ही भक्ति करना चाहिये ।

राग द्वेष याथित जगत दुःख सुख मय, जाके सुख मान्य ते अशान भर भरके । इनहींक हत सैर राग द्वेष धर देव, आप ही दुखित ते निगारू दुख करके ॥ जे ह वीतराग मय जायक सनोगी चिन, सुख बैन मरगमाँ काज सरै सरके । तिनहीकौ पूजन मचन सुमिरन मग, करनाँ निरालम ह्न मिले दिन पढ़के ॥ ३५६ ॥

सन्तोष ।

मन पच काय कृत सागितानुमत जोग, कियौ जो रज्जु उदै पात्र' सरि नितनौ । जौन देश जौन प्रियि जौन काल माँहि जेतौ, रुज लाभ पागि' भरि लेह कीद्वि तितनो ॥ काहँक' अनेक दण गिरि बन उन फिर, ममता निगारि थिर करौ नित नितनौ । मिलेगौ न पावि' काह करत प्रपच घने, रज्जुमें सतोष धरौ जीवन है स्तितनौ ॥ ३६८ ॥

स्त्रियोंका स्वभाव ।

प्रोष करि मरी मदा निरदं स्वभाव जासौ, योले मृषा बैन सय जगतही छना है । रलह सरत सुख सुलहमें मानें दुःख, कहे कहु बैन मुख मानौ मर सला है ॥ रूपख कठोर चले अशुभसी ओर पर, हृतिही रिमारि ररे मन

२। राटिन् नय अतरग दोषनिर्मा रली, पेमी नागि
 ॥ ३७४ ॥

विशेष विचार ।

गुण परनाय नयपिन्त्यन, नय परमान
 पलायना । गुणवान चौब जीयवान चौब
 नद चतु तिन परमायरी लगायना ॥ कुलफोडि
 नमद गति भट क्रिया, भट विधि भट आदि
 लयायना । अथवा गरन सरलप विरलप मेटि,
 गुणवान प्राय आयुम ममायना ॥ ४२० ॥

गृहयासका निषेध ।

बहा गृहाश्रम रिष सुगके अरथ बीर, उद्यम करत
 भूमि रातिपिन जक ना । इलनिर्मा भूमि भेदि बीज बोहि
 दुग्गी होष, नगमायि राचानिक पाय सेरु गर ना ॥ लेयन
 मनन शुचि औरह अनेर इत्ति, इरत वनाम वग बहु अघ
 चर ना । सुगरी न नाम मग दुगरी बडाउ मित्र, तातें
 नवि अनाद शातिरम छरना ॥ ४२७ ॥

पारह भायना ।

परज न गुन, न सरन, जग दुख रुप, सुग दुग भोग
 एर दूसरी न बीर है । पुढगल जीय मित्र, तन है अशुचि
 (धन ।

छिन्न, मन बच काय जोग आश्रय जजीर है ॥ जोगसौ
निरोध सोई सख लखौ समोष, उद देय गिर निधि निर्जरा
गहीर है । पट द्रव्यमयी लोफ, दुर्लभ स्वरूप, वस्तु
स्वभारिक धर्म हर स पोर है ॥ ४३५ ॥

ज्ञान दर्पण

परपदमें आपा मानना भूल है ।

सूर्या ३१ सा

मानि परपद आपा भूले छ अनादिहीके, ऐस जग
रासी (निजरूप) न ममार है । चरहीम सामतौ निरन
जो देव बसे, तासौ नहीं देखै तात हितसौ, निरार ह ॥
जोति निजरूपकी न जागी कहें हीयेमाहि, यानि मुक्ताग
सुभासकौ निरार है । दशना निनेद 'दीप' पाय जग आशा
लखै, होइ परमात्मा अनत सुख धार है ॥ १८॥

जीव अपनी भूलसे ही दुःखी है ।

निहचे निहात ही आत्मा अनादिनिद, आप निज
भूलिहीतें भयो निहारी है । ज्ञायक सकल वश्याधि सो
तो गौप्य दई, प्रगट अज्ञानभाज दयाविता है ॥ अपनी
न रूप जानै औरहीमों और मानै, ठानै मरने निज रीति
न संभारी है । ऐसै तो अनादि कहा नश माध्य मिद्धि
अन, नैक हैं निहारी निधि कना दुःखी है ॥ ४७ ॥

— जेना जेनादिक बताए आए, तैमो उपदेश हम
 न भोजि । गहं परमप त मरुपकी चितौनी चुके,
 न जेना न जेना मरम भोजिगे । एतौ ह कथन कीएँ लाग
 न जेना, निसे कठोर नर और न कदाँगे । कहै
 न जेना आदि दई कोऊ सुनौ, तयके गहैया मन्य
 न जेना ॥ ५० ॥

आत्मपद ही उपादेय है ।

नाम अनादिक अनादि यो बतायतुहं, तिहूँकाल
 न पद तोहि उपादेय है । याहीत अखंड ब्रह्मपदकी
 जया लयि, बिटानद धारें गुणगुण मोही धेय है ॥ तनौ
 नुरमिधु गुणवाम अमिराम महा, तेरी पद ज्ञान और
 जानि मय ज्ञप है । एक अविहार सार मरम महत मुद्र,
 गहि अमलोकि त्यागि सदा पर हेय है ॥ ८४ ॥ याही
 जगमाहि जेय भावकी लयिका नान, ताको धरि ध्यान
 आन काहे पर हेरे है । परक सयोगतैं अनादि दुख पाए
 अर, देखि तू सँभारि जो अखंड निधि तर है ॥ बाणी
 भगवानकी मकल निचोर यहै, मरमार आप, पुण्य
 पाप नहि नेर है । यान यह ग्रय मिय पथकी मधिया महा,
 अरथ निचारि गुरदेय यो परे है ॥ ८५ ॥ अत तप सील
 मजमाणि उपवास किया, द्रव्य भावरूप दोठ बधकी करतु
 है । करम जनित तांत करमको हेतु महा, बधहीकी करे

मोक्षपथकी हरतु है ॥ आप जैमो होइ ताकी आपकें समान
 रहे, उधहीको मूल यातें बन्धकी भरतु है । याकी परपरा
 अति मानि करतुति करें, तेई महामूढ़ भव सिधुम परतु
 है ॥ ८६ ॥ कारण समान काज मग ही बरानतु है, यातें
 परत्रियामाहि परकी शरणि है । याहीतें अनादि द्रव्य
 क्रिया तौ अनेक करी, उछु नाहि मिद्धि भई ज्ञानकी परणि
 है ॥ कर्मकी मग जाई ज्ञानकी न अश सोउ, उइ भवनास
 मोक्ष पथ की हरणि है । यातें परक्रिया उपादय तौ न कही
 जाय, तातें सदा काल एक उधकी हरणि है ॥ ८७ ॥
 पराधीन राधायुत उधकी करैया महा, मदा बिनासीक जाई
 ऐमो ही सुभाज है । उध उठै रमफल नीम व्याख्या एक
 रूप, सुभ ना असुभ क्रिया एक ही लगान है ॥ कर्मकी
 चेतनाई कैम मोक्षपथ मधे मानें तेई मूढ़ हीण जिनकें
 रिभाज है । जैमो गीज होय ताकी तैमो फल लागै जहाँ,
 यह जगमाहिं निन आगम कहाउ है ॥ ८८ ॥ क्रिया
 सुभ कीनै पै ममता न घरीनै उई, हजे न विवादी याम
 पुण्य भावना ही ॥ कीजै पुन्यकाज मो समान सारे
 परहीको, चेतनाकी चाहि नाहि मधे याके याही है ॥
 याकी हय जानि उपादेयमं भगन हूँ, मिटै है विरोध बाद
 रहै न कही ही है । आठों जाम आतमाकी रुचिम अनत
 सुख, कहै 'दीपचन्द' ज्ञान भावत तहाँ ही है ॥ ८९ ॥

नाना रत्नके पोए है । अलङ्कार और अग अगम अनूप
 रत्न, सुन्दर मरुप दूति देखै काम गोए है ॥ सुरतरु कुन
 निम सुग्मघ साथ देखै, आयत प्रतीति ऐसे पुण्य गीज
 गोए है । करमके ठाठ ऐसै कीने है अनेकगार, व न गिनु
 भए यौ अनादिहीके मोए है ॥ ११८ ॥ सुर परजायनिर्म
 भोग भाग भए जहाँ, सुख रग राचौ रनि कीनी परभागम ।
 रमा दान भागनिहो निरगि निहारि देखै, प्रेम परतीति
 भई रमणिरमागम ॥ देखि देखि दगनिक पुज आय पाय
 पर, हियमै हरष धरै लागिनि लगागम । पर परपचनिम
 मचिरु करम भारी, मसारी भयो फिरै जु पगक उपा
 यम ॥ ११९ ॥ रमणि रमागमाहिं रति मानि रान्यौ महा,
 मायाम भगन प्रीतिरै परितारमौ । निपेभोगमौज निपतुल्य
 सुधापान जानै, हित न पिछान गथौ अति भवभारमौ ॥
 एरु इट्टी आदिल अमेनी परिजत जहाँ, तहाँ ज्ञान कहाँ
 रम्यौ करम विहारमौ । अब देव गुरु जिनगणीकौ सजोग
 जुरगौ मित्रपथ सावौ करि आतमविचारमौ ॥ १२३ ॥
 आगतै पतग यह जलमती बलचर, जटाके बढाएँ मिद्धिहव
 तौ घट गरे है । मुण्डनतें उगणिये नगन गहतें पशु, कष्टकौ
 महत तरु कहु नाहि तरै है ॥ पठनतें शुभ यक ध्यानके मिये
 तें कहुँ सीस नाहि सुनै यतें भवदुख भरे है । अचल
 अनाधित अनुपम असुख महा, आतमीक ज्ञानके लसेया
 सुख करै है ॥ १८२ ॥

❧ नहविलास ❧

पुण्यपचीमिका ।

सर्गशा

पाप करै अति, तोहि रहै दुख सफ़ट घर ।

॥ १० ॥ महा जठ राखत, आगत माल छिनै छिन नेरे ॥

॥ ११ ॥ जग तु राखत मायामो, ये नरकादिमें तुहै भेरे ।

॥ १२ ॥ मृन है 'मया' तु चेतन म्या नहि चेत मरेरे ॥ ११ ॥

कविस

जान चा पाप होंहि अधर्मक व्याप होहि, तेत सय

राखत मल लोभरूप है । जेते दुखपुज होहि र्मनक

जग होंहि तेने मय बन्धनो मूल नेहरूप है ॥ जेत रहू

गग होंहि व्याधिक मयोग होंहि, तेने मर मूलनो अजारन

अनूप है । तेत जग मणे होहि काहूही न शर्ण होहि, तेत

मर रूपनो गरीरनाम भूप है ॥ १० ॥

सर्गशा

राहका हर तु भूरि महै दुख, पचनके परपच भरनाय ।

ये अपने अपने रमनो नित पोखतु हैं तोहिलोभ लगाये ॥

नू रहू भेद न रूखतु रचर, तोहि एग करि देत बधाये ।

है अरु यह दान भलो नर ! जीतल पच जिनक बतयो ॥ ११ ॥

ह नर अर तु उधत क्या निज, मूलन नाहि क भग खड है ।

जे अघ मचतु है नित आपनो, ते तोहि भोज करम गई है ॥

य नरकात्मिकमें तोहि डारिके, देह सजा बहु ऐसी भट है ।
मानत नाहि कहुँ मगुमाय, सु तोकों दई मति ऐसी दई है ॥१६॥

मात्रिम कवित्त

दग तु दृष्टि विचार अम्यतर, या जगमहि कछु सोंचो
आह । मात तात सुन बन्धु बनिता, इनमो प्रीति कर
कित चाह ॥ तन यौवन कचन श्री मंदिर, गनरिद्ध प्रभुता
पद काह । ये उपजै अपनी धितिमपुत, तू किन नाथ होहि
शठ ताह ॥ १८ ॥

सरीखा

चेतन ऐसेमें चेतत क्यों नहि, आय रनी सगही विधि
नीसी । है नरदेह यो आरज रेत, जिनदसी बानि सु प्रद
अमीकी ॥ तामें जु आप गहो थिरता तुम, ताँ प्रगट
महिमा मय जीकी । जामें निवास महामुरगाम सु, आय
मिलै पतियों शिखरी ॥२३॥

कवित्त

ग्रीपमम धूप परै तामें भूमिभारी जरे, फूलत है आक
पुनि अतिही उमहिकै । वर्षाअतु मेघ भरे तामें धूत फेड़ फरै,
जलत जमामा अघ आपुहीतें डहिकै ॥ अतुमो न दोष कोऊ
पुण्य पाप फल दोऊ, जेमें जैम किये पूर्व तमें रहै सहिकै ।
रई जीव सुखी होहि केई जीव दुखी होहि, देखहु तमामो
'भया' न्यारे नैव रहिकै ॥२४॥

१ अश्वत्थरी कवित्तव

छापय

१ गन, प्राण पलमाहि गमाये ।
 २ ३ ४ ५ परमग, रैन उहु मरुट पाये ॥
 ६ ७ ८ ९ मनेह, देह दुखजनको दीनी ।
 १० ११ १२ १३ हित केपी कीनी ॥
 १४ १५ १६ १७ करि परथो, मोन कौन सफुट महे ।
 १८ १९ २० २१ निपवेतिमम, पयन सेय तु गुण चहै ॥ ४ ॥

कवित्त

जमो वातगम डर कयो है स्वरूपमिद्ध, तैमो ही
 १ २ ३ ४ ५ मगे यामे फर नाहा है । अटर्म भावही उपायि
 ६ ७ ८ ९ माम उहु नाहि, अष्ट गुण मेरे मो तौ सग मोहि पाहि
 १० ११ १२ १३ है ॥ नायक स्वभाव मेरो तिहँ शाल मेरे पाम, गुण जे
 १४ १५ १६ १७ अनत तेऊ मग मोहि नाही हैं । ऐमो है स्वरूप मेरो
 १८ १९ २० २१ तिहँ शाल सुदूरूप, ज्ञानदृष्टि देखत न दूजी परछाही है ॥ ६ ॥
 २२ २३ २४ २५ ज्ञानप्रान तेर नाहि नेरे तौ न जानत हो, ज्ञानप्रान मानि
 २६ २७ २८ २९ ज्ञानरूप मानि रह हो । आत्मरु वशरो न अश कहँ
 ३० ३१ ३२ ३३ सुखो कीन, पुगलके वशसेती लागि लहलह हो ॥ पुगलके
 ३४ ३५ ३६ ३७ हारे हार पुगलके जाते जीत, पुगलही प्रीति मग केमे
 ३८ ३९ ४० ४१ रहत हो । लागत हो वाय वाय लागै न उपाय कहु,
 ४२ ४३ ४४ ४५ सुनो चिदानदराय कौन पय गह हो ॥ ९ ॥ सुनो राय

चिदानन्द कहोजु सुखद्वि रानी, कहँ कहा वेर प्र नवृ तोहि
 लाज है । कमी लाज कहो कहाँ हम कष्ट जानत न, हमें
 इहाँ इन्द्रनिभो रिपे सुख राज है ॥ अरु मरु निपसुख
 सेये तू अनन्ती वेर, अज हूँ अघायो नहिँ फामी मिगताज
 हँ । मानुष जनम पाय आरज सुगेन आय, जो न चेते
 हमराय तेरो ही अराज है ॥ १४ ॥ चीरन कितेरु ताप
 मामा तू इतेकु मर, लख कोटि जोर जोर नेकु न अघातु
 है । चाहतु धरामो धन आन मर भरों मेह, यो न जानै
 जनम मिरानो मोहि आतु है ॥ रानमम कर जहाँ निश
 दिन घेरो करै, ताके नीच गशा नीर कोलो ठहरातु है ।
 दरतु है नैननिमों जग मर चल्थो जात, तऊ मूढ घेते
 नाहि लोभ ललचातु है ॥ १८ ॥ कहों हूँ वे वीतराग जीते
 निन रागद्वेष, कहों हूँ वे चक्रवर्ति छहो सबके धनी । कहों
 हूँ वे रामदेव युद्धके करया नीर, कहों हूँ वे कामदेव काम-
 कीमी जे अनी ॥ कहों हूँ वे राजा राम रामसे जीते निन,
 कहों हूँ वे शालिभद्र लन्ठि जाके यी धनी । ऐमे तो कइक
 कोटि हूय गये अनन्ती वेर, डेट दिन तेरी वारी काहको कर
 मनी ॥ १९ ॥ सुनिरे मयाने नर कहा करै घर घर, तरो
 जु गरीरघर घरी ज्यो तरतु है । छिन छिन छीने थाय
 जल जम घरी जाय, तहको इलाज कछु उहूँ घरतु है ॥
 आदि जे सहे हैं त तौ यादि कछु नाहि वाहि, आये कहो

रुग्ण गति दात उग्रतु है । घरी एक दसो गथाल घरीभी
हस्त है चार घरी घरी घरियाल शेर यों करतु है ॥२०॥

शतअष्टोत्तरी

कवित्त

॥ २०१ ॥ कहो कीनो कहा राम तुम, रामागमा
॥ २०२ ॥ मितातु है । कैर दिन कैर छिन रहि है
॥ २०३ ॥ मम ऐमें काज करतु सुहातु है । जानत
है ॥ २०४ ॥ परमो नाहि टर, दस भ्रम भूलि मूढ फलि
है ॥ २०५ ॥ चोरे अचेत पुनि चेतवेगो नाहि ठौर, आन
तर्क कीदम्मा पछी उड जातु है ॥ २०६ ॥ कौन तुम
कहा गा कौनै घोगात्रे तुमहिं, काहे रम रसे कहु सुषट्
॥ २०७ ॥ जान है ये कर्म जिन्हें एकमेक मानि रह, अजह
॥ २०८ ॥ लगे दास भोगी भरतु हो ॥ वे दिन चितागे जहाँ
पीत है मनाफाल, उसे कमे सकट सहटु निमरतु हो ।
तुम तौ सयाने पै ममान यह कौन कीन्हो, तीनलोचनाथ
हृन्क दीनस फिरतु हो ॥ २०९ ॥

मरिया

वे दिन क्यों न चिन्तित चेतन, मातमी दूखम आय
वने हो । उग्र पों लगे निशियामर, रच उमामनिमी
तरसे हो ॥ आउमयोग रचे कहें जीवत, लोगनिमी तर

दृष्टि लसे हो । आजु भये तुम यौनके बम, भूल गये
कितने निरुसे हो ॥ ३२ ॥

कवित्त

दसत हो कहाँ कहाँ केलि करै चिदानन्द, आत्म
स्वभाव भूलि और रस राख्यो है । इन्द्रिनके सुखमें भगन
रहै आठों जाम, इन्द्रिनके दुख देखि जाने दुख साख्यो है ॥
कहूँ मोघ कहूँ मान कहूँ माया कहूँ लोभ, अह भाव मानि
मानि ठौर ठौर भाख्यो है । देख तिग्गजच नर नारदी गतिन
फिरै, मौन कौन स्वाग घर यह प्रह्न नाख्यो है ॥ ३९ ॥
फोउ तौ करै किलोल भामिनीमो गीष्मिगीष्मि, राहीमों मनेह
करै कामराग अगमें । फोउ तौ लहै अनन्द लक्ष कोटि
चारि जोरि, लल लल मान करै लब्धिही तरगमें ॥ फोउ
महा गृहीर कोटिक गुमान कर, मो ममान दूसरो न देख्यो
फोऊ जगम । कहै कहा 'भया' रछु रहिवेकी पान नाहिं,
मर जग देखियतु रागरम रगमें ॥ ४१ ॥ जौलों तुम और
रूप हूँ रह हो चिदानन्द, तौलो कहूँ मुख नाहि रागरे
प्रचारिये । इन्द्रिनके सुखमो जो मानि रह साख्यो सुख, मो
ता मर दुख ज्ञानदृष्टिमों निहारिये ॥ ए तौ विनाशीक
रूप छिनमें औरै स्वरूप, तुम अविनाशी भूप कैसे एक
पारिये । ऐमो नरजन्म पाय नहु तो विवेक कीज, आप
रूप गहि लीजै कर्मरोग टारिये ॥ ४२ ॥ जीरै जग चिते

जन निन्दे मदा रन दिन, मोचत ही दिन दिन काल
छानियतु है । धन होय धान होय, पुत्र परिवार होय, बढे
विगार नय जम लोनियतु है ॥ दहद निरोग होय
गगन मरोग हान, मनगळे भोग होय जालों जी नियतु
है । यह पाठा पूरी होइ पै न बाड़े पूरी होय, आयु यिति
ग हान तौला कोनियतु है ॥४४॥ मात धातु मिलन है
महादगन्ध मरी, तामो तुम प्रीति करी लडत अनद हो ।
एक निगोदके महाद जे करन पच तिनहीरी मीए मचि
इना सुउद हो ॥ आठो जाम गई काम रागरमगराचि,
इत मिलोल मानों माते ज्यों गयद हो । कछु तौ विचार
करो कहां कहां भूले फिरो, भलेजु भलेजु "मैया" भले
चिदानंद हो ॥ ४६ ॥

सवैया ।

ए मन मूढ कहा तुम भूले हो, हम विमार लगे पर-
छाया । यामे स्वरूप नहीं कछु तेरो जु, व्याधिकी पोछ
बनाई है काया ॥ सम्यक् रूप सदा गुण तेरो सु, और बनी
मन ही भ्रम माया । दग्नत रूप अनूप विगनत, सिद्धम
मान जिनद उताया ॥ ४७ ॥ केवलरूप गिराजत चेतन,
ताहि मिलोहि अरे मतार । काल अनादि प्रीति भयो,
अजहूँ तोहि चेत न होत कहा रे ॥ भूलि गयो गतिको
फिरयो, अत तौ दिन न्यारि भये ठगार । लागि कहा

रक्षा अचानक सग, 'चेतत क्यों नहि चेतनहारे' ॥ ५० ॥
 गालक है तब बालकमी तृप्ति, जोवन काम हुतासन जारे ।
 वृद्ध भयो तब अग रहें थफि, आये हैं सेत गये मर फारे ॥
 पाप पमारि परयो धरतीमहि, रोवें रद दुख होत महा रे ।
 गीती यो घात गयो मर भूलि तु, 'चेतत क्या नहि चेतन
 हारे' ॥ ५१ ॥ पालपन नित पालनक मँग, खेल्थो है ताकी
 अनेक कधारे । जोवन आय रम्यो रमनी रम, मोउ तौ
 घात विनीत यथार ॥ वृद्ध भयो तब रूपत डोलत, लार परें
 मुग्न होत विहारे । दसि शरीरके लच्छन भैया तु, 'चेतत
 क्यों नहि चेतनहारे' ॥ ५२ ॥ नृ ही जु आय बस्यो जननी
 उर, त ही रम्यो नित पालनहारे । जोवनता जु भई पुनि
 तोहिमो, ताहीने जोर अनेक तै मार ॥ वृद्ध भयो तु ही
 अग रहें मर, मोलत बेन कहें तुतगारे । देखि शरीरके
 लक्षण भैया तु, 'चेतत क्यों नहि चेतनहारे' ॥ ५३ ॥ औरसों
 जाइ लग्यो हित मानिके, बाहिके सग सुज्ञान विडारे ।
 काल अनादि बस्यो जिनके द्विग, जान्यो न लक्षण ये
 अरि सारे ॥ भूलि गयो निजरूप अनूपम, मोह महामदके
 मतगारे । तेरो हु दास रन्यो अरुके तुम, 'चेतत क्यों नहि
 चेतनहारे' ॥ ५४ ॥ काहको दहमों नेह फरै तुय, अतरो
 राखी रहँगी न तेरी । मेरी है मेरी कहा रुँ लच्छिमों,

॥ मान रहा रघो मोह कुटुम्बमो,
 ॥ ताँत तू चेति विचखन चेतन,
 ॥ १९० ॥ जो परलीन रहै निशि-
 ॥ गव क्यों न गमाव । जो जगमाहि
 ॥ मा जिय क्यों निहचै पद पारि ॥ जो
 ॥ न जानत, सो भगमागर्म फिर आवे ।
 ॥ सो प्राण तन, गुड लाय जो काह न पान
 ॥ ॥

हुमिल सत्रैया, ८ मगण ।

नगरन भजो सु तनो परमात्मा, ममाधिके मगमें रग
 ॥ अहो चेतन त्याग पराड सु बुद्धि, गहो निज शुद्ध
 ॥ सुख सहो ॥ विषया रमके हित नुडत हो, भगमागर्म
 ॥ शुद्ध गहो । तुम क्षापक हो पट द्रव्यनरु, तिनमों हित
 ॥ जानिके आपु कहो ॥ १०० ॥

कुन्दलिया ।

सुगमें मग्न सदा रहै, दुखर्म के विलाप ।
 ते यजान जाने नहीं, यहै पुन्य अरु पाप ॥
 यहै पुण्य अरु पाप, आप गुन इनत न्यारो ।
 विद्विलाम चिद्रूप, सहज जाको उजियारो ॥
 गुण अनत जाम प्रगट, कगहू होहि न और रूप ।
 निहि पद परसे विनु रहै, मूढ मगन समारस ॥ १०४ ॥

द्रव्यसंग्रह

कवित्त ।

व्यौहार नै देखिये तो पुगालके कर्मकन, नाना भाँति
 सुग दुःग ताको भुगतैया हैं । उपनाये आपुनै ही शुभ ओ
 अशुभ कर्म ताके फल साता यो अमाताको मँडिया हैं ॥
 निश्चय नय देखिये तो यह जीव ज्ञानमई, अपने चेतन
 परिणामको करैया है । ताँतें भोक्ता पुनि सुचेतन परिणा-
 मनिओ, शुद्धन मिलोमिये तो मरओ लखैया है ॥ ९ ॥

फुटकरकविना,

प्रज्ञोत्तर दोहा ।

कौन ज्ञान निन आग्न, कौन दय निन राग । कौन
 माधु निर्ग्रन्थ है, कौन त्रयी जिहँ त्याग ॥ १७ ॥

परमार्थपदपक्ति,

१। राग भैरा ।

या देहीको शुचि कहा कीजे, जामो धोइये मोइपै
 छीजे ॥ या देही० ॥ टेक ॥ १ ॥ जो जो धोइये मो सो
 भरी, देखहु दृष्टि विचारके खरी ॥ या देही० ॥ २ ॥
 दशों द्वार निशियामर बहनी, कोटि जतन किये थिर नहिं
 रहनी ॥ या देही० ॥ ३ ॥ तत्तय यहै आत्मरस पीनै,
 जलनलि दीने ॥ या देही० ॥ ४ ॥

५५ । पञ्चपक्षि ।

१ । गनकली ।

२ । गनायो र ॥ अर तं ॥ टं ॥

३ । अरि ही तन नरम पायो र ।

४ । न दग्ग, मटकि मटकि मरमायो र ॥

५ । तोरो मिलियो यह दुर्लभ, दश

लाश र । जो चेत तो चेत र 'भया' तोरो

मुन्हायो र ॥ अर ॥ १ ॥

६ । दाग घमाल गाँडी ।

कहा परदशीरो पतियारो ॥ रुहा ॥ टं ॥ मन मान

चल पथरो, मान गिन न सारो । मय कुट्टन छौं

तनी पुनि, त्याग चेत तन प्यारो ॥ कहा ॥ १ ॥

दिमाय चेत आपही, मोड न राखन दारो । मोड प्रीति

करो किन कोटि, अंत होयगो पारो ॥ कहा ॥ २ ॥

धनसा राखि वरमो भूलत, जलत मो मझारो । इहि

विधि फाल अनत गमायो, पायो ना भवपारो । कहा ॥

॥ ३ ॥ माने सुगमो विमुख होत है, भ्रम मदिरा मतपारो ।

चेतु चेत सुनहुर 'भया', आप ही आप समारो ॥ रुहा ॥

॥ ४ ॥

१ मनुष्यमक्षी दुर्लभता ज्ञानके लिए निमग्न रह
एतादृश्य कथा है उनके द्वारा ।

१६ । राग रेदागो ।

कहो परसो ग्रीति कीन्हीं, कहा गुण तुम जान । चतुर
चेतन चित मिचारी, कहैं पुनि पहिचान ॥ १ ॥ वे
अचेतन तुम सुचेतन, देखि दृष्टि भिनान । परहिं त्याग
स्वरूप गहिये, यहै गत प्रमान ॥ २ ॥

२१ । राग अढानो ।

हो चेतन वे दुख निमरि गये ॥ टेक ॥ परे नरकमें
सकट सहते, अर महारान भये । सरी सेज भयै तन वेदत,
रोग एकर ठये ॥ हो चे० ॥ १ ॥ करत पुकार परम पद
पावत, कर मन आनदये । रहैं शीत कहैं उष्य महाभुनि,
सागर आयु लय ॥ हो चे० ॥ २ ॥

कालाष्टर । दोहा ।

तिहुं पुरके पुरहत सर, बहत शीश नगाय । तिहैं
तीर्थकर दरमों, बचत नाहिं यमराय ॥ १ ॥ जिनरी अकै
फरकतें, कपत सुरनरवृन्द । तेह काल छिनमें लये, जो योधा
सुर इन्द्र ॥ २ ॥ जाकी आनामें रहैं, छशैं खडकै भूप ।
ता चक्रीधरसो ग्रसे, काल महा भयरूप ॥ ३ ॥ नारायण
नरलोकमें, महा अर बलनत । तीन खड यात्रा यहै,
तिनैह काल ग्रमत ॥ ४ ॥ औरहु भूप बलिष्ट जे, वमत
याहिं जगमाहि । तहु कालजी चालमों, बचत रच कहैं
नाहि ॥ ५ ॥ ततैं काल महाबली, करत सवनपै जोर ।

दार जो, निकम जाहिमे प्रान ॥२॥ लागो है नम जीनकां,
 चोलत ऐमें गाजि । आज कालमें लेतहूँ, कहीं जाहुगे
 भाजि ॥ ४ ॥ आज काल जम लेत है, तू जोरत है दाम ।
 लज फोटि जो घर चले, गेहै कौनै काम ॥ ६ ॥ दु खित
 मर ममार है, सुखी लमै नहि कोय । एक सुखित जिन
 धर्म है, जिहें घट परगट होय ॥ १० ॥ जाकें परिग्रह
 यहत है, सो बहु दुःखके माहि । निन परिग्रहके त्यागति,
 परमों छूटै नाहि ॥ १२ ॥

वचिस्त ।

नरदह पाये कहो कहा मिद्धि भद तोहि, निपै सुख
 सेयें सर मुक्त गमायो है । पर इन्दि दुष्ट तिन्हें पुष्टकर
 पोष राख, आय गइ जरा तर जोर मिललायो है ॥ क्रोध
 मान माया लोभ चारों चित रोक धठे, नरक निगोदको
 भदमो बग आयो है । राख चलो गाठको कमाइ फोडी
 एक नाहि, तोमो मूढ दमरो न दृढयो कहूँ पायो है ॥११॥
 वर्ष मौ पराम माहि एत सब मर जाहि, जे त तेरी दृष्टि
 निपै दखतु है वाररे । इनमेंको कोऊ नाहि बचवेमो काल
 पाहि, राजा रक चरी और शाह उमराव रे ॥ जमहीकी
 जमा माहि घरी पल चले जाहि, घट तेरी आय रूखु नाहि
 को उपाय रे । आज काहि तोहको समेट काल गाल
 माहि, त्वापि जैहै चेत दख पीछें नाहि दाव रे ॥ २१ ॥

कौन कर्म कौन थाप है ॥ यह तो सर्वज्ञ देव देख्यो भिन्न
भिन्नरूप, चिदानन्द ज्ञानमयी कर्म जड़ व्याप है । तिहँ
भाँति मोह हीन जानै मरवानगान जसो सर्वत्र देख्यो तैसो
ही प्रताप है ॥ १० ॥

१ पुण्यपापजगमूल पचीसिका ।

कथित ।

चामके शरीर माहि उमत लजात नाहि, दग्धत अशुचि
तोउ लीन होय तनमें । नारि गनी काहमी विचार कहु
ऊ नाहि, रीकि रीकि मोह रहे चामके उदनमें ॥ लक्ष्मीके
फान भहारान पद छाड देत, डोलत है ररु जमें लोमरी
लगनम । तनरुमी आयुपे उपाय कई कोटि कर जगतके
गामी दग्ध हासी आन मनमें ॥ ४ ॥ नागरिन' मग रेई
मागन्न रेनि करी, गग रग नाटक मो तोऊ न अघाये
हो । नर देह पाय तुम आयु पल्य तीन पाई, तहाँहू रिप
रुलाल नानाभाँति गाये हो ॥ जहाँ गये तहाँ तुम रिपमों
मिनोद कीन्हों, ताहीतैं नररुमें अनेक दुख पाये हो ।
अनई मम्हारि रिप डार क्यों न चिदानन्द, जाके मग
द प होय ताहीमो लुभाये हो ॥ ८ ॥ जहाँ तोहि चल्यो
हँ माथ तू तहाँको दृढ़ि, उहाँ कहीं लोगनसों रह्यो तू
लुभाय रे । मग तरे कौन चलै दख तू विचार हिये, पुन

तुम्हारे पाप पाप यह पाप ॥ जाके काज पाप कर
 गत है फिर ॥ १, हा है को महाय तेरे नरक जय जाय
 ॥ २ ॥ तू ही पाप पुण्य मायी दोय, तामें
 ॥ ३ ॥ गद गीजे हसराय रे ॥ ९ ॥ जीलों तेरे ज्ञान
 न ॥ ४ ॥ नाह चिदानन्द, तौलों तुम मोहनश मूरदाम
 ॥ ५ ॥ हरक पराये प्राण पोषत हो दह निज, कहो यह
 ॥ ६ ॥ भयम कौन पथ लै रह ॥ पापके क्रियेसो रक्षु पुण्य
 नाहाय है तोहि, एतो ह विचार नाही ऐमे ज्ञान र
 ॥ ७ ॥ नरमें परगो कौन ? मरुट महंगो कौन ?, अजह
 मम्हारो क्यों न कौन नन्द स्व रह ॥ १० ॥ मोरत अनादि
 फल बीत्यो तोहि चिदानन्द, अजह मम्हार मिन मोहनश
 गोप ॥ सोयो तू निगोद माहि ज्ञान नैन मूद आप
 मोयो पच धारमें शक्तिसे समोयक ॥ विफल है दह पाप
 तहाँ तू ही मोय रहयो, सोयो न प्रमान घर याही रूप
 होयक ॥ पच इन्द्री विषे माहि मग्न होय मोय रह्यो, सोयो
 तू अनतो काल याही भानि सोयके ॥ १३ ॥

जिनधर्मपचीसिका ।

कवित्त ।

जामो कहै घर तामें डर तो कईर तोहि, सवन
 विमार हम विष रम लाग्यो है । गिरवेको डर अह ड

१ अवे । ३ सकोचर ।

आगि पानीहूको, उस्तु राखवेको डर चौर डर जाग्यो है ॥
 पट भग्येको डर रोग शोक महादर, लोकनिकी लाज डर
 रानडर पाग्यो है । डर जमरानहूको डारितू निशक भयो,
 जैमें मोह रानाने निराज तोहि दाग्यो है ॥ १८ ॥ रागी
 डेपी दए देन ताकी नित कर सैर, ऐमो है अग्र ताको
 कैमें पाप सपनो ? । राग रोग क्रीडा मग त्रिपेकी उठै
 तरंग, ताहिमें अभग रन दिना करै जपनो ॥ आगति औ
 रौंठ ध्यान दोउ मिथे आगेरान, एतेपं चहै कल्याण दके
 दृष्टि दपनो । अरे मिथ्याचारी तैं गिगारी मति गति दोउ,
 हाथ ले कुल्हारी पाय मारत है अपनो ॥ १९ ॥ सुन मेरे
 भीत तू निचित हूँक कहा बैठो, तेरे पीछ काम शत्रु लागे
 अति जोर हैं । छिन छिन ज्ञान निमिलेत अति छीन
 तेरी, डारत अघेरी भैया किये जात भोर हैं ॥ जाग्यो,
 तो जाग अब कहत पुकार तोहि, ज्ञान नैन सोल देख
 पाम तेर चोर हैं । फोरक शक्ति निज चोरको मरोर
 पाँधि, तोसं उल्लान आगे चोर हूँकै को रहें ॥ २३ ॥

चैराग्यपचीसिका ।

(भैया भगवतीदासजी वृत्त)

दोहा ।

रागाण्डिक दूषण तजे, चैरागी जिनदेव । मन वच शीस
 नवापर्क कीने तिनसी सैर ॥ १ ॥ जगत मूल यह राग है,

बुद्धि पदा गगन । मूल दुष्टनरो यह कयो, जाग सरे तो
 नाग ॥ २ ॥ गगन मान माया उरत, लोभ सहित परि-
 राध ॥ ३ ॥ हा नर शत्रु है, ममुको आनमराम ॥ ३ ॥
 ४-१ ॥ गगनको, जो जीत जगमाहि । सो पावहि पद
 भाग्य दान धोखो नाहि ॥ ४ ॥ जा लच्छीक काज तू,
 गगन ह निज धर्म । सो लच्छी सँग ना चल,
 मलन भर्म ॥ ५ ॥ जा कुटुम्बके हेत तू,
 मरत अनेक उपाय । सो कुटुम्ब अगनी लगा, तोरो देत
 जगप ॥ ६ ॥ पोषत है जा दहका, जोग त्रिभिन्न लाय ।
 सो तोरो जिन एरमें, दगा दय तिर जाय ॥ ७ ॥
 लच्छी मांय न अनुमर, दह चल नहि सग । फाट काट
 मुजनहि ररे, दग जगन के रग ॥ ८ ॥ दुर्लभ दश दृष्टान्त
 गम, सो नरभर तुम पाय । विषय सुखनके कारन, मर्म
 चले गमाय ॥ ९ ॥ जगहि पित्र कइ युग भये, सो कछु
 रियो विचार । चेतन अगनो चेतन, नरभर लहि अतिमार
 ॥ १० ॥ ऐमें मति विभ्रम भई, विषयनि लागत धाय ।
 कै दिन कै छिन कै घरी, यह सुग तिर ठहराय ॥ ११ ॥
 पी तो सुभा स्वमायसी, जी ! तो कहैं सुनाय । तू रीतो
 क्यों जातु है, नीतो नरभर जाय ॥ १२ ॥ मिथ्यादृष्टि
 निकृष्ट अति, लगे न इष्ट अनिष्ट । अष्ट करत है मिष्टको,
 शुद्ध दृष्टि द पिष्ट ॥ १३ ॥ चेतन कर्म उपाधि तन, राग
 द्वेषको सग । ज्यो श्रगटे परमात्म, गिर सुख होय अमग

॥ १४ ॥ ब्रह्म कहें तो न गरी हैं पुनि नाहि । देख
 गढ़ दोऊ नहीं, चिदाना माहि ॥ १५ ॥ जो देखै इह
 ननमो, सो सर निनम्य । तासा जो अपनो कहै नो
 मरग शिरराय ॥ १६ ॥ पटलको जो रूप है, उपर
 निनमै सोय । जो आननाया आतमा, सो कछु और न
 होय ॥ १७ ॥ दग्य अस्था गर्भकी, कौन कौन दुख
 होहि । यहू मगन ममारम मौ लानत है तोहि ॥ १८ ॥
 अघो शीस उर चरन, कौन अशुचि आहार । योरे
 दिनकी बात यह, भूलि जात ससार ॥ १९ ॥ अस्थि चर्म
 मलमूत्रमें, रन दिनामो नाम । देख दए धिनामनो, तऊ न
 होय उदास ॥ २० ॥ रोगादिक पीडित रहै, महारुप जो
 होय । तगह मरग जीय यह, धर्म न चिन्तै कोय ॥ २१ ॥
 मरन समय मिललात है, कोऊ लेहु बचाय । जान ज्यों
 त्यों जीजिय, जोर न कछू बचाय ॥ २२ ॥ स्त्रि नरभव
 मिलिओ नहीं, किये हु कोट उपाय । तत्रै बेगहि चेत
 अहो जगतके राय ॥ २३ ॥ भैयास रह चीनर्त, बेन
 चितहि विचार । ज्ञानदर्श चागिरे आपो लहु निहत
 ॥ २४ ॥ एक मात पचासो रत्नर मुहूर्त ॥ २५ ॥
 शुक्ल तिथि वर्मकी, जै जै निरिगिहार ॥ २६ ॥

परमात्मा उत्तीर्णी ।

दाहा ।

रमन का जर राग है, राग जरे जर जाय ।
 गगद गत परमात्मा, भैया सुगम उपाय ॥१८॥
 कादही भट्ठत फिर, मिद्ध होनके फान ।
 गगदपरी त्यागद, 'भैया' सुगम इलाज ॥१९॥
 परमात्म पदकी घनी, रक भयो मिललाय ।
 गगदपरी पीनिमो, जनम अकार्य जाय ॥२०॥
 गगदपरी प्रीति तुम, भूलि कगे जिनरय ।
 परमात्म पद डाकके, तुमहि शिये तिरजय ॥२१॥
 जप तप मयम मय भलो, राग द्वेष जो नाहि ।
 राग द्वेषके जागत, ये मय मोये जाहि ॥२२॥
 राग द्वेषके नाशते, परमात्म परकाश ।
 राग द्वेषक भामत, परमात्म पद नाश ॥२३॥
 जो परमात्म पद चहै, तो तू राग निरा ।
 देग सयोगी श्यामिनी, अपने हिये शिचार ॥२४॥
 लाय चातकी चान यह, तोको दई बताय ।
 जो परमात्म पद चहै, राग द्वेष तन भाय ॥२५॥
 राग द्वेषके त्याग निन, परमात्म पद नाहि ।
 कोटिमोटि जपतप कगे, मरहि अकार्य जाहि ॥२६॥

दोष आत्माको यहै, राग द्वेषके संग ।
 जैमें पाम मजीठके, वस्त्र और ही रंग ॥२७॥
 तैसें आत्म द्रव्यको, राग द्वेषके पास ।
 कर्म रंग लागत रहै, कैसें लहै प्रकाश ॥२८॥
 इन कर्मनको जीतिषो, कठिन बात हँ सीत ।
 जड खोदें विन नहि मिटै, दुष्टजाति रिपरीत ॥२९॥
 लल्लोपत्तोके^१ मिये, ये मिटवैके नाहिं ।
 ध्यान अग्नि परकाशके, होम देहु विधि माहिं ॥३०॥
 ज्यों दारूके गजको^२, नर नहिं सके उठाय ।
 तनक आग सयोगत, छिन इरुमें उड़ि जाय ॥३१॥
 देह सहित परमात्मा, यह अचरज की बात ।
 राग द्वेषके त्यागत, कर्म शक्ति जर जात ॥३२॥
 परमात्मके भेद द्रव्य, निवृत्त सकल परमान ।
 सुख अनतमें एकसे, कहिवेको द्रव्य धान ॥३३॥
 भैया वह परमात्मा, मो ही तुममें आहि ।
 अपनी शक्ति सम्हारिके, लखो वेग ही ताहि ॥३४॥
 रागद्वेषको त्यागके, धर परमात्म ध्यान ।
 ज्यों पावे सुख सपदा, भैया हम कल्याण ॥३५॥
 ॐ इति परमात्माद्यत्तीसी ॐ

नाटक पचीसी ।

पुण्य योग भूपति भये, पापयोग भय ररे ।
 मुग दुग आपहि मानिके, नाचत फिरे निशर ॥१६॥
 नागि नपुमर नर भये, नाना स्वांग रमाहि ।
 चेतनमो परिचय नहीं, नाच नाच मिर नाहि ॥१७॥
 एस काल अनंत हुए, चेतन नाचत तोहि ।
 प्रनई आप ममारिये, मायधान मिन ! होहि ॥१८॥
 मायदान जे जिय भये, ते पहुँच शिखोर ।
 नाचभाय सब त्यागके, विलमत भुम्बके मेर ॥१९॥
 नाचत ह जग जीव जे, नाना स्वांग रमत ।
 दयत है तिह नयनो, मुख अनंत विलमत ॥२०॥
 जो मुख दयत होत है, सो मुख नाचत नाहि ।
 नाचनमे सय दुग है, मुख निजदखन माहि ॥२१॥
 नाटकमे मय नृत्य है, मारवस्तु कह्यु नाहि ।
 ताहि विलोरो मीन है, नाचन हारे माहि ॥२२॥
 दग्ग ताको दखिय, जान ताको जान ।
 नी तोको शिर चाहिये, सो ताको पदचान ॥२३॥
 प्रगट होत परमात्मा, ज्ञानदृष्टिके दत्त ।
 लोकांलोक प्रमान सय, छिन डकमें लयलेत ॥२४॥
 'भया' नाटक रूमत, नाचन 'सब' ससोर ।
 नाटक तज न्यार भये, ते पहुँचें मय पार ॥२५॥

पंचेन्द्रियसमाद

तर चोले मुनिरायजी, मन क्यों गर्म करत ।
 देखतु तदुल मच्छमो, तुमन नरै परत ॥११७॥
 पाप जीव कोइ करो, तू अनुमोदे ताहि ।
 तामम पापी तू ऊँधो, अनरथ लेही मिसाहि ॥११८॥
 इन्द्रिय तौ गठी रहै, त दौरे निशरीश ।
 छिन छिन राघ कर्ममो, देखत है जगदीश ॥११९॥
 बहुत रात कहिये कहा, मन मुनि एक विचार ।
 परमात्मको ध्याइये, ज्यों लहिये भवपार ॥१२०॥

ईश्वरनिर्णयपञ्चासी

विवृति ।

जैमें कौउ म्यान परयो काचके महलगोइ और टोर
 म्यान देख भूस भूम मरयो है । रातर ज्यों मूर्छा रात्र
 परयो है पराये बश, हएमें निदागि मिड आप कूट
 परयो है ॥ फटिकसी गिलामें बिलोफ गत्र आप अरयो,
 नलिनीक सुगन्धमो कौनैको पकरयो है । तैमे ही अनादिको
 अज्ञानभाव मान हस, अपनो मया भूलि जगतमें
 फिरयो है ॥ १२ ॥

दृष्टातपञ्चासी ।

दोहा ।

राग न कीजे जगनमें, राग किय दुरु होय ।
 देखहु कोकिल पीजरे, गति डारत है लोय ॥१३॥

१० न को १५ नह मिये दुख होय ।
 ११ मरि १५ टार जामें जोय ॥१७॥
 १२ न १५ रमै माय लपटाहि ।
 १३ गुन १५ मिथिल होय दूर जाहि ॥२०॥
 १४ १५ नक निच भावनको ध्यान ।
 १५ १५ अनुसर, मो पारि निरान ॥२३॥

जगत्तीसी ।

१६ १५ भतम, दूजो रीन कहाय ।
 १७ १५ जडहें, रिपक उनमें जाय ॥२६॥
 १८ १५ दख र, जाने मर ममार ।
 १९ १५ मर नहा, रिपयन सेनी प्यार ॥२७॥
 २० १५ शक्ति ग्याय्य प्रपन्ना, रक्तिम राख निमान ।
 २१ १५ मन जीत मन डड हू, महे गम दुख आन ॥२८॥
 २२ १५ बाहिल पग्निग्रह र नहि, मनम धरि रिहार ।
 २३ १५ तादुल मख निदागिय, पड़े नर निरधार ॥२९॥

चौपाइ (९ मात्र) ।

कहा रहा जियकी जडताट । मोंप बहुत ररनी नहि
 जाद ॥ आरज सट मनुष्यभव पायो । मो रिपयासेण सेल
 समायो ॥ ३० ॥ आग कहो कौन गति जहो । ऐसे
 जाम ररु कहा पयो ॥ अर न मूरख चेत सबर । आवत
 काल टिनहि छिन नेर ॥ ३१ ॥ जगलों जमकी पौज न

आरं । तयलो ओ मनसो ममुभारं ॥ आत्म तत्र मिद्ध-
मम शनं । नाहि मिलोस भर्नभय भाव ॥ ३२ ॥ उदुन
गत कहिये कहू केनी । वारज णरु तद्व ही सेती ॥
अन्न लग्न मो ही सुग पायं, भैया मो परत्र रहारं ॥ ३३ ॥

स्वप्नपत्तीसी ।

दोहा ।

सुपनेमो रहे झूठ है, जाग रहे निनगेह ।
ते मृग्य समाममें, लहे न भरसो न्हं ॥ ११ ॥
रहा सुपनमें माच है, कहा जगतमें माच ।
भूलि मूढ़ थिर मानिहें, नास्त डोले नाच ॥ १२ ॥
आय मृग गोले कहा, जागत फोऊ नाहि ।
मोस्त मर ममार द्वै, मोहगदलता माहि ॥ १३ ॥
मृग्य है यह आतमा, क्योंह ममभक्त नाहि ।
देखि सुपनस्त आयसों, बहुर मगन तिहमाहि ॥ १४ ॥
जानत है जमरावरी, आवत फाँज प्रचड ।
मारि करं डह देहकी, छिनरमाहि शत सद ॥ १५ ॥
ऐसे जमको भय नहीं, पोषत तन मन लाय ।
तिनमम मृग्य जगतमें, दुजो कौन कहाय ॥ १६ ॥
मृग्य मोक्त जगतमें, मोह गदलतामाहि ।
जन्म मरन बहु दुख महं, तो ह जागत नाहि ॥ १७ ॥

जम ऊपर जम ' हे, जिनमो जम हु डराय ।

तिनह पण जो 'ये, जमरी कहा बसाय ॥२६॥

• कइ विषय ।

कवित्त ।

प्रपत्नी ' पाट तुम यहाँ आय, अर कहूँ
मोच नि, ' हैं । तब तो विचार कहूँ कीन्हों
नाहि जगद ' तन उदै आय हमे ऐमे रुति है ॥
अर पति ' न हूँ अज्ञानी जीव, भुगते ही बन
कनिह ' गमेरो ममारिके विचारिकाम बही
रुति नाह ' कइ केरु न धरि है ॥ ७ ॥

कवित्त ।

इ मन ' निधान निरधर, चाहसो मोच करै नित
जग । त ' तन ' तितह परद्वय है, ताहिरी चाह निशा
दिन कृगे ॥ आन हाव कहूँ गठ तेरे जु, बाधत पाप
प्रमाण न पूगे । आगेरो नलि नै दुरकी कहूँ, सुमत
नाहि सियो मयो खूगे ॥ ८ ॥

कवित्त ।

कई कहूँ वर भये भूपर प्रचंड भूप, उदै बडे भूपनके दश
छीनि लीने हैं । कई कई वर भये सुर भौनरामो देव, कई कई
' तो निवाम नै जान हैं ॥ कई कई रेर भये कीट मल-
भूत माहि, ऐसी गति नीच बीच सुग मान भीने हैं ।

कौडीके अनन्तभाग ओपन विनाय लुके, गरि कहा करे
मृत ! देखि दग दीने है ॥ १५ ॥

बोहा ।

पिन रुपायके त्यागते, मुख नहि मारै जीर ।
ऐसे श्रीनिन्दर कहौ, तानी माहि मदीर ॥ २१ ॥

ॐ इति सम्पूर्ण ॐ

समयसार नाटक

द्वितीयोपदेश कथन ।

कथित ।

मतगुरु कह भव्यजीवनमो, तोरहु तुरत मोहकी
जेल । समस्तिरूप गहो क्षपनो गुण, करहु शुद्ध अनुभवनको
मेल ॥ पुद्गलपिण्ड भारागादिक, इनसो नही विहारो
मेल । ये जड प्रगट गुप्त तुम चेतन, जैसे भिन्न तोय
थरु तेल ॥ १२ ॥

अथ द्वितीय अजीवद्वार प्रारम्भ ॥

गुरु परमार्थकी शिज्जा कथन करे है ॥ सन्यास
मैया जगवामी जू उदामी, हनरु जगतमो, एक छ
महीना उपदेश मेरो मानरे । और मस्तप निम्नपर
पिंकार तजि, गंठके एकतु मन एक ठौर आनरे ॥ तेरा
घट मरितामैं तूही हूँ कमल नाका, तूही मधुसर हूँ सुवास

प्राद्विधान ३ । प्राप्ति
मही टरे है प्राप्ति

व है कछु ऐसी तू विचारत है
तोही जानरे ॥ ३ ॥

अ ४ रत

रापद्वार प्रारम्भ ॥ ४ ॥

शिष्टमे

गुरु उत्तर कहे हैं पापपुण्य

७ ॥ सबैया ३१ सा

रूप २० २ ४ । फल्लेरा विशुद्धि सहज दोउ कर्म
जालमें मिसेलिये ॥ कारणादि
मे २० २ ४ । माहि, ऐसी द्वैत भाव ज्ञान
दाउ महा अग्ररूप दोउ कर्म बधरूप,
दु, रा २० २ ४ । मराममें देखिये ॥ ६ ॥

अ ४ मज्जम निर्जराद्वार प्रारम्भ ॥ ७ ॥

जीवकी शयन दशाका स्वरूप कहे हैं ॥ सबैया ३१ सा

काया चित्रशानामें करम परजक भारि, मायाकी
मगरी सेन चादर कल्पना । शयन करे चेतन अचेतनता
नाद लिये, मोहकी मरोर यहै लोचनको ढपना ॥ उदै
बल जोर यहै श्यामको शब्द घोर, त्रिपै सुखकारी जाकी
दोर यही सपना । ऐसे मृद दशामें भगन रहे तिहुँकाल,
जान भमजालमें न पावे रूप अपना ॥ १३ ॥

जीवकी जाग्रत दशाका स्वरूप कहे हैं ॥ सवेया ३१ भा

चित्रशाला न्यारी परवरु न्यारी सेत्र न्यारी, चादर भी न्यारी पहाँ झूठी मेरी थपना । अतीत अस्थायी सैन निद्रा छोड़ि कोउ पै न विद्यमान पलरु न यामें अब छपना ॥ रगास औ सुपन दोउ निद्राकी अलग धूँके, सुभे सर अक लखि आतम दरपना । त्यागी भयो चेतन अचेतनता भार छोड़ि, माले दृष्टि खोलिके मंमाले रूप थपना ॥ १४ ॥

असभय-दोहा ।

इहमय भय परलोक भय, मरण वेदना जात ।

अनरचा अनगुप्त भय, अकस्मात् भय सात ॥४७॥

ज्ञान भयके जुदे जुदे स्वरूप कहे हैं ॥ सवेया ३१ सा

दण्डा परिग्रह त्रियोग बिंता इह मय, दुर्गति गमन भय परलोक मानिये । प्राणनिको हरण मरण मै कहावे मोड़, रोगादिक कष्ट यह वेदना बखानिये ॥ रक्षक हमारो कोउ नाहीं अनरचा भय, चोर भय विचार अनगुप्त मन आनिये । अनाचित्यो अवधि अचानक कहाघो होय, ऐसे भय अकस्मात् अगतमें जानिये ॥ ४८ ॥

इसके अन्तर्गत निवारणक मन्त्र (उपाय) कहे हैं ॥

छपय छन्द ।

११ निशक निमल निन, ज्ञानरूप निरगत नित ।

२ मम भय, तम परधन इम अक्षत ॥

३ ममारविभय परिवार भार जमु ।

४ पात तर्हा प्रलय, जामु मयोग वियोग तमु ॥

५ पण परगट परमि, इह मय भय उपजे न चित ।

६ निशक निमल निन, ज्ञानरूप निरगत नित ॥४९॥

१२ मरणाके भय निवारणक मन्त्र (उपाय) कहे हैं ॥

छपय छन्द ।

१ ज्ञान चक्र मम मोर, जामु अमलोक मोक्ष सुख ।

२ इतर लोक, मम नाहि, जिम माहि दोष दुख ॥

३ पुण्य सुगति दाता, पाप दुर्गति दुःखदायक ।

४ तेई सटित यानि, म अखटित, गिरनायक ॥

५ इहविधि विचार परलोक भय, नहि व्यापत वरते सुखित ।

६ ज्ञानी निशक निमल निन, ज्ञानरूप निरगत नित ॥५०॥

१३ मरणाके भय निवारणक मन्त्र (उपाय) कहे हैं ॥

छपय छन्द ।

१ परम जीम नामिका, नयन यह अरण अक्ष इति ।

२ मन वच उल तीन, स्वाम उम्याम अर्थाधि धिति ॥

ये दण प्राण विनाश, नाहि जग मग्ग रहीजे ।
 ज्ञान प्राण मयुक्त, जीव तिहुँकाल न छीजे ॥
 यह चित करत नहि मरण भय, नय प्रमाण जिनपर कथित ।
 ज्ञानी निशक निरुलक निज, ज्ञानरूप निरसत नित ॥५१॥
 वेदनाके भय निवारणकू मत्र (उपाय) कहे हैं ॥
 छप्पय छन्द ।

वेदनहारो जीव, जाहि वेदत सोउ जिय ।
 यह वदना अभाग, सो तो मम अग नाहि पिय ॥
 कर्म वदना द्विविध, एक सुगमय द्वितीय दुख ।
 दोऊ मोह विकार, पुद्गलाकार बहिर्मुख ॥
 जय यह विवेक मनमें धरत, तब न वेदना मय निहित ।
 ज्ञानी निशक निरुलक निज, ज्ञानरूप निरसत नित ॥५२॥
 अनरक्षाके भय निवारणकू मत्र (उपाय) कहे हैं ॥
 छप्पय छन्द ।

जो स्वयस्तु सत्ता स्वरूप, जगमाहि त्रिभालगत ।
 ताम विनाश न होय, महज निश्चय प्रमाण मत ॥
 मो मम आत्म दरज, मरवा नहि सहाय धर ।
 तिहि कारण रचक न होय, भवक न कोय पर ॥
 जय यहि प्रकार निरधार किय, तब अनरक्षा मय नसित ।
 ज्ञानी निशक निरुलक निज, ज्ञानरूप निरसत नित ॥५३॥

१४ न । निवारणम् मत्र (उपाय) कहे हैं ॥

उपय छन्द ।

१ जालु लच्छन विन मटित ।

२ नाहि, माहि महि अगम अलडिन ॥

३ यनूप, अरुत अनमित अट्ट घन ।

४ रिम गहे, ठौर नहि लहे और जन ॥

५ वर ध्यान चर, तर अगुप्त भय उपशमित ।

॥ १॥ निशक निशक निज, ज्ञान-प निरयत नित ॥ ५४ ॥

अरुस्मात् मय निवारणम् मत्र (उपाय) कहे हैं ॥

छन्द ।

शुद्ध बुद्ध अरिद्ध, महन सुमृद्ध मिद्ध सप ।

अलस अनादि अनन, अतुल अरिजल स्वरूप मम ॥

॥ १॥ निदिलाम परमाण पीत निरुलस सुग धानर ।

॥ २॥ जहों दुनिया नहि कोइ होइ तहाँ रूढ़ न अचानक ॥

जय यह विचार उपनत तर, अरुस्मात् भय नहि उदित ।

ज्ञानी निशक निशक निज, ज्ञान-प निरयत नित ॥ ५५ ॥

अथ प्रथम अध्याय प्रारम्भ ॥ ८ ॥

चार पुरुषार्थ ऊपर जानीका अर अज्ञानीका

विचार कहे हैं ॥ १ मंत्रिका ११ सा

इलसो आचार ताहि गूग्य धरम कह, पटित धरम
वह वस्तुके समायको । मेहसो खजानो ताहि अज्ञानी

अरथ रहे, जानी कहे अग्र्य दरय दरमायसो ॥ दपति सो
भोग ताहि दुरबुद्धि काम रह, सुखी काम रहे अभिलाष
चित्त चायसो । इदलोक धानसो अनान लारु रह मोल,
सुधी मोल कह एक नयके अमारसो ॥ १४ ॥

उस्तुका सत्यस्वरूप अर मृदका विचार ।

मंत्रिया ३१ सा

तिहुँलोक माहि तिहुँराल मय जीयनि सो, पृथ्वी परम
उद आय रम दत है । कोऊ दीरघायु वर कोऊ अल्प
आयु मरे, कोऊ दुखा कोऊ सुखी कोऊ ममचेत है ॥ याहि
मैं जिगाऊ याहि मारू याहि सुखी करू, याहि दुखी करू
ऐसे मृद मान लेत है । आदि अह बुद्धिमो न गिनसे भग्न
भूल, यहै मिथ्यायम करम पध दत है ॥ १५ ॥ जहाँनों
जगतके निगामी जीय जगतम, मरे अमहाय कोऊ काहु
सो न धनी है । जैसे जैसे पृथ्वी परम मत्ता राधि तिन्ह,
तेसे तेसे उदमें अरस्था आइ गनी है । एतेपर जो कोऊ
रह कि मैं जिगाऊ मारू, इत्यादि अनेक विकल्प पात
धनी है । सो तो अह बुद्धिमो विकल भयो तिहुँराल, डाले
निज आत्म शक्ति तिन्ह दनी है ॥ १७ ॥

अधम मनुष्यका स्वभाव कहे हैं ॥ मंत्रिया ३१ सा

जैस रक पुस्पक भावे रानी कौडी धन, उलुगाके
भावे जैसे मसाही पिहा है । रक्क के भावे ज्या पिडोर

हरिना दण्डा, सुकरु भावे ज्यां पुगीष गङ्गान है ॥
 । मर भाव इस नारसी निरोरी दाग्य, बालरुके भावे
 २४ । २५ पुन है । हिमरुके भाव जस हिमाम धरम
 २६ । २७ भाव शुभ वर निरान है ॥ २१ ॥

सर्ग ३१ सा

किर उदोत अस्त होत दिन दिन प्रति, अमुलीक
 । रन ज्यो जीवन घटतु है । शालरु अमत छिन
 जन हात छिन तन, आरुके चलत मागो राठ ज्यों
 फटतु है ॥ एतपरि मूरख न खोचे परमारवरो, स्मारथके
 हतु भ्रम भारत ठटतु है । लग्यो किर लोरुनिमो पयोपरि
 जोगनिमो रिपरम भोगनिमो नेक न दण्डतु है ॥ २६ ॥

मृदजीय कर्मनभसे कैसे निकसे नहीं सो लोटण
 कबूतरका इष्टान देके कहे है ॥ सर्ग ३१ सा

लिये दूध पेच किर लोटण कबूतरसो, उलटो अना-
 दिरो न कई सुलटतु है । जागो फल दूख ताहि मातामों
 कहत सुख, महत लपेटि अमि धागमी चटतु है ॥ ऐसे
 मृदजन निज मपची न लग्ये यों ही, मेरी मेरी मेरी निशि
 वामर रटतु है । याहि ममताया परमारव निनमि जाड,
 कानिकी स्वर्ण पाप दूध ज्या फटतु है ॥ २८ ॥

नाकका और कानका दृष्टान देके मूढ़के अत्युद्धिका
स्वरूप कहै हैं ॥ सूरैया ३१ सा

रूपकी न भाऊ हिये करमको डारु पिये, ज्ञान दुखि
रह्यो पिरगाऊ जैसे घनमें । लोचनकी टाकमो न मानें
मदगुरु हारु, डोले मूढ़ रक्मो निशक तिहें पनमें । टारु
एक मामकी डलीमो तामें तीन फारु, तीन कोमो अरु
लियि राख्यो काहें तनमें । तामों कह नारु तारु गावयेको
करे काक, बाख्यो खडग बाधि गावि धरे मनमें ॥२९॥

कुत्तेका दृष्टान देके मूढ़का त्रिषयमें मग्नपणा
दिखावे हैं ॥ सूरैया ३१ सा

जसे कौऊ दूर चुधित सूके हाड चाये, हाडनकी
कीर चहुँओर चुभ मुखमें । गाल तालु रमनामों मुखनिमों
मास फाटे, चाटे निच रुधिर मगत स्याद सुखमें ॥ तैसे
मूढ़ विषयी पुष्प रति रीत ठाण्ये, तामें चित्त माने हित
माने खेद दुखमें । देखे परतत्त बल हानि मल मूत खानि,
गह न गिलानि पगि रहे राग रूपमें ॥३०॥

देहकी चाल कहै हैं ॥ सूरैया ३३ सा

देह अचेतन प्रेत दरी गज, रेत भरी मल खेतनी क्यारी ।
व्याधिकी पोट आगधिकी ओट, उपाधिकी जोट समाधिसो
न्यारी ॥ रे जिह्या दह करे सुख हानि, उते परती तोहि

लाग्न प्यागी । दह तो तोहि तजेगी निदान पै, तूहि तजे
रग न दहकी यागी ॥ ३८ ॥

दाहा ।

जब प्राणी मद्गुरु कह, देह रोहकी उरनि ।

जर सहच दुख पोषियो, करे मोघकी हानि ॥ ३९ ॥

देहका चर्णन करे हैं, सजेया ३८ सा

रैतकीमी गडी कीधो मटि है ममाण कीमी, अन्दर
अधरि जैमी कदरा है घुल की । ऊपरकी चमक दम्क पट
भूषणकी, धोक लगी भली जैसी कलि है फनैरकी ॥
औंगुणकी उडि महा भोंडि मोहकी फलोंडि, मायाकी
ममूरति है मूरति है मैलकी । ऐमी देह याहीके मनेह
याकी सगतिमों, ह्वे रही हमारी मति - कोलू कैसे पैलकी
॥ ४० ॥ ठौर ठौर रजतके कुड केमनिके झुड, हाडनिसों
भरी जैसे थरी है घुरेलकी । थोरेसे धक्काके लगे ऐसे
फटजाय मानो, कागडकी पुगी कीधो चादर है चलकी ॥
सूचे अम वानि ठानि मूनिमों पदिचानि, करे सुग्य हानि
अरु ग्यानि बढ फैलकी । ऐमी दह याहीके सनेह याकी
सगतिमों, ह्वे रही हमारी मति कोलू कैसे पैलकी ॥ ४१ ॥

संसारी जीवकी गति कोल्हूके बैल समान है ॥

मंत्रिया ३१ सा ।

पाटी बाधी लोचनोमों सचुके दगोचनिमों, कोचनीके मोचसों निवेद स्वेद तनको । धाड़वोही धधा अरु कधा माहि लग्यो जोत धार चार, आर सह कायर हू मनकी ॥ भूय सह प्यास महे दुर्जनको रास सहे, धिरता न गहे न उसास लह छिनको । पराधीन घूमे जैमा कोल्हूको कमेरा रल, तैसोही स्वभाव भया जगामी जनको ॥ ४० ॥ जगतमें डोले जगामी नररूप धरि, प्रेत कैसे दीप कींधो रत कैसे धूह है । दीसे पट भूषण आडरमा नीके फिरे, फीके छिन माहि मांक अंगर ज्यों मूहे है ॥ मोहके अनल दग मायाकी मनीमों पगे, डामरी अखीसों लगे ऊम कैसे फूटे हैं । धरमकी धूमि नाहि उरमे भरम माहि, नाचि नाचि मरि जाहि मरी कैसे चूह हैं ॥ ४३ ॥

जगबानी जीवके मोहका स्वरूप कहे हैं ॥

मंत्रिया ३१ सा ।

जासु तू कहत यह संपदा हमारी सो तो, साधुनि ये डारी ऐसे जसे नाक सिनकी । तासु तू रहत इस पुन्य जोग पाइ मो तो, नरककी साइ है बढ़ाई डढ़ दिनकी ॥ घेरा माहि परयो तू विचारे सुख आयिनिको, मायिनके चूटत

शूरी, करणी आचरे, शूरे सुखसी आस ।

शूरी भगती हिय बरे, शूरी प्रभुको दास ॥२७॥

सर्वथा ३१ सा ।

माटी भूमि सैलकी मो सम्पदा उराने निज, कर्ममें
अमृत जाने ज्ञानमें जहर है । अपना न रूप गहे और ही
सों आषा वह साता तो समाधि जाऊ असाता रहर है ॥
फौपसी करान लिये मान मट पान किये, मायाभी मरोग
हिये लोभसी लहर है । याही भाँति चेतन अचेतनसी
भगतिमो, माथमा निमुख भयो भूठमें बहर है ॥ २८ ॥
तीन काल अतीत अनागत वरतमान, जगमें अखण्डित प्रग-
हरो डहर है । तामो कह यह मेरो तिन यह भरी घरी,
यह मेरो ही पिगेई मेरो ही पहर है ॥ रोडरो खजानो
जोरे तामो कह मेरा गेह, जहाँ बसे तामों कह मेरा हा
शहर है । याही भाँति चेतन अचेतनसी भगतीनों, माचनों
निमुख भयो भूठमें बहर है ॥२९॥

बाह ।

निन्दके मिथ्यामति नही, ज्ञानरत्ना घट माहि ।

परचे आत्मराममा, ते अपरागी नाहि ॥३०॥

सर्वथा ३१ मा ।

निन्दके धर्म ध्यान पात्रक प्रगट भयो, समे मोह
निभ्रम बिरख तीना बड़े हैं । निन्दक चितौनि आगे उटै

कवित्त ।

जैसे पुष्प लखे पहाड चदि, भूचर पुष्प ताहि लघु
लगे । भूचर पुरुष लखे ताको लघु, उतर मिले दुहुको
अम भगे ॥ तैसे अभिमानी उन्नत गल, और जीनको
लघुपद दगे । अभिमानीको कहे तुच्छ सय, ज्ञान जगे
समता रम जगे ॥ ४४ ॥

सवैया ३१ सा

रुमके भारी मयुके न गुणको मरम, परम अनौति अधरम
रौति गहे हैं । होइ न नरम चित्त परम वरम हूते, चरमसी
दृष्टिमें भरम भूलि रहे हैं ॥ आसन न खोले मुख वचन
न बोले सिर, नायेह न डोले मनो पाथरके चहे हैं ।
देखनके हाउ मन पथके रड़ाऊ ऐसे, मायाके खटाउ अभि
मानी जीन कहे हैं ॥ ४५ ॥

सवैया ३१ सा ।

धीरके धरैग्या मन नीरके तरैग्या भय, भीरके हरैग्या
धरवीर ज्यों उमहे हैं । मागके मरैग्या सुविचारके करैग्या,
सुख द्वारके ढरैग्या गुण लोंगों लहलह हैं ॥ रूपके अङ्गैग्या
सनयके समझग्या मन हीके लघु भैग्या राखके कुनोल महे
हैं । वामके वमैग्या दुख दाम दमैग्या ऐसे, रामके
रमैग्या नर नानी जीन कहे हैं ॥ ४६ ॥

चौपाई

जे मनकिनी जीव समवेती, निनरी रया कह तुम-
मेनी । जहो प्रमाद तिया नहि कोई, निगिर्वैये अनुमो
पट माई ॥ ४७ ॥ पग्रिह त्याग जोम धिर नीनों, कामे
रैव नाह होय नरीनो ॥ जहाँ रोग द्वेष रमे मोहे ।
गगन मोक्ष मार्ग सुख मोह ॥ ४८ ॥ पुनरुप उद्वेग
नहि पाप । जहाँ न भेद पुन्य अरु पापे ॥ द्रव्य मात्र
गुण निर्मल धाम । योग विधान विविध विमतारा ॥ ४९ ॥
जेन्तके सहज अस्थाय ऐसी । तिन्हक हिरद दुमिग
रमी । जे मुनि चपक श्रेणि चढ़ि धाये । ते केवल भगवान
कहाये ॥ ५० ॥

इति चतुस्रो मोक्षद्वार समाप्त भयो ॥ ९ ॥

अथ दशमो सर्वविशुद्धिद्वार प्रारम्भ ॥ १० ॥

मंत्रया ३१ मा ।

कायासे विचार प्रीति माया ही म हारि जीति, लिये
हठ रीति जेसे हारिलरी लकरी । चुगुलमो जोर जेसे गोठ
गहि रह भूमि, क्योंही पाप गाढे पे न छोड़े टेक पकरी ॥
मोहरी मरोगमो मरममो न ठौर पावे, धावे चहुँ ओर
ज्यों उड़ावे जाल मकरी । ऐसे दुरनुद्धि भूलि शठके मरोखे
शलि, फूली फिरे ममता जनीगनिमा जकरी ॥ ३७ ॥ वात

मुनि चौकि उठे रात ही मों भौंकि उठे, वातमों नरम होइ
 रातहीमों थररी । निंदा करे माधुकी प्रशमा करे हिंसररी,
 माता माने प्रभुता अमाता माने फररी ॥ मोच न मुहाइ
 दोष देखे तहाँ पैठि आइ, मालसों डराइ जैसे नाहम्मा
 बररी । ऐसे दुरनुद्धि भूलि झुठके भगोरें भूलि, फूली
 किये ममता जचीरनिमों बररी ॥ ३८ ॥

दोहा ।

यथा मूत्र सग्रह रिना, मुक्त माल नहिं होय ।
 तथा स्वाद्यादी रिना, मोच न माधे कोय ॥४०॥

मंत्रिका ३१ मा ।

बेन पाटी तल्ल माने निश्चय स्वरूप गहें, मीमामक
 रमे माने उदमें रहतु है । चौद्रमती पुद माने गुलम स्मभार
 माधे, शिवमति शिखरूप कालसी कहतु है ॥ न्याय ग्रथके
 पदग्या थापे करतार रूप, उद्यम उदीरि उर आनंद लहतु
 है । पाँगे दग्गनि ते सो पोपे एक एक अग, जैनी जिन
 पवि सरवणि नै गहतु है ॥ ४३ ॥

दोहा ।

तुज्जा करी हुररी, करे जगतमें मेद ।
 अलग्य अराधे राधिरा, जाने निन पर भेद ॥७०॥

चरैरा ३१ मा ।

जाना कृष्ण अग लगी है पराये संग, अपनो प्रमाण
नरि अगति निहाई है । गह गति अगकीभी, सकृति
अनपचाय बग्नो बझार करे वनदीम धाई है ॥ राइसीसी
शत रिघे भाइसीसी मतगारि, पाइ ज्यो स्मछ्छ डोले
नानदी सी गह है । घरको न जाने मैठ करे परागीन सैद,
नान गहूदा टागी कुजजा कडाई है ॥ ७३ ॥ रूपकी
गला नम कृष्णकी कीली गोल, सुधाके मसुद्र भीलि
मान सुगनाई है । आची ज्ञानमानकी अजाची है निदानकी,
मुगति गिराची ठौर मार्ची ठकुराई है ॥ धामकी खर-
तार रामकी रमन हार, गधा रम पथनिके अथनिमें गाई
है । सतनकी मानी निग्यानी तूकी निसानी, याते सद-
बुद्धि राणी राधिका कडाई है ॥ ७४ ॥

बोदा ।

वह कृष्ण वह राधिका, दोऊ गति मति मान ।
वह अविकारी कर्मकी, वह गिरेरुकी रान ॥ ७५ ॥
कर्म चक्र पुद्गल दशा, भावकर्म मतिरक ।
जो सुमानको परिखमन, मो गिरेर गुणचक्र ॥ ७६ ॥

कवि ।

जसे नर खिलार चोपगिको, लाम विचारि पर चित-
चार । धरे सगारि मारि बुधि बलमा, पामा जो कुछ परे

सुदाय ॥ तैसे जगत जोय स्वारथको, करि उद्यम चिंतवे
 उपाय । लिरयो ललाट होइ सोई फल, कर्म चरको यही
 स्वभावे ॥ ७७ ॥ जैसे नर पिलार सतगजको, समुझे मन
 मतरजसी घात । चले चाल निरमे दोऊ दल, मद्दुग गिणे
 रिचारे भात ॥ तैसे साधु निपुण गिर पथमें, लक्षण लखे
 सजे उतपात । भाधे गुण चिंतवे अभयपद, यह सुनिरेक
 चक्रकी घात ॥ ७८ ॥

जेहा ।

घानरत अपनी कथा, कह आपसों आप ।

मैं मिथ्यात दशारिष, कीने बहुतिव पाप ॥८९॥

सर्ग ३१ सा ।

हिरदे हमारे महा मोहकी निमलताई, ताँत हम करुण
 न फीनी जोय घातकी । आप पाप कीने औरनिकों उप
 देश दीने हुनि अनुमोदना हमारे याही बातकी । मन धन
 कायामें मगन हूने कमायो कर्म, धामे भ्रम जालमें कहाये
 हम पातकी । घानके उदयते हमारी दशा ऐसी भई, जैसे
 भानु भामत अस्थायी होत प्रातसी ॥ ९० ॥

सर्ग ३१ सा ।

घान भान भामत प्रमाण ज्ञानरत कहे, करुणानिवान
 भमलान भैरा रूप है । कालसों अतीत कर्म बालसों
 अभीत जोग, जालसों अजीत जाकी महिमा अनूप है ॥

मोक्षीं निज, न तू तूतरी काम में तो, नगदमा शून्य
पाप ५ १ गच्छ २ ॥ पाप भिन क्रिये वीन करे करि है
५ ११, विषाग निवार मुपने की ठोर भूष है ॥ ९१ ॥
५ १२ १ गम मदा मोह राजा पमे, करणी अमान
५ १३ १ गम पुगे है । करणी करम काया पुद्गलकी
५ १४ १ गम प्रगट माया मिमरीकी भुरी है ॥

५ १५ १ गम उरभि गयो चिन्तनद, करणीकी ओट
५ १६ १ गम दूति दुरी है । आचारज रुह करणीमें व्यसहारी
५ १७ १ गम मदर निदर्य स्वरूप भुरी है ॥ ९६ ॥ भेषमें
५ १८ १ गम नहि पान गुरु वर्तनमें, मत्र तत्र गुरु तत्रमें न
५ १९ १ गम कहानी है । अथमें न ज्ञान नहीं ज्ञान रनि चातुरीम,
५ २० १ गम नही मान रुहा गानी है ॥ तातैं भेष गुस्ता
५ २१ १ गम मत्र गत ईनात अतीत ज्ञान चेतना निशानी
५ २२ १ गम नही ज्ञान नहीं ज्ञान और ठोर कहूँ, जाके घट
५ २३ १ गम मोही ज्ञानकी निदानी है ॥ १११ ॥ भेष घरि लोख-
५ २४ १ गम मो धरम ठग, गुरु सो कहारें गुग्राई जाक
५ २५ १ गम मत्र तत्र मावर कहारें गुणी जादूगारि, पडित
५ २६ १ गम रुहाये पडिताद जामें लहिये ॥ कवित्तकी कलामें प्रवीण
५ २७ १ गम मो कहारें रनि, बात रुहि जाने मो पयागगी कहिये ।
५ २८ १ गम मत्र त्रिपैक मिसारी मायाधारी जीव, इनका मिलोभिकें
५ २९ १ गम दयालु रूप रहिये ॥ ११२ ॥

चापाई ।

गुण पयाय-
पीने ॥ आप म-
कीने ॥ ११६ ॥

न दीने, निर्विकल्प अनुमते एव
आपमें लीजिए । तनुषा मेदि अशनपो

दोहा ।

तत्र विगत इव मगन, शुद्धात्म एव मादि ।
एव मोक्ष मार्ग यहै, और दूसरी नाहि ॥ ११७ ॥

सर्ग २१ सा ।

कैसे मि पादष्टि जीव घरे जिन मुद्रा में क्रियामें
मगन रह रह हम यती है । अतुल अतुल मन रहित मद्रा
उद्योत, एम ज्ञान भाग्यो निमुक्त मृ मती है । आगम
सभाल टोष टाने व्यवहार भाल, पान न यद्यपि तयापि
अगिरी है । आपसी कहाव मावनागक अधिगारी,
मोक्षसे मदय रुष्ट दुष्ट दुरगती है ॥ ११८ ॥

इति नरामो सर्वशुद्धिार नम्रय ॥ १० ॥

अथ नारदमो साध्य साधक द्वार प्रारम्भ ॥ ११ ॥

सर्ग ३ सा ।

चेतनजी तुम जागि तिलोक्त, लागि रहे कहीं मायाक
साडं । आये कहीं मोक्षी तुम जोहोगे, माया रहगी
जहाँके तहाँ ॥ माया तुमारी न जीति न पाति न

बेनि न अग्री भड । दासि किये निन लातनि मारत,
एमी अरीति न जान गुमाई ॥ ५ ॥

गोहा ।

माया छाया एक छे, घटे बदे छिन माहि ।
नाक मगनि जे लगे तिन्हे कहूँ सुख नाहि ॥३॥

सवैया २२ सा ।

गोरुनिमों कहु नातो न तेरो, न तोसो कछु इह
नोदते नातो । ते तो रहे रमि स्वारथके रम, तू परमा
नकर रम मातो ॥ य तनसो तनमें तनसे जड, चेतन तू
तनमा निति हातो । होहि सुखी अपनो बल फेरिक,
तोरिक राग विरोधको तातो ॥ ७ ॥

सोरठा ।

जे दुषुद्धि जीउ, ते उत्तम पदगी चहे ।
जे समरमी मनीउ, तिनमो कछु न चाहिये ॥८॥

सवैया ३१ सा ।

हामीम विषाद उसे विधाम विषाद बसे, कायामें मरण
गुरु वर्तनम हीनता । शुचिमें गिलानि उसे प्रापतीमें हानि
बसे, जयम हारि सुन्दर-दशामें छत्रि छीनता ॥ रोग बसे
भोगमें सयोगमें वियोग बसे, सुखमें गरम उसे सेवा मांहि
दीनता । और जग रीत जेनी गर्भित यसाता तेति, माताकी
महली है अगेली उदासीनता ॥ ९ ॥

बोहा ।

जो उत्तम चढ़ि फिर पवन, नाहिं उत्तम वह रूप ।
जो मुख अंतर भय बसे, सो मुख है दुखरूप ॥१०॥
जो बिलसे मुख मपन, गये तहाँ दुख होय ।
जो धरती उहु ठणवती, जरे अग्निसे सोय ॥११॥

पान्न प्रकारके जीव ।

बोहा ।

इ धा प्रभु चू धा चतुर, सू धा गोचर शुद्ध ।
ऊ धा दुर्दुष्टि निक्ल, घू धा घोर अनुद्ध ॥१६॥
जासी परम दशार्णव, र्म क्लृप्त न होय ।
इ धा अगम अगाध पद, उचन अगोचर सोय ॥१७॥
जो उदाम हूँ जगतमों, गहे परम रम प्रेम ।
सो चू धा गुरुके वचन, चू धे बालक जेम ॥१८॥
जो सुरजन रुचिमा सुने, हिये दुष्टता नाहि ।
परमारथ समुझे नहीं, सो सू धा जगमाहि ॥१९॥
जाको मिथ्या हित लगे, आगम अग अनिट ।
सो निषयी दुरसे निक्ल, दुष्ट रष्ट पापिष्ट ॥२०॥
जाके उचन अग नही, नहिं मन मुक्ति निगम ।
जहतामो जहवत भयो, घू धा ताको नाम ॥२१॥

चौपाद ।

उधो गिद्ध रह मर कोऊ । मूघा उघा मूरुग दोऊ ॥
गघा घोर विचल ममारी । चपा जीव मोल अमिहारी ॥२२॥

वादा ।

सघा सावक मोचरी, कर दोष दुर नाश ।
लघ पोष, मतोषमो, ररना लखण तास ॥२३॥
रूपा गशम रुवेग दम, अस्ति भार वैराग ।
य लनण जाके द्विय, मम व्यसनरी त्याग ॥२४॥

चौपाद ।

जुग आमिष मडिरा ढारी । आवेटर चोरी परनारी ॥
यइ मम व्यसन दसदाइ । दुग्ति मूल दुर्गतिक भाई ॥२५॥

संज्ञा ३१ सा ।

अशुभमें डारि शुभ जीति यहै धूर्तर्म, दहसी मगन-
ताई यहै मास भसिगो । मोहसी गहलसो अजान यहै सुरा
पान, रुमतीकी गीत गणिसागो रम चसिगो ॥ निर्दय हनै
प्राण घात करत यहै शिकार, परनारी सग पर बुद्धिगो
परसिगो । प्यारसो पराई सोज गहिबेसी चाह चोरी, एइ
साता व्यसन बिटारे नख लसिगो ॥ २७ ॥

इति श्री अमृतचंद्राचार्यनुमार समयसारनाटक समाप्त ॥

अथ चतुर्दश गुणस्थानाधिकार प्रारम्भ ।

मंत्रया ३१ सा ।

केई जीय ममस्तान पार्त अर्थ पुदगल, परावर्तमालताई
चोरे होई चित्ते । रुई एक अतर महूरतमें गठि भेदि, मारग
उलधि मुख वेद मान चित्ते ॥ ताते अतर महूरत मा
अर्थ पुदगलो, नेत ममय होहि तेते भेद समस्तित्ते ।
जाहि मर्म जाको जय समस्तित्त होइ सोइ, तरहीसों गुण गहे
दोष दहे इत्ते ॥ २७ ॥

चौपाइ ।

मत्य प्रतीति अस्थ्या जामी । दिन दिन रीति गंह
ममतामी । छिन छिन करे मत्यको माको । ममकिन नाम
कहावे तामी ॥ २८ ॥

दोहा ।

आपा परिचे निज पिपे, उपजे नहि नष्ट ।
महज प्रपच रहित दशा, ममकिन लक्ष ॥ २९ ॥
नेतो महज समागके उपदये नर को ।
चहै गति सैनी जीवने, ममकिन हेत ॥ ३० ॥

ज्ञाना परिष्कृतिन विष, उपजे नहि मन्दह ।
 मन्त्र प्रदत्त रत्नित दशा, समन्ति लक्षण येह ॥२९॥
 स्थापित ल गुणता, आत्म निदा पाठ ।
 १०० १ १०० १००, धर्म राग गुण आठ ॥३०॥
 १०० १०० १०० भावयुत, ह्य उपादे वाणि ।
 १०० १०० १०० परीणता, भूषण पर वाणि ॥३१॥
 १०० १०० १०० मल, पट आयतन विशेष ।
 १०० १०० १०० सपुत्र, दोष पनामा एष ॥३२॥
 १०० १०० १०० कृप तप, उल विद्या अविस्तर ।
 १०० १०० १०० कीर्तये, यह मद् अष्ट प्रकार ॥३३॥
 १०० १०० १०० मति मदता, निष्ठुर प्रयत्न उद्गार ।
 १०० १०० १०० दशा, नाश पच परस्पर ॥३४॥
 १०० १०० १०० भोग रति, अग्र मोक्ष धिति मेर ।
 १०० १०० १०० भगति, मृषा दर्शनी दूर ॥३५॥

मन्त्रेया २१ सा ।

चारित्र मोहकी चार मिथ्यातकी तीन तामें, प्रथम
 प्रकृति अनतानुग्रही कोहनी । बीनी महा मान रम मीजी
 मायामयी तीनी चाँवे महा लोभ दशा परिग्रह पोहनी ।
 पांचरी मिथ्यातमति छटी मित्र परणति, सातरी ममे
 प्रकृति समन्ति मोहनी । येई पष्ट विंग वनितामी एक
 दुतियासी, सानो मोह प्रकृति उहावे मत्ता रोहनी ॥४१॥

क्षप्य ।

मात प्रकृति उपशमहि, जासु मो उपशम मडित ।
 मात प्रकृति क्षय करनहार, चाधिर्मा अरुडित ॥
 मात माहि कन्धु छपे कन्धुरु उपशम करि रखे ।
 मो क्षय उपशमउत, मिश्र ममस्ति रम चकखे ॥
 पट प्रकृति उपशमे रा क्षे, अथरा क्षय उपशम रे ।
 सातई प्रकृति जाके उदै, मो वेदक ममस्ति धरे ॥४२॥

आवकके २१ गुण ।

संख्या ३१ मा ।

लज्जात दयात प्रमन्न प्रतीतत, पर दोषको ठरुपा
 पर उपकारी है । मौम्यदृष्टी गुणग्राही गरिए मरको इष्ट,
 मिष्ट पक्षी मिष्टवादी दीर्घ निचारी है ॥ विशेषन रमझ
 कृतज्ञ तज धरमत्र, न दीन न अमिपानी मध्य व्यग्रहारी
 है । महज विनीत पाप क्रियार्मा अतीत लेंगो, श्राव
 पुनीत इरुचीम गुणगारी है ॥४४॥

बाईस अभक्ष्यके नाम ।

श्रीग धोररा निशिभोजन, बहुजीना रंगण मधान ।
 पीपर बड उग्र कट्टमर पारर जो फल होय अजान ॥
 कदमूल माटी मिश्र आमिष मधु माखन अरु मर्दिरा पान ।
 फल अति तुच्छ तुषार चलितरम, निनमत ये बायीस
 बखान ॥४५॥

प्रतिमा और प्रतिमाके भेदोंके लक्षण ।

दोहा ।

मया एतन्मयो जहाँ, मोंग अरुचि परिणाम ।

११ मन्त्रात्ता भयो, प्रतिमा ताको नाम ॥५८॥

१२ एतगुण सग्रहे, कुन्यमन क्रिया न होय ।

१३ एतगुण निर्मल करे, दर्शन प्रतिमा मोय ॥५९॥

१४ अणुत्रत आदरे, तीन गुणत्रत पाल ।

१५ अणुत्रत चारो वर, यह त्रत प्रतिमा चाल ॥६०॥

द्रव्य भाव त्रिधि मयुक्त, हिये प्रतिज्ञा टेर ।

१६ नजि ममता ममता गह, अतमुर्दुरत एक ॥६१॥

चीपाइ ।

जो अरि मित्र समान विचार । आगत रौद्र कुध्यान
निगारै ॥ मयम महित भावना भावे । सो सामादकृत
वहावे ॥ ६२ ॥

दोहा ।

प्रथमहि मामायिक दशा, चार पहरला होय ।

अथवा आठ पहर रहै, प्रोमह प्रतिमा सोय ॥६३॥

जो मचित्त भोजन तजे, पीये प्रासुक नीर ।

सो मचित्त त्यागी पुरुष, पच प्रतिज्ञा गीर ॥६४॥

चौपाई ।

जो दिन ब्रह्मचर्य घत पाले । तिथि आये निशि
दियस समयले ॥ गहि नय बाडि करे उत रग्या । सो
पट् प्रतिमा आरक आर्या ॥ ६५ ॥ जो नय बाडि
सहित विधि माघ । निशि दिन ब्रह्मचर्य आराधे ॥ सो
मसम प्रतिमा घर झाता । सील शिरोमणि जगत
निख्याता ॥ ६६ ॥

दोहा ।

जो निवेक तिथि आदरे, करे न पापारम ।
सो अष्टम प्रतिमाधनी, कुगति निज रखयम ॥ ६८ ॥

चौपाई ।

जो दशधा परिग्रहको त्यागी । मुख सतोप सहज
वैरागी ॥ मेमरम मचित किंचित ग्राही । सो आरक नौ
प्रतिमा गही ॥ ६९ ॥

दोहा ।

परका पापारमको, जो न देड उपदस ।
सो दशमी प्रतिमा सहित, आरक विगत क्लेश ॥ ७० ॥

चौपाई

जो म्वच्छद उरते तनि डेरा । मठ मढपमे करे
चसेरा ॥ उचित आहार उदह मिहारी । सो एकादश
प्रतिमा धारी ॥ ७१ ॥

दोहा ।

पट प्रतिमाता सघन्य, मध्यम नव पर्यंत ।

अनृष्ट दामी ग्यागी, इति प्रतिमा निरतत ॥७३॥

सर्ग्या ३१ मा ।

मामकी गरवि बुच कचन कलरा कह कह मुख चद
जा जेमासो पर है । हाडके दशन याहि हीरा मोती
कह ताहि, मामक अवर ओठ कह निव कल है ॥ हाड
दड भुजा कड काल नाल काम जुग, हाडहीके थभा जघा
रह रभा तरु है । याही भूठी जुगति बनाव औ कह ये
कवि, एत पर कह हमें शारदाको चर है ॥ १८ ॥

दोहा ।

घटघट अतर जिन बसे, घटघट अतर जेन ।

मतमदिराके पानमो, मतगला ममूने न ॥३०॥

ॐ इति मपूण ॐ

ॐ वनारभीविलास ॐ

(प० वनारमादामनी)

सर्ग्या ३१ मा ।

जामे मदा उत्पात रोगनिमो छीन, गात कछु न
उपाय छिन छिन आउ सपनो । कीजे घटपाप और

नरक दुख चिता व्याप थापदा कलापमें रिलाप ताप
 तपनो ॥ जामें परिग्रहको रिपाद मिथ्या वक्ताद रिपे भोग
 सुख है सराद जैमो मयनो । ऐमो है जगतसम जैसो
 चपला रिलाप जामें तू मगन भयो त्यागि धर्म अपनो
 ॥ १ ॥ जगमें मिथ्यानी जीव भ्रम करे है सदीव भ्रमके
 जगहमें पहा है आगे पढगा । नाम राखिवेशो महारम कर
 दम कर यो न जाने दुर्गतिमें दुख जैन महगा ॥ बारबार
 कह मैं ही भागवत बनवत मेरा नाम जगतमें मद्राशाल
 गहेगा । चाही ममताओं गहि आयो है अनन्त नाम
 आगे योनि योनिम अनन्त नाम गहेगा ॥ २ ॥

सर्वथा २३ सा ।

मात पिता सुत पुत्र मग्नी जन मीत हित सुख
 कामिन कीक । सेनक राजि मतगज बाजि महादल माजि
 रथी रथ नोक ॥ दुर्गति जाय दुखी बिललाप पर मिर
 आय थकेले ही जीके । पथ रुपथ सुगुरु ममभारत और
 सगे मर मारधहीके ॥ ३ ॥

सर्वथा ३१ सा ।

- ये ही हैं कुगतिनी निदानी दुख दोष दानी, इन हीरी
 मगतिमो सगभार चहिये । इनरी मगनतामो निमोरो

गिराऊ होय इन हाजी गीतिमो अनीति पध गहिये ॥
 यही तप मानगे तर्हार दराचार धारै, इन हीसी तपत
 निवेक भूष गहिये । ये ही इन्द्री मुमट इनहि जीत सोई
 ननु इन्द्रः मिलासी सो तो महापापी कहिये ॥ ४ ॥
 भौन ५ ॥ गृह त्यागके करया गिरि, रीतिके मधपा
 पर तिलासो अछूटे हैं । गिराऊ अम्पामी गिरिकदराके
 पाग पुनि, अगके अचागी हितकारी वन छूटे हैं । आग
 य ५ पाठी इन जाण महाकाठी भारी, कष्टके महनहार
 गमाई मा नूठ हैं । इत्यादिक जीव मय कारज फगत रीते,
 प्रियनके जीते बिना मय अग छूटे हैं ॥ ५ ॥ धर्म तरु
 मननसो महामत्त कुनरसे, आपदा मण्डारके भरनसो
 करोरी हैं । मत्तशील रोकवेसो पाँड़ मरदार जैसे, दुर्गतिसा
 मारग चलायवेसो धोरी हैं ॥ कुमतिके अधिकारी कुनय
 पथके गिराही, भद्र भाव इधन जरायवेसो होरी हैं । मृपाके
 सहाइ दुर्मानाके भाई ऐसे, निषयामिलापी जीव अपक
 अधोरी हैं ॥ ६ ॥

५० वनारसादामना वनारमाविलास ॥ कहते हैं ।

मन्त्रगयम्द (मंत्रिया)

ज्यों मतिहीन पिचेर बिना नर, माजि मतझज
 इ धन होय । कचन भाजन बूल भरै शठ, मूढ़ सुधारसमों

पगघोरै ॥ बाहित काग उड़ावन कारण, डार महामणि
मूरख रोवै । न्यो यह दुर्लभ देह 'वनारमि' पाय अजान
अकारथ खोरै ॥ ७ ॥

कवित्तमात्रिक (३१) मात्रा ।

ज्यो जरमूर उखारि कल्पतरु, घोयत मूढ़ कनरुको
खेत । ज्यो गजराज बेच गिरिवर मम, कूर बुदुद्धि मोल
खर लेत ॥ जैमे छाडि रतन चिन्तामणि, मूरख काचखड
मन देत । तैसे धर्म निसार 'वनारमि' घायत अग्रम त्रिपय-
सुखहेत ॥ = ॥

सोरठा ।

ज्यो जल चूदत कोय, ग्राहन तज पाहन गहै ।
त्यो नर मूरख होय, धर्म छाडि सेयत त्रिपय ॥ ९ ॥

सनेया ।

प्रणमको अहित अग्रीरजको बाल हित, महामोह-
राजाकी प्रसिद्ध राजधानी है । भ्रमको निधान दुरध्यानको
विलासवन, त्रिपतको थान अभिमानकी निशानी है ॥
दुरितको खेत रोग शोग उत्पत्ति हेत, कलहनिकेत दुरग-
तिको निदानी है । ऐसी परिग्रह भोग मयनको त्याग
जोग, आतम गवेषीलोग याही भोंति जानी है ॥ १० ॥

४५५ नपदपछि (३) राग रामवली ।

११४ त रिङ्गाय अकेला,

। नासमचाग मिल ज्यो, त्यो वुटगमा मेला, चेतन०॥८॥

४५६ अमाद रूप मव, ज्यो पटपेसन रेला ।

। मर्दात शरार जलबुदबुद, मिनशत नाहीं वेला, चेतन०॥९॥

४५७ मगन श्यातमगुन भूलत, परी तोहि गलनेला ।

। न रत्ने चहुँ गति डोलत, योलत जेमे छेला, चेतन०॥१०॥

४५८ अनारमि मिथ्यामत तज, होय मुगुरुका चेला ।

ताग पचन परतीत आन जिय, होड महज सुरमेला, चेतन०॥११॥

(६) राग विलायल ।

ऐसै क्यो प्रभु पाइये, सुन मूरख प्राणी ।

ऐमेँ निरख मरीमिना, मृग मानत पानी ॥ऐमेँ०॥१॥

ज्या पकवान चुरेलमा, निपयारम त्यो ही ।

ताके लालच तु फिर, भ्रम भूलत यो ही ॥ऐसे०॥२॥

दह अपावन सेटरी, अपनीकरि मानी ।

भाषा मनमा कर्मकी, तेँ निजकर जानी ॥ऐसे०॥३॥

नाउ कहायति, लोकरी, मो तो नहिँ भूल ।

जाति जगतकी कल्पना, ताम तु शूने ॥ऐम०॥४॥

माटी भूमि पदारकी, तुह मपति छल्ले ।

प्रगट पहली मोदकी, तु तउ न गूँह ॥ऐमेँ०॥५॥

तैं करहूँ निज गुणनिष, निजदृष्टि न दीनी ।
 पराधीन परममुमौ, अपनायत कीनी ॥ ऐसै० ॥ ६ ॥
 ज्यों मृगनाभि मुगम मो, दूढ़त बन दौरै ।
 त्यों तुझमें तेरा घनी, तू सोजत और ॥ ऐमै० ॥ ७ ॥
 परता भरता भोगता, घट सो घटमाहीं ।
 ज्ञान गिना मङ्गलु पिना, तू समुक्त नार्ही ॥ ऐमै ॥ ८ ॥

(११) राग धनाम्नी ।

चेतन उलट्टी बाल चले ।

जड़मगतत जड़ता व्यापी निजगुन मरल टले ॥
 चेतन० टेरु ॥ १ ॥ हितमों निरिचि ठगनिमों राचे, मोह
 पिमाच छले । हँमि हँसि पद मगारि आपही, मेलत
 आप गले ॥ चेतन० ॥ २ ॥ आपे निरुमि निगोद सिंधुतें,
 फिर तिह पथ टले । कैमै परगट होय आग जो दपी
 पहारतले ॥ चेतन० ॥ ३ ॥ भूले मगभ्रम पीचि 'बनागसि'
 तुम सुरज्ञान भले । वर शुभध्यान ज्ञाननौका चढ़ि, घंटे ते
 निरले ॥ चेतन० ॥ ४ ॥

ॐ समाधिमरण ॐ

(पवित्र सूरचन्द्रकृत 'बड़ा समाधिमरण')

चन्दों श्रीश्वरहत परमगुरु, जो मगको मुपदाई ।
 हम जगमें दूष जो मैं भुगते, मो तुम जानो राई ॥

१० न जगत्तुमसे, कर ममाधि उर माहीं ।
 ११ न माया जगत्तुमसे, मो दीजे जग राई ॥१॥
 १२ न जगत्तुमसे, भय भय शुभ संग पायो ।
 १३ न जगत्तुमसे, मात पिता सुत थायो ॥
 १४ न जगत्तुमसे, धर, नारी हू तन लीनो ।
 १५ न जगत्तुमसे, आत्म गुन नहि चीनो ॥२॥
 १६ न जगत्तुमसे, ताके सुख अति भोगे ।
 १७ न जगत्तुमसे, दुख पाये निधियोगे ॥
 १८ न जगत्तुमसे, योनि धर, पायो दुख अतिभारी ।
 १९ न जगत्तुमसे, साधमा जनको, सग मिल्यो हितकारी ॥३॥
 २० न जगत्तुमसे, जिन पूजन कीनी, दान गुपात्र हि दीनो ।
 २१ न जगत्तुमसे, समग्रमरनमें, दग्यो जिन गुन भीनो ॥
 २२ न जगत्तुमसे, 'मम्यक' गुन नहि पायो ।
 २३ न जगत्तुमसे, मरन कियो मै, तांत जग भरमायो ॥४॥
 २४ न जगत्तुमसे, मदाकु मरन हि कीनो ।
 २५ न जगत्तुमसे, निज आत्म नहि चीनो ॥
 २६ न जगत्तुमसे, ज्ञान होयतो, मरन समय दुख कोई ।
 २७ न जगत्तुमसे, निज भासी, जोति-सम्प सदाई ॥५॥
 २८ न जगत्तुमसे, बस हरीकें, दह आपनो जान्यो ।
 २९ न जगत्तुमसे, मिथ्या मरधान हिये निच, आत्म नहि पिठान्यो ॥

यों रुलेस द्विय धार मरन करि, चारो गति भरमायो ।
 सम्पर्कदर्शन ज्ञान चरन ये, हिरदेमें नहिं लायो ॥६॥
 अर यह अरज करूँ प्रभु सुनिये मरन ममय यह माँगौ ।
 रोगजनित पीडा मत होगो, अरु कषाय मत जागौ ॥
 ये मुक्त मरन ममय दुरा-डाता, इन हर, साता कीजै ।
 जो ममाधि-युत मरन होय मुक्त, अरु मिथ्या गट छीजै ॥७॥
 यह तन सात कुघात मयी है, दखत ही घिन आरे ।
 चर्म-लपटी उपर सोहै, भीतर गिष्टा पारै ॥
 अति दुर्गन्ध अपाउन मा, यह मूरख प्रीति बदार ।
 दह प्रिनामी, जिय अविनासी, नित्य सरूप कहारै ॥८॥
 यह तन जोर्य कुटी मम आतम, धाँति प्रीति न कीजै ।
 नूतन महल मिले जग भाई, तन यामे क्या छीजै ॥
 मृत्यु होनसे हानि कौन है, याको मय मत लागे ।
 समतासे जो देह तजोगे, तो शुभ तन, तुम पावो ॥९॥
 मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अरसरके माहीं ।
 जीरन तनसे दत्त नयो यह, या सम साहू-नाही ॥
 या सेती इम मृत्यु समय पर, उत्तम ही अति कीजै ।
 चलश-भाउको त्याग मयाते, ममता भाउ धरीजै ॥१०॥
 जो तुम पुरब पुण्य किये है, तिनको फल मुखदाई ।
 मृत्यु मित्र निन कौन दिखावे, स्वर्ग मम्पदा भाई ॥

राम-नेपथ्य छोड़ जगन, मात व्यसन दुग्गदाई ।
 अतः समयमें समता गगे, परम पथ मगाई ॥११॥
 इम मशहठ गंगे गेगे, ता सेती दुग्ग पाय ।
 तन पि-तम नन्य रियो मोहि यामो कौन जुडाई ॥
 भाव-नया दुग्ग आदि अनेसन, इम ही तनमें गाई ।
 मृत्यु राय अय दया कर, तन पि-नरगो फाई ॥१२॥
 नाना उद्याभूषण मने, इम तनको पहराये ।
 गन्ध नुगन्धित अतर लगाये, पटरम असन कराये ॥
 रात दिना म दाम होयकर, सेर करी तन करी ।
 मो तन मेर काम न आयो, भूल रहो निमि मेरी ॥१३॥
 मृत्यु-रायसो गगन पाय, तन नूतन ऐसो पाऊँ ।
 जामे सम्यक्-नतन तीन लाहि, आठो कर्म सपाऊँ ॥
 दगो तन सम और कृतनी, नाहि सु या जग माही ।
 मृत्यु समयमें य ही परितन, मरही हें दुग्गदाई ॥१४॥
 यह मर मोह बड़ावनहारे, नियसो दुग्गति दाता ।
 इनसे मोह निरारो नियरा, जो चाहो सुर माता ॥
 मृत्यु उत्पद्गुम पाय मयाने, माँगो इच्छा जेती ।
 समता घरकर मृत्यु-करो तो, पायो सम्पति तेती ॥१५॥
 चौ आराधन सहित प्रान तन, तौ ये पदसो पावो ।
 हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थे-पर, स्वर्ग-श्रुतिमें जावो ।

मृत्यु-रूपद्रुम मम नहिं दाता, तीनों लोक मकार ।
 ताको पाय कलेम करो मत, जन्म नवाहर द्वारे ॥१६॥
 इम तनमें क्या राख जियरा, दिन दिन जीरन होहै ।
 तेच-कान्ति-बल नित्य घटत है, या मम अखिर सु को है ।
 पोंचा इन्ट्री शिथिल मट अर, सौम शुद्ध नहिं आरि ।
 तापर भी ममता नहिं डाढ़, समता उर नहिं लार ॥१७॥
 मृत्युगान उपकारी नियको, तनमां तोहि छुडारि ।
 नातर या तन बन्टीगृहम, पढी-पढी रिललारि ॥
 पुढलके परमानू मिलके, पिण्ड-रूप तन भामी ।
 ये तो मूरत, मैं हूँ अमूरत, आन चोति गुन गामी ॥१८॥
 रोग शोऋ आदिक जे चेदन, ते सब पुढल लारे ।
 मैं तो चेतन व्याधि मिना नित, मैं सो भार हमारे ॥
 या तनमों इम छेद-भँडन्वी, कारन आन धन्यो है ।
 खान पान द याको पोस्यो, अर सम-भार ठन्यो है ॥१९॥
 मिथ्यादर्शन, आत्म ज्ञान निन, यह तन अपनो जान्यो ।
 इन्ट्री मोग गिने सुख मैंने, आपो नाहि पिछान्यो ॥
 तन बिनमनते नाश जानि निज, यह अधान दुग्दार्द ।
 बुद्धम आदिमो अपनो जान्यो, भूल अनादी छार्द ॥२०॥
 अर निज भेद जथाग्र मममो, मैं हूँ ज्योति मरूपी ।
 उपजै निनमैं सो यह पुढल, जान्यो याको रूपी ॥

शृङ्गनिष्ठ गेते दुग्ग-दुग्ग है, मो मय पुद्गल मार्ग ।
 म ता अपता रूप विगारो तय ये सय दुग्ग मार्ग ॥२१॥
 निन सायन तनज्जन्त घरे में, तिनमें ये दुग्ग पायो ।
 गत पातज्जन्त वार भर, नाना योनि अमायो ।
 तार जनत हि थनि माहि जर, मूयो सुमति न लायो ।
 भिद् वगद्य अहिज्जन्त वार मुक्क, नाना दुक्क निखायो ॥२२॥
 नि ममाधि ये दुक्क लहे में, अय उर समता आई ।
 मृत्यु-राजरो भय नहि मानो, दबै तन सुखदाई ॥
 याने जय लग मृत्यु न आधै, तय लग जय तय कीनै ।
 जय तय निन इम जगके माहीं, कोई भी नहि मीजै ॥२३॥
 स्वर्ग-मम्पटा तपगो पात्र, तपमो कर्म नसाय ।
 तय हीसां शिखर कामिनि पति हूँ, यामो तय चित लायै ॥
 अय में जानी ममता निन मुक्क, कोऊ नाहि मद्राई ।
 मात पिता सुत-बान्धव तिरिया, ये सय है दुग्गदाई ॥२४॥
 मृत्यु समयमें मोह करें ये, तातें आरत हो है ।
 आरतें गति नीची पायै, यो लग मोह तज्यो है ॥
 और पग्ग्रह जेते जगमें, तिनमें ग्रीत न कीजै ।
 पग्ग्रहमें ये मग न चानै, नाहक आरत कीनै ॥२५॥
 ने जे उस्तु लखत है, ते पर, तिनसो नेह निगारो ।
 पर-गति में ये माय न चानै, ऐमो मात्र विचारो ॥

जो परभयमें सग चनै तुझ, तिनमों ग्रीत सु कीजै ।
 पच पाप तज, ममता धारो, दान चार विध टीजै ॥२६॥
 दशलक्ष-मय धर्म धरो हिय, अनुष्मता उर लावो ।
 षोडश-कारण निन्य विचारो, द्वादश भाजन भागो ॥
 चारों परवी प्रोषध कीजै, अमन रातको त्यागो ।
 ममता धर दुरभाज निवारो, मयमसों अनुरागो ॥२७॥
 अन्त ममय में पढ शुभ भाज हि, होवें आन महार्द ।
 स्वर्ग मोक्ष फल तोहि दिसावें, ऋद्धि देहि अधिकार्द ॥
 छोटे भाज सकल जिय त्यागो, उरमें ममता लाके ।
 जा सेवी गति चार दूर कर, नसहु मोक्षपुर जाके ॥२८॥
 मन थिरता करके तुम चिन्तो, चौ आराधन भार्द ।
 ये ही लोकों सुखकी दाता, और हितु कोउ नार्द ॥
 आगे नहु मुनिरान भये हैं, तिन गहि थिरता भारी ।
 बहु उपसर्ग सहै शुभ भावन, आराधन उर धारी ॥२९॥
 तिनमें कछुइक नाम कहैं मैं, मो सुन निय चित लाके ।
 भावमहित अनुमोदै जो जन, दुर्गति होय न ताके ॥
 अरु समता निज उरमें आवे, मात्र अवीरज जावे ।
 यों निग दिन ते उन मुनिप्रको, ध्यान हिये निच लावे ॥३०॥
 धन्य धन्य सुदृमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी ।
 एक स्यालिनी जुग बचा-जुत, पाँच भग्यो दुखकारी ॥

यह उपसर्ग सखी धर धिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३१॥
 मन बल ज मुचौल स्वामी, यात्रीने तन खायो ।
 गे २ गमुनि तरु डिगे नहि आतममो हित लायो ॥
 यह उपसर्ग सखी, धर धिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३२॥
 २ गमुनि तरु डिगे नहि आतममो हित लायो ।
 यह उपसर्ग सखी, धर धिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३३॥
 मन बल ज मुचौल स्वामी, यात्रीने तन खायो ।
 गे २ गमुनि तरु डिगे नहि आतममो हित लायो ॥
 यह उपसर्ग सखी, धर धिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३४॥
 श्रेणिक सुत, गंगा में दियो, तत्र 'निन' नाम चितारो ।
 धर मलेखना पन्निग्रह छोड़्यो, शुद्ध भाव उर धारो ॥
 यह उपसर्ग सखी, धर धिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३५॥
 ममंतमद्र मुनिगके तनमें, दुधा-वेदना आई ।
 ता दुखमें मुनि नेक न डिगियो, चिन्त्यो, निच गुन भाई ॥

यह उपसर्ग मद्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३६॥
 ललितघटादिक तीस दोय मुनि, जोसाम्बो तट जानो ।
 नदीमें मुनि पहकर भूये, सो दुख उन नहि मानो ॥
 यह उपसर्ग सद्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३७॥
 अमघोष मुनि चम्पानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाढ़ो ।
 एक मामकी कर मर्यादा, तपा-दुख सह गाढ़ो ॥
 यह उपसर्ग सद्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३८॥
 श्रीदत्त मुनिजो पूर्व-जन्मका, बैरी देव सु आके ।
 त्रिक्रिय कर दुख शीत तनो जो, सद्यो माधु मन लाके ॥
 यह उपसर्ग सद्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३९॥
 पृथमसेन मुनि उष्ण शिलापर, ध्यान धरो मन लाई ।
 सूर्य धाम अरु उष्ण पत्रकी, वेदन सहि अधिराई ॥
 यह उपसर्ग मद्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥४०॥
 अभयघोष मुनि काकन्दीपुर, महा वेदना पाई ।
 बैरी चढने सब तन छेद्यो, दुख दीनो अधिराई ॥

यह उपमर्ग मछो, घर धिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥४६॥
 मात शतक मुनिर दुख पायो, हथिनापुरमें जानो ।
 बलि ब्राह्मण-कृत धोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो ॥
 यह उपमर्ग मछो, घर धिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥४७॥
 लोहमयी आभूषण गढ़के, ताते कर पहराये ।
 पाँथों पाण्डव मुनिके सनमें, तौ भी नाहि बिगाये ॥
 यह उपमर्ग मछो, घर धिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥४८॥
 और अनेक भये इम जगम, ममता-भ्रमके स्यादी ।
 वे ही हमसों हों सुखदाता, हरिहैं टेज प्रमादी ॥
 मम्पकदर्शन ज्ञान चरन तप, ये आराधन चारा ।
 ये ही मोसों सुगमो दाता, इन्हें सदा उर धारी ॥४९॥
 यों समाधि उर माहीं लावो, अपनो हित जो चाहो ।
 तजि ममता अरु आसों मदको, जोति स्रूपी घ्याओ ॥
 जो कोई नित कर्त पयानो, ग्रामान्तरके कान ।
 मो भी सगुन निचारें नीके, शुभके कारन सानै ॥५०॥
 मात पितादिक सर्व कुटुम्ब मिलि, नीके सगुन बनाव ।
 हलदी धनिया पुष्पी अक्षत, दूध दही फल लाव ॥

॥५०॥ ज्ञान जागृत कर, कर शुभाशुभ सार ।
 ॥५१॥ गर मगिरो नरु पयानो, तर नहिं सोचो प्यारे ॥५१॥
 ॥५२॥ गर मगिरो नरु लगे, तोहि स्तारें मार ।
 ॥५३॥ गर मगिरो नरु सुख तोका, सु यों क्या न विचारें ॥
 ॥५४॥ गर मगिरो नरु चालन विरियाँ, धर्मध्यान उर आनो ।
 ॥५५॥ गर मगिरो नरु आगधो, मोह-तनो दुख । हानो ॥५५॥
 ॥५६॥ गर मगिरो नरु मर दुखिधा, आतम राम सुध्यानो ।
 ॥५७॥ गर मगिरो नरु करहु पयानो, परम-तत्त्व उर लानो ॥
 ॥५८॥ मोह-नालरो फाटो प्यारे, अपनो रूप, निचारो ।
 ॥५९॥ मृत्यु-मित्र उपकारी तेरो, यों उर निश्चय धारो ॥५९॥

'मृत्यु महोत्सव पाठ' की, पढ़ें-सुनें बुधिवान,
 मरघा घर नित सुख लहें, 'हरचन्द' शिर धान ।
 पच उभय नर एक शुभ, सत मो सुखदाय,
 आश्विन ज्यामा सप्तमी, बहो पाठ मन लाय ।

ममात्मन् ।

ॐ वारह भावना प्रकरण ॥

वारह भावना बुधजनकृत ।

गीता छन्द ।

जेती जगतर्म वस्तु तेती अर्थि ॥ १ ॥
 परणमन रामन नहिं स ॥ २ ॥

सुत नारि यौवन और तन घन वानदाभिनि दमकसा ।
 ममता न कीजे धारि समता मानि जन्म नमकसा ॥१॥
 चेतन अचेतन सब परिग्रह दृष्टा अपनी धिति लहै ।
 सो रहै आप करार माफिक अधिक राखे ना रहै ॥
 अथ शरण कामी लेयगा जग इद्र नार्हा रहत है ।
 शरण तो इक धर्म आत्म जाहि मुनिजन गहत है ॥२॥
 सुर नर नरक पशु मरुल डेरे कर्म चरे बन रहे ।
 सुख शान्ति नहि आसता मग पिपतिमें अतिमन रहे ॥
 दुख मानसी तो दमगतिमें नारंगी दुख ही भरी ।
 तियेच मनुज नियोग रोगी शोक सकटमें जर ॥३॥
 क्यों भूलता शठ फूलता है देख परिकर थोकसो ।
 लाया कहीं ले जायगा क्या फौज भूषण रोकसो ॥
 जन्मत मगत तुम एकलेसो फाल केता हो गया ।
 संग और नार्हीं लगे तेरे मीग मेरी सुन भया ॥४॥
 इद्रीनर्त जाना न जानै तू विद्वानद अलं च है ।
 स्वमवदन करत अनुमग होत तब प्रत्यक्ष है ॥
 तन अन्य जड़ जानो समीपी तू अरूपी सत्य है ।
 कर्म भेदज्ञान सो ध्यान घर निज और बात अमत्य है ॥५॥
 क्या देख रागा फिरे नाचा रूप सुन्दर तन लहा ।
 मलमूत्र भाडा भरा गाढ़ा तू न जानै अम गहा ॥

क्यों गगन नार्ही छेड़ आतुर क्या न चातुरता धरे ।
 तुम, फात गज्ज गडि अटके छोड़ तुमको गिर परे ॥६॥
 सोइ सरा कोइ घुरा नहि, मनु विनिघ समार है ।
 न कथा विनिघ ठान उरमे फरत राग उपाय है ॥
 गुं भार शाम्य वनत नृ ही द्रव्य आनय मुन कथा ।
 तुम, एतुसै पुद्गल कर्म न निमित्त हो दते व्यथा ॥७॥
 तन भोग जगन मरुप लग्य डर मजिऊ गुर गरला लिया ।
 मुन रम धारा मर्म गारा हवि रुचि मन्मथ मया ॥
 इट्टी अन्दिनी दावि लीनी प्रम रु थार बंध तजा ।
 तप धर्म आखर द्वार रोके ध्यान निर्जम जा सजा ॥८॥
 तप शल्य तीनों बरत लीनो रागभ्यतर तप तपा ।
 उपमर्ग सुर नर जड़ पशुछत सहानिज आनम जपा ॥
 तप कर्म रम विन हान लागे द्रव्यमायन निर्जरा ।
 मय कर्म हरकै मोक्ष परकै रहत धैतन उजरा ॥९॥
 विच लोक नतालोक भाई लोकर्म द्रव्य मय मरा ।
 मय भिन्न भिन्न अनादिरचना निमित्तकारण की घरा ॥
 जिनदेव भाषा तिन प्रकाशा भर्मनागा सुन गिरा ।
 मुर मनुष निर्यस नागकी दूड ऊर्ध्व मध्य अधो घरा ॥१०॥
 अनतकाल निगोड अटका निरुम थार तनधरा ।
 भू-वारि तेज-बवार ह्वैर बहद्विय प्रम अन्तरा ॥

फिर हो ति इट्टी वा चौट्टी पचेट्टी मनरिन घना ।
 मनयुत मनुपगतिहोन दुर्लभ ज्ञान अति दुर्लभ घना ॥११॥
 निय । न्हान धोना तीर्थ जाना धर्म नाहीं जपजपा ।
 तन, नम्र रहना धर्म नाहीं धर्म नाहीं तपतपा ॥
 रर धर्म निज आतम स्वभागी ताहि गिन मर निष्फला ।
 उरनन घरम निज धार लीना तिनिहिं कीना मर भला ॥१२॥

लेहा ।

अधिराशरण ममार है, एस्त्य अनित्यहि ज्ञान ।
 अशुचि आसन मरग, निर्जर लोर घरान ॥१३॥
 बोधरुदुर्लभ धर्म ये, बाग्द भावन ज्ञान ।
 इनको भारी जो मटा, क्यों न लहै निर्गन ॥१४॥

इति आ बुधननइत गारह भावना समाप्त ।

गारह भावना जयचदजीकृत ।

लेहा ।

द्रव्यरूपकरि मर धिर, परजय धिर है कौन ।
 द्रव्यरूपि आषा लखो, पर्वय नयकरि गौन ॥१॥
 शुद्धानम अरु पच गुरु, जगम मरनौ दोय ।
 मोठ उदय जियके वृथा, ध्यान कल्पना होय ॥२॥
 परद्रव्यनत ग्रीति जो, है ममार अयोध ।
 ताको फल गति चारमे, भ्रमण क्यो भुत शोध ॥३॥

परमारथ आत्मा, एक रूप ही जोय ।
 तर्भनिमित्त रिदलप घने, तिन नासे शिख होय ॥४॥
 गण्डे अपने सत्वरु, सर्व वस्तु मिलमाय ।
 एत चितवे पीर तर, परत ममत न थाय ॥५॥
 निर्मल अपनी आत्मा, देह अपानन गेह ।
 जानि भय निज भावको, यामो तजो सनेह ॥६॥
 आत्म फल ज्ञानमय, निश्चय दृष्टि निहार ।
 मन रिभाव परिणाममय, आसन भाव रिहार ॥७॥
 निज स्वरूपम लीनता, निश्चय मरु जानि ।
 ममिति गुप्ति सनम धरम, घैर पापकी हानि ॥८॥
 मरुमय है आत्मा, पूरु कर्म झड़ जाय ।
 निज स्वरूपको पायकर, लोरशिखर जन थाय ॥९॥
 लोकस्वरूप विचारिकै, आत्मरूप निहार ।
 परमारथ ध्यनहार मुनि, मिथ्याभाव निवारि ॥१०॥
 मोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहि ।
 भनर्म प्रापति रुठिन है, यह व्यवहार कहाहि ॥११॥
 दर्शज्ञानमय चेतना, आत्मधर्म बखानि ।
 दयाधमादिक रतनय, यामे गभित जान ॥१२॥

॥ इति श्री बागदभावना जयचन्दजी वृत्त समाप्त ॥

धारदभावना भगौतीदासजीकृत ।

चौपाह ।

पच परमपद वदन करो । मन वच भाग-महित उर
धरो ॥ चारद भासन पासन ज्ञान । भाऊ आनम गुण
पहिचान ॥ १ ॥ थिर नहिं दीखहि नैननि वन्त । देहा
दिक अरु रूप समस्त ॥ थिर गिन नेह कौनमों करो ।
अथिर देख ममता परिहरो ॥ २ ॥ अमरन तोहि मरन
नहिं कोय । तीन लोरुमहिं दगधर जोय । कोउ न तेरी
राखनहार । कर्मनपस चेतन निरधार ॥ ३ ॥ अरु ममार
भासना एह । परद्रव्यनसों कीजे नेह । तू चेतन बे जड़
सरवत । ततैं तजहु परायो सग ॥ ४ ॥ एरु जीवतु आप
निकाल । उरध मध्य भजन पाताल । दूजो कोउ न तेरी
साथ । सदा अकेलो फिरहि अनाथ ॥ ५ ॥ मिस्र सदा
पुद्गलत गहै । अमबुद्धितैं अड़ता गहै ॥ बे रूपी पुद्गलक
खध । तू गिनुमूरत सदा अरध ॥ ६ ॥ अशुचि दाख देहा-
निक अग । कौन कुम्मु लगी तो मग ॥ अस्थी मास
रधिर गद गेह । मलमूतन लखि तजहु सनेह ॥ ७ ॥
आसन परमों कीजे शीत । ततैं वध षड़हि विपरीत ॥
पुद्गल तोहि अपनपो नाहि । तू चेतन बे जड़ सर
आहि ॥ ८ ॥ संसर परको रोकन भाग । सुख होवेरी

यग उपाय ॥ आदे नही नये जहा कर्म । पिछले रुकि
 प्रान निवर्त ॥ ९ ॥ यिति पूरी हने सिर सिर जाहि ।
 तिजभाय अरिह अरिकाहि ॥ निर्मल होय चिदानन्द
 आप । तिह मदन परसग मिलाप ॥ १० ॥ लोरमाहि
 तह प्रनु नाहि । लोर आन तुम आन लखाहि ॥ यह
 तह अतको मय वाम । तू चिनमूरति आतम राम ॥ ११ ॥
 दुर्गम पर वननिको भाय । सो तोहि दुलम है सुनि राय ॥
 जा तेरो है धान अनत । सो नहि दुर्लम हुनो महत
 ॥ १२ ॥ धर्म सु आप स्वभावहि जान । आप स्वभाव धर्म
 मोड मान ॥ जय यह धर्म प्रगट तोहि होय । तय परमात्म
 पद राखि सोय ॥ १३ ॥ ये ही गारह भावन मार ।
 तायैकर भावहि निरधार ॥ हरे वराग महाप्रत लेहि । तय
 मयधमन जलाजुलि दहि ॥ १४ ॥ “भैया” भावहु मात्र
 अनूप । भावत होतु चरित गिरभूप ॥ सुर अनत विल
 मह निगदीम । इम भाव्यो स्वामी जगदीम ॥ १५ ॥

• इति श्री वारह भावना समाप्तम् •

वारह भावना

(कवियर भूधरदाम-कृत)

राजा, राणा, छत्रपति, हाथिनके असवार ।
 मरना मरने एक दिन, अपनी-अपनी चार ॥ १ ॥

दल-यल, देई देवता, मात पिता परिवार ।
 मरती रिरियाँ जीवको कोऊ न राखनहार ॥ २ ॥
 दाम विना निर्धन दुखी, वृष्णाग्न धनवान ।
 फहूँ न सुख ससागमें, सर जग दखो छान ॥ ३ ॥
 आप अकेलो अगतरी, भर अकेलो होय ।
 यूँ स्वहूँ इम जीवको, माथी सगा न कोय ॥ ४ ॥
 जहाँ दह अपनी नहीं, तहाँ न अपनो कोय ।
 घर-मपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन-लोय ॥ ५ ॥
 दिपें चाम'चादरें मंदी, हाड़ पीजरा देह ।
 भीतर यो सम जगतमें, अर नहीं घिन-नेह ॥ ६ ॥
 मोह-नीदके जोर, जगगासी धूमै मदा ।
 कर्म-चोर चहुँओर, मरगस लूटें, सुख नहीं ॥ ७ ॥
 मतगुरु दय जगाय, मोह-नीद अर उपशम ।
 तब कछु धनहि उपाय, कर्म चोर आरत रुकै ॥ ८ ॥
 ज्ञान दीप तप-तेल भर, घरं शोधे भ्रम छोर ।
 या विधि विन निस्में नहीं, पैठे परब चोर ॥
 पच महाप्रत सचरन, समिति पच परकार ।
 प्रचल पच इन्द्रिय-विजय, धार निर्जरा मार ॥ ९ ॥
 चौदह राजे उत्तम नम, लोकर पुष्प सठान ।
 तामें जीव अनादितें, भरमत हैं विन ज्ञान ॥ १० ॥

॥ क० २ ॥ ११३ ॥ सुख, मगहि सुलभ सर जान ।
 चलात ॥ ११ ॥ एक जथारथ जान ॥ ११ ॥
 ॥ ११४ ॥ इय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन ।
 ॥ १२ ॥ चतय, धर्म सरल सुख देन ॥ १२ ॥

वैराग्य भावना

(श्री ब्रह्मनाथ चरित की)

दोहा ।

॥ १ ॥ राग फल, भोगवै, ज्या किमान जगमाहि ।
 त्यो चक्री नृप सुख करे, धर्म बिमारे नाहि ॥ १ ॥

(जोगीरासा या नरदत्त)

इह पिव राज करै नरनायक, भोगै पुण्य मिशालो ।
 सुख मागरे रमत निरन्तर, जात न जान्यो कालो ॥
 एक दिवस शुभ कर्म सँजोगे चेमकर मुनि बढ ।
 दखि मिरीगुरुक पद परज, लोचन अलि आनद ॥ २ ॥
 तीन प्रण्डिन द सिरे नायो, कर पूजा धुति कीनी ।
 माधु समीप प्रिय कर बैठयो, चरननर्म दिठि दीनी ॥
 गुरु उपदेश्यो धर्म गिरोमणि, सुन राजा वैरागे ।
 राज रमा रनितादिक जे रम, ते रम वैरम लागे ॥ ३ ॥
 मुनि सूरज कथनी किन्नायलि, लगत भरम बुधि भागी ।
 मन-तन भोग स्वरूप मिचारो, परम धरम अनुरागी ॥

इह ससार महापन भीतर, अमते शोर न आये ।
 जामन मरन जरा दौ दाहो, जीव महादुखः पारै ॥ ४ ॥
 कष्ट हैं जाय नरक थिति भुजै, छेदन भेदन भारी ।
 कष्ट हैं पशु परजाय घर तहै, धध-धवन भयकारी ॥
 सुरगतिमें पर संपति दग्गे, राग उदय दुख होई ।
 मानुष-योनि अनेक विपत्तिमय, सर्व सुखी नहि कोई ॥ ५ ॥
 कोई इष्ट वियोगी मिलै, कोई अनिष्ट भोगी ।
 कोई दीन दगिरी बिगुचे, कोई तनके रोगी ॥
 किम ही घर कलिहारी नारी, क वैरी सम भाई ।
 किस ही के दुख बाहिर दीखें, किम ही उर दुचित्ताई ॥ ६ ॥
 कोई पुत्र विना नित झूरे, होय मरै, तब रोवे ।
 छोटी मत्ततिमें दुख उपजै, क्यों प्राणी सुख सोवै ॥
 पुन्य उदय जिनके, तिनके भी नाहि सदा सुख साता ।
 यह जगनाम अथारथ देखे मर दीखे दुरदाता ॥ ७ ॥
 जो समारम्भें सुख होता, तीर्थरूप क्यों त्यागै ।
 काहेसे शिश्न-भाषन करते, सज्जमों अनुरागें ॥
 देह अपाचन अथिर धिनावन, यामें मार न कोई ।
 मागरके जलमों शुचि कीनै, तौ भी शुद्ध न होई ॥ ८ ॥
 मात कुधातु मरी मल मूरत चाम लपेटी सोहै ।
 अतर देखत या मम जगमें अर अपाचन को है ॥

- १२५५ ५६ पाठ समा, नाम सिये धिन आर ।
 १२५६ ५६ पाठ समा, कौन सुधी सुग पार ॥ ९ ॥
 १२५७ ५६ पाठ समा, जोपन सुष उपनार ।
 १२५८ ५६ पाठ समा, भूग्य प्रीति बढ़ार ॥
 १२५९ ५६ पाठ समा, गिरान जीग सही है ।
 १२६० ५६ पाठ समा, कौन, यामें सार यही है ॥१०॥
 १२६१ ५६ पाठ समा, बैरी है जग जीके ।
 १२६२ ५६ पाठ समा, सेरत जामें नीके ॥
 १२६३ ५६ पाठ समा, ये अधिक दुखदाई ।
 १२६४ ५६ पाठ समा, दुरोतिपन्य महाई ॥११॥
 १२६५ ५६ पाठ समा, भोग भले, कर जानै ।
 १२६६ ५६ पाठ समा, सो सय कचन मानै ॥
 १२६७ ५६ पाठ समा, मन गच्छित जन पारै ।
 १२६८ ५६ पाठ समा, लहर लहरकी आरै ॥१२॥
 १२६९ ५६ पाठ समा, भोगे भोग, घनेरे ।
 १२७० ५६ पाठ समा, भोग सत्तोरथ मेरे ॥
 १२७१ ५६ पाठ समा, नर बढ़ावनदारा ।
 १२७२ ५६ पाठ समा, याका क्या पतियारा ॥१३॥
 १२७३ ५६ पाठ समा, जग निय ससुट डारे ।
 १२७४ ५६ पाठ समा, परिजन जन रखारे ॥

मम्यकदर्शन घान चरण तप, ये जियके हितकारी ।
 ये ही मार, असार और मर, यह चक्री चित धारी ॥१४॥
 छोड़े चौदह रत्न नमोनिधि अरु छोड़े सँग मारी ।
 कोड़ि, अठारह घोड़े छोड़े चौरामी लग हाथी ॥ --
 इत्यादिक ममपति बहुतेरी जीरन तख मम त्यागी ।
 नीति विचार नियोगी सुतफो, राज दियो बडभागी ॥१५॥
 होय निशान्य अनेक नपति मैंग, भूषण धमन उतारे ।
 श्रीगुरु चरण धरी जिनमुद्रा, पच महाप्रत धारे ॥
 धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरजंधारी ।
 ऐसी सम्पति छोड़ घसे वन, तिन पद धोरु हमारी ॥१६॥

बोहा ।

परिग्रह पोट उतार मर, लीनों चारित पन्थ ।
 निज स्वभासमें धिर भये, नज्जनामि निग्रन्थ ॥
 पूज्य आचार्योंके वैराग्यसे विभूषित पद्योंका
 सकलन

श्रीपूज्यपाद ग्यामीरुन समाधिशतकके वैराग्यमय कतिपय
 श्लोक ।

मूल ममारदु सम्य देह एनामधीस्तन ।

रयक्त्तना अविशेदन्तर्गहिरन्यापृतेन्द्रिय ॥ १५ ॥

अर्थ-भारत दुःखोंका मूल, शरीरमें आत्मबुद्धि
 १२१ है, जब शरीरमें आत्मबुद्धिको त्यागकर व हृदयसे
 १२२ अन्तर जन्तुआत्माका ध्यान करना चाहिये ।

१२३ वायुगृहणीयान् कायसाञ्चेतर्मा त्रयम् ।

॥ तन्मायदतेषा भेदाम्यासे तु निर्दृति ॥ ६२ ॥

अर्थ-जगतक यह जीव शरीर, वचन और मनको
 आत्मारूप मानता रहेगा, तबतक ससारका दुःख है । जब
 आत्माको इनसे भिन्न विचारनेका अभ्यास करेगा तब
 दुःखास छूट जायेगा ।

प्रतिशद्गलता व्यूहे दहज्जुना समाकृती ।

स्थितिभ्रान्त्या प्रपद्यन्ते तमात्मानमपुद्गल ॥ ६९ ॥

अर्थ-ममान आत्मा बना रहने पर भी इस शरीर-
 रूपी सेनाके चक्रमें प्रतिक्षण नवीन-नवीन परमाणु आकर
 मिलते रहते हैं पुराने भङ्गत रहते हैं तो भी मूढ़बुद्धिवाले
 यहिरात्मा जीव इस शरीरको आन्तिसे धिर मानकर इसे ही
 आत्मा माना करते हैं ।

गौर स्थूलं कृशो वाऽहमित्यगेन विरोपयन् ।

आत्मान धारयेन्नित्य केवलवृत्तिविग्रहम् ॥ ७० ॥

अर्थ—“मैं मोरा हूँ, झूल हूँ, अथवा कुश (दुपला) हूँ” इस प्रकार शरीरके घमोंसे आत्माको पृथक् भमके । आत्मा तो नित्य मात्र ज्ञान शरीरधारी है ।

देहान्तर्गतेर्बीजं, दहेऽस्मिन्नात्मभायना ।

बीजं त्रिदेहनिष्पन्नेरात्मन्येवात्मभायना ॥ ७४ ॥

अर्थ—इस शरीरमें आत्माभी भावना करना अन्य नरीन नरीन शरीर धारण करनेका कारण है और आत्मामें ही आत्माकी भायना करना इस शरीरसे छूटनेका उपाय है अथात् मोक्ष प्राप्ति का कारण है ।

अथबन्धन्यन्यत काम वदन्नपि क्लेशरान् ।

नात्मान भावयेद्विद्वन्, यात्रत्तानन्न मोक्षमाक् ॥ ७५ ॥

अर्थ—“शरीरसे आत्मा भिन्न है” इस बातको उपाध्याय आदिक गुरुओं से सुनकर भी तथा इसी बातको दूसरोंसे बार बार कहते रहने पर भी जब तक भेदज्ञान की दृढ़-भायना नहीं की जाती तब तक मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती ।

ॐ आत्मानुशामन ॐ

(श्रीगुणभद्राचार्य)

शरणमशरण यो बन्धनो बधमूल ।

चिरपरिचितदारा दारमापद्गृहाणाम ॥

निर्मिष्टत पुत्रा शत्रु सर्मितत् ।

पजन भजत धर्मं निर्मल शर्मकामा ॥६॥

—यिस तू शरण ममकता है उही तुम्हे मरणसे
 १. ॥६॥ । ये भाइ बन्धु बधनके मृत हैं । चिर परि
 २. ॥ ॥ आपदाओंका द्वार है । स्वार्थके सगे पुत्र
 ३. ॥ उन मरको छोड़ और यदि तू सुखको चाहता है तो
 ४. ॥ धर्म धर्मका सेवन कर ।

अश्रयं नश्येन्निराशु कायादिभिर्यदि ।

शाश्वत पदमायाति मुधाऽऽयातमवेहि ते ॥७॥

अर्थ—ये आयु शरीरादि ममो अश्रय नाश होनेवाले
 यदि इनकी ममता छोड़नेसे अनिनाशो मोक्षपद प्राप्त
 है तो महजमें ही आया जान ।

गलत्थायु प्राय प्रकटितघटीपन्त्रसलिन,

खल कायोप्यायुर्गतिमनुपतत्येष सततम् ।

स्मिस्यान्यैरन्यैर्द्वयमपमिद जीवितमिह,

स्थिता अन्त्या नाभि स्वमित्र मनुते स्यान्नुमपघी ॥८॥

अर्थ—यह आयु प्रगट ही अरहटकी घड़ीके जलके स
 लिन छिन गल रही है । यह दुष्ट शरीर भी आयुकी ग
 अनुसार निरंतर पतनशील है । जिनसे जीवन बना

हैं और वे याधु व काय ही विनाशित हैं नवअन्य पुरुषों
 व धन या यादिक व स्वेच्छे व न वे तो नष्ट होने ही
 गले हैं। तो भा यद अर्थात् जीव अर्थात् प्रिय मानता है
 जैसे नारमें बैठा पुरुष इतना दुःख ही अपने अपने को धि
 मान लता है।

राज्ये वसि न विचिष्यपणिष्ठाद्गो विन धान्ति ।
 सामान्यं गृह्य कामिनोऽमुषने भ्राम्यन्वने यौवने ॥
 मध्ये घृष्टनपार्जितु उमु पशु क्लिप्तानामि दुःखादिभि-
 ः घृष्टो बोद्धमन क्व जन्मफलित धर्मो मवेन्निमलः ॥८९॥

अर्थ-भा जीव, राजासम्यक् नृ परिपूर्णगता राग न
 होना अपने हित या अहित की कद भी नहीं जानता है।
 यौवनमें स्वारूपी दुर्गोक्त मनमें भ्रमन, दुःखा सामान्य धर्मों
 रहता है। मध्य अयुष्यमें बड़ी दुःख प्रवृत्ति तथा पशुके
 समान सेवी यात्रि समोंकी कर्मा दुःखा अज्ञ पाता है।
 बुढ़ापेमें अग्रमग हो जाता है। तब मता, नरचन्मसो मफल
 करनेक लिये त पवित्र धर्मको उदा पालन करेगा।

दीप्तोभयाग्रयातागिष्ठादगमनीटमत् ।

जन्ममृत्युसमाजिष्टे शरीर वत सीदति ॥९०॥

अर्थ-नसे दोना तरफ आगमें जलन, हुये एगडके
 सादर यौवमें गाम कीड़ा मदान् दु गी होता है उमी प्रकार

उन्म न श म-एस् -यास् इम शरीरमे यद् प्राणी कष्ट
पाता त

नित्यं नैवैवमात्रमस्ति मृतिपर्यंतमपि,

मुमन्यतन् त्लेशाशुचिमयनिसाराग्रहकुलम् ।

गुणराज्य त्यागाद्यदि भवति मुक्तिश्च जडही,

ग कस्त्यक्तु नाल खलननममायोगमदृग्म् ॥१०५॥

प्रश्न—आत्मज्ञानी जीवोंके लिये यह शरीर त्यागने योग्य है, क्योंकि वे विचार करते हैं कि यह शरीर गर्भसे लेकर मरण पर्यंत वृथा ही दुःख, अपवित्रता, भय, परानय और पापान्निसे पूर्ण है। यदि हम अचेतन शरीरका राग छोड़नेसे मुक्तिरूपी लक्ष्मीका लाभ हो तो ऐसा कौन सूर्य है जो हमको त्याग न के लिये समर्थ न हो ?

आदौ तनोर्जननमत्र हतेन्द्रियाणि.

काङ्क्षन्ति तानि विषयान् त्रिषयाश्च मान ।

हानिप्रयाममयपापदुःखोनिदा स्युः,

मूलं ततस्तनुरनर्थपरम्पराणाम् ॥१९५॥

अर्थ-प्रथम ही शरीरकी उत्पत्ति होती है, उस शरीरमें इन्द्रियाँ निष्कम निष्कामो चाहती हैं, व निष्कमोग महानपनेकी दानि भरत है, महाकेशमे कारण हैं, भयके करने वाले हैं,

पापके उपजाने वाले हैं, और निगोदादि वृथोनिर्देने वाले हैं। इमलिये यह शरीर ही अनर्थकी परपराया मूल कारण है।

शरीरमपि पुष्पन्ति सेवन्ते निषयानपि ।

नास्त्यहो दुष्कर नृणां विषाद्वाञ्छन्ति जीवितम् ॥१९६॥

अर्थ—अज्ञानी लोग, अहो, कैसा न करने योग्य काम करते हैं, शरीरको भी पोषते हैं, निषयभोगोंको भी सेवते हैं मानों निष पोकर जीना चाहते हैं।

माता जाति पिता मृत्युराधिव्यापी गहोद्वतौ ।

प्राते जन्तोर्जरा मित्र तथाप्याशा शरीरके ॥२०१॥

अर्थ—इस शरीरकी उत्पत्ति तो माता है, मरण इसका पिता है, मानसिकशारीरिक दुःख इसके भाई हैं, अतमें जरा इसका मित्र है तो भी इस शरीरमें तेरी आशा है यह बड़ा आश्चर्य है, अहो !

शुद्धोप्यशेषनिषयानगमोप्यमृतोप्यात्मन् त्वमप्यतिनरामशु-
चीकृतोमि । मूर्तं मद्राञ्छन्ति निचेतनमन्यदत्र, हि वा न
दूषयति धिग्धिग्निद शरीरम् ॥२०२॥

अर्थ—हे चिदानन्द ! तू तो शुद्ध है, सर्व पदार्थोंका ज्ञाता है, अमूर्त्तीकृत है तो भी इस अचेतन शरीरने तुझे अपान्न कर दिया है। यह शरीर मूर्त्तीकृत है, सदा अपान्न चेतना रहित है। यह तो केशर कपूरादि सुगन्धित

। मुआफो मीदूषित कर दता है इम शरीरमे धिकार हो।
। राग हो ।

दा त्नामितरा न तो येनाम्मिस्तर माग्रतप् ।

जा । कायाऽशुचिमान तस्याग मिल माहम ॥२०३॥

अ-हाय हाय ! दे प्राणी ! तू अत्यन्त ठगाया गया,
नष्ट भया नृ शरीरम ममत्त्व करके अतिदुखी भया । अतः तू
प्रियार, यह शरीर अशुचि है, ऐसा जानना यही सच्चा ज्ञान
है तथा इसका ममत्त्व तजना ही साहमस्त काम है ।

आस्वाद्याय यदुज्झिन त्रिषधिमि-पातृत्तकौतूहले—

स्तद्वयोप्यागिदु सयन्नमिलपन्थ प्रातपूज यथा ।

जन्तो किं तत्र शान्तिरस्ति न भयान्यात्तदुरागामिमा ।

मह महतिरीरपेरिष्टनान्नीयजयन्तीं हरेन् ॥ ५० ॥

अर्थ—ह मूढ ! इम समारमें त्रिषयी जीवोंने कौतूहल-
पूर्वक भोगरुचि निन पदार्थोंको छाड़ा है, उनकी तू फिर
अभिलाषा करता है । ऐसा रागी भया है मानो ये भाग
पहिले कभी पाए ही न थे । इनको तूने अनन्तर भोगा
है और अनन्त जोगाने भी अनन्त गार भोगा है । क्या
तुझमें तुम्हें शान्ति नहीं आती है ? ये तो झूठनके समान
हैं, इनसे तुम्हें क्या कभी शान्ति मिल सकती है ? तुम्हें
तब ही शान्ति मिलेगी जब तू इस अन्त बेरोस्ती, ध्वजाके

ममान आगामे छोडेगा । त्रिषोंकी आगा रुभी मिटती नहीं, यही बड़ी दु सदायिनी है ।

लब्धेन्धनोज्ज्वलत्यग्निं प्रशाम्यति निरन्धन ।

ज्वलत्पुमपथाप्युन्धैरहो मोहाग्निरुत्कटः ॥५६॥

अर्थ—अग्नि तो ईंधनके होने पर ही जलती है परंतु ईंधनके न होनेपर धुँस जाती है । परंतु इन्द्रियाँ भोगोंकी मोहरूपी अग्नि उहो मयानक है जो दोनों तरह जलती रहती है । यदि भोग्य पदार्थ मिलते हैं तो भी जलती रहती है और नहीं मिलते हैं तो भी जलती रहती है । यही ! इसकी शान्ति किसी भी प्रकार नहीं होती है ?

ॐ तत्त्व भावना या बृहत् नामायिक पाठ ॐ

(श्री अमिताभ गति आचार्य)

अभिमतमिच्छाविनिष्ठाशिल्पशास्त्रिज्ययोरी-

-स्तनुधनसुतहतो कर्म यादृक् रगेषि ।

मृदपि यदि तादृक् मयमार्थं पिधन्ते,

सुखममलमनत रिं तदा नाऽऽनुपेज्ज ॥५६॥

अर्थ—ह मूढ़ प्राणी ! तू शरीर, धन, पुत्रके लिये अग्नि, मग्नि, कृषि, विद्या, शिल्प तथा शास्त्रिज्य कर्मोंद्वारा जैसा परिश्रम करता है वैसा यदि तू एक टफे भी मयमक

लिये कर तो तर तृ निर्मल अनतमुष्ट क्या नहीं मोग
मरगा ?

दिवाकरकरजाले शत्यमुष्णत्वमिदो ।

सुरजितसरिणी जातु प्राप्यते जगमत्व ॥

न पुनरिह कदानित् घोरससारचक्रे ।

स्फुटमसुखनिशाने आम्यना शर्म पु सा ॥६८॥

अर्थ—रूढ़ाचित् सूर्यकी शिरणममूहमें ठडापन आ
जावे, चद्रमा उष्ण हो जावे, सुमेरु पर्यंत चलने लग जावे
तो भी दु सोंके भण्डार इस भयानक ममारचक्रमे अमण
करते हुए प्राणीको सच्चा सुख नहीं प्राप्त हो सक्ता ।

समल्लोकमनोहरणवमा ररणयौवनजोषितमपद । कमल-
पत्रपयोलत्रचञ्चला स्मिपि न स्थिरमस्ति नगत्रये ॥१०९॥

अर्थ—ममस्त ममारके मनकी हरन करनेमें ममर्थ
इन्द्रियें, यौवन, जोतव्य व सपदाएं कमलपत्रपर पड़ी हुई
पानीकी धूदके समान चंचल हैं । तीनों लोकोंमें कुछ भी
(कोई भी पर्याय) स्थिर नहीं है ।

सपोगेन दुरन्तस्त्वमप्युया दु ग न कि प्रापितो ।

येन त्व भयानने मृतिनरायाघ्रत्रनाध्यासिते ॥

मगस्तेन न जायते तत्र यथा स्वप्नेऽपि दुष्टात्मना ।

किंचित्क्रमे तथा कुम्भ्य हृदये कृत्वा मनो निथलम् ॥१७॥

अर्थ—नरा ३ भरणरूपी व्याघ्र समूहसे भरे हुए इस समार उनमें महान पापको उत्पन्न करनेवाले इस शरीरके संयोगसे ऐमाकौनमा दुख है, जो तुने प्राप्त नहीं किया है ? अथ तू अपने मनको स्थिर करके ऐमा काम कर निमित्तसे तुम्हें स्वप्नमें भी इस दुष्ट शरीरका फिर मग न हो ।

दुर्गन्धेन मलीमसेन घण्डा सर्गापिर्गन्धिषु ।

माध्यत सुगन्धारिणा यदि तदा भव्यते वा घनि ॥

निमाल्येन विगन्धितेन सुगन्ध रत्न यदि प्राप्यते ।

लाभ केन न मन्यते वत तदा लोकस्थितिं जानता ॥१८॥

अर्थ—यह शरीर तो दुर्गन्धमय अशुचि है । ऐसे शरीर से यदि सर्ग व मोक्ष देनेवाली सुखकारी सम्पदायें प्राप्त हो सक तो क्या हानि है, उससे लिये यत्न करना ही चाहिये । यदि किसी निन्दा योग्य तुच्छ वस्तुके बदलेमें सुखदाई रत्न प्राप्त हो सके तो लोककी स्थितिको जानने वाले को क्या न मानना चाहिये ?

एकत्रापि क्लेशरे स्थितिधिया कर्माणि मकुरता ।

गुणी दुःखपरंपरानुपरता यत्रात्मना लभ्यते ॥

तत्र स्थापयता विनष्टममता विस्तारिणी भवदम् ।

का शक्रेण नृपेश्वरेण हरिणा न प्राप्यते कथ्यताम् ॥४३॥

अर्थ—इस शरीर में साव रहत हुए अज्ञानी आत्मान
 का मानना जो पापकर्म किये हैं उससे दुःखारी पगपरा
 बन उठाए हैं। यदि यह इस शरीरसे समता हटाले तो
 १। 'आत्मी सपत्ति है जो इससे प्राप्त न हो सके ? क्या
 २। क्या चक्रवर्ती, क्या नारायण श्री ?

३। 'तुति नातरो गतघृणो भवोर्दया मा तत ।

४। 'यत्नानु नलम्भतऽभिलषितस्य मामिनापीरित ॥

५। 'गगच्छति शोचितन निगतशोकश्रुत्वा मा दृष्ट्वा ।

प्रज्ञापुत्रमिमाविनो विदधते कृत्य निरर्थं स्वयम् ॥७३॥

अर्थ—मृत्यु जब आती है तब उससे भयभीत होने पर
 मो तब छोड़ती नहीं है। अतः तू उसपर घृणा मत कर
 और डर भी मत। जब तू इच्छित विषय भोगोंको कर्म
 भी प्राप्त नही कर सक्ता, तो तू उनकी अभिलाषा मत कर
 निमग्न मग्न हो गया वह जब शोक करने पर भी बापिन
 नहीं आता तब तू श्रुत्वा शोक मत कर। विचारपुत्रक का
 करनेवाले किमा भी कामको बिना प्रयोजन नहीं करते हैं।

यो नि श्रेयसशर्मदानकुशल मृत्युज्य रत्नत्रयम् ।

मीम दुर्गमवेदनोदयर मोग मिथ सेवते ॥

मन्ये प्राणनिर्षयादिजनः हालाहल चल्मते ।

सद्यो जमजरातश्चयकर पीयूषमन्यस्य म ॥१०१॥

अर्थ-जो कोई मूढ़ मोक्षसुख देनेवाले स्वयं धर्मको छोड़कर भयानक व तीव्र दुःखके फलको पैदा करनेवाले भोगोंको बारबार सेवन करता है, तो मैं ऐसा मानता हूँ कि वह जन्म, जरा, मरणके नाशक अमृतको जल्दीसे फेंककर प्राणोंको हरनेवाले हलाहल विषको पीता है।

ॐ ज्ञानार्णव ॐ

(आ शुभचन्द्राचार्य)

माता पुत्री ममा भार्या संव मपद्यतेऽङ्गना ।

पिता पुत्र पुन सोऽपि लभते पौत्रिण पदम् ॥१६॥

अर्थ-इस समारमों माता मरकर पुत्री, पहन मरकर स्त्री, स्त्री मरकर पुत्री, पिता मरकर पुत्र, पुत्र मरकर पौत्र हो जाता है।

तैरेय फलमेतस्य गृहीत पुण्यस्मिन्निधि ।

निरज्य जन्मन स्वार्थं य शरीर कदर्यितम् ॥ ९ ॥

अर्थ-इस शरीरके प्राप्त होनेका फल उन्होंने ही लिया, जिन्होंने समारसे निरक्त होकर अपने अपने आत्मवक्ष्यणके लिये ध्यानादि पवित्र स्मोंसे इसे चीख किया।

कर्षं कुटुम्बागुरुमृगमदहरिचन्दनादियस्तृनि ।

मव्यान्मपि मसर्गान्मलिनयति रलेउर नृणाम् ॥१७॥

अरु-वस्त्र, केशर, अंगर, कस्तूरी, हरिचन्दनादि
गुन्दर गुन्दर पत्तोंसे भी यह मनुष्योंका शरीर समर्ग-
मात्रक बना रह जाता है। ऐसा शरीर प्राप्ति करने योग्य
बस तो करना है ?

दुःखविषयोद्भूत दुःखमेव न तत्सुखम् ।

यानन्तान्ममन्तानस्लेशमपाठक यतः ॥ ५-२० ॥

अर्थ-इन्द्रियोंका विषयसे जनक य सुख दुःख ही है,
क्योंकि यह विषयसुख अनन्त समारम्भ परिपाटीमें दुःखोंसे
ही पैदा करनवाला है ।

दुःखमेवायं न मोग्यमविद्यात्यानलालितम् ।

गयास्तत्रैव रज्यन्ते न त्रिम्बकं हेतुना ॥ १० ॥

अर्थ-इन्द्रियजन्य सुख दुःख ही है। यह अविद्या-
रूपी मर्षस पोषित है। न जाने मूर्ख जन किम हतुसे
इस सुखम रजायमान होते हैं ।

मीना मृत्यु प्रपाता रमनगमिता दन्निन स्पर्शरुद्धा ।

यद्वास्ते त्रारिचन्द्रे ज्वलनमुपगता पत्रिणश्चामिदोषात् ॥

भङ्गा गन्धोद्धताशा प्रलयमुपगता गीतलोला 'कुरङ्गा ।

कालपाले दष्टास्तदपि तनुभृतामिन्द्रियार्थेषु रागा ॥ ३५ ॥

अर्थ-रमना इन्द्रियके वश होकर मल्लिखी प्राण
रोती है, हाथी स्पर्श इन्द्रियके वश होकर गड्ढेमें गिराए

जाते हैं व गंध जाते हैं, पतंगे नेत्र इन्द्रियके वश होकर
आगकी ज्वालामें जलकर मरते हैं, अमर गंधके लोलुपी
होकर कमलके भीतर मग जाते हैं, मृग गीतके वश होकर
प्राण गँगाते हैं । ऐसे एक २ इन्द्रियके वश प्राणी मरते
हैं, अहो आश्चर्य है तब भी देह धारियोंका राग इन्द्रियोंके
विषयमें बना ही रहता है ।

ॐ तत्त्वज्ञान तरंगिणी ॐ

(श्री ज्ञानभूषण भट्टारक)

एकैन्द्रिवादमग्राख्यापूर्णपर्यंतदेहिन ।

अनतानतमा मति तेषु न कोऽपि तादृश ॥

पञ्चाक्षिमज्जिपूर्णेषु केचिदासन्न भव्यता ।

नृत्त चालभ्य तादृता भवत्याया सुनुदय ॥१०-११॥

अर्थ—एकन्द्रियसे जेकर अमझी पंचेन्द्रिय तर अनता
नत जीयोंमें सम्यग्दर्शन पानेसी योग्यता ही नहीं है ।
पंचेन्द्री मैनी जीयोंमें कुछ ही जीव निकटभव्यता और
मानवपर्यायको प्राप्त करके उसमें भी जो आर्य हैं व
सुनुद्धि हैं वे ही सुगुणरूपसे भव्यकृती होकर शुद्ध चिद्रूप
का ध्यान कर मरते हैं ।

दुर्गंध मलमाचन कुत्रिणि निष्पादित धातुभि
रग तस्य जनेर्निजार्थमखिलैराख्या वृता स्वेच्छया ।

तस्या किं मम प्रपन्न गतं किं निन्दनेन च
चन्द्रपथ शरीरकर्म-निताज्यम्यायहो तत्तत ॥९८॥

अर्थ-य शरीर तु मम है, मलाका घर है, अशुभ
कर्मक उत्पन्न मनुआदारा बना है। तथापि अत्रानो
जो जाने अत्र स्वार्थक तिये अपनी इच्छानुसार हमरी
पामा का है। वस्तुतः शरीर और कर्मसे उत्पन्न हुए
शरीर परमात्मसे गन्ति शुद्ध चिद्रूप स्वरूप मुझे इस
शरीरका प्रणमा और निदास, यहो, क्या प्रयोजन ?

कल्पनागमनगमभय चित्तसुखमे मत्तं ठणायत । बुद्धी
रमाभ्यानकदृढजातमदति चित्तमनुतेजःधी सुख ॥१०९॥

अर्थ-मैंने शुद्ध चिद्रूपके सुखको जान लिया है, अतः
मेरे चित्तमें दण्ड, नागेन्द्र और इन्द्रोंके सुख मर्दों जीर्ण
तयरे ममान प्रतिभासित होते हैं। परन्तु यह बड़ा आश्चर्य
है, कि अज्ञानी जोर स्त्री, लन्मी, घर, शरीर और पुत्रादिक
द्वारा होनेवाले लणिक सुखको, जो वास्तवमें दुःखरूप है,
सुख मान लेता है।

मिषयानुभवे दुःख व्याकुलत्वात् मता भवेत् ।

निराकुलत्वात् शुद्धचिद्रूपानुभवे सुख ॥

अर्थ-इन्द्रियांक मिषाक भोगनेमें मत्पुष्टिको आहु
लता होनेके कारण वस्तुतः दुःख ही होता है। परन्तु शुद्ध

चिद्रूपके अनुभूति करनेमें निराकुलता होनेके कारण यथार्थ
सुखका वस्तुतः अनुभव होता है ।

द्वादशानुप्रेक्षा

(श्री कुन्दकुन्दाचार्य)

दुग्धाध पीभत्य कलिमलमरिद अवेपथो मुत्त ।

मङ्गणपङ्कज सहार देह इदि चिन्तये खिन्व ॥४४॥

अर्थ-शरीर दुर्गाधमय है, घृणामय है, मैलसे भरा है,
अचेतन है, मूर्तोरु है, इसका स्पर्श ही सबना व पड़ना
है, ऐसा जानीको नित्य विचारना चाहिये ।

प्रथमनसार

(श्री कुन्दकुन्दाचार्य)

मपर बाधामहिद विच्छिन्ना उधकारण विमम ।

ज इदि एहि लद त मोक्ख दुक्खमेव तथा ॥८०॥

अर्थ-इन्द्रियोंद्वारा प्राप्त सुख दुःख ही है क्योंकि
यह परार्थीन, बाधामहित, निनाशीक, बधका कारण तथा
विषम है ।

शील पाण्डित्ये-

वारि एवम्पि यज्जम्मे सरिज्ज निमवेयणाहदो जीवो ।

निमपनिमपरिहयाण भमति ममारकातारे ॥२२॥

अ १-अपित्रनासे आहत जीव एक ही बार जन्ममें मरना प्राप्त होता है परन्तु अपिरूपी अपि गाने वाले मन्त्र-१-२ त्र बार २ मरकर भ्रमते फिरते हैं ।

मूलाचार, द्वादशानुप्रेक्षा ।

(श्री बहुरेस्वामा)

अ १ इयिलिपिने गर्भे वममाणो उत्थिपडलपच्छण्णो ।
माददममलालाड्य तु तिगामुह पिमदि ॥ ३३ ॥

अर्थ-अपित्र मृतमल श्लेष्मपित्त रुधिरादिसे घृणा-मय गर्भम उसका हुआ, माँ की भिल्लीसे ढका हुआ, माताके स्फुट द्वारा पाला हुआ यह जीव महान दुर्गंध रमको पीता है ।

अथ काममरीरादिय पि मयमसुभत्ति णादण ।

णिव्विज्जनतो भायसु जह जहमि क्लेसर अमुड ॥ ३५ ॥

अर्थ-द्रव्य, काम भोग, शरीरादि ये सब तेरे निगाड़ करनेवाले अशुभ हैं ऐसा जानकर इनसे वैराग्य धारण करके ऐसा आत्मध्यान कर जिससे इस अपित्र शरीरका समर्थ सदाके लिये छूट जावे ।

मोत्तूण जिणस्पाद धम्म मुहमिह दु खत्थि लोगम्मि ।

मसुगसुरसु तिरिणसु गिरयमणुणसु चित्तेज्जो ॥ ३६ ॥

अर्थ—देव, अमुर, तिर्यच, नागरी व मानसोंसे भरे हुए इस लोभमें एक जिनेन्द्रप्रणीत धर्मको छोड़कर कोई शुभ तथा परित्र वस्तु नहीं है।

एद सरीरमसुइ णिच्च कलिमल्लुमभायखमचोक्ख।

अतोउाइद - ढिड्ढिम सिग्गिममभरिद अमेज्झवर ॥ ७८ ॥

अर्थ—यह शरीर महान अशुचि है, नित्य रागद्वेष उत्पन्न करनेका कारण है, अशुभ वस्तुओंसे बना है, चमड़ेसे ढका है, भीतर पीप, रुधिर, मांस, चर्बी, शीर्ष आदिसे पूरा है तथा मलमूत्रका भण्डार है।

एदारिसे सरीरे दुग्गधे कुण्णिमपूदियमचोक्खे ।

मडणपट्ठे अमारे राग ख करिनि मण्डुरिसा ॥ ७९ ॥

अर्थ—ऐसे दुर्गन्धित, पीपादिसे भरे, अपवित्र, सड़न-गलन स्वभाववाले, साररहित इस शरीरमें सत्पुरुष राग नहीं करते हैं।

धिनेमिमिदियाण जेमि वमदो दु पाअमज्झणिय ।

पाअदि पाअविसाण दुस्समणत्त मअगदिसु ॥ ८० ॥

अर्थ—इन इन्द्रियोंको विकार हो निनके वशमें पड़क प्राणी पापोंको बाधकर उनके फलसे चार्गे गतियोंमें दु गको पाते हैं।

नरकस्सता ते मृगचार, समयसार अधिकार मे
रूपते है —

वीहृदया शिन्धुः शृङ्गस्त वि तहिन्धिरस्य ।

हृदि य विनस्योमो पश्यभावेण जीयस्म ॥९०॥

अर्थ—काष्ठके रने हुए स्त्रीके रूपको देखनेसे भी म
गय राना चाहिये । क्योंकि निमित्तकारणसे इस जी
मन निगामी हो जाता है ।

धिदमरिदघटमग्निधो पुरिमो इत्थी बलतग्रगिममा ।

तो महिलेयहुका लुट्टा पुरिमा मिन मया इयरे ॥१०॥

अर्थ—पुरुष धीसे मर हुए घटके समान है, स्त्री जल
शुद्ध आगके समान है । इस कारण बहुतसे पुरुष स्त्री
मयोगसे नष्ट हो चुक । जो बचे, वे ही मोर्च पड़ेचे हैं ।

मायाए वहिणीण धृआए मूह नुद्ध इत्थीण ।

वीहृदया शिच्छ इत्थीमन शिरावेकर ॥११॥

अर्थ—स्त्रीके रूपको देखनेसे मिन सिमी अपेक्षाके म
ही मयभीत रहना चाहिय । चाह 'बह' माताका रूप
चाह बहनका हो, चाह 'वद' कन्याका हो, चाह गूनीका
व चाहे वृद्ध स्त्रीका हो ।

भगवती आराधना

(श्री शिवोक्ति आचार्य)

जदि होज मच्छियाप, चमगिमियातयाए गो पिहिद।

को नाम बुझिमभरिय, मरीरमालधुमिच्छेज ॥१०३७॥

अर्थ—यदि यह शरीर मक्खीके पर में मान पतली त्वचासे ढका न हो तो इस मेलसे मरे हुए शरीरको कौन स्पर्शना चाहेगा ?

परिददमव्यचम्म पटुरगच्च सुयतरणरमिय।

सुदुहु रि द्रयिद महिल, ददुहु पि खरो यइच्छज ॥१०३८॥

अर्थ—इस शरीर का सारा चमड़ा जल जावे, शरीर सफेद निरुल आव और घावोंसे उस भडने लग जावे तो प्यारी स्त्री भी उसे देखना पसंद न करेगी।

जदि दारोगाएकम्मि, चेव अच्छिम्मि होति छण्णउदी।

सव्यम्मि चेव देह, होदव्व फटिहि रोगेहि ॥१०५३॥

पचेव य कोडीओ, अट्ठोमहि तद्वे लक्खसइ।

एव णमदि च महग्गा, पचसयाहोति चुलमीदी ॥१०५४॥

अर्थ—यदि एक ओरमें ९६ रोग होते हैं, तो सारे शरीरमें कितने रोग होंगे ? इस शरीरमें पांच करोड़ पाच

नाम नियोजन प्रकार पाँचमो चौरामी (५६८९९५८८)
सो नमस्तु भगवते ॥

॥ १० ॥ इन्द्रा, दिवाणि चिद्ध विमारवैतम् ।

॥ ११ ॥ मारवैत, स्म टादि चिर सरीरमिम ॥१०५९॥

यद्य-साधु उपर्युक्त की मूर्ति सँगरी हुई बहुत समय
तक टहर सकती है, परन्तु यह मनुष्यका शरीर अत्यन्त
मज्जा करते हुए भी बहुत टर नहीं टहरता है ।

ग लहति जह लेहतो, सुगल्लयमद्विय रस सुणहो ।

मो मगतालुगरुहिर, लेहतो मणण-सुख ॥१०५६॥

महिलादिभोगसेगी, लहइ मिति नि सुहतदा पुरिमो ।

सो मणणदे वराआ, मगकायपरिस्मम सुख ॥१०५७॥

अर्थ-जैसे कुत्ता मूत्र हाडोंसे चारता हुआ रमसो
नहीं पाता है, हाडोंसे उमको ताला कट जाता है
जिमसे रधिर निकलता है, उम रधिरको पीता हुआ उसे
हाडसे निकला मान सुग मान लेता है ऐसे स्त्री आदिक
भोगोंको करता हुआ कामी पुरुष कुछ भी सुग नहीं पाता
है । कामी पीड़ामे दीन हुआ अपनी कायके परिश्रमको
ही सुग मान लेता है ।

अध्यात्म प्रकरण

❧ दोलतनिलास ❧

(१०)

जानत क्यौ नहि रे, ह नर आतमजानी ॥ जानत०
॥ टेक ॥ रागदोष पुढलसी सपति, निहचै शुद्धनिशानी ॥
॥ जानत० ॥ १ ॥ जाय नरक पशुनरसुरगतिमें, यह परबाप
मिगनी । मिदूमरूप मदा अमिनागी, मानत मिरले
प्रानी ॥ जानत० ॥ २ ॥ क्रियो, न काहू हरे न कोई,
गुरु-गिरा कौन म्हानी । जनममग्नमलगदित, मिमल है,
कीचरिना निमि पानी । जानत० ॥ ३ ॥ मारपदारथ है
निहु जगमें, नहि मोधी नहि मानी । दोलत मो घटमाहि
मिराजै, लगि हूजै शिखानी ॥ जानत० ॥ ४ ॥

(१८)

‘ चिन्मूरन दग्धारीसी मोहि, गीनि लगत है अटापटी’
॥ चिन्मूरत० ॥ टेक ॥ बाहिर नारम्भित दुख भोग,
अतर सुगरम मटागटी । रमत अनेक सुरनिमैग पै तिम,

(अटपटी ।)

पराधीन ॥ चिन्मू० ॥ १ ॥ ज्ञानमिराग-
 नाश ॥ मित्रिणी, मोक्षन पै मिथि घटाघटी । सदननि-
 गार्ग ॥ २ ॥ तात आसत छटाछटी ॥ चिन्मू० ॥ २ ॥
 च भवत प्रतुम्हे ते तम, फस्त परसी मट्टाभटी । नारक
 पतु निव पड मित्रलप, प्रकृतिनकी हरे कटाभटी ॥
 ॥ ३ ॥ मयम तर न मके पै मयम, धारनसी
 उर चटायटी । तासु सुपश गुनसी, दौलतके, लागी रहै
 नित रगट्टी ॥ चिन्मू० ॥ ४ ॥

(६७)

मेरे रथ हरे गो दिनकी सुपरी ॥ मेरे० ॥ टैक ॥
 तन निनरेसन अमननिन उनेमे, निगमों नामों दृष्टि घरी ॥
 मेरे० ॥ १ ॥ पुण्यपापरममी फेर मिरेचो, परचो निजेनिधि
 चिरमिरी । तन उपाधि सोजि महजमेमावी, महो घाम
 हिम मेघमरी ॥ मेरे० ॥ २ ॥ फेर धिरजोग घरो ऐमो
 मोहि, उपल जान भोग भाष हरी । ध्यान-रमान तान
 अनुभव शर, छेनी किहि दिन मोह अरी ॥ मेरे० ॥ ३ ॥
 फेर तनकचने ऐक गनों अरु, मनिजड़ितालय शीलदरी ।

(दूरपना । १ कर्मफल । २ न्यूनता । ३ नपु मर । ४ धू-
 रीत वषा । ५ पत्थर । ६ ध्यानरूपी घनुपपर अनुभवरूपी घाण ।
 ७ रत्ननद्धित महल । ८ पवतरी कदरा (गुफा) ।

दौलत मतगुरुचरनसेउ जो, पुरमे आश यहँ हमरी ॥
मेरे० ॥ ४ ॥

(६९)

चित चितरू चिदेश' रर, अशेष' पर' वमू' । अपार
गिधि दुँचार', की चमू' दम ॥ चित० ॥ टेक ॥ तपि
पुण्यपाप धाप आप, आपमे रमू' । कराराम-आग शर्म'
नाग, दाघनी शमू' ॥ चित० ॥ १ ॥ दृगज्ञानमानत'
मिथ्या, अज्ञानतम दमू' । कच मर प्राणिभूत, मरुसों छमू'
॥ चित० ॥ २ ॥ जल भल्ललित रुल' सुकल', सुगल्ल
परिनिमू' । दलरें त्रिगल्लमन्ल' कर, यदल्लपद' पमू' ॥
चित० ॥ ३ ॥ रर ध्याय अज' यमरुको फिर न, भव
निपिन' ममू' । जिन पूर वौल' दौलको यह, हेतु हौ नम
चित० ॥ ४ ॥

१ आत्मा । २ सम्पूर्ण । ३ परंपरार्थ । ४ वसन कन्दू-छोड़ू ।
५ रर्म । ६ दो गुणित चार अर्थात् आठ । ७ सेना । ८ आत्मा ।
९ रमण करू । १० सुगच्छी धागरी जलानेवाली । ११ शमन
करू, शांत करू । १२ मर्ममर्शन और ज्ञानरूपी सूयसे । १३ जड ।
१४ शरीर । १५ शुक्लध्यानके बलसे । १६ माया, मिथ्यात्व,
निदानरूप तीन शल्यरूपी पहलवान । १७ मोक्षपद । १८ समार-
रूपी घन । १९ प्रतिज्ञा ।

ॐ ध्यानत विलास ॐ

(२) राग सोरठा ।

तानानमता स्व आपैगा ॥ टेक ॥ राग दोष पर-
रति मिट जै है, ता जियरा सुख पावैगा ॥ गलता० ॥ १ ॥
मैं नी ज्ञाता ज्ञान जेय मैं, तीनों भेद मिटावैगा । करता
किरिया करमभेद मिटि, एक दरस लौ लावैगा ॥ गलता०
॥ २ ॥ निहच अमल मलिन व्योहारी, दोनों पक्ष नमा
वंगा । भेद गुण गुणीको नहि हूँ है, गुरु शिख कौन
कहावैगा ॥ गलता० ॥ ३ ॥ ध्यानत साधक साधि एक
करि, दुनिधा दूर बहावैगा । वचनभेद कहवत सब, मिटक,
ज्योंका त्यों ठहरावैगा ॥ गलता० ॥ ४ ॥

(३) राग सारंग ।

मोहि क्य ऐमा दिन आय है ॥ टेक ॥ सकल निमाव
अभाव होंहिगे, विकल्पता मिट आय है ॥ मोहि० ॥ १ ॥
यह परमात्म यह मम आत्म, भेदबुद्धि न रहाय है ।
ओरनिकी का बात चलावै, भेदनिज्ञान पलाय है । मोहि०
॥ २ ॥ जानै आप आपमै आपा, सो व्यवहार पिलाय
है । नय प्रमान निखेपन भारी, एक न ओमर पाय है ॥
मोहि० ॥ ३ ॥ दरसन ज्ञान चरनरु विकल्प, कहो कहो

उहराय है । धानत चेतन चेतन हूँ है, पुदगल पुदगल
थाय है ॥ मोहि० ॥ ४ ॥

(६) राग काफी धमाल ।

सो ब्राता मेरे मन माना, जिन निजनिज, पर-पर
जाना ॥ देरु ॥ छहों दरगत मित्र जानरु, नर तत्त्वनिद
आना । तारी देखे तारी जानै, ताहीके रममें माना ॥
मो ब्राता० ॥ १ ॥ कर्म शुभाशुभ जो आयत हैं, सो तो
पर पहिचाना । तीन भयनको राज न चाहै, यद्यपि गाठ
दरर बहु ना ॥ मो ज्ञाता० ॥ २ ॥ अखय अनती मम्पति
गिलसे, भर तन भोग मगन ना । धानत ता उपर पलि
हारी, मोई "जीवन मुक्त" बना ॥ मो ब्राता० ॥ ३ ॥

(१०) राग मोरठ ।

कर कर आत्महित र प्राणी ॥ देरु ॥ जिन परिना
मनि रथ होत है, मो परनति तन दुखदानी ॥ कर० ॥ १ ॥
मौन पुरुष तुम कह्यो रहत हौ, किहिकी मगति रति मानी ।
जे परजाय प्रगट पुदलमय, तेतैं क्यों अपनी जानी ॥ कर०
॥ २ ॥ चेतनजोति भूलै तुममाहीं, अनुपम मो तैं
मिमरानी । जासी पट्टर लगत आन नहि दीप स्तन
शशि मरानी ॥ कर० ॥ ३ ॥ आपमें आप लखो अपनी

१८ ॥ तत् करि नन मन नानी । परमेस्वरपद आप पाइये,
या जय कवननानी ॥ कर० ॥ ४ ॥

(१३) राग विदागरो ।

जाता क्या नहिं र, हे नर आत्मव्रानी ॥ देख ॥
१ ॥ जोय पुढलसी मगात, निहचै शुद्धनिशानी ॥ जानत०
॥ १ ॥ जाय नरक पशु नर सुर गतिमें, ये परजाय
पिरानी । मिद्व-मरूप मदा अग्निनाशी, जानत पिरला
प्रानी ॥ जानत० ॥ २ ॥ कियो न काटू हरे न फोड़ै, गुरु
गिरा नौन कहानी । जनम मरन मलरहित अमल है, कीच
पिना ज्यों पानी ॥ जानत० ॥ ३ ॥ सार पढारथ है निर्दु
जगम, नहिं बोधी नहिं मानी । जानत मो घटमाहि पिराजै,
सख नूजै शिखानी ॥ जानत० ॥ ४ ॥

(१४) राग काफी ।

१ ॥ आपा प्रभु जाना मैं जना ॥ देख ॥ परमेसुर यह मैं
इम सेसर, ऐसो मर्म पलाना ॥ आपा० ॥ १ ॥ जो
परमेसुर मो मम भूरति, जो मम सो भगवाना । मरमी
होय मोद तो जानै, जानै नार्ही आना ॥ आपा० ॥ २ ॥
जाको ध्यान धरत है मुनिगन, पावत है निरवाना । अहंत
मिद्व सुनि गुरु मुनिपद, आत्मरूप गगाना ॥ आपा०
॥ ३ ॥ जो निगोदमें मो मुकमार्हा, मोई है गिर याना ।

धानत नहिच रच फेर नहि जानै सो मतिमाना ॥
आपा० ॥ ४ ॥

(१६) राग कापी ।

अब हम आत्मको पहचाना जी ॥ टेक ॥ जेमा
मिद्वचेरमें राजत, तैसा घटमें जाना जी ॥ अब हम०
॥ १ ॥ देहादिक परदृश्य न मेरे, मंग चेतन बाना जी ॥
अब हम० ॥ २ ॥ धानत जो जानै मो म्याना, नहि जानै
मो दिवाना जी ॥ अब हम० ॥ ३ ॥

(१४)

आत्म अनुमंत्र करना रे भाई ॥ टेक ॥ जब लौं भेद
ज्ञान नहि उपने, जनम मरन दुख भरना रे ॥ भाई० ॥ १ ॥
आत्म पद न तत्त्व बखानै, तत तप सजम धरना रे ।
आत्म ज्ञान बिना नहि 'कारज, जोनी-संस्ट' परना रे ॥
भाई० ॥ २ ॥ सकल ग्रन्थ दीपक हैं भाटे, मिथ्या तमके
हरना रे । रुहा फरै ते अब पुरुषको, जिन्हें उपजना मरना
रे ॥ भाई० ॥ ३ ॥ धानत जे भवि मुख चाहत हैं, तिनको
यह अनुमरना रे । 'सोइह' ये दो अक्षर जपकै, मर जल
पार उतरना रे ॥ आत्म० ॥ ४ ॥

(१६)

अब हम आत्मको पहिचान्यौ ॥ टेक ॥ जब ही सेती
मोह सुभट बल, खिनक एकमें भान्यौ ॥ अब० ॥ १ ॥

गल गिरे, सल भजे भर, ममता मार पलान्यौ ।
 अगल, अगल अगल, अगल भेद रहित परमान्यौ । अर०
 ॥२॥ अगल अगल, अगल न दग्यो, देग्यो सो मरधान्यौ ।
 नगल अगल अगल, अगल नरि, जा जान निम जान्यौ ॥
 ॥ ३ ॥ अगल मार सुपनगत दग्ये, अपना अनुमन
 ॥ ४ ॥ दान्त ता अनुमन म्यादत ही, जनम सकल करि
 ॥ ५ ॥ अर० ॥ ४ ॥

(३)

आत्मरूप अनूपम, है, घटमाहि पिराजे ॥ टेक ॥
 जाक सुमग्न जापसा, भय भय दुख मान हो । आत्म०
 ॥ १ ॥ केरत दग्मन ज्ञानर्म, पिरगापद छान हो । उपमा
 को तिहुँ लोरमें, कोउ रस्तु न राने हो ॥ आत्म० ॥ २ ॥
 महै परीपह मार जो, जु महाप्रत माजै हो । ज्ञान निना
 शिव ना लहै, बहुर्म उपाज हो ॥ आत्म० ॥ ३ ॥ तिहुँ
 लोर तिहुँ कालमें, नहि और इलाजे हो । दान्त ताको
 जानिये, निज म्यारथ राने हो ॥ अ तम० ॥ ४ ॥

(३५)

धिर ! धिर ! जीवन ममकित निग ॥ टेक ॥ दान
 शील तप प्रत श्रुतपूना, आत्महत न एर गिना ॥ धिर०
 ॥ १ ॥ ज्या विनु कन्त कामिनी गोमा, अजुज विनु
 मरार ज्यो सता । जेसे निना णकुडे विन्दी, त्यों समकित

विन मय गुना ॥ वि० ॥ २ ॥ जैसे भूष विना मय सेना,
नीव विना मट्टिर चुनना । जैसे चन्द मिट्टनी रचनी, इन्हें
आवि जानो निपुता ॥ धि० ॥ ३ ॥ देव विनेन्द्र, साधु
गुरु, कृता, धर्मराग ङोठार बना । निदव दय परम गुरु
आत्म, धानत गहि मन रचन तना ॥ धि० ॥ ४ ॥

(३७) राग मल्हार ।

ज्ञान मरोर मोट हो भाविन । टेक ॥ भूमि छिमा
करना मरजादा, मम-रस जल जहँ होई ॥ भविन० ॥ १ ॥
परहति लहर हरस जलर बहु, नय एकति परकारी ।
मम्प कमल अष्टदल गुण हैं, सुमन भँवर अधिकारी ॥
भविन० ॥ २ ॥ मजम शील आदि पल्लव हैं, कमला
सुमति निगसी । सुजम सुगम कमल परिचय हैं, परमत
भ्रम तप नामी ॥ भविन० ॥ ३ ॥ भय मल जात न्हात
भविनरा होत परम सुग माता । धानत यह मर और
न जानें, जानि बिरला ज्ञाता ॥ भविन० ॥ ४ ॥

(३९) राग मारग ।

हम लागे आत्मगममा ॥ टे० ॥ विनाशीक पुदगलरी
छाया, कौन रमै धनमानसो ॥ हम० ॥ १ ॥ समता सुग
घरमें परमास्यो, कौन कान है कामसो । दुविधा भाव
ज नाजुलि दीना, मेल भयो निज स्वामसो ॥ हम० ॥ २ ॥

न नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं
 पुत्र मा नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं
 अनन्त नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं
 चपल नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं
 सता नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं
 (१) नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं
 ॥ ३ ॥ नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं
 ध्यान नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं
 गी० ॥ ४ ॥

(४)

तुन नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं
 रमल ॥ ५ ॥ नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं
 रानी नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं
 बलि, प्रादा नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं
 गाना पितृ नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं
 तुम० ॥ ३ ॥

(५)

जगन्मै समस्त नित्यं नित्यं नित्यं ॥ सम्पत्ति
 प्रसा नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं ॥ जगन् ॥ १ ॥
 आयत्त नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं नित्यं

निर्भर आरिह ग्यामचारी, जिन आतम लन लाई ॥
जगन० ॥ २ ॥ फन परावर्तन, तै कीनै, बहुत मार दुखदाई ।
लग गैरामि सग वरि नान्यौ, ज्ञानकला नहि आई ॥
उपा० ॥ ३ ॥ गम्यक मिन तिहु जग दुखदाई, जहँ भाव
तै जाँ । प्रान्त सम्यक आतम, अनुमन, सद्गुरु सीख
गनाइ ॥ जग० ॥ ४ ॥

(६०) राग गौड़ी ।

भाइ ! अब मै ऐमा जाना ॥ टेक ॥ पुटल दरव अचेत
मिन हैं, मेरा चेतन बाना ॥ भाई० ॥ १ ॥ कलप अनन्त
महन दुख बीते, दुखकी सुख कर माना । सुख दुख दोऊ
कर्म अस्थायी, मै कर्मनैत आना ॥ भाई० ॥ २ ॥ जहा
भोरया तहा भई निशि, निशिमी ठौर निहाना । भूल मिटी
निनपद पहिचाना, परमानन्द निवाणा ॥ भाई० ॥ ३ ॥
गूगे का गुड खाय कहँ किमि, यद्यपि स्वाद पिछाना ।
घानत निन देख्या तै जान, मँडक हस परवाना ॥
भाई० ॥ ४ ॥

(६१) राग ख्याल ।

आतम जान रे जान रे जान ॥ टेक ॥ जीवनकी इच्छा करै,
कहुँ न मागे काल । (प्राणी) मोई जान्यो जीव है, सुख चाहै
दुख टाल ॥ आतम० ॥ १ ॥ नैन बैनर्म कोन है, कोन सुनत
है बात । (प्राणी) देखत क्यों नहि आपमें, जाकी चेतन

जात ॥ आत्म० ॥ २ ॥ गोहिर दूढ़े दूर है, अतः निपट
नजीक । (प्राणी) दूढ़नमाला कौन है, सोई जानो, ठीक
॥ आत्म० ॥ ३ ॥ तीन भजनमें देखिया, आत्म समु नहि
कोय, । (प्राणी) धानत जे अनुभव करें, तिनको शिव-
सुख होय, ॥ आत्म० ॥ ४ ॥

(६३) राग रामकली ।

हम न किमीके कोई न 'हमारा, झूठा है जगका
ब्योहारा ॥ टेक ॥ तनसयधी भय परवारा, सो तन हमने
जाना न्यारा ॥ हम० ॥ १ ॥ पुन्य उदय सुखका बढ़ारा,
पाप उदय दुख होत अपारा । पाप पुन्य दोऊ ससारा,
मैं सब देखन हारा ॥ हम० ॥ २ ॥ मैं तिहु जग, तिहु
काल अकला, पर मजोग भया बहु मेला, धिति पूरी करि
खिग, गिर जाही, मेरे हार्ण शोक कलु नाहीं ॥ हम० ॥ ३ ॥
राग, भारतैं सज्जन, मानैं, दोष भावतैं दुर्जन जानैं, । राग
दोष दोऊ मम, नाहीं, धानत, मैं चेतनपदमाहीं, ॥ हम०
॥ ४ ॥

(६५)

मैं निज आत्म कय ध्याऊंगा ॥ टेक ॥ रागादिक
परिनाम त्यागकै, ममतासौ लौ लाऊंगा ॥ मैं निज० ॥ १ ॥
मन वच काय जोग थिर करवै, ज्ञान ममाधि लगाऊंगा ।

रम्यो निषङ्गणि चदि घ्याऊ, चारिनि मोह नशाउ गा
॥ म नि० ॥ २ ॥ चारा कम्प घातिथाम्बन करि परमात्म
पट ताउ गा । तात दरश सुख बन भटारा, चार अघाति
नशाउ गा ॥ म नि० ॥ ३ ॥ परम निगजन सिद्ध शुद्ध
पट, परमानन्द उदाउ गा । मानत यह मम्पति जय पाऊ,
तुमि न जगमे आउ गा ॥ म० ॥ ४ ॥

(८८)

दमे सुगी मध्यकथा ॥ देख ॥ सुख दुखको दुरूप
निचाँ, धार अनुभर नान ॥ दमे० ॥ १ ॥ नरक सातमेक
अम मोह, इन्द्र लंग निन मा । भीष्ट मागरे उदर भरे
न कर चत्रोसो ध्यान ॥ दमे० ॥ २ ॥ तीर्थर पदको
नहि चार जपिउदय अग्रमान । कृष्ट आदि बहु व्याधि दहत
न, अहत मकरध्वज धान ॥ दमे० ॥ ३ ॥ व्याधि व्याधि,
निरबाध अनाकुल, वेतानोति पुमान । दानत धगन सदा
तिहिमाहीं, नाहीं खेट विद्वान ॥ दमे० ॥ ४ ॥

(८९) राग आमारा ।

अप्र हम अपर भय न मरेगे ॥ देख ॥ तन कारन
मि० पात दियो तजे, क्यों करि दह घरेगे ॥ अ० ॥ १ ॥
उपने मरे फालत गानी, ताँत काल हरेगे । राग दोष जग
बध करत है, इनरो नाश करगे ॥ अ० ॥ २ ॥ देह

मिनाशी मैं अमिनाशी भेटवान परगंगे । जामी जामी हम
 धिरामी, चोखे हों निखरेंगे ॥ अथ० ॥ ३ ॥ मरे अन्नत
 गार निन समर्थ, अथ मर दुख मिसरेंगे । दानत निपट
 निरुद दो अतर, निन सुमरें सुमरेंगे ॥ अथ० ॥ ४ ॥

(९४) राग गौरी ।

देगो भाई ! आतमगम गिराजे ॥ टंक ॥ छहो दरप
 नय तत्प ज्ञेय है, आप सुत्रायक छात्रे ॥ देखो० ॥ १ ॥
 अर्हत सिद्ध खरि गुरु मुनिगर, पाचौ पद निहिमाहीं ।
 दरसन ज्ञान चरन तप जिहिमें, पटतर फोऊ नाहीं ॥
 ॥ देगो० ॥ २ ॥ ज्ञान चेतना कहिये जाकी, पारी पुदगल-
 फेरी । केवलज्ञान मिभूति जामुर्क, आनविमौ भ्रमरेगी ॥
 देगो० ॥ ३ ॥ एकेन्द्री पचेन्द्री पुदगल, जीन अतीन्द्री
 ज्ञाता । दानन ताही श्रुद दरबको, जानपनो मुखदाता ॥
 देखो० ॥ ४ ॥

छापे

यह अमुद्धर्म सुद्ध दह परमान अग्रदित ।
 अमरुयात परदेस, नित्य निरमै मैं पटित ॥
 एरु अमृगति निर उपाधि, मेरो छय नाहीं ।
 गुन अनत ज्ञानादि, सर्व ते हैं सुकमाहीं ॥

ये शङ्ख ध्वज वन विमल, सुख अनत मौमै लमै ।
 जा हर जगत् सागर निपुन, मिद्विखेत महजै रसै ॥ ८४ ॥
 तत्तत् नित्यज्ञान, ज्ञानमय जीव सु जानत ।
 तत्तत् पुण्यत अन्य, अन्यमौ नातौ भानत ॥
 म नम पिथ्या-निमिर, तिमिर जा मम नहि कोई ।
 ते ई निवृत्त नहि, नहि दुनिया जम होई ॥
 दोह जनत सुख प्रगट जय, जय प्राणी निजपद गहत ।
 गदा न ममत लखि गेय मय, मय अग तजि सिंगपुर लहत ॥ ९० ॥

कुंठलिया ।

जो जानि मो जीव है, जो माने मो जीव । जो देखै
 मो जीव है, जोरै जीव सदीव ॥ जीवै जीव सगीव, पीव
 अनुमौरम प्राणी । आनदकद सुखद, चद पूरन सुखदानी ॥
 जो जो दीसै सर्व, सर्व छिनमगुर सो सो । सुख कहि मकैन
 मोइ, होइ जाकी जानि जो ॥ ९॥

छापे ।

ग्यानरूप चिद्रूप, भूष मित्ररूप अनुग्रह ।
 रिद्ध मिद्ध निव वृद्ध, सहज ममृद्ध मिद्ध संम ॥
 अमल यचल अविस्मय, अचल्प, अचल्प, सुखाकर ॥
 सुद्ध उद्ध अविद्ध, सुगन-गन मनि-रतनाकर ॥

उतपात नाम घुम साध सत, सचा दरब सु एक ही ।
 धानत आनद अनुभौ दमा, बात कहनकी है नहीं ॥ ३ ॥
 भोग रोगसे देखि, जोग उपयोग बढ़ायौ ।
 आन भाग दुख दान, ग्यानसौ ध्यान लगायौ ॥
 सकलप विकल्प अल्प, बहुत सब ही तजि दीनै ।
 आनंदरुट सुभाज, परम ममनारस भीनै ॥
 धानत अनादि भ्रमनामना, नास कुविद्या मिट गई ।
 अतर बाहर निरमल फट्क, झटक दमा ऐसी भई ॥ १० ॥

सर्वथा २३ ।

लोगनिसौ मिलनौ हमको दुख, साहनिशौ मिलनौ
 दुख भारी । भूपतिमौ मिलनौ मरनै सम, एक ठसा मोहि
 लागत प्यारी ॥ चाहकी दाह जलै जिय मूरख, वे परबाह
 महा मुखहारी । धानत याहीतै ग्यानी अरुखरु, फर्मकी
 चाल सबे जिन टारी ॥ २७ ॥

सर्वथा ३१ ।

चेतनामहित जीव तिहुंकाल गजत है, ग्यान दरमन
 भाग सदा जास लडिऐ । रूप रस गंध फास पुदगलसौ
 मिलास, मूरतीक रूपी पिनामीक जड़ कहिये ॥ याही
 अन्नमार परदर्वको ममत्त डारि, अपने मभाग धारि आप

प्राप्त करे। ईश्वर यही इत्थान जाति होत आप काज,
आप मोह मोह भावों ममोज दहिए ॥ ९३ ॥

पुटलियाँ ।

आनन नदी जुगलिये, मगनपती पाताल । सुगोइद्र
परमि मय अधिक २ सुख भाले ॥ अर्थिक २ सुख भाले,
गल लि नत गुनाहर । एकमम सुग सिद्ध, रिद्ध परमा-
गमपद घर ॥ मो निहचै तू आप, पापनिन क्यों न पिछा
नन । दरस ग्यान यिर आप, आपम आप सु धानत ॥ ११ ॥

सत्रिया - ७३ ।

मेम सुभासुम, जो उदयागत, आरत हैं जन जानत
झोती । पुरय आमक मान क्रिये पहुँ, सो । फल मोहि भयो
दुखदाता ॥ मो जडरूप स्वरूप नही सम, मैं निज सुद्ध
सुभासहि राता । नाम करौ पलम मगरी अर, जाय पमौ
मिचयेत विख्याता ॥ ६५ ॥

अशोर छद ।

सुद्ध आत्मा निहारि राग दीप मोह टागि, क्रोध
मान कर गारि लोभ मान भानुरे । पापपुन्यको निहारि
सुद्धभासों सँभारि, भर्मभासों निमारि परमभाव आनुरे ॥
चर्मदष्टि, ताहि आरि सुद्धदष्टिको पसारि, देहनेहको निवारि

सेतध्यान ठानुरे । जागि जागि मै न छारि भव्य मोयकौ
बिहार, एक चारके रुहे हजार बार जानु रे ॥ ॥ ८२ ॥

सर्ग ३१ ।

मिथ्याभास मिथ्या लखौ ग्यानभास ग्यान लखौ,
काममोग भासनमौ काम जोरजारिके । परकौ मिलाप तजो
आपनपौ आप भजौ, पापपुन्य भेद छेद एस्ता विचारिके ॥
आतम अवाज करे आतम सुकाज करे, पाप भयपार मोक्ष
एतौ भेद धारिके । यातैं हूँ कहत हर चेतन घेतौ मनेर,
मेर मीत हो निचीत एतौ काम मारिके ॥ ९४ ॥

सर्ग ३२ ।

मौन रहैं बनचाम गहैं, वर काम दहैं जु सहैं दुख भारी ।
पाप हरे सुमरीति करै, जिनवन धरै हिरदे सुखकारी ॥
देह तपैं बहु जाप जपै, नहि आप जप ममता विगतारी ।
ते मुनि मूढ़ करै जगरूढ़, लहै निजगेह न चेतनधारी ॥ १६ ॥

सर्ग ३१ ।

चेतनके भास दोय ग्यान औ अग्यान जोय, एक
निजभास दूजौ परठतपात है । तातैं एक भास गहौ दूजौ
भास मूल दहौ, जातैं मिरपद लहौ यही ठीक बाल है ॥
भासमौ दुग्यापौ जीव भासहीसौ सुखी होय, भासहीसौ फेरि

पर मोखपुर जात है । यह तो नीकौ प्रमग लोक कहै मर
आगहीन दावौ अन आगही मिरात है ॥ १०७ ॥

छपे ।

लिपि मय दरानि अब, मूक मिथ्यात मननकौ ।

अधिर दोष पर, सुत्तन, लुज पटकाय हननकौ ।

पंगु वृत्तीरथ चलन, मुझ दिय लेन धरनकौ ।

आलमि शिष्यनि मौहि, नाहि बल पाप करनकौ ।

यह अंगही किह कामकौ, करे कहा जग बैठक ।

घानत ताते आठौ महर, रहै आप घर पैठक ॥ ५ ॥

होनहार मो होय, होय नहि अन होना नर ।

हरष मोक कया करे, दग सुख दुख उदकर ॥

हाय कछु नहि परे, भार समार बढ़ावे ।

मोह करमकी लिपौ, तहां मरु रंच न पार ॥

यह चाल महामूरख तनी, रोय रोय आपद महै ।

ग्यानी निमान नामन निगुन, ग्यानरूप लखि शिव लहै ॥ ६ ॥

समेया ३१ ।

‘वृन्ध फल परे-मार्ज नदी औरोंके डलाने,

गाय दूध सते घन लोभ सुगंधार है ।

चंदन घसाइ दरों केने तपाई देखी,

अंगर जलोइ देखी शोभा तिसतार है ॥

सुखा होत चढमाहि जैसे जाह तरु माहि,
 पालेमें मइज मीत आतप, निमार, है ।
 तैमें माघलोग सय लोगनिमौ सुसुकारी,
 तिनहीमौ जीवन जगत माहि सार है ॥ ८ ॥

ॐ भागवन्द भजनमाला ॐ

(१) राग ठुमरी ।

मन्त निरन्तर चिन्तत ऐम, आतमरूप अयाधित
 जानी ॥ टेक ॥ रागादिक तो देहाश्रित हैं, इनतें होत न
 मेरी हानी । दहन दहत ज्यों दहन न तदगत, गगन दहन
 तारी 'विधि' ठानी ॥ सन्त० ॥ १ ॥ बरणादिक प्रकार
 'पुदगलक', इनमें नहि चतन्य निशानी । यद्यपि एक क्षेत्र
 अग्राही, तद्यपि लक्षण भिन्न पिछानी ॥ सन्त० ॥ २ ॥
 मैं समागपूर्य ज्ञायक रम, 'लवण' सिन्धुलवत लीला ठानी ।
 मिला मिराडुल स्वाद न । यावत, तावत-परपरनति हित
 मानी ॥ सन्त० ॥ ३ ॥ - भागवन्द निरदन्द, निरामय,
 मूरति-निश्चय-मिदुसुमानी । नित यकलक, अक्क छक
 गिन, निमल पक, मिना निमि पानी ॥ सन्त० ॥ ४ ॥

(२)

यही ईश धर्ममूल है भीता ! निन समझितमारमहीता ॥
 यही० ॥ टेक ॥ 'समझित' महित, नरकपदनामा, सासा

उपजा गीता । तहँ निकमि होय तीर्थकर, सुरगन जनन
मयीता ॥ यही० ॥ १ ॥ स्वर्गनाम हू नीसी नाहीं, निन
ममारेन प्रमोता । तहँ चय एकद्री उपजत, भ्रमत सदा
पयसीता ॥ यही० ॥ २ ॥ सेन बहून जोते हू बीज निन,
हस्त गान्यसा गीता । सिद्धि न लहत कोटि तपहँ, पृथा
फोण सहीता ॥ यही० ॥ ३ ॥ ममन्ति अतुल अखड
पुभागम, जिन पुरपनने पीता । मागचन्द ते अजर अमर
भये, तिनहीने जग जोता ॥ यही० ॥ ४ ॥

(६)

अति सकलेश त्रिशुद्ध शुद्ध पुनि, त्रिभिध जीव परिनाम
उगाने ॥ अति० ॥ टंक ॥ तीव्र कपाय उदयतै भावित,
दमित हिमादिक अघ ठाने । सो 'मस्लेश भावफल नरका
'दिक गति दुख भोगत असहाने ॥ अति० ॥ १ ॥ शुध
उपयोग कारननमें जो, रागकपाय मद उदयाने । सो
त्रिशुद्ध तसु फल इद्रादिक, त्रिभिध समाज सकल परमाने ॥
अति० ॥ २ ॥ परभारन मोहादिभूतै च्युत, दरसन ज्ञान
चरन रस पाने । सो है शुद्ध भावे तसु फलंत, पहुँचत
परमानंद ठिकाने ॥ अति० ॥ ३ ॥ इनमें जुगल यधके
कारन, परद्रव्यानि हय प्रमाने । 'भागचन्द' स्वसमय निज
हित लसि, तामे रम रहिये भ्रम हाने ॥ अति० ॥ ४ ॥

(१४) राग गौरी ।

आतम अनुभव आये जब निज, आतम अनुभव
 आये, और कलू न सुहाव, जब निज० ॥ टेक ॥ रम
 नीरम हो जात तनच्छिन, अन्ध रिषय नहिं भारी ॥
 आतम० ॥ १ ॥ गोपी क्या इतहल रिषट, पुद्गलप्रीति
 नमारी ॥ आतम० ॥ २ ॥ राग दोष जुग चपल पक्षजुत
 मन पत्नी मर जाये ॥ आतम० ॥ ३ ॥ आनानन्द सुधारस
 उमग, घट अंतर न सपार ॥ आतम० ॥ ४ ॥ भागचद
 ऐसे अनुभवे हाथ जोरि मिर नाये ॥ आतम० ॥ ५ ॥

(३६) राग ठुमरी ।

जीवनिके परिनामनिही यह, अति विचित्रता देखहु
 जानी ॥ टेक ॥ नित्य निगोदमाहित कदि कर, नर परजाय
 पाय सुरदानो । ममकित लहि अतर्मुहूर्तम, केवल पाप
 धरि शिरानी ॥ जीवनि० ॥ १ ॥ मुनि एकादश गुणया
 नक चढ़ि, गिरत तहाँतैं चित भ्रम ठानी । भ्रम अर्धपुद्गल
 प्रार्तन, किंचित् उन काल परमानी ॥ जीवनि० ॥ २ ॥
 निरं परिनामनिही मैमालमे, ततैं गाफिल मत हवै प्रानी ।
 बंध मोक्ष परिनामनि ही सों, कहत मदा श्रीजिनसरयानी ॥
 जीवनि० ॥ ३ ॥ मरुल उपाधिनिमित्त भावनिमो, भिन्न

६ निज परतनिको छानी । ताहि जानि रुचि ठानि होहु
१५ भागचन्द यह मीख सयानी ॥ जीमनि० ॥ ४ ॥

(३९)

राहुनरहित होय इमि निशदिन, कीजे तय विचारा
ति । सो म कहा रूप है मेरा, पर है 'कौन प्रकारा हो
॥ टेक ॥ १ ॥ को मन मारख वर कहा को, आसुनरोर-
नहारा हो । सिपत कर्मबंधन काहेसों, थानरु 'कौन
हमारा हो ॥ आहुल० ॥ २ ॥ इमि अम्पाम किये 'पानत
है, परमानन्द अपारा हो । भागचन्द यह सार' जान करि,
कीजे नारनारा हो ॥ आहुल० ॥ ३ ॥

(४०) राग काफी ।

ऐसे निमल भाव अब पायै, तय हम नरम सुफल
कहायै ॥ टेक ॥ दरश बोधमय निज आत्म लखि, पर-
द्रव्यनिको नहि अपनानै । मोह राग रूप अहित जान
तजि, झटित दूर तिनको छिटकारै ऐसे० ॥ १ ॥ कर्म
शुभाशुभपद उदयमें, इर्ष मिषाद चित्त नहि ल्यायै । निज
हित हत निराग नानलखि, तिनमो अधिक प्रीति उपजायै ॥
ऐसे० ॥ २ ॥ निषय चाह तजि आत्मवीर्य मजि, दुखदा-
यक मिथिबध सिरायै । भागचन्द शिरमुख सर 'मुखमय,
आहुलता निन लखि चित चायै ॥ ऐत्ते० ॥ ३ ॥

(४७) लावणी ।

मफल हैं धन्य धन्य वा घरी, जव ऐमी अति निर्मल
 होमी, परमदशा हमरी ॥ टेक ॥ धारि दिगबर दीक्षा
 सुन्दर, त्याग परीग्रह धरी । बनवामी कम्पात्र परीपद,
 महि हौ धीर घरी ॥ मफल० ॥ १ ॥ दुर्धर तप निर्मर
 नित तप हौ, मोह कुच करी । पचाचार त्रिया आचर ही,
 सकल मार मुथरी ॥ मफल० ॥ २ ॥ विघ्नमतापहरन
 भग्मी निज, अनुभव मेघ भरी । परम शान्त भावनरी
 तार्ति, होमी बुद्धि रारी ॥ सफल० ॥ ३ ॥ त्रेमठि प्रकृति
 भग जव होसी, जुन त्रिमग सगरी । तर केवल दर्शन
 त्रिमोघ मुख, पीर्यकला पमरी ॥ मफल० ॥ ४ ॥ लगि
 हो सकल द्रव्य गुणपर्जय, परनति अति गहरी । भागचद
 जव महजहि मिलि है, अचल मुरुति नगरी ॥ मफल०
 ॥ ५ ॥

(४७) राग दादरा ।

धनि ते ग्रान, जिनके तत्त्वार्थ थद्वान ॥ टेक ॥ रहित
 मम मय तत्त्वार्थमें, चित न सगय आन । कर्म कर्म
 मलनी नहि इत्या परमें धरत न ग्लानि ॥ धनि० ॥ १ ॥
 मवल भायमें मूढदृष्टिजि, कत माभ्यसमपान । आतम
 वर्म बदार्न वा, परदोष न उचरै जान ॥ धनि० ॥ २ ॥

१०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

(१००) राग जोड़ा ।

राजी जीवनके मय होय, न था परकार ॥ टेक ॥
 इह भय परभय अन्य न भेरो, ज्ञानलोक मम सार । मे
 वेदक इह ज्ञानभासो, नहि परवेदनहार ॥ ज्ञानी० ॥ १ ॥
 निज सुभाषो नाश न ताँ, चाहिये नहि रखवार । परम
 गुप्त निजरूप सहज ही, परफातहँ न सचार ॥ ज्ञानी०
 ॥ २ ॥ ॥ चितस्वभाज निज प्राण तासो, कोई नहीं हर-
 तार । मैं चितपिड अखड न ताँ, अकस्मात् भयभार ।
 ज्ञानी० ॥ ३ ॥ होय निशक स्वरूप अनुभवे, जिनके यह
 निरधार । मैं मो मैं, पर मो मैं नाहीं, भागचन्द्र भ्रम डार
 ॥ ज्ञानी० ॥ ४ ॥

(१००) राग नदरा

ध्याननिज अमृत अमृत रहे ॥ टेक ॥ आप अभग
 तथापि अगक, सग महा दुख (पुँन) बहै । लोहपिंड मगति
 पारज ज्यों, दुर्वर घनसी चोट । यहै ॥ चेतन० ॥ १ ॥

नामकर्मके उदय प्राप्त नर नरकादिक परजाय धरै । तामें
मान अपनपौ सिखा, जन्मजरा मृतु पाय धरै ॥चेतन० ॥२॥
कता होय रागरूप ठान परसो माची रहत न यहै । व्याप्य
सुव्यापक भार सिना किमि, परका करना होत न यहै
॥ चेतन० ॥ ३ ॥ जर भम नाद त्याग निजमें निज, द्वित
हेत मन्हागत है । वीतराग सर्जन होत तब, भागचन्द द्वित
मीरा कहै ॥ चेतन० ॥ ४ ॥

(६१) राग नौपचन्धी सोरठ ।

प्राणी ममस्मिन् ही शिरपंथा । या सिन निर्मल सन
ग्रन्था ॥ टेक ॥ जा सिन राहगक्रिया तप कोटिरु, मरुल
चृथा है रथा ॥ प्राणी० ॥ १ ॥ हयजुतरथ सी माग्य सिन
जिमि, चलत नहीं अउ पथा ॥ प्राणी० ॥ २ ॥ भागचन्द
मरधानी नर भये, शिरलक्ष्मीके कथा ॥ प्राणी० ॥ ३ ॥

(६६)

जे सहज होरीके खिलारी, तिन जीवनकी पलिहारी
॥ टेक ॥ शातमान कुटुम रस चदन, भर ममता पिचकारी ।
उडत गुलाल निजेरा मवर, अग पहरै भारी ॥ जे० ॥ १ ॥
सम्पकर्णनादि मग लेरु, परम मरा सुखकारी । भोज रहे
निज ध्यान रगम, सुमति मगी प्रियनारी ॥ जे० ॥ २ ॥

॥ २ ॥ जलमें धुनि, विमल भये शिखारी । भागचन्द
तो ब्रत अन्त नदन, भाव समेत हमारी ॥ जे० ॥ ३ ॥

(६) राग शीपचन्दी ।

तौ र भई, तत्पारध भरधान । नरभव सुबुल सुखै
पादक ॥ टंक ॥ टंकन नाननहार आप ललित, देहात्मिक
पर ॥ ॥ करौ रे भाइ० ॥ १ ॥ मोह गगरुष अहित जान
तजि, बधहु निधि दुग्दान ॥ करौ रे० ॥ २ ॥ निज
स्वप्नमें मगन होयकर, लगन विषय दो भान ॥ करौ रे० ॥
॥ ३ ॥ भागचन्द साधक हूँ साधो, साध्य रूपद अमलान
॥ करौ रे० ॥ ४ ॥

(७०) राग शीपचन्दी जोड़ी ।

जिन स्वपरहिताहित चीना, जीवते ही है मार्च जनी । टंक ।
जिन पुत्रधनी पैनातैजड, रूप निराला सीना । परतै विरच
आपसे राचे, सकल विभाव निहीना ॥ जिन० ॥ १ ॥
पुन्य पाप निधि बध उदयमें, अमृदित होत न दीना ।
मम्यरुदर्शन । ज्ञान चरन निज, भाव सुधारम भीना ॥
जिन० ॥ २ ॥ विषयचाह तजि निज चीरज मजि करत
पूर्वनिधि छाना । भागचन्द साधक हूँ साधत, साध्य
रूपद स्वाधीना ॥ जिन० ॥ ३ ॥

(५७)

महज अराध ममाप नाम तहाँ, चेतन सुमति खेलै
 होरी ॥ देह ॥ निनगुनचरनमिश्रित सुरमित, निर्मल कुटुम
 रम घोरी । ममता विचकारी अति प्यारी, भर जु चलायत
 चहुँ ओरा ॥ महज० ॥ १ ॥ शुभ मँवर सुअबोर आडवर,
 लायत भर भर कज जोरी । उडत गुलाल निर्जग निर्भर,
 दुखदायक भर श्रिति टोरी ॥ महज० ॥ २ ॥ परमानंद
 भृङ्गादिक धुनि, रिमल निगमाप घोरी । भागचंद हग-
 जान चरनमय, पगित अनुभव रगबोरी ॥ महज० ॥ ३ ॥

(५८)

सत्ता रगभूमिमें, नदत प्रदनटराय ॥ देह ॥ रत्नत्रय
 आभूषण मडित, गोभा अगम अथाय । महज सखा
 निगमादिक गुन, अतुल ममात्र अथाय ॥ सत्ता रग० ॥ १ ॥
 समता गीन मधुग्म गोलै, ध्यान भृदगचजाय । नदत निर्जरा
 नाड अनूपम, नृ पुर सर ल्याय ॥ सत्ता रग० ॥ २ ॥
 लय निनरूप मगनता लायत, नृत्य सुतान फराय । मयरम
 गीतालापन पुनि जो, दुर्लभ जगमह थाय ॥ सत्ता रग० ॥ ३ ॥
 भागचन्द आपहि रीकत तहाँ, परम भमाधि लगाय । तहाँ
 कृतकृत्य सु होत मोननिधि, अतुल इनामहि पाय ॥ सत्ता
 रग० ॥ ४ ॥

॥ १७ ॥ गीतगोविन्दगीत ।

तद्वद्वत्तु जने गीत दयी, तेरी शक्ति न हलकी व
 । गीतगोविन्दगीत रचना मोहे मय पुद्गलकी
 ॥ १७ ॥ अष्ट गुणात्म तेरी मूर्ति, मो केवलमें
 ॥ १७ ॥ तु स्वर० ॥ ७ ॥ लगी अनादि कालिमा तेरे,
 पुद्गल मोहन मलकी वे ॥ तु स्वर० ॥ ३ ॥ मोह नम
 भामत है मूर्ति, पर नस ज्यों जलकी वे ॥ तु स्वर० ॥ ४ ॥
 भागवन्द सो मिलत ज्ञानमा, स्मृति अगट मयलकी वे ॥
 तु स्वर० ॥ ५ ॥

ॐ इति ॐ

ॐ बुधजन विलास ॐ

(७७) गीतगोविन्दगीत ।

मैं दया आतमरामा ॥ मैं दया० ॥ टेक ॥ रूप फरम
 रस गधत न्याग, दरस-ज्ञान गुणधामा । नित्य निरजन
 जाके नार्हा, मोघ लोभ मद कामा ॥ मैं० ॥ १ ॥ भूष
 प्याम सुख दुख नहि जाके, नार्हा वन पुग गामा । नहि
 माहिय नहि चारर माह, नही तात नहि मामा ॥ मैं० ॥ २ ॥

भूलि अनादि थरी जग भटस्त, ले पुद्गलका जामा ।
 दुपन्न मगति विनगुरकीतै, मै पाया मुक्त ठामा ॥
 मं० ॥ ३ ॥

(९७) गग सांठ ।

हमको कट्ट मय ना रे, जान लियो सवार ॥ हमको०
 ॥ टेक ॥ जो निगोदमें सो ही मुक्तम, सो ही मोखमभार ।
 निश्चय भद फलू भी नार्ही, भेद गिनै सत्तार ॥ हमको०
 ॥ १ ॥ परगश हूँ आपा विमारिकै, राग दोषकी धार ।
 जीरत मरत अनादि कालतै, यो ही है उरभार ॥ हमको०
 ॥ २ ॥ जागरि जैम जाहि ममयम, जो होतन जा द्वार ।
 सो चनि है टरि है फलू नार्ही, करि लोनों निरधार ॥
 हमको० ॥ ३ ॥ अगनि जरावै पानी बोद, निहुरत मिलत
 अपार । मा पुद्गल रूपी मै बुधजन, मयको जाननहार ॥
 हमको० ॥ ४ ॥

ॐ श्रीपद्मप्रभमलधारि देव ॐ

महज्जनानमाप्राज्य मरैस्य शुद्धचिन्मयम् ।

ममात्मानमप्य ध्याया निरिच्छ्यो भगव्यदृष्ट ॥ ९ ॥

— जो स्वाभाविक ज्ञानका साम्राज्य है, संगी, जगत् ज्योतिस्वरूप है ऐसी मेरी आत्माओं जानकर उत्पन्न होता हूँ ॥ १ ॥

नित्यशुद्धचिदानन्द सपदामासुर परम् ।

निपटामिदमेवोच्चैरपट धेतये पदम् ॥ २ ॥

अर्थ—जो नित्य शुद्ध चिदानन्दमय है, सपदामी स्थान है, उत्कृष्ट है तथा निपात्तयोका स्थान नहीं है मैं ऐसे पदमा अच्छी तरह अनुभव करता हूँ ॥ २ ॥

आत्मध्यानादपरमगित धोरममारमूल,

ध्यानधेयप्रमुखमुत्तम कल्पनामात्ररम्यम् ।

उद्गा धीमान् सहजपरमानन्दपीयूषपूरे,

निर्मज्जन्त सहजपरमात्मानमेव प्रपेद ॥ ३ ॥

अर्थ—आत्मध्यानक अतिरिक्त सभी विचार धोर ममारके मूल हैं । ध्यान धेयका विकल्परूप जो तप है सो कहने मात्र ही सुतर है । ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष स्वाभा

रिफ परमानन्दमई अमृतके ममुद्रमें मग्न सहज एक परमा-
न्माही का अनुभव करते हैं ॥ ३ ॥

अहमात्मा सुखाकाक्षी म्यात्मानमजमच्युतम् ।

आत्मनैरात्मनि स्थित्वा भाग्यामि मुहुर्मुहुः ॥ ४ ॥

अर्थ—मैं आत्मा हूँ, निज सुखका चाहनेवाला हूँ अतः
मैं अपने ही अजन्म और अमर आत्माको अपने ही आत्मा
के द्वारा अपने आत्मामें ठहरकर भाग्यार भाता हूँ ॥ ४ ॥

मुत्तया जल्प मग्नयकर राक्षमाम्बन्तर च,

स्मृत्या नित्य समरसमय चिन्चमत्कारमेक ।

ज्ञानज्योति प्रकटितनिजाम्बन्तरागान्तरात्मा,

क्षीणे मोह किमपि परम तत्त्वमन्तर्ददर्श ॥ ५ ॥

अर्थ—ममारके भयको पैदा करनेवाले बाध और
आम्बन्तर सभी विकल्पोंको त्यागकर तथा नित्य समतारम
मई एक चेतन्यचमत्कारमात्र स्वरूपको स्मरण करके
ज्ञानज्योतिसे निजका आत्मा प्रकाशमान हो रहा है ऐसे
महात्माने मोह के छय होने पर अन्तरगमें किमी परम
अद्वितीय तत्त्वका दर्शन किया ॥ ५ ॥

ॐ ममयसारप्राभृत भाषा ॐ

(छन्द हरिगीता)

१ प्रवृत्त सः अनुपमगति, पाये हुए मन मिद्वकी,
 न ज्ञान स्नेहोलिखित, कहूँ समयप्राभृतकी अहो ॥१॥
 २ चारित्र्यदर्शनस्थिता, मममय निश्चय जानना,
 मित ममपुत्रलक प्रवेशों, परममय जीव जानना ॥२॥
 ३ एकत्वनिश्चयगत समय, सरस सुन्दर लोभमें ।
 उमसे घने बधनरथा, निरोविनी एरुतमें ॥३॥
 ४ हे सर सुत विंचित अनुभूत, भोगरंघनकी कथा ।
 परसे जुड़ा एरुतकी, उपलब्धि कैवल सुलभ ना ॥४॥
 ५ दशाउ एकत्रिभक्तकी, आत्मातने निर्व निमगसे ।
 दशाउ तो करना प्रेमाख, न छले ग्रहो स्पलना घने ॥५॥
 ६ नहि अप्रमत्त प्रमत्त नहीं, जो एक ज्ञायक भार है ।
 इम रीति शुद्ध कहाय अरु, जा ज्ञात वो तो वो ही है ॥६॥
 ७ चारित्र्य दर्शन ज्ञान भी, ज्योहार कहता ज्ञानी के ।
 चारित्र्य नहीं दर्शन नहीं, नहि ज्ञान ज्ञायक शुद्ध है ॥७॥
 ८ भाषा अनार्य विना न, ममकाना ज्यु शस्य अनार्यकी ।
 यवहार निन परमार्थका, उपद्रव होय अणस्य यो ॥८॥

उम आमसो युजम निता जे शूद्र केन उमसः ।
 अषिपार प्रकाशक मावक भूदान उमसो एते ॥१॥
 भुजवान मर ज्ञाने नु जिन प्रकाशक मावक ॥२॥
 मर ज्ञाने मा जाना हा है, धृष्टकना उमसो एते ॥३॥
 कपवहाग्नय कपुकार मणि गुह्य कप ॥४॥
 भूतार्थ आधिल अतन, मणि निरार एते ॥५॥
 तव पाम जो मर उमस, मरुत उमस ॥६॥
 उमसो अतनमरुत, मरुत म उमस ॥७॥
 भूतार्थस ज्ञान अतन होव मरुत कप मणि ॥८॥
 आतन मरुत कप मणि, मणि कप मरुत उमस ॥९॥
 अतनमरुत अतन कप, मणि मरुत अतन ॥१०॥
 अतनमरुत अतनमरुत मणि मरुत ॥११॥
 मणि मरुत मणि मरुत, मणि मरुत मणि ॥१२॥
 मणि मरुत मणि मरुत, मणि मरुत मणि ॥१३॥
 मणि मरुत मणि मरुत, मणि मरुत मणि ॥१४॥
 मणि मरुत मणि मरुत, मणि मरुत मणि ॥१५॥
 मणि मरुत मणि मरुत, मणि मरुत मणि ॥१६॥
 मणि मरुत मणि मरुत, मणि मरुत मणि ॥१७॥
 मणि मरुत मणि मरुत, मणि मरुत मणि ॥१८॥
 मणि मरुत मणि मरुत, मणि मरुत मणि ॥१९॥
 मणि मरुत मणि मरुत, मणि मरुत मणि ॥२०॥

तोरुम दम् जु "म" यर "मै" म कर्म नोरुम है ।
 यह धुंरुं लरार जायसी, यनानी नरतर जो रह ॥१९॥
 म य "म" य म, मै है इनरा अरु ये है मेरे ।
 ना अरु ठ पर "म" मिथ, मरित अरु अचिन वे ॥२०॥
 मेरा ना यह वा पय म, म इमीरा गतकान में ।
 म होयगा मरा अरु म इमरा हूंगा भारि में ॥२१॥
 अय गात्र गारुम निरुप्य एमा, मूढजीव हि आचरे ।
 श्रुतार्थ जाननहार जानी, ए निरुप्य नहीं करे ॥२२॥
 अनाम मोहित बुद्धि जो, उरुमान सयुत जीव है ।
 ये उरु गात्र अरु, पुद्गलद्रव्य मेरा वो कह ॥२३॥
 मरुन ज्ञानरिषे सदा, उपयोग लक्षण जीव है ।
 जो रंरा पुद्गल हो सरु जो, तू कह मेरा अर ॥२४॥
 जो जीव पुद्गल होय, पुद्गल प्राप्त हो जीवतरु ।
 त तय हा एमा रह सके, "है मेरा" पुद्गल द्रव्य को ॥२५॥
 जो जीव होय न दह तो, आचाय ना तीर्थेशकी ।
 मिथ्या बने स्तयना समी, मो एकना जीव देहकी ॥२६॥
 जीव दह दोनों गरु है यह वचन है व्यग्रहाररा ।
 निश्चयारिष तो जीव देह, कनापि एक पदार्थ ना ॥२७॥
 जीवसे जुग पुद्गलमयो, इम दहसी स्तयना करी ।
 माने मुनी जो केवली, उदन हुया स्तयना हुई ॥२८॥

निश्चयविषे नाही याग्य ये, नहिं देह गुण केरली हि क ।
 जो केरली गुणो स्तरे, परमार्थ केरली गो स्तरे ॥२९॥
 रे ग्राम र्जन करनसे, भूपाल र्जन हो न ज्या ।
 त्यों देह गुणके स्तरनसे, नहिं केरली गुण स्तरन हो ॥३०॥
 परइन्द्रोचय नान समार रु, अधिक जाने आत्मो ।
 निश्चयविषे स्थित माधुजन, भाँपे चित्तन्द्रिय उन्हाओ ॥३१॥
 रर मोहनय ज्ञान समार रु, अधिक जाने आत्मा ।
 परमार्थ विज्ञायक पुष्प ने, उन द्वि जित मोही कहा ॥३२॥
 जित मोह माधु पुष्परा जय, मोह नय हो जाय हैं ।
 परमार्थ विज्ञायक पुष्प, चीणमोह तर उनओ वहे ॥३३॥
 मय भाव पर ही ज्ञान, प्रत्याख्यान भाओका करे ।
 इससे नियमसे जानना की, नान प्रत्याख्यान है ॥३४॥
 ये और का हैं जानकर, परद्रव्यओ को नर तजे ।
 त्या और के हैं जानकर, परभाव ज्ञानी परित्यजे ॥३५॥
 कुछ मोह गो मेरा नहीं, उपयोग केरल एक मैं ।
 इस ज्ञानको ज्ञायक समयके, मोह निर्ममता कह ॥३६॥
 धमादि ये मेरे नहीं, उपयोग करल एक हू ।
 इस ज्ञानओ ज्ञायक समयके, धर्म निर्ममता कहे ॥३७॥
 न एक शुद्ध नरा अरूपी, ज्ञान दग हैं यथार्थ से ।
 कुछ अन्य गो मेरा तनिक, परमाणुमात्र नहीं थरे ॥३८॥

(जागचीत अधिकारम पूवरग समाप्त)

जीवाजीव अधिकार

- १०११ ३ अना जो, पर आत्मगदी जीव है ।
 → १०१२ ४ आत्मान ही जीव, या हि गो कथनी करे ॥३९॥
 → १०१३ ५ अध्ययमानमें, अनुभाग तीक्ष्ण मट जो ।
 → १०१४ ६ माने आत्मा, अरु अन्य को नोर्मको ॥४०॥
 → १०१५ ७ अन्य माने आत्मा वम, कर्म के ही उदय मो ।
 → १०१६ ८ तीव्र भू गुणों महित, कर्मोहि के अनुभागरी ॥४१॥
 → १०१७ ९ को कर्म आत्मा, उभय मिनर जीवरी आशा धरे ।
 → १०१८ १० को कर्मके मयोगसे, अभिलाष आत्माभी करे ॥४२॥
 → १०१९ ११ दुर्बुद्धि यो ही और बहुविध आत्मा परमो, कह ।
 → १०२० १२ वे सर्व नहिं परमार्थगदी, वेहि निश्चयनिद कह ॥४३॥
 → १०२१ १३ पुद्गलद्रव्य परिष्ठापसे, उपजे हुए मर भाव ये ।
 → १०२२ १४ सन करला जिन भाषिया, किम रीत जीव कहो उन्हें ॥४४॥
 → १०२३ १५ रे कम अष्ट प्रकारका, जिन सर्व पुद्गलमय कहे ।
 → १०२४ १६ परिपाकमें विम कर्मका फल, दुख नाम प्रमिद्ध है ॥४५॥
 → १०२५ १७ व्यवहार ये दिखला दिया जिनदेवके उपदेशमें ।
 → १०२६ १८ य सर्व अध्ययमान आदिक, भावमो जैह जीव कहे ॥४६॥
 → १०२७ १९ निर्गमन इतीनृपका ह्वा निर्देश मन्य समुह में ।
 → १०२८ २० व्यवहारसे कहलाय यह, पर भूष इसमें एक है ॥४७॥

त्यों मर अध्यात्मान आदिक, अन्य भाग जु जीव है ।
 शास्त्रन किया व्यवहार, पर वहा जीव निश्चय एरु है ॥४८॥
 जीव चेतना गुण, शब्द रस रूप गंध व्यक्ति विहीन है ।
 निदिष्ट नहीं सस्थान उमका, ग्रहण नहीं हैलिंग से ॥४९॥
 नहीं वर्ण जीवके गंध नहीं, नहीं स्पर्श रस जीवके नहीं ।
 नहीं रूप अर सहनन नहीं, सस्थान नहीं तन भी नहीं ॥५०॥
 नहीं राग जीवक, द्वेष नहीं, अरु मोह जीवके है नहीं ।
 प्रत्यय नहीं नहीं कर्म, अरु नो कर्म भी जीवके नहीं ॥५१॥
 नहीं वर्ग जीवके, वर्गणा नहीं, कर्मस्पर्द्धक है नहीं ।
 अध्यात्मस्थान न जीवक, अनुभाग स्थान भी हैं नहीं ॥५२॥
 जीवक नहीं कुछ योगस्थान र, बधस्थान भी है नहीं ।
 नहीं उदयस्थान ही जीवके, अरु स्थान मार्गणा के नहीं ॥५३॥
 स्थितिरध स्थान न जीवके मक्लेश स्थान भी हैं नहीं ।
 जीवके त्रिशुद्धि स्थान, मयमलन्वि स्थान भी हैं नहीं ॥५४॥
 नहीं जीवस्थान भी जीवके, गुणस्थान भी जीवके नहीं ।
 ये भव ही पुद्गल द्रव्यके, पणिणाम है जानो यही ॥५५॥
 वर्णादि गुणस्थानात भाग जु, जीवके व्यवहारसे ।
 पर कोई भी ये भाग नहीं ह, जीवके निश्चयनिष ॥५६॥
 इन भागसे सगंध जीवका, क्षीर जलवत् जानना ।
 उपयोग गुणसे अधिक, तिससे भाग कोई न जीवका ॥५७॥

मोहन करमके उदयसे, गुणम्वान जो ये रण्ये ।

चे कपो बने आत्मा, निरनर जो अचेतन जिन रहे ॥६८॥

पदला जीवानायाधिकार पूर्ण हुआ ।

अथ कर्तृकृमाधिकार

र आरम आश्रयता जहाँ तर, भेद जीव जाने नहीं ।

मोधादिमें स्थिति होय है, अज्ञानी ऐसे जीवका ॥६९॥

जीव वर्तता मोधादिम, तम रम सचय होय है ।

मर्मज्ञने निश्चय कहा, यों रघ होता जीवके ॥७०॥

ये जीव ज्यों ही आश्रयोंका, त्याही अपनी आत्मका ।

जाने विशेषातर तम ही, नवन नहीं उमरो कहा ॥७१॥

अशुचिपना विपरीतता, ये आश्रयोंका जानके ।

अरु दुःखकारण जानके, इनसे निवर्तन जीव कर ॥७२॥

मैं एरु शुद्ध ममत्व हान रु, ज्ञान दर्शन पूर्ण हूँ ।

इममें गह स्थित लीन इममें, जीव ये मय क्षय रहें ॥७३॥

ये सर्व जीव निरुद्ध अध्रुव शरणहीन अनित्य है ।

ये दुःख दुःखफल जानके, इनसे निवर्तन जीव करे ॥७४॥

जो कर्मका परिणाम, अरु नो कर्मका परिणाम है ।

मो नहीं करे जो मात्र जाने, वो हि आमा ज्ञानी है ॥७५॥

१८०॥१ पद्व २५ नद, ज्ञानी पुरुष जाना करे ।
 १८००० पयायो न ग्रणमें, नहीं ग्रह नहीं उपजे ॥७६॥
 १८००० १८००० पयायो सब, ज्ञानी पुरुष जाना करे ।
 १८००० १८००० पयायो न ग्रणमें, नहीं ग्रह नहीं उपजे ॥७७॥
 १८००० १८००० पयायो जन जनता, ज्ञानी जन जाना करे ।
 १८००० १८००० पयायो न ग्रणमें, नहीं ग्रह नहीं उपजे ॥७८॥
 १८००० १८००० पयायो न ग्रणमें, नहीं ग्रह नहीं उपजे ॥७९॥
 १८००० १८००० पयायो न ग्रणमें, नहीं ग्रह नहीं उपजे ॥८०॥
 १८००० १८००० पयायो न ग्रणमें, नहीं ग्रह नहीं उपजे ॥८१॥
 १८००० १८००० पयायो न ग्रणमें, नहीं ग्रह नहीं उपजे ॥८२॥
 १८००० १८००० पयायो न ग्रणमें, नहीं ग्रह नहीं उपजे ॥८३॥
 १८००० १८००० पयायो न ग्रणमें, नहीं ग्रह नहीं उपजे ॥८४॥
 १८००० १८००० पयायो न ग्रणमें, नहीं ग्रह नहीं उपजे ॥८५॥
 १८००० १८००० पयायो न ग्रणमें, नहीं ग्रह नहीं उपजे ॥८६॥
 १८००० १८००० पयायो न ग्रणमें, नहीं ग्रह नहीं उपजे ॥८७॥
 १८००० १८००० पयायो न ग्रणमें, नहीं ग्रह नहीं उपजे ॥८८॥
 १८००० १८००० पयायो न ग्रणमें, नहीं ग्रह नहीं उपजे ॥८९॥
 १८००० १८००० पयायो न ग्रणमें, नहीं ग्रह नहीं उपजे ॥९०॥

जीवभाय पुद्गल भाय दोनों भायको आत्मा करे ।
 इससे हि मिथ्यादर्श, ऐसे द्विक्रियावादी हुवे ॥ ८६ ॥
 मिथ्यात्व जीव अनीय दौर्बिध, उभयविध अज्ञान है ।
 अप्रिमण योग रु मोह अरु क्रोधादि उभय प्रकार है ॥ ८७ ॥
 मिथ्यात्व अरु अज्ञान आदि अजीय, पुद्गल कर्म है ।
 अज्ञान अरु अप्रिमण अरु मिथ्यात्व जीव, उपयोग हैं ॥ ८८ ॥
 हैं मोहयुत उपयोगका परिणाम तीन अनादिका ।
 मिथ्यात्व अरु अज्ञान अप्रिमणमात्र ये तीन जानना ॥ ८९ ॥
 इससे हि है उपयोग त्रयविध, शुद्ध निर्मल भाव जो ।
 जो भाय कुल भी वह करे, उम भावका कर्ता बने ॥ ९० ॥
 जो भाय जीव करे स्वयं, उम भावका कर्ता बने ।
 उम ही समय पुद्गल स्वयं, कर्मत्व रूपहि परिणमे ॥ ९१ ॥
 परको करे निजरूप अरु, निज आत्मको भी पर करे ।
 अज्ञानमय ये जीव ऐसा, कर्मका कारक बने ॥ ९२ ॥
 परको नहीं निजरूप अरु, निज आत्मको नहीं पर करे ।
 यह ज्ञानमय आत्मा, अकारक कर्मका ऐसे बने ॥ ९३ ॥
 “मैं क्रोध” आत्मविरुद्ध यह, उपयोग त्रयविध आचरे ।
 तब जीव उम उपयोगरूप, जीवभायका कर्ता बने ॥ ९४ ॥
 “मैं धर्म” आदि विकल्प यह, उपयोग त्रयविध आचरे ।
 तब जीव उस उपयोगरूप, जीवभायका कर्ता बने ॥ ९५ ॥

१६ ननुद्वि जाय यो, परद्रव्यमो निजरूप करे ।
 १७ भाग्यमो निजरूपमो अज्ञानसे पररूप करे ॥९६॥
 १८ मनुष्य परमाद्योऽपि, कर्त्ता कह इम आत्ममो ।
 १९ तन्म जेमहा होय, सो छाडे मरुल कर्त्तव्यमो ॥९७॥
 २० घटा यथापि नस्तुष्ट, समाप्ति अरु मय इन्द्रिये ।
 २१ तन्म जेमहा होय, सो छाडे मरुल कर्त्तव्यमो ॥९८॥
 २२ परद्रव्यमो जाय जो करे तो जरुल यो तन्मय मने ।
 २३ परमा नर्ही तन्मय दृष्टा इमसे न कर्त्ता जीव है ॥९९॥
 २४ जीव नहि पर घट पट नर्ही, नहि शेषद्रव्यों जीव करे ।
 २५ उपयागयोग निमित्तकर्त्ता, जीव-तत्कर्त्ता मने ॥१००॥
 २६ ज्ञानाकरण आदिक समी, पुद्गल दरम परिणाम हैं ।
 २७ करता नर्ही आत्मा उन्ह, जो जानता यो ज्ञानि है ॥१०१॥
 २८ जो भाव जीव करे शुभाशुभ, उम हि, का रता मने ।
 २९ उमहा मने यो कर्म, आत्मा उस हि का वेत्तु मने ॥१०२॥
 ३० जो द्रव्य जो गुण द्रव्य में, परद्रव्यरूप न मने ।
 ३१ अनमद्वेषा विसर्गोति यह, परद्रव्य प्रणमावे अरे ॥१०३॥
 ३२ आत्मा करे नहि द्रव्य गुण, पुद्गलमयी कर्मोविष ।
 ३३ इन उभयको उनमें न कर्त्ता, क्यों हि तत्कर्त्ता मने ॥१०४॥
 ३४ निव हतुभूत हुआ अरे, परिणाम दंग जु बधका ।
 ३५ उपचारमात्र कहाय की, यह कर्म आत्मा ने किया ॥१०५॥

योद्धा करें जहाँ युद्ध, वहाँ यह भूपकृत जनगण कहें ।
 त्यों जीवने ज्ञानासरण आदिक म्रिये व्यवहार से ॥१०६॥
 उपजावता प्रणमायता भद्रता अवरु बाधे करे ।
 पुद्गलश्वरो आत्मा, व्यवहारनय वक्तव्य है ॥१०७॥
 गुणदोष उत्पादक कहा, ज्यों भूपको व्यवहार से ।
 त्यों द्रव्यगुण उत्पन्न कृता, त्रि कहा व्यवहारसे ॥१०८॥
 मामान्य प्रत्यय चार, निश्चय बधक कर्ता रह ।
 मिथ्यात्व अरु अनिरमण, योग कषाय ये ही जानने ॥१०९॥
 फिर उन्निहिका दशा दिया, यह भेद तेर प्रकारका ।
 मिथ्यात्व गुणध्यानादिले, जो चरमभेद मयोगका ॥११०॥
 पुद्गल करमरु उदयसे, उत्पन्न इमसे अजीव ये ।
 वे जो करें रमों मने, भोक्ता मि नहि निरद्रव्य है ॥१११॥
 परमार्थसे 'गुण' नामरु, प्रत्यय करें इन कर्मरों ।
 तिमसे अकृता जीव हैं, गुणवान करते कर्मरों ॥११२॥
 उपयोग ज्योंहि अनन्य निररा, क्रोध त्योही जीवका ।
 तो दोष आये जीव त्योंहि अजीवके एकत्वका ॥११३॥
 यों जगतमें जो जीव रेहि अजीव भी निश्चय हुये ।
 नो कर्म, प्रत्यय, कर्म के एतत्वमें भी दोष ये ॥११४॥
 जो क्रोध यो है अन्न, त्रि उपयोग आत्मरु अन्य है ।
 तो क्रोधरु नो कर्म प्रत्यय कर्म भी मर अन्य हैं ॥११५॥

- १६ यदि यह, यह नहिं कर्मभागों परिणमे ।
 १७ द्रव्य भी, परिणमनहीन बने अरे ॥११६॥
 १८ आर्माणकी, नहिं कर्मभागों परिणमे ।
 १९ अथवा अथवा मारयमत निश्चित हुवे ॥११७॥
 २० परिणमावे जीव पुद्गल द्रव्यको ।
 २१ उमको परिणमावे, स्वयं नहिं परिणमत जो ॥११८॥
 २२ पुद्गलद्रव्य अरु, जो कर्म भागों परिणमे ।
 २३ निर परिणमावे कर्मका, कर्मत्वमें मिथ्या बने ॥११९॥
 २४ पुद्गल दरन जो कर्म परिणत, नियमसे कर्महि बने ।
 २५ ज्ञानावरण इत्यादि परिणत बोहि तुम जानो उसे ॥१२०॥
 २६ नहिं यद्वकर्म, स्वयं नहीं जो क्रोधभागों परिणमे ।
 २७ तो जीव यह तुम्ह मतविष, परिणमनहीन बने अरे ॥१२१॥
 २८ क्रोधादि भागों जो स्वयं नहिं जीव आप हि परिणमे ।
 २९ सत्कारका हि अभाज अथवा मारयमत निश्चित हुवे ॥१२२॥
 ३० जो क्रोध पुद्गलकर्म निरको, परिणमावे क्रोधमें ।
 ३१ क्यों क्रोध उमको परिणमावे जो स्वयं नहिं परिणमे ॥१२३॥
 ३२ अथवा स्वयं जिन क्रोधभागों परिणमे तुम्ह बुद्धिसे ।
 ३३ तो क्रोध जिवको परिणमावे क्रोधमें मिथ्या बने ॥१२४॥
 ३४ क्रोधोपयोगी क्रोध जिन, मानोपयोगी मान है ।
 ३५ मायोपयुत माया अवरु लोभोपयुत लोभहि बने ॥१२५॥

निम भावको आत्मा करे, कर्त्ता रने उम कर्मका ।
 जो ज्ञानमय है ज्ञानिना, अज्ञानमय अज्ञानिका ॥१२६॥
 अज्ञानमय अज्ञानिना, जिससे करे जो कर्म को ।
 पर ज्ञानमय है ज्ञानिका, निमसे करे नहि कर्म जो ॥१२७॥
 ज्यों ज्ञानमय को भावमेंसे जान भावहि उपजते ।
 या नियत ज्ञानी जीवके मय भाव ज्ञानमयी बने ॥१२८॥
 अज्ञानमय को भावसे, अज्ञान भावहि उपजे ।
 इम हतुसे अज्ञानिके, अज्ञानमय भावहि बने ॥१२९॥
 ज्यों रनकमय जो भावमेंसे, कुण्डलादिक उपजे ।
 पर लोहमय को भावसे, कट्टादि भावो जीवने ॥१३०॥
 त्यों भाव बहुविध उपजे, अज्ञानमय अज्ञानिके ।
 पर ज्ञानिके तो सर्व भावहि, ज्ञानमय निश्चयने ॥१३१॥
 जो तत्त्वका अज्ञान निरक, उदय जो अज्ञानका ।
 अप्रज्ञात तत्त्वकी जीवके जो, उदय जो मिथ्यात्वका ॥१३२॥
 निरका बुझावित भाव है, वो उदयजनमयमहि का ।
 जिसका क्लृप्त उपयोग जो, वो उदय ज्ञान कषायका ॥१३३॥
 शुभ अशुभ वर्तन या विवर्तन रूप जो चेष्टा हि का ।
 उन्माद वस्तु जीवके वो उदय जानो योगका ॥१३४॥
 जब होय दृष्ट भूत ये तत्र स्थिति जो कार्माणके ।
 वे अष्टविध ज्ञानारण इत्यादि भावों परिणमें ॥१३५॥

कार्मण्यरमणाय ते जय, वध पावें जीवमें ।
 याना हि निर परिणाम भागोंका तभी हतु बने ॥१३६॥
 जो तर्जय परिणाम, निरकें साथ पुद्गलका बने ।
 तो गीर अरु पुद्गल उभय ही, र्मपन पावें अरे ॥१३७॥
 २६ कर्मभागो परिणमन है, एक पुद्गलद्रव्यके ।
 जिर नाय दृष्टसे अलग, तर कर्मके परिणाम हैं ॥१३८॥
 जिके फलके साथ ही, जो भाग रागादिर बने ।
 जो कर्म अरु जिर उभय ही, रागादिपन पावें अरे ॥१३९॥
 पर परिणमन रागादिभ्य तो, होत है जिर एकके ।
 इससे हि कर्मोदय निमित्तसे, अलग जिर परिणाम है ॥१४०॥
 है कर्म निरम बद्रस्पष्ट, जु कथन यह व्यवहारका ।
 पर बद्रस्पष्ट न कर्म जिरमें, कथन है नय शुद्धका ॥१४१॥
 है कर्म जिरमें बद्र या अनबद्र ये नयपक्ष है ।
 परपक्षमे अतिक्रान्त भाषित, वो समयकामार है ॥१४२॥
 नपक्ष कथन जाने हि, केवल समयमें प्रतिबद्ध जो ।
 नयपक्ष कुछ भी नहिं ग्रहे, नयपक्षसे परिहीन वो ॥१४३॥
 सम्यक्त्व और सुज्ञानकी, निम एकको सजा मिले ।
 नयपक्ष सकल विहीन भाषित, वो समयकामार है ॥१४४॥

३ अथ पुण्यपापाधिकार .

है कर्म अशुभ कुशील अरु जानो सुशिल शुभकर्मको ।
 स्मिरीत होय सुशील, जो समारमे दागिल करे ॥१४५॥
 ज्यों लोहरी त्यों कनकरी, जजीर जरुं पुरूपको ।
 हम रीतसे शुभ या अशुभकरुन, कर्म पाधे जीवको ॥१४६॥
 हमसे करो नहिं राग वा समर्ग उमय कुशीलका ।
 हम कुशिलके ममर्ग से है, नाश तुम्ह स्वातन्त्र्यका ॥१४७॥
 जिन भौति कोई पुरूप, कुत्सितशील जनको जानके ।
 समर्ग उमके माध त्योंही, राग करना परितजे ॥१४८॥
 यों कर्मप्रकृती शील और स्वभाव कुत्सित जानके ।
 निजभावमें गत राग, अरु ममर्ग उमका परिहरे ॥१४९॥
 चित रागी पाधे कर्मको, वैराग्यगत मुक्तो नहे ।
 ये जिन प्रभू उपद्रव है नहिं रक्त हो तु कर्मसे ॥१५०॥
 परमार्थ है निश्चय, ममय, शुध, वैगली, मुनि, प्राणि है ।
 तिष्ठे जु उमहि स्वभाव मुनिप्र, मोचकी प्राप्ती करे ॥१५१॥
 परमार्थमें नहिं विष्टकर, जो तप करे जतनो धरें ।
 तप सर्व उमका बाल अरु, जत बाल निनरने कह ॥१५२॥
 जतनियमको धारें भले, तपशीलको भी आचरें ।
 परमार्थसे जो बाध नो, निराणप्राप्ती नहिं कर ॥१५३॥

परमार्थराशि चीरगण, जानें न हत मोक्षका ।
 अतानसे व पुण्य इच्छ, हत जो ममारका ॥१५४॥
 जीवादिना अद्वान ममस्ति, धान उमरा ज्ञान है ।
 रागादिना गति है, अरु येहि मुक्ती पथ है ॥१५५॥
 विद्वान् जन अतार्य तज, व्याहारमें वर्तन करे ।
 पर रमनाश विधानतो, परमार्थ आश्रित सतके ॥१५६॥
 मल मिलन लिप्त जु नाश पावे, श्वेतपन ज्यों वस्त्रका ।
 मिथ्यात्मलके लेपसे, मय्यक्त त्यों ही जानना ॥१५७॥
 मल मिलन लिप्त जु नाश पावे, श्वेतपन ज्यों वस्त्रका ।
 अतानमलके लेपसे, मद्वान त्यों ही जानना ॥१५८॥
 मल मिलन लिप्त जु नाश पावे, श्वेतपन ज्यों वस्त्रका ।
 चाग्रि पावे नाश, लिप्त कषायमलसे जानना ॥१५९॥
 यह मर्मज्ञानी दर्शि श्री, निरुद्ध रन आन्ध्रादसे ।
 ससारशक्त, न जानता वो मर्मको मय गीतसे ॥१६०॥
 मय्यक्तप्रतिबध्न करम, मिथ्यात्न जिनवरने कहा ।
 उमके उदयसे जीव मिथ्यात्नी बने यह जानना ॥१६१॥
 त्या नानप्रतिबध्न करम, अतान जिनवरने कहा ।
 उमके उदयसे जीव अतानी बने यह जानना ॥१६२॥
 चारित्रप्रतिबध्न करम, जिन ने कषायोंको कहा ।
 उमके उदयसे जीव चारिहीन हो यह जानना ॥१६३॥

४ अथ आस्रयाधिकार

मिथ्यात्वं अस्मिन् अरु कषाय, ग्लेह मज्ज असत्तु है ।
 ये त्रिविध भेद जु जीवम, निरुके अनन्य हि भाव हैं ॥१६४॥
 अरु वे हि ज्ञानावरन आदिक, कर्मरु कारण वन ।
 उनका भि कारण जिय वने, जो रागद्वेषादिक करे १६५॥
 मद्दृष्टिको आश्रय नहीं, नहि बंध, आश्रयरोध है ।
 नहि बाधता जाने हि पूर्वनिरुद्ध जो सत्तामिष ॥१६६॥
 रागादियुत जो भाव जियवृत्त उसहि को उधरु छदा ।
 रागादिसे प्रसिमुक्त ज्ञायक मात्र, बधक नहिं रहा ॥१६७॥
 फल पक्ष तिरता, वृन्तमह सख फिर पाता नहीं ।
 त्यों कर्ममार तिरा, पुन जियमें उदय पाता नहीं ॥१६८॥
 जो मर्य पूर्वनिरुद्ध प्रत्यय, वर्तते हैं ज्ञानिके ।
 वे पृथ्विपिंड समान हैं, फार्मणशरीर निबद्ध हैं ॥१६९॥
 चउविनाश्रय समय समथ जु, ज्ञानदर्शन गुणदिसे ।
 बहू भेद नाथे कर्म इससे ज्ञानि बधक नाहिं है ॥१७०॥
 जो ज्ञानगुणभी जयननाम, वर्तता गुण ज्ञानका ।
 फिर फिर प्रणमता अन्यरूप जु, उमहिसे उधक कहा ॥१७१॥
 चारित्र दर्शन ज्ञान तोन, जघन्य- भाव जु परिणमे ।
 उमसे हि ज्ञानी त्रिविध पुद्गलकर्मसे बधात है ॥१७२॥

१) पाँ पृथनिबद्ध प्रत्यय, वर्तते मद्दृष्टिके ।
 २) गगद पाशम्य वपन, कमभाजोंसे करे ॥१७३॥
 ३) गगद व निम्पमोग्य हि, गालिमा ज्यों पुत्पकी ।
 ४) गगद वाने ये हि बाधे, यौगना ज्यों पुत्पकी ॥१७४॥
 ५) गगद उपभोग्य जिम मिघ होय उम मिघ गधने ।
 ६) गगद इत्यादि रम जु सप्त अष्ट प्रसार के ॥१७५॥
 ७) गगद मन्पक्त्रमपुत, जीव अननधक कह ।
 ८) गगद भाव अभाजमें, प्रत्यय नहीं वगड़ कह ॥१७६॥
 ९) गगद रागद्वेष न मोह ये, आश्रव नहीं मद्दृष्टिके ।
 १०) गगद हि आश्रवभाव धिन, प्रत्यय नहीं हतु रने ॥१७७॥
 ११) गगद चतुर्गिध कर्म अष्ट प्रकारका कारण कहो ।
 १२) गगद हि रागादिक कडा, रागादि नहि रहा वधना ॥१७८॥
 १३) गगद ग्रहित आहार ज्यों, उदराग्निके सयोगसे ।
 १४) गगद मास, वमा श्रु, रुविरादि भाजों परिणमे ॥१७९॥
 १५) गगद ज्ञानिके भी पूजाफलनिबद्ध जो प्रत्यय रहे ।
 १६) गगद बाधे कर्म, जो जिन शुद्धनयपरिष्पुत बने ॥१८०॥

ॐ आत्मव अधिकार पूरा हुआ ॐ

५ अथ सवराधिकार

उपयोगमें उपयोग, को उपयोग नहि क्रोधादि सं ।
 है क्रोध क्रोधविषै हि निश्चय, क्रोध नहि उपयोगमें ॥१८१॥

उपयोग है नहि अष्टविध, कर्मों अरु नो कर्ममें ।
 ये र्म अरु नो र्म भी कुछ है नहीं उपयोगमें ॥१८२॥
 ऐसा अविपस्ति ज्ञान जर ही प्रगटता है जीवक ।
 तर अत्य नहि कुछ भार यह उपयोग शुद्धात्मा कर ॥१८३॥
 ज्यों अप्रित्त सूर्य भी, निर्जम्बर्णभाव नहीं तने ।
 त्यों कर्म उदय प्रतप्त भी, ज्ञानी न आनिपना तने ॥१८४॥
 निरज्ञानि जाने वेदि, अरु अज्ञानि राग हि त्रिव गिनै ।
 आत्मस्वभाव अज्ञान जो, अज्ञानतम आच्छादसे ॥१८५॥
 जो शुद्ध जाने आत्मको, वो शुद्ध आत्म हि प्राप्त हो ।
 अनशुद्ध जाने आत्मको, अनशुद्ध आत्म हि प्राप्त हो ॥१८६॥
 शुभ अशुभसे जो रोककर निज आत्मसे आमा हि स ।
 दर्शन अरु ज्ञान हि ठहर, परदम्बच्छा परिहर ॥१८७॥
 जो मर्मान्तरविमुक्त ध्यावे, आत्मस आमा हि को ।
 नहि र्म अरु नो कर्म, चेतक चत्ता एस्त्व को ॥१८८॥
 यह आत्मध्याता, ज्ञानदर्शनमय अन्यमयी हुआ ।
 कम अल्पज्ञान जु कर्मस परिमोच पाव आत्मका ॥१८९॥
 रागादिके हेतु कहे, सत्त अश्वत्थमानको ।
 मिथ्यान्ता अरु अज्ञान, अतिव्याप्त्यो ही योगको ॥१९०॥
 कारण अमान जरर आत्मागव ज्ञानीको बने ।
 आत्मरमान अमानमें, नहीं ईश्वर आना बने ॥१९१॥

मे, नोर्ममा रोधन बने ।

५, नमार सगेधन बने ॥१९२॥

१ पर अधिकार पूरा हुआ कि

अ १ निर्जराधिकार

१११ द्रव्यमा, उपभोग इन्द्रिममृहसे ।

कर इन्द्रिष्टि पर मय, निर्जरा कारण बने ॥१९३॥

११२ एक उपभोग निश्चय, दुःख या सुख होय है ।

न उदित सुख दुःख भोगता, फिर निर्जरा हो जाय है ॥१९४॥

ज्यों जहरके उपभोगसे भी, वृक्षजन मरता नहीं ।

त्यों उदयकर्म जु भोगता भी, ज्ञानिजन बँधता नहीं ॥१९५॥

ज्यों अरतिभाय जु मद्य पीकर मत्तजन बनता नहीं ।

द्रव्योपभोगविष अरत, ज्ञानी पुरुष बँधता नहीं ॥१९६॥

सेता हुआ नहि सेवता, नहि सेवता सेवर बने ।

प्रकृत्यतनी चेष्टा कर, अरु प्राप्तरण जा नहि हुवे ॥१९७॥

कर्मों हि क जु अनेक, उदय विपाक जिनरने कह ।

ये मुक्त स्वभाव जु हैं नहीं, मैं एरु ज्ञायकभाव हैं ॥१९८॥

पुद्गलस्वरूप रागरा हि, विपाकर है उदय ये ।

ये है नहीं मुक्तभाव, निश्चय एक ज्ञायक भाव हैं ॥१९९॥

सद्द्रष्टि इमरित आत्मको, ज्ञायक स्वभाव हि जानता ।

अरु उदय कर्मविपाकका वह, तत्तद्भाषक छोडता ॥२००॥

- अणुमात्र भी रागादिका, मन्मात्र है जिस जीवको ।
 वो मर्ग आगमधर भले ही, जानता नहि आत्मको ॥२०१॥
- नहि जानता जहँ आत्मको, अन्यात्म भी नहि जानता ।
 वो क्योंहि होय सुदृष्टि जो, जिव अजिउको नहि जानता ॥२०२॥
- निगमे अपद्भुत द्रव्यभावरु, छोड़ ग्रह तु यथार्थमे ।
 धिर, नियत, एक हि भाव यह, उपलभ्य जो हि स्वभावासे ॥२०३॥
- मति, भुती, अग्नी, मन, कवल मगहि एक हि पद जु है ।
 वो ज्ञानपद परमार्थ है, जो पाप निर मुक्ती लह ॥२०४॥
- रे ज्ञानगुणसे रहित बहुजन, पद नहीं यह पा गके ।
 तू कर ग्रहण पर नियत ये, जो कर्ममोक्षच्छा तुमे ॥२०५॥
- इसमें सदा रतिवत मन, इसमें सदा मतुष्ट रे ।
 इससे हि मन तू ठम, उत्तम मौख्य हो जिससे तुमे ॥२०६॥
- परद्रव्य यह शुभ द्रव्य, यों तो कौन घानीजन कह ।
 निज आत्मको निजका परिग्रह, जानता जो नियममे ॥२०७॥
- परिग्रह कभी भेग बने, तो मैं अजीउ बनूँ थरे ।
 मैं नियमसे छाता हि, इससे नहि परिग्रह शुभ बने ॥२०८॥
- छेपाय या भेदाय, को लें जाय, नष्ट बनो भले ।
 या अन्य को गति जाय, परपरिग्रह न मेरा है थरे ॥२०९॥
- अनिच्छन कहा अपरिग्रही, नहि पुण्य इच्छा ज्ञानिक ।
 इससे न परिग्रहि पुण्यका, वो पुण्यका ज्ञायक रह ॥२१०॥

१. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ।
 २. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ॥२११॥
 ३. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ।
 ४. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ॥२१२॥
 ५. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ।
 ६. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ॥२१३॥
 ७. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ।
 ८. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ॥२१४॥
 ९. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ।
 १०. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ॥२१५॥
 ११. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ।
 १२. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ॥२१६॥
 १३. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ।
 १४. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ॥२१७॥
 १५. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ।
 १६. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ॥२१८॥
 १७. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ।
 १८. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ॥२१९॥
 १९. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ।
 २०. पाप नहि पाप इच्छा ज्ञानिके ॥२२०॥

त्यां ज्ञानि भी मिथित, मचित्त, अचित्त वस्तु भोगते ।
 पर ज्ञान ज्ञानीका नहीं, अज्ञान कोई कर सके ॥२२१॥
 जगही स्वयं वो शरत्, तनकर स्वीय ज्वेत स्वभाजको ।
 पावे स्वयं कृष्णत्वं तब ही, छोटता शुक्लत्वको ॥२२२॥
 त्यां ज्ञानि भी जब ही स्थाय निज, छोट ज्ञानस्वभाजको ।
 अज्ञानमात्रों परिणामे, अज्ञानताको प्राप्त हो ॥२२३॥
 ज्यों जगतमें को पुरुष, वृत्तिनिमित्त सेवे भूपको ।
 तो भूप भी सुखजनक विधविध भोग देवे पुरुषको ॥२२४॥
 त्यां जिवपुरुष भी कर्मरजका सुख अरथ सेवन करे ।
 तो कर्म भी सुखजनक विधविध भोग देवे जीवके ॥२२५॥
 अरु जो हि नर जब बुनिहत् भूपको सेवे नहीं ।
 तो भूप भी सुखजनक विधविध भोगको देवे नहीं ॥२२६॥
 मद्धृष्टिको त्यां निषयहन् कर्मरज सेवन नहीं ।
 तो कर्म भी सुखजनक विधविध भोगको देता नहीं ॥२२७॥
 मय्यक्ति जिव होते निःशक्ति इसहिसे निर्भय रहें ।
 है मत्प्रत्ययप्रणिभुक्त वे, इसही से वे निःशक हैं ॥२२८॥
 जो कर्मवधनमोहकर्ता, पाद चारों छेत्ता ।
 विन्मृति वो शकारहित, सम्यक्त्वदृष्टी जानना ॥२२९॥
 जो कर्मफल अरु सर्व धर्मोंकी न काचा घसरता ।
 विन्मृति वो काचारहित सम्यक्त्वदृष्टी जानना ॥२३०॥

१. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ।
 २. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ॥२॥
 ३. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ।
 ४. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ॥२॥
 ५. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ।
 ६. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ॥२॥
 ७. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ।
 ८. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ॥२॥
 ९. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ।
 १०. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ॥२॥
 ११. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ।
 १२. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ॥२॥
 १३. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ।
 १४. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ॥२॥
 १५. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ।
 १६. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ॥२॥
 १७. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ।
 १८. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ॥२॥
 १९. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ।
 २०. अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ॥२॥

ॐ अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं जो नहि धारता ॐ

५ अथर्ववेद अंगुष्ठाक्षरं

निर्मल रीत कोटि शुद्ध, मर्दन आप करके तेलका ।
 व्यायाम करता शस्त्रसे, बहु रजमर स्थानक गढा ॥२॥
 अर ताड कदली बाम यादी छिन्नभिन्न बह कर ।
 उपधात आप मचित अग्र अचित द्रव्योका करे ॥२॥
 बहुभातिरु करणादिसे उपधात करत उमहि हो ।
 निरुपपत्ति चित्तन करो, रजमंध है किन रंगलो ॥२॥

यों जानना निश्चयपने, चिन्नाड जो उम नरनिष ।
 रजयधकारण वो हि है, नहि कायचेष्टा शेष है ॥२४०॥
 चेष्टा विविधम वर्तता, इसभाति मिथ्यादृष्टि जो ।
 उपयोगमें रागादि करता, रजहिसे लेपाय जो ॥२४१॥
 जिम रीत फिर वो ही पुष्प, उम तेल मरकी दूरर ।
 व्यायाम करता शस्त्रसे, उहु रजमर स्थानरु ठहर ॥२४२॥
 अरु ताड, फदली, चाम आदी, छि न भिन्न बहू करे ।
 उपघात आप मचिन्न अरु, अचिन्न उर्योका करे ॥२४३॥
 बहुमातिके करणादिसे, उपघात करत उमहि को ।
 निश्चयपने चित्तनरु, रजयध नहि किन कारणों ॥२४४॥
 यों जानना निश्चयपने, चिन्नाड जो उस नरनिष ।
 रजयधकारण वो हि है, नहि कायचेष्टा शेष है ॥२४५॥
 योगों विविधम वर्तता, इसभाति मग्गदृष्टि जो ।
 उपयोगमें रागादि न करे, रजहि नहि लेपाय वो ॥२४६॥
 जो मानता मैं मारु पर अरु घात पर मेरा करे ।
 वो मूढ़ है, अज्ञानि है, निपरीत डमसे ज्ञानि है ॥२४७॥
 है आयुवयसे मरण जियका ये हि जिनवरने कहा ।
 तू आयु तो दग्ता नहा, तैने मरण कैमे किया ॥२४८॥
 है आयुवयमे मरण जियका ये हि जिनवरने कहा ।
 व आयु तुम्ह दग्ते नहा, तो मरण तुम्ह कैमे किया ॥२४९॥

ॐ नमः शिवाय, मुझ जियन परसे रहे ।
 ॥ २५० ॥ पिपरीत हमसे ज्ञानि है ॥ २५० ॥
 ॥ २५१ ॥ ये हि जिनमरने कहा ।
 ॥ २५२ ॥ तने जियन कैसे किया ॥ २५२ ॥
 ॥ २५३ ॥ ये हि जिनमरने कहा ।
 ॥ २५४ ॥ तो जियन तुम कैसे किया ॥ २५४ ॥
 ॥ २५५ ॥ दाद दुःख सुखि, मैं करू परजीवरी ।
 ॥ २५६ ॥ रिपगीत हमसे ज्ञानि है ॥ २५६ ॥
 ॥ २५७ ॥ जह उदयकर्म जु नीच मर ही, दुखित अरु सुखी बन ।
 ॥ २५८ ॥ तु कम तो दत्ता नहीं, रमे तु दुखित सुखी करे ॥ २५८ ॥
 ॥ २५९ ॥ जह उदयकर्म जु नीच मर ही, दुखित अरु सुखी बन ।
 ॥ २६० ॥ यो कम तुम दत्ते नहीं, तो दुखित तुम कैसे करें ॥ २६० ॥
 ॥ २६१ ॥ जह उदयकर्म जु नीच मर ही, दुखित अरु सुखी बन ।
 ॥ २६२ ॥ यो कर्म तुम दत्ते नहीं, तो सुखित तुम कैसे करें ॥ २६२ ॥
 ॥ २६३ ॥ मरता दुखी होता जु निच मर कर्म उदयोसे बने ।
 ॥ २६४ ॥ मुझसे मरा अरु दुखि हुआ क्या मत न तुम मिथ्या अरे ॥ २६४ ॥
 ॥ २६५ ॥ अरु नहि मर, नहि दुखि बने, वे कर्म उदयोसे बने ।
 ॥ २६६ ॥ 'मनेन मारा दुखि करा' क्या मत न तुम मिथ्या अरे ॥ २६६ ॥
 ॥ २६७ ॥ ये बुद्धि तेरी "दुखित अरु सुखी करू हू जीवरी" ।
 ॥ २६८ ॥ ना भूदमति तेरी अरे, शुभ अशुभ बाधे कर्मरी ॥ २६८ ॥

करता तु अध्यवमान "दुखित सुखी करूँ जीवको" ।

शो-बाधता है पापको वा बाधता है पुण्यको ॥२६०॥

करता तु अध्यवसान "म मारूँ जिगाऊ जीवको" ।

शो-बाधता है, पापको - वा बाधता है पुण्य को ॥२६१॥

मारे - न मारो जीवको, है बध अध्यवमानसे ।

यह आत्मामारे - यरुका, मनेप निश्चयनपरिपे ॥२६२॥

या भूठ माहि, अदत्तमें, अवल्य अरु अग्निग्रहपरिपे ।

जो होय अध्यवसान उमसे पापबधन, होय है ॥२६३॥

इम रीत मर्यरु दत्तमे, त्यों ज्ञात अनपरिग्रहविपे ।

जो होय अध्यवसान उमसे, पुण्यबधन होय है ॥२६४॥

जो होय अध्यवमान निभके, वस्तुआधित वो बने ।

पर उस्तुसे नहि बध, अध्यवसान से ही बध है ॥२६५॥

करता दुखी सुखी जीवको, अरु उद्ध मुक्त करूँ अरे ।

ये सूक्ष्मति तुम है निरर्थक, इम हि ॥ मिथ्या हि है ॥२६६॥

सब जीव अध्यवसान कारण, कर्मसे, रँधते जेहों ।

अरु मोक्षमग यित जीव छूटे, तू हि क्या करता भला ॥२६७॥

- तिर्यच, नारक, देव, मानव, पुण्यपाप अनेक जे ।

उन सर्वरूपे कर जुनिजको, जीव अध्यवसानसे ॥२६८॥

- अरु त्यों हि प्रम अधर्म, जीव मनीक, लोक अनोक जे ।

उन सर्वरूप करे जु निजको, जीव अध्यवसानसे ॥२६९॥

॥ २७० ॥ अथ विप्र रतते नहि जिनहि को ।
 शुद्ध जगु ॥ २७० ॥ मुनिराज वे नहिं लिप्त हों ॥ २७० ॥
 जो पद ॥ २७० ॥ प्रध्यमान अरु विज्ञान है ।
 ॥ २७१ ॥ गच्छहि मर्म ये एकार्थ हैं ॥ २७१ ॥
 व्यक्त ॥ २७१ ॥ निषिद्ध निश्चयनयहिसे ।
 ॥ २७२ ॥ मोक्षनी प्राप्ती करे ॥ २७२ ॥
 ॥ २७३ ॥ गुमी अरु तप शीलको ।
 ॥ २७३ ॥ मिथ्यादृष्टि है ॥ २७३ ॥
 ॥ २७४ ॥ अमय जिन शास्त्रों पढ़े ।
 ॥ २७४ ॥ पढ़ जाय गृह्यादिसो, पठन ये नहि गुण करै ॥ २७४ ॥
 ॥ २७५ ॥ वो धर्मको श्रो, प्रतीत, स्वी अरु स्पर्शन करे ।
 ॥ २७५ ॥ वो भागवत धर्मको, नहि कर्मक्षयके हेतुको ॥ २७५ ॥
 “आचार” आदिक ज्ञान है, जीवादि दर्शन जानना ।
 पद जीवकाय चरित है, य रथन नय व्यग्रहाका ॥ २७६ ॥
 मुक्त आत्मनिश्चय ज्ञान है, मुक्त आत्मदर्शन चरित है ।
 मुक्त आत्म प्रत्याग्यान अरु, मुक्त आत्म सार योग है ॥ २७७ ॥
 ज्यों फटिकमणि है शुद्ध, आप न रक्तरूप जु परिणमे ।
 पर अन्य रक्त पदार्थसे, रक्तादिरूप जु परिणमे ॥ २७८ ॥
 त्यों ज्ञानि भी है शुद्ध, आप न रगरूप जु परिणमे ।
 पर अन्य जो रागादि दूषण, उनसे वो रागी बने ॥ २७९ ॥

कभि रागद्वेषविमोह अगार कषायभाव जु निजनिर्गुण ।
 ज्ञानी स्वयं करता नहीं, इससे न तत्कारक रने ॥२८०॥
 पर रागद्वेषकषायैकमनिमित्त होवें मोर जो ।
 अनुरूप जो निध परिणामें फिर चावता रागादि की ॥२८१॥
 यों रागद्वेषकषायैकनिमित्त होवें भाव जो ।
 अनुरूप आत्मा परिणामें वो चावता रागादिसे ॥२८२॥
 अनप्रतिक्रमण दो भाँति अनपचखाण भीदो भाँति है ।
 निरसो अकारक है कहा इस रीतके उपदेशसे ॥२८३॥
 अनप्रतिक्रमण दो द्रव्यभाव जु याहि अनपचखाण है ।
 जिवको अकारक है कहा इस रीतके उपदेशसे ॥२८४॥
 अनप्रतिक्रमण अरु त्योंहि अनपचखाण द्रव्यरुभावको ।
 जगतक करै है आत्मा, कर्ता बने है जानना ॥२८५॥
 है अथ रुपादिक जु पुद्गलद्रव्यके ही दोष य ।
 वैसे करे ज्ञानी, मदा परद्रव्यके जो गुणहि हैं ॥२८६॥
 उदेगि त्याही अथ रुपाँ पौद्गलिक यह द्रव्य जो ।
 कैसे हि मुमंजुत होय नित्य अजीव ग्या जिमहिसे ॥२८७॥

५ मोक्षाधिकार

१००. 'हो, गतिरुद्ध है चिरकालरा ।
 १०१. 'हो ही काल जाने बधरा ॥२८८॥
 १०२. 'नो टूटे न, बधनवश रहे ।
 १०३. 'तो भी मुक्त तो नर नहिं बने ॥२८९॥
 १०४. 'जाने, पदश, स्थिति, अनुमागकी ।
 १०५. 'जान भले टूट ॥१०६॥ जो शुद्ध तो ही मुक्त हो ॥२९०॥
 १०७. 'जो मनोसे उद्ध मो नहिं बधवितासे छुटे ।
 १०८. 'यो जीव भी इन बधरा चिन्ता करेसे नहिं छुटे ॥२९१॥
 १०९. 'जो बधोति उद्ध मो नर बधछेदनसे छुटे ।
 ११०. 'त्या जीव भी इन बधोंरा छेत् कर मुक्ती वरे ॥२९२॥
 १११. 'र जानकर बधन स्वभाव स्वभाव जान जु आत्मका ।
 ११२. 'जो यमों हि निरुक्त होयें, कर्म मोक्ष करें अहा ॥२९३॥
 ११३. 'छेदन करो जिव बधरा तुम नियतनिज निज चिह्न से ।
 ११४. 'प्रजा छेनीसे उद्धते दोनों पृथक् हो जाय है ॥२९४॥
 ११५. 'छेदन होवे जिव बधरा जह नियत निज र चिह्नसे ।
 ११६. 'वह छोड़ना इम बधरो, निज ग्रहण करना शुद्धको ॥२९५॥
 ११७. 'यह जीव कैसे ग्रहण हो ? जिवका ग्रहण प्रज्ञाहि से ।
 ११८. 'ज्यो अलग प्रजासे लिया, त्यों ग्रहण भी प्रज्ञाहि से ॥२९६॥

कर ग्रहण प्रज्ञासे नियत, चेतकू हूँ मो ही मैं हि हूँ ।
 अवशेष तो सब भाग हैं, मेरेसे पर ही जानना ॥२९७॥
 कर ग्रहण प्रज्ञामे नियत, दृष्टा हूँ मो ही मैं हि हूँ ।
 अवशेष जो सब भाग हैं, मेरेसे पर ही जानना ॥२९८॥
 कर ग्रहण प्रज्ञासे नियत, ज्ञाता हूँ मो ही मैं हि हूँ ।
 अवशेष जो सब भाग हैं मेरेसे पर ही जानना ॥२९९॥
 मेरा भाग जो परमाय जाने, शुद्ध जाने आत्मको ।
 यह कौन ज्ञानी "मेरा हूँ यह" या वचन मोले अहो ॥३००॥
 अपराध, चौर्यादिक करै जो पुण्य तो शक्ति फिर ।
 को लोकमें फितते हुएसे, चोर जान जु राघ ले ॥३०१॥
 अपराध जो करता नहीं, निःशक लोभसिँ फिर ।
 "बैय जाउगा" ऐसी कभी, चिंता न उमरो होय है ॥३०२॥
 त्यों आत्मा अपराधी "मैं बैधता हूँ" यों हि मगरु है ।
 अरु निरपराधी आत्मा, "नाही बंधू" नि गुरु है ॥३०३॥
 ममिद्धि, सिद्धि जु राध, अरु माधित अराधित एव है ।
 ये राधमे जो गहित है, तो आत्मा अपराध है ॥३०४॥
 अरु आत्मा जो निरपराधी होय है निःशङ्क धो ।
 धर्मे मदा आराधनासे, जानना "मैं" आत्मको ॥३०५॥
 प्रतिक्रमण अरु प्रतिसरण त्यों परिहरण, निवृत्ति धरेण ।
 अरु शुद्धि, ये अष्टत्रिव निपटु मैं हैं ॥

२५. विनश्यत्, अनपगिरिहस्य अनधारणः ।

२६. पण्डित, अशुद्धि अमृतं भू ई ॥३०७॥

२७. मोक्षधिया मयाम छ

२० अथ सर्वविशुद्धशानाधिकार

१. जिन गुणोत्तम, उनमें जान अनन्य यो ।

२. आत्मे कटकादि, पर्यायामे कनर अनन्य ज्या ॥३०८॥

३. जिनके परिणाम जो आचार्यिण निनरर कह ।

४. जीव गौर अज्ञात जान, अनन्य उन परिणामसे ॥३०९॥

५. उपन ७ आत्मा कोइसे, इसमें न आत्मा कार्य है ।

६. उपचारता नहि कोइसे, इससे न कारण भी पने ॥३१०॥

७. कर्मआश्रित हाय कर्ता, कर्म भी करतारके ।

८. आश्रित हुये उपने नियमसे, अन्य नहि मिद्वी दिखे ॥३११॥

९. पर जीव प्रकृतीके निमित्त जु, उपजता नगता थरे ।

१०. अरु प्रकृतिका जिनके निमित्त, विनाश अरु उत्पाद है ॥३१२॥

११. अन्योन्यके जु निमित्त मे यो, वष दोनोंकर बने ।

१२. इस जीव प्रकृती उभयका, समार इसमें होय है ॥३१३॥

१३. उत्पादव्यय प्रकृती निमित्त जु, जब हि तरु नहि परितने ।

१४. अज्ञानि, मिथ्यान्वी, अमयत, तर हितक यो जिय रह ॥३१४॥

१५. य आत्मा, जतु ही करमका, फल-अनता परितजे ।

१६. शायक तथा दर्शक तथा मुनि बोहि, कर्मनिमुक्त है ॥३१५॥

अज्ञानि स्थित प्रकृती स्वभाव सु, कर्मफलको वेदता ।
 अरु ज्ञानि तो जाने उदयगत कर्मफल, नहिं भोगता ॥३१६॥
 मद्गीत पदकर शाम्भू भी, प्रकृती अभव्य नहीं तजे ।
 ज्यों दुध-गुड पीता हुआ भी मर्ष नहिं निर्मिष बने ॥३१७॥
 वैराग्यप्राप्त जु ज्ञानिजन है, कर्मफल को जानता ।
 कइवे-मधुर बहुमोतिको, इससे अवेदक है अहा ॥३१८॥
 करता नहीं, नहिं वेदता, ज्ञानी करम बहुमोतिको ।
 नम जानता ये वर त्यों ही कर्मफल शुभ अशुभको ॥३१९॥
 ज्यों नेत्र, त्यों ही ज्ञान नहिं कारक, नहीं वेदक अहो ।
 जाने हि कमोदय, निरजरा, वर त्यों ही मोक्षको ॥३२०॥
 ज्यों लोक माने 'द्विज नारक आदि निर पिण्डू करे' ।
 त्यों भ्रमण भी माने कभी, "पट्कायको आत्मा करे" ॥३२१॥
 तो लोक मुनि मिद्वान्त एक हि, भेद इसमें नहिं दिखे ।
 पिण्डू करे ज्यों लोकमतमें, भ्रमणमत आत्मा करे ॥३२२॥
 इसमति लोक मुनी उभयमा मोक्ष कोर्द नहिं दिखे ।
 जो देख, जानन अपुरक, त्रिलोक को नित्यहि करे ॥३२३॥
 व्यग्रहारमूढ़ अतत्त्वनिद् परद्वन्द्वको मेरा कह ।
 "अणुमात्र भी मेरा न" ज्ञानी जानता निश्चयहि से ॥३२४॥
 ज्यों पुरुष कोई कह "हमारा ग्राम, पुर था, वश
 उमरा अरे । निव मोहसे 'मेरा'"

३-४-०६ प चानि भी 'मुक्त' जानता परद्रव्यही ।

७१ १०० ि त्वाँ वने, निरूप करता अन्यसे ॥३२६॥

११. 'तस्य' नान निम्न, परद्रव्यम इति उभेयकी ।

१-१३ : जानता, जाने सुद्योगहितम् ॥३२७॥

३. ४- प्रकृति ही यम, मित्याति जो जिनको करे।

॥ अथैतत्प्रकृतिर्हीकारश्चनेतुम्मतमपि ॥३२॥

२५०० रु० जो जीव पुद्गलद्रव्यके मिथ्यात्वकी ।

नो तौ बने मिथ्यातिथि पुरुष द्रव्य आत्मा नहि बने । ३२९॥

‘गे जीव अरु प्रकृती करे मिथ्यान्व पद्वल द्रव्यको’

तो उभयकृत जो होय तत्फल भोग भी हो उभयको ॥३३०॥

जो प्रकृति नहि नहि जिम करे मिथ्यात्वं पदलक्ष्यम् ।

पदलाइव मिः मालि अरुतु म्या न महे मिथ्या कहो ॥३३१॥

कर्मदि कर्त्तुं शक्यानि शोरी सावि मा । कर्मदि कर्त्तुं

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

धर्म धर्मही बनने योग्य, धर्मही योग्य, धर्मही योग्य

कर्मणि क्त्वे विभ्रंशानि व्योमि विभ्रंशानि तर्जनि मने ॥३५॥

कर्मादि भोगान्ते नृणां तेषां च नृणां च नृणां च नृणां च नृणां च

वैमोहि श्रमावि उच्यते लोभं च, श्रवणं च त्रिषु विषु ।

अथ बुद्धि मांजा शुभ या अशुभ, उन सबका उन्माद कर

करता करम । करम, हरता करम—मन कुछ कर ।

इमं हृत्सुतं यद्वा ह सुनिर्दिष्टं त्रिंशत्शतकं मयि ह ॥३५॥

पुष्प इच्छे नारिकी मूर्ध्नि इच्छे पुष्पम् ।
 ऐमी श्रुती आचार्यद्वय परंपरा अतीर्ण है ॥३३६॥
 इस रीत "कर्महि कर्मको इच्छे" कहा है शास्त्रम् ।
 'अग्रज्जचारी यो नही को जीव हम उपदेशमें ॥३३७॥
 अरु जो हने परको, हनन हो परसे, मोह प्रकृति है ।
 'इस अर्थमें परघात नामक कर्म का निर्देश है ॥३३८॥
 इस रीत "कर्महि कर्मको हनता" कहा है शास्त्रम् ।
 हमसे न को भी जीव है जिसका जु हम उपदेशमें ॥३३९॥
 यों सांख्यका उपदेश ज्यों जो शमण वर्णन करे ।
 उम मनसे मन प्रकृती करे जिव तो अकारक सर्व है ॥३४०॥
 अथवा तु माने "आत्मा मेरा स्व आत्मा को करे ।
 तो ये जो तुम्हमें तत्त्व भी मिथ्या स्वभाव हि तुम्ह अरे ॥३४१॥
 निर निय है त्यों, है अमर्यप्रदणि दर्शित समयम् ।
 उमसे न उमको हीन, त्योंहि न अधिक कोई कर मके ॥३४२॥
 विस्तारसे जियन्त निरका, लोभमात्र प्रमाण है ।
 क्या उमसे हीन रु अधिक बनता द्रव्यको कैसे करे ॥३४३॥
 माने तु 'जायकभाव तो ज्ञानस्वभाव स्थित रहे' ।
 तो यों मि यह आत्मा स्वयं निर आत्माको नहि करे ॥३४४॥
 पर्याय बुझसे नष्ट जिय, कुछमें न जीव विनष्ट है ।
 हमसे ऊँचे जो दि यो को अन्य नहि, एतन्त है ॥३४५॥

पक्षीय पक्ष न. निः, कुलमे न जीव मिनष्ट है ।

॥ नोत्तरं स हि मा सो अन्य नहि एमान्त है ॥३४६॥

। १२ ॥ ५२ ॥ सा ता नहि-विमला यद सिद्धान्त है ।

उत्तर सत्य नहीं, वो निरा मिथ्यादृष्टि है। ३४७।

१५१ ॥ अथ शन्य वेद जिमसा यह मिद्धाव है ।

८-१४ सदा नही, वो जीन मिथ्यादृष्टि है ॥३४८॥

जदा विविदि दमं करे परन्तु यो नहीं तन्मय मने ।

न्य। ममो अत्मा करे पर वो नही तन्मय घने ॥३४९॥

ज्यों शिल्पि करणसे करे पर जो नहीं तन्मय घने ।

न्या जीव दग्धोंसे नरे पर धो नहीं तन्मय घने ॥३५०॥

ज्यों शिपि करण यह परत जो नहीं तन्मय रहे ।

त्यो जीव परणोको ग्रह पर हो नहीं तन्मय घने ॥३५॥

शिवगिरी परमपूज्य श्रीमन्मन्त्रि स्वामीजी महाराज ।

ह्यो विप्र कर्मफल भोग्यः नरः केन्दुः पतन्त्यः ॥३॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

सन्तो वक्तुं समर्थः नृपः ॥ ३ ॥ ॥ ३ ॥ ॥ ३ ॥

[illegible]

हों। जीन कर्मा को बसा, वह ही है। जीन कर्मा है।

येपि च तदा विन्ती विन्ती विन्ती विन्ती विन्ती विन्ती विन्ती विन्ती

आरु दामोदर शिवाजी महाराज : ऐसे दिन थे ————— की रात में १३०५

ज्या सेटिका नहि अन्यत् ॥ का वस सेटिका ।
 ज्ञायक नहीं त्यों अन्यत् ॥ अहो ज्ञायक तथा ॥३५६॥
 ज्यों सेटिका नहि अन्यत् ॥ सेटिका वस सेटिका ।
 दर्शक नहीं त्यों अन्यत् ॥ अहो दर्शक तथा ॥३५७॥
 ज्यों सेटिका नहि अन्यत् ॥ सेटिका वस सेटिका ।
 सयत नहीं त्यों अन्यत् ॥ मयत अहो मयत तथा ॥३५८॥
 ज्यों सेटिका नहि अन्यत् ॥ सेटिका वस सेटिका ।
 दर्शन नहीं त्यों अन्यत् ॥ दर्शन अहो दर्शन तथा ॥३५९॥
 यों ज्ञानदर्शनचरितरिपयक कथन नय परमादिक ।
 सुनलो वचन मक्षेपसे, इस रिपयमें व्यवहार ॥३६०॥
 ज्यों ज्वेत करती सेटिका, परद्रव्य आप न्यक्तने ।
 ज्ञाता मि त्यों ही जानता, परद्रव्यको निव न्यक्तने ॥३६१॥
 ज्यों ज्वेत करती सेटिका परद्रव्य आप न्यक्तने ।
 आत्मा मि त्यों ही दराता परद्रव्यको निव रानने ॥३६२॥
 ज्यों ज्वेत करती सेटिका परद्रव्य आप न्यक्तने ।
 ज्ञाता मि त्यों ही त्यागता, परद्रव्यको निव भावने ॥३६३॥
 ज्यों ज्वेत करती सेटिका, परद्रव्य आप स्वमापसे ।
 सदृष्टि त्यों ही श्रद्धता, परद्रव्यको निव भावसे ॥३६४॥
 यों ज्ञानदर्शनचरितमें निर्णय इस व्यवहारका ।
 अरु अन्य पर्यय विषयमें भी इस प्रकार दि जानना

११. निमित्त नहि अचेतन विषयमें ॥

१२. त्या हन सके उन विषयमें ॥३६६॥

१३. निमित्त नहि अचेतन कर्ममें ॥

१४. त्या हन सके उन कर्ममें ॥३६७॥

१५. निमित्त नहि अचेतन कायमें ॥

१६. त्या हन सके उन कायमें ॥३६८॥

१७. सम्पत्तिका, उपघात चारितका कहा ॥

१८. पुढ भी नहि रुद्धा उपघात पुद्गल द्रव्यका ॥३६९॥

१९. जो जिकरे गुण है नियत वे मोड़ नहि परद्रव्यमें ॥

२०. हतुसे मन्दिनि जिकरे राग नहि है विषयमें ॥३७०॥

२१. अरु राग, द्वेष, निमोह तो जिकरे अनन्य परिणाम है ॥

२२. हतुसे शब्दादि विषयोमें नही रागादि है ॥३७१॥

२३. को द्रव्य दुमरे द्रव्यमें उत्पाद नहि गुणका करे ॥

२४. हतुसे मय ही दरम उत्पन्न आप स्वभावसे ॥३७२॥

२५. पुद्गल दरम नहु भौति निंदा स्तुतिरचनरूप परिणामे ॥

२६. सुनकर उन्हें 'मुझको कहा' गिन रोष तोष जु जिकरे ॥३७३॥

२७. पुद्गलदरम शब्दरूपपरिणत, उमका गुण जो अन्य है ॥

२८. तो नहि कहा कुछ भी तुम्हे, हे अनुप ॥ रोष तुं क्यों करे ॥३७४॥

२९. शुभ या 'अशुभ' जो शब्द जो 'तू' सुन मुझे न तुम्हें कहा ॥

३०. अरु जीव भी नहि ग्रहण जाये कर्णगोचर शब्दको ॥३७५॥

३१. शुभ या 'अशुभ' जो रूप वो 'तू' दरम मुझको नहि कहे ॥

३२. अरु जीव भी नहि ग्रहण जावे चक्षुगोचर रूपको ॥३७६॥

शुभ या अशुभ जो गंध वो 'तू मृग मुक्तको' नहि कह ।
 अरु जीव भी नहि ग्रहण जाये घ्राणगोचर गंधको ॥३७७॥
 शुभ या अशुभ रस कोइ भी 'तू चास मुक्तको' नहि कह ।
 अरु जीव भी नहि ग्रहण जाव रसनगोचर स्वादको ॥३७८॥
 शुभ या अशुभ जो स्पर्श वो 'तू स्पर्श मुक्तको' नहि कहे ।
 अरु जीव भी नहि ग्रहण जाव कायगोचर स्पर्शको ॥३७९॥
 शुभ या अशुभ गुण कोइ भी 'तू जान मुक्तको' नहि कह ।
 अरु जीव भी नहि ग्रहण जावे बुद्धिगोचर गुण अरे ॥३८०॥
 शुभ या अशुभ जो द्रव्य वो 'तू जान मुक्तको' नहि कह ।
 अरु जीव भी नहि ग्रहण जाव बुद्धिगोचर द्रव्य रे ॥३८१॥
 यह जानकर भी मूढ़ जिम पाये नहीं उपशम अरे !
 शिरबुद्धिको पाया नहीं वो परग्रहण करना चहे ॥३८२॥
 शुभ और अशुभ अनेकविध, के कर्म पृथ्व जो जिये ।
 उनसे निवर्ते आत्मको, वो आत्मा प्रतिक्रमण है ॥३८३॥
 शुभ अरु अशुभ भारी करमका बंध हो तिन भायमें ।
 उनसे निवर्तन जो करे वो आत्मा पचसाण है ॥३८४॥
 शुभ और अशुभ अनेकविध हैं उदित जो इस कालमें ।
 उन दोषको जो चेतता, आलोचना वह जीव है ॥३८५॥
 पचसाण नित्य करे अरु प्रतिक्रमण जो नित्यहि करे ।
 नित्यहि करे आलोचना वो आत्मा चारित्र है ॥३८६॥

इस हेतुसे जो शुद्ध आत्मा को नहीं कुछ भी ग्रह।
 छोड़े नहीं कुछ भी अहो। परद्रव्य जोर अज्ञान में ॥४०॥
 मुनिनिगमो अथवा गृहस्थनिगमो बहुभातिरु।
 ग्रहण कहत है मूढ़जन, यह लिंग मुक्तिमार्ग है ॥४१॥
 यह लिंग मुनीमार्ग नहीं, अहंत निर्मम दहमें।
 धर्मलिंग सज्जन ज्ञान अरु चाग्नि दर्शन सेवने ॥४२॥
 मुनिलिंग अरु गृहलिंग-ये नहीं लिंग मुक्तिमार्ग हैं।
 चाग्नि-दर्शन ज्ञानमो धर्म मोक्षमार्ग प्रभू रहे ॥४३॥
 यों छोड़कर सागर या अनगर घाग्नि लिंगको।
 चाग्नि-दर्शन ज्ञानमो तू जोड़ रे। निज आत्मको ॥४४॥
 तू स्थाप' निजको। मोक्षपथमें धरा अनुमते, तू उसे।
 उगमें हि नित्य विहार करे न विहार कर परद्रव्यमें ॥४५॥
 बहुभातिके मुनिलिंग जो अथवा गृहस्थलिंग जो।
 ममता करे उनमें नहीं जाना 'समयके मार' की ॥४६॥
 व्यवहारनय, इन लिंग द्वयको मोक्षपथमें कह।
 निगम नहीं माने कभी को लिंग मुक्तिपथमें ॥४७॥
 यह समयप्राप्त पठन करके जान अर्थ रुतचस।
 ठहरे परधमें जीव जो वो मौख्य उत्तम परिणामे ॥४८॥

र ! धर्म है नहिं ज्ञान क्योंकी कर्म कुछ जाने नहीं ।
 हतु मइसे है ज्ञान अन्य रु कर्म अन्य जिनर कह ॥३९७॥
 र ! धर्म नहिं है ज्ञान क्योंकी धर्म कुछ जाने नहीं ।
 इस हतुसे है ज्ञान अन्य रु धर्म अन्य जिनर कह ॥३९८॥
 नहिं है अधर्म जु ज्ञान क्योंकि अधर्म कुछ जाने नहीं ।
 इस हतुसे है ज्ञान अन्य अधर्म अन्य जिनर कह ॥३९९॥
 र ! काल है नहिं ज्ञान क्याकी काल कुछ जाने नहीं ।
 इस हतुसे है ज्ञान अन्य रु काल अन्य प्रभू कह ॥४००॥
 आकाश है नहिं ज्ञान क्योंकि अकाश कुछ जाने नहीं ।
 इस हतुसे आकाश अन्य रु ज्ञान अन्य प्रभू कह ॥४०१॥
 रे ! ज्ञान अध्यवसान नहिं, क्योंकी अचेतन रूप है ।
 इस हतुसे है ज्ञान अन्य रु अन्य अध्यवमान है ॥४०२॥
 रे ! मरदा जाने हि इससे जीव प्रायक जानि है ।
 अरु ज्ञान है ज्ञायकसे अव्यतिरिक्त यों ज्ञातय है ॥४०३॥
 मम्यक्त्व अरु सयम तथा पूर्वांगगत मय सूर जो ।
 धर्माधरम दीक्षा मवहि, बुध पुरुष माने ज्ञानको ॥४०४॥
 यों आत्मा जिनका अमूर्तिक वो न आहारक बने ।
 पुद्गलमयी आहार यों आहार तो मूर्तिक अरे ॥४०५॥
 यहै पर, ग्रहण नहिं-नहिं त्याग उसका हो सके ।
 उसका गुण कोई प्रायोगि अरु वैससिक है ॥४०६॥

- १० - १० देना जिन कर्मफल निज रूप करे ।
 १० - १० देने शक्तिधक कर्मको-दुखबीज को ॥३८७॥
 १० - १० देना जिन कर्मफल में किया ।
 १० - १० देने शक्तिधके कर्मको-दुखबीजको ॥३८८॥
 १० - १० देना जिन कर्मफल में किया है ।
 १० - १० देने शक्तिधके कर्मको-दुखबीजको ॥३८९॥
 १० - १० देना जिन कर्मफल में किया है ।
 १० - १० देने शक्तिधके कर्मको-दुखबीजको ॥३९०॥
 १० - १० देना जिन कर्मफल में किया है ।
 १० - १० देने शक्तिधके कर्मको-दुखबीजको ॥३९१॥
 १० - १० देना जिन कर्मफल में किया है ।
 १० - १० देने शक्तिधके कर्मको-दुखबीजको ॥३९२॥
 १० - १० देना जिन कर्मफल में किया है ।
 १० - १० देने शक्तिधके कर्मको-दुखबीजको ॥३९३॥
 १० - १० देना जिन कर्मफल में किया है ।
 १० - १० देने शक्तिधके कर्मको-दुखबीजको ॥३९४॥
 १० - १० देना जिन कर्मफल में किया है ।
 १० - १० देने शक्तिधके कर्मको-दुखबीजको ॥३९५॥
 १० - १० देना जिन कर्मफल में किया है ।
 १० - १० देने शक्तिधके कर्मको-दुखबीजको ॥३९६॥

र । कर्म है नहिं ज्ञान क्योंकी कर्म कुछ जाने नहीं ।
 हतु सइसे है ज्ञान अन्य रु कर्म अन्य जिनपर कह ॥३९७॥
 र । धर्म नहिं है ज्ञान क्योंकी धर्म कुछ जाने नहीं ।
 इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु धर्म अन्य जिनपर कह ॥३९८॥
 नहिं है अधर्म जु ज्ञान क्योंकि अधर्म कुछ जाने नहीं ।
 इस हेतुसे है ज्ञान अन्य अधर्म अन्य जिनपर कह ॥३९९॥
 र । काल है नहिं ज्ञान क्याकी काल कुछ जाने नहीं ।
 इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु काल अन्य प्रभू कह ॥४००॥
 आकाश है नहिं ज्ञान क्योंकि आकाश कुछ जाने नहीं ।
 इस हेतुसे आकाश अन्य रु ज्ञान अन्य प्रभू कह ॥४०१॥
 र । ज्ञान अव्यवमान नहिं, क्योंकी अचेतन रूप है ।
 इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु अन्य अव्यवमान है ॥४०२॥
 र । सर्वदा जाने हि इससे जीव जायक जानि है ।
 अरु ज्ञान है ज्ञापकसे अव्यतिरिक्त यों जातव्य है ॥४०३॥
 मन्मत्त्व अरु समय तथा पूर्वागत मर धर जो ।
 धर्माधरम दीक्षा मरहि, बुध पुन्य माने ज्ञानकी ॥४०४॥
 यों आत्मा जिसका अमूर्तिक यो न आहारक बने ।
 पुद्गलमयी आहार यों आहार तो मूर्तिक अरे ॥४०५॥
 जो द्रव्य है पर, ग्रहण नहिं-नहिं त्याग उमका हो सके ।
 ऐसा हि उमका गुण कोई प्रायोगि अरु वैमर्शिक है ॥४०६॥

जो शुद्ध आत्मा 'वो नहीं कुछ भी ग्रह' ।
 इस नर, इस भी अहो! परद्रव्य जीव अजीव में ॥४०७॥
 यनिलिंग अथवा गृहस्थीलिंगो बहुभातिके ।
 गहरा तंतु है मूढ़जन, 'यह लिंग मुक्तीमार्ग है' ॥४०८॥
 'लिंग मुक्तीमार्ग' नहि, अहंत निर्मम दहमें ।
 'लिंग' तलहर झाग अरु चारित्र दर्शन संगते ॥४०९॥
 यनिलिंग अरु गृहस्थीलिंग-ये नहि लिंग मुक्तीमार्ग है ।
 चारित्र-दर्शन ज्ञानको धर्म मोक्षमार्ग प्रभू कहें ॥४१०॥
 यों छोड़कर मागार या अनगार धारित लिंगको ।
 चारित्र-दर्शन ज्ञानम तू जोड़ रे! निज आत्मको ॥४११॥
 तू स्थाप निनको मोक्षपथमें ध्या 'अनूमा' तू उसे ।
 उममें हि नित्य विहार कर न विहार कर परद्रव्यमें ॥४१२॥
 बहुभातिके मुनिलिंग जो अथवा गृहस्थीलिंग जो ।
 ममता करे उनमें नहीं जाना 'समयके सार' को ॥४१३॥
 व्यग्रहारनय, इन लिंग द्वयको मोक्षके पथमें कहे ।
 निश्चय नहीं माने कभी को 'लिंग मुक्तीपथमें' ॥४१४॥
 यह समयप्राप्त प्रठन करके जान अर्थ रु तत्त्वसे ।
 ठहरे अरथमें जीव जो वो सौरभ उत्तम परिणामे ॥४१५॥

ॐ ज्ञानदर्पण ॐ

(कविवर शाह बीपचन्नी कृत)

आत्मरुचिः साक्षात्मात्म्य ।

अध्याय ३१ (मन्दार)

परम अखण्ड ब्रह्मण्ड त्रिभि लखे न्यारी, करम निहड
करै महा भयाधिनी । अमल अरुणी अज चेतन चमत्कार,
मममार सात्रै अति अलख अराविनी ॥ गुणको निधान
अमलान भगवान् जाको, प्रतख दिसावे जाकी महिमा
अयाधिनी । एक चिदरूपको अरूप अनुमरी ऐसी, आतमीरु
रुचिहै अनतसुखमाविनी ॥६॥

आत्म भाव भानेकी प्रेरणा ।

चेतनको अरु एक सदा निकलक महा, करम कलक
जाम कोऊ नही पाडए । निराकार रूप जो अनूप उपयोग
जाके, जेय लखे जेयाकार न्यारी हू बतादए ॥ बीरज अनत
मदा सुखको समुद्र आप, पगम अनत जामे और गुण
गाइए ॥ ऐसी अगवान् ज्ञानवान् जामे घटहीमे, ऐसी भाव
भाव दोष अमर कहाए ॥९॥

चिदरूपकी ज्ञानभावना ।

अनप चिदरूप रूप मोहि माहि, जाके लखै
 १। मयाधना । जाके दग्धाममें विभान सो
 २। जाही रचि कीए मधे अलख अराधना ॥
 ३। गति प्रीतिकरि पाई तातैं, त्यागी जगजाल
 ४। उपाधना । अगम अपार सुखदाई सन सतनकी,
 ५। 'ताप' माध जानी साची ज्ञानभावना ॥१३॥

‘आत्ममिद्विका उपाय ज्ञानभावना है ।

आप अत्रलोके विना कछु नाही सिद्धि होत, कोटि
 १। श्लेशनिही करौ यहूगुणी । क्रिया पर कीण, परभावनी
 २। प्रापति हू, मोक्षपथ मधे नाहीं राखीकी धरणी ॥ ज्ञान
 ३। उपयोगमें अखंड चिदानन्द जाकी, साची ज्ञानभावना हू
 ४। मोक्षअनुमरणी । अगम अपार गुणधारीकी सुभान साध,
 ५। 'दीप' मत जीवनकी दशा भरतगुणी ॥१४॥

सत्यवेदन भाव ही सुखका निधान है ।

वेदत सरूप पद परम अनूप लहै, गहै चिदभाव महा
 १। आप निज धान हैं । द्रव्यसौ प्रभान अरु गुणसौ लखान
 २। जामें, परनायको उपाय ऐमो गुणान है ॥ व्यय उत्पाद

ध्रुव मध मय जाहीरि, ताहीन उदोन लक्ष्य लक्षनको वान
है । महिमा महत जाकी कहाला कहत करि, स्वमयेभार
'दीप' मुखही निधान है ॥१५॥

मिद्वके समान अपनी आत्म भावना करो ।

विदानदगाड मुखसिंधु है अनादिहीकी, निहचै निहारि
आनटि धरि लीनिय । नय निहारहीत कर्म कलक पर,
जाके लागि आए तौऊ मुदतागहीजिये ॥ जेमी टिटि देखै
मय ताही तमो फल होइ, मुख अलोकें मुख उपयोगी
हजियै । दीप पद देखियतु आत्ममुभार ऐसो, मिद्वक
समान ज्ञानभावना करीजियै ॥१६॥

आत्माकी शुद्ध भावना ।

अचल अखंड ज्ञानवेति है मरूप जासो, चेतनानिधान
जो अनतगुणधारी है । उपयोग आत्मोक्त अतुल अराधित
है, देखिण अनादि सिद्ध निहचै निहारी है । आनदसहित
कृतकृत्यता उद्योत होइ, जाही समे ब्रह्मदिष्टि देत जो सवारी
है । महिमा अपार मुखसिंधु ऐसो घट हीमें, डब भगवान
लखि 'दीप' मुखकारी है ॥१७॥

जजीव ससारसमुद्रके निरैया हैं ।

निराए त्यागि तजकी मभार करै, हरै भ्रमभाय
 नै रा हैं । लखै आपा आपमाहि रागभोग भाव
 उपयोग एरु भायके करैया हैं ॥ थिरता सुखपरीसी
 नाराय, परम अतेंद्री मुख नीरकें ठरैया हैं ॥ दन
 नै माँ सगुण लखै घटहीमै, ऐसे ज्ञानगान भगविधुक
 नै नै ॥२१॥

जाह्मानुभयी जीव ही मछे आत्मसुखके
 विनासी हैं ।

लोकलोक लखिबै मरूपम सुखि रहै, विमल अखड
 ज्ञानजोति परकामी हैं । निराकाररूप सुदभायके धरैया महा,
 मिद्व भगवान एक मदा सुखरासी हैं ॥ ऐमौ निजरूप
 अखलोभन हैं निहचमे, आप परतीति पाय जगसौ उदामी
 हैं । अनाकुल आतम अनूप रम वेदतु है, अनुमनी जीव
 आप मुखे विनासी हैं ॥२२॥

अनादिहीका मेरा चिदानदरूप है ।

महा दुखदानी भगधितिके निदानी जातैं, होय
 ज्ञानहानी ऐमै भायक चमैया हैं । अति ही विकारी पापपुन

अधिकारी मदा, ऐमे रागदोष भाव तिनक दमैया है ॥
 दया दान पूजा मोल मजमाडि सुमभाव, ए ह पर जान
 नाहि इनमें उम्हैया है । सुभासुभ रीति त्यागि जागे है
 सरूपमाहि, तेइ घानगान चिदानदके रमैया है ॥२५॥
 देहपरिमाण गति गतिमाहि भयो जीव, गुपत ह रह्यो
 तौऊ धारि गुणशुद्ध है । कर्म कलह तौऊ जर्म न कर्म
 यौऊ, रागदोष धारि ह निशुद्ध निरफद है ॥ धारत सरीर
 तौऊ आत्मा अमूरतीर, गुन पक्ष गहे एक मदा सुखक
 है । निहचै विचार देख्यो निद्व मो मरूप 'दाप', मेरे तौ
 अनादिको सरूप चिदानद है ॥२६॥ व्यवहारपक्ष परजाय
 वरि आयो तौऊ, सुद्धन विचारे निज परम न फमा है ।
 जान उपयोग जाही मरति मिटाई नाहि, कहा भयो जो तू
 भयगती होय वमा है ॥ द्वैतको विचार कीए भावते मयोग
 पर, देखै पद एक पर ओर नहि धसा है । निहचै विचारके
 सरूपम ममारि देखी, मेरी तौ अनादिहीको चिदानद
 दमा है ॥ २७ ॥ जानकी सकति महा गुपति भई है तौऊ,
 त्रेयनी लखैया जाही महिमा अपार है । प्रतच्छ प्रतीतिम
 परोक्ष कही कर्म होइ, चिदानद चेतनसौ चिह्न अधिकार

- यह पुरन प्रिरानमान, तिहूँ लोकनाथ
 २ ह । अखण्ड यौ ही एरु सामतो निधान
 ५ मरूप १ सभार है । २८॥ बहु प्रिसतार
 १ निप्रतु, यह मयगाम जहाँ भागकी असुद्धता ।
 १ तै उदास महाप्रत धारै, यह प्रिपरीति जिन
 १ दुता ॥ ररमही चेतनामै शुभ उपयोग सधै,
 ४ ५ मत तारु तात नार्हा सुद्धता । वीतराग दर
 १ ती गीहा उपदश महा, यह मोखपद जहाँ भागकी
 १ २९ ॥ ज्ञान उपयोग जोग जाहीं न
 ४ राग हूमे, निहचं निहारै एक तिहुलोरुभूष है ।
 चेतन अनत चिह्न सासतो विराजमान, गतिगति मय्यौ
 तौऊ अमल अनूपहै ॥ जैमै मखिमाहि कोऊ काचखड मानै
 तौऊ, महिमा न जाय वारै वाहीकी मरूप है । ऐसे ही
 ममारिके सरूपही विचारथो मने, अनादिकौ अखण्ड मेरी
 चिदानदरूप है ॥ ३० ॥

दोहा

चिदानद आनदमय सकति अनत अपार ।

अपनौ पद ज्ञाता लखै, जामै नहि अवतार ॥ ३१ ॥

स्वस्ववेदनज्ञानका माहात्म्य । सवेया ३१ सा (मनहर)

जामै परवेदना उखेदना भइ है महा, वेद निज आतमपद
 परम प्रकामतो । अनामूल आतमीक अतुल अवेदनी सुख, अमल

अनूप करै सुखसौ मिलासतौ ॥ महिमा थपार जासी
 कहालौ बरान कोय, जाहीके प्रभाउ देव चिदानन्द भासतौ ।
 निदचे निहारिके मरूपम मँभाति देख्यौ, स्वमवेदनान है
 हमारौ रूप सामतौ ॥३५॥ परम अनन्त गुण चेतनाको पुँज
 महा, बढ़तु है जाके बल ऐमौ गुणगान है । मामतौ अखण्ड
 एकद्रव्य । उपादान सो तौ, ताहीकरि मर्य यामैं और न
 विनान है ॥ जाहीके सुभासतै अनन्तसुख पाइयतु, जाहीकरि
 जान्यो जाय देव भगवान है । महिमा अनन्त जाकी ज्ञानहीमें
 भासतु है, स्वसबदज्ञान सो ही पदनिरवान है ॥३६॥

दोहा ।

निज महिमामैं रत भए, भेदज्ञान उर वारि ।

ते अनुभौ लहि आपकी करमल्लक निवारि ॥ ४१ ॥

आत्माका स्वरूप ।

मत्तगयन् सवैया ।

मेरो तरूप अनूप मिराजत, मोहीमें और न भासत
 आना । ज्ञान कलानिविचेतन मूरति, एक अखण्ड
 महामुसथाना ॥ पूरण आप प्रताप लिए, जहँ जोग नहो
 परके मर जाना । आप लखै अनुभाउ मयी अति, देव
 निरजनकी उर जाना ॥४३॥

३ अमघनकी निहारो ।

सर्वथा ३१ सा ।

१०११ अथ अमघन अमित तेज, एक अनिकार
 १०११ अमघन । अथ ए सुभाष जाओ मर्म हू समारग्यौ
 १०११ अथौ भानि भव्यौ मयनम ॥ क्रम
 १०११ अथौ हे निशक महा, पद पद अति रागी भव्यौ
 १०११ अथौ निष्कालकी हू विपति विलाप जीय,
 १०११ हू निहारि हेरौ अपि निर्व धनमै ॥४६॥

ज्ञानशक्तिकी महिमा ।

सकति अनेत ओमै चेतना अधनिरूप, ताहूमै प्रधान
 महा गायक सकति है । परम अखंड बृहमण्डकी लम्बेयो सो
 है, मूलम सुभाष यौ सहजहीनी गति है ॥ सुपरप्रकामनी
 सुभासनी सरूपी है, सुगंधी विलोसिनी अपाररूप अति
 है । उपयोग साकार बन्यो है सरूप जाओ, ज्ञानकी सकति
 'दीप' जानै साँची प्रति है ॥४७॥

द्रव्यका स्वरूप ।

गुण परजाय गहिरण्यौ है मरूप जाओ, गुण परजाय बिन्दु
 द्रव्य नाहि पाईए । द्रव्यको मरूप गहिर गुण परजाय भए, ।

द्रव्यहीर्म गुण परजाय ए वताईए ॥ सहज सुभाय जाति
 भिन्न न वतायो द्रव्य, विन ही सुभाय उस्तु कैर्म ठहराईए ।
 तांत म्यादवाद विधि जगर्म अनादिभिद्ध, वधनके द्वारि
 कहो कहाँ लागि पाइए ॥७३॥

सर्ग ३१ मा ।

ध्याप मुद्ध मत्ताकी अग्रम्या जो स्वरूप करै, मो ही
 करतार दय कहै भगवान है । परिणाम जीवहीको करम
 कराने यातैं, परणति क्रिया जाकाँ जानै मो ही जान है ॥
 करता करम क्रिया निहचे विचार दख, उस्तुमौ न भिन्न
 होइ यहै परमान है । कहै 'दीपचट' छाता छानर्म विचारै
 मो ही, अनुभौ अखड सहि पारे सुखधान है ॥७०॥

पंचपरमेष्ठी कथन ।

दीहा ।

मकल एक परमात्मा, गुण ज्ञानादिक सार ।
 सुध परणति परजाय है, श्रीजिनयर अरिका ॥९०॥
 सकल करमसौ रहित जो, गुण अनत परधान ।
 किंच उन परजाय है, चहै सिद्ध भगवान ॥९७॥

५ द्वार ते गुण छतीस है जास ।

६ अत्राय है, आचारज परकाम ॥९८॥

७ तप पदा, अंगपरय गुण जानि ।

८ अत्राय है, उपाध्याय भी मानि ॥९९॥

९ गुणमौ धौ, आठनीम गुणलीन ।

१० अत्राय है, महामाधु परनीन ॥१००॥

सामायिक कथन ।

संख्या ३१ मा ।

सुम वा असुम नाम जागै गममात्र करें, भली बु
धापनामिं समता करीजिएँ । चेतन अचेतन वा भलो तु
द्रव्य दग्नि, धारिकें निवेक तहाँ ममता करीजिएँ ॥ शोभ
अशोभन जो ग्राम वनमाहि सम, भले तुरे समैं हूँ मैं स
भाय कीजिएँ । भल तुर भायनिम कीजे ममभाव जा
सामायिकभेद पट यह लिखि लीजिएँ ॥१०३॥

मम भद्रीका स्वरूप ।

है नाहीं है नाहि वनगोचर हू नाहीं यह, है नाहीं
नाहींमाहिं तिहूँ भेद कीजिए । स्वपरचतुष्कभेदसेती ज
भाधियत, सो ही नयभगी जिनगानीमें कहीजिए ॥ १०४ ॥

पदसेती सात भगसौ मरूप सावै, परमाणु भगीसा अभग
माधि लीजिए । दोउमों गहन सौ तौ दुरनय भगी वही,
यहै तीनमेद सातभगीके लखीजिए ॥११६॥

अप ही आपरूप होना है ।

स्वमनेद ज्ञान अमलान परिणाम आप, आपनकी दण
आप आपहीमों लए हैं । आप ही स्वरूप लाभ लया
परणामनिर्म, आपहीमें आपरूप हैकें थिर थए हैं ॥
सामतो पिणक आप उपादान आप करे, कृता करम
विया आप परणए हैं । महिमा अनत महा आप धरे
आपहीनी, आप अविनामी सिद्धरूप आप भए हैं ॥११७॥

चिदानन्दका माहात्म्य ।

चेतनाविज्ञान जामें आनंदनिगम नित, ज्ञान परकाम
घरें देव अविनामी है । चिदानन्द एक तू ही सासतो
निरजन है, महा मयमजन है महा सुखरासी है ॥ अचल
अखड शिष्यानसौ रमेया तू है, कहा भयो जो तो होय
रह्यो भवनामी है । मिद्व भगवान जेमौ गुणसौ निधान तू
है, निहचै निहारि निधि आप परकामी है ॥१२२॥

नेहा ।

पदचानैत, उपज आनंद आप ।

१ गह सान्पको, जमै पुण्य न पाप ॥१२५॥

अनुभयकी महिमा ।

परित्त इरतासा ।

जगमें अनादि यति जेने पद धारि आए, तेउ सर तिरै
 ला अनुभौ निधानको । याके निन पाए, मुनिहूमो पद
 निमित्त है, यह सुखसिधु दरसाय भगवानको ॥ नारकी हू
 निरमि ज तीर्थकर पद पायै, अनुभौ प्रभाव पदचानै
 निगानको । अनुभौ अनत गुणके धरै याहीको, तिहुँलोक
 पन हित जानि गुणगानको ॥ १२६ ॥ अनुभौ अखंड रम
 गाराधर जग्यौ जहाँ, तहाँ दुख दागानल रच न रहतु है ।
 परमनिवास भगवास घटा भानवैको, परम प्रेचड पौन
 मुनिजन कहतु है ॥ याको रम पीएँ फिरि काहूकी न इच्छा
 होय, यह सुखदानी सर जगमें महतु है । आनंदको धाम
 अभिगम यह मतनको, याहीके धरैया पद मासतौ
 लहतु है ॥ १२७ ॥ आतम गवैपी मत याहीके धरैया जे हैं,
 आपमें मगन करै आन ना उपासना । निकलप जहाँ कोऊ
 नही भागतु है, याके रस भीने त्यागी मरै आन धामना ॥

विद्यानंद दयके अनंतगुरु । कह, निनकी मरुति सर
साहिमाहि भासना । व्यय उपादध्रुव द्रव्य गुण परजाय,
महिमा अनंत एक अनुभाषितमनी ॥१२८॥

गुण अनंतके रस मर अनुभौ रसके माहि ।
याने अनुभौ मागिगौ, और दूसरो नाहि ॥१२९॥

जगतकी जैती विद्या भामी कररेखावत, कोटिक
जुगातर जो महा तप कीने हैं । अनुभौ अखंड रस उरम
न आयौ जो तौ, मित्रपद पाव नाहि पररस मीने हैं ॥
आप अलोकनिम आप सुग पाईयतु, पर उरभार होय
परपद चीने हैं । तात तिरुलोकपूज्य अनुभौ है आत्माकौ,
अनुमरी अनुभौ अनूप रस लीने हैं ॥१३०॥

उद्यममे ही सिद्धि है ।

उद्यमके टार कहैं माध्यमिद्धि कही नाहि, होनहार
सार जाको उद्यम ही द्वार है । उद्यम उगार दुखदोषको
हरनहार, उद्यममें सिद्धि वह उद्यम ही सार है ॥ उद्यम
मिना न कहैं भागी भली होनहार, उद्यमको साधि भव्य
गए भयपार है । उद्यमके उद्यमी कहाए मवि जीव तात,
उद्यम ही कीजे कीयौ चाहै जो उद्धार है ॥१४१॥

२. (१) लक्ष्मणे ही मगन रहो ।

हि न न गिरपय मायतु है, रहत उपाधि

५५५५ है । दम्य चिनमूरतिकों आनंद

गो सुगारम पोंन अमिरागी हैं ॥ चेतना

५५५५ तो नी मार जान्यो, अनुमों रमिरु है

५५५५ है । रुह 'दीपचंद' चिदानंदरी लगत

। ५५५५ उपयोगी प्रोपपद अनुमारी है । १४५॥ अलख

५५५५ जानि ज्ञानसौ उद्योत लीण, प्रगट प्रराम जायौ

५५५५ है छिपाए । दमन-ज्ञानगरी अविहारी आत्मा है,

५५५५ यदि अरलोकिं अनत सुख पाई ॥ मित्रपुरी फारण

५५५५ निगारण मरल दोष, ऐमें मार भों मरमिनु तिरि जाइए ।

५५५५ चिदानंद दव दमि जाहीम मगन हजे, यानि और भाव

५५५५ कोउ टार न अनाई ॥१४६॥

दोहा ।

गुण अनत के रम मयै, अनुमों रमके माहि ।

५५५५ यानि अनुमों मारिगौ, और दूसरो नाहि ॥१४७॥

५५५५ पर परमगुरु जे भण, जे हेंगे जगमाहि ।

५५५५ ते अनुमों परमादृत, यामे धौगौ नाहि ॥१४८॥

आत्माकी महिमा ।

सूत्रिया ३१ सा ।

चेतन अनादि नर तत्त्वम गुपत भयौ, सुदृ पव देगै

समुधारूप आप है । कनक अनेक वान भेदों धरत
 तोऊ अपने सुभावर्म न दूरो मिलाव है ॥ भेदभार धरैहैं
 अमेदरूप आत्मा है, अनुभो विष्णु मित भरदुग्गताप है ।
 जानत विशेष यौ असेर माधुभासतु है निदानद दूर्म न कोऊ
 पुण्य पाप है ॥१८९॥ फटिकके दृष्टि नव नेमो रग दीजियत,
 तमो प्रतिमामे धर्म जहाँसो रग है । अपनी सुभास सुद्व
 उज्ज्वल विराजमान, ताहीं नहों तन और गहै नहि मग
 है ॥ तम यह आत्माहि परमाहि परही भी,— भासै पै मटिय
 याही चिदानन्द अग है । याहीन अगद पद पावै जगमाहि
 जेई, स्यादवादनय गहै मग मरवग है ॥१९०॥

ॐ इतिमपूर्ण ॐ

ॐ ब्रह्मविलाम ॐ

(भैया भगवतीदासजी कृत)

पुण्यपचीसिका

कवित्त ।

ज्ञानमें है ध्यानमें है वचन प्रमाणमें है, अपने सुधा
 नमें है ताहि पहचानि रे । उपजै न उपजत मृग न मरत
 जोई, उपजन मरन व्याहार ताहि मानि रे ॥ रामो न,
 रकमो है न पकमो है, अति ही अटकमो है ।

॥ १९ ॥ अतो प्रज्ञा कर अष्टकर्म नाग कर, ऐसी
॥ २० ॥ भया नाहि उर आनिरे ॥ १९ ॥

जातिर कवित्त ।

॥ २१ ॥ भगममहि भूल्यो कर्म नलिनपै, पैठो
॥ २२ ॥ अस्त्राद्विरम्यो इह आनरु, लट्म्यां तर ऊर्ण
॥ २३ ॥ पारै मोहमग्न चुङ्गलमो, कहै कर्ममो नाहि
॥ २४ ॥ देखू री नहि गुनिचार भद्रिज जन, जगत जीव
॥ २५ ॥ स्मभाय ॥ २० ॥

कवित्त ।

जो पे चारो घेद पड़े गये पचि रीक रीक, पडितकी
उलामे प्रगीन तू फहायो है । धरम व्योहार ग्रन्थ ताहूके
अनरु भद, ताकू पड़े निबुण प्रनिद्ध तोहि गायो है ॥
आत्मरु तत्तको निमित्त कहूँ तन्न पायो, तौलौ तोहि
ग्रन्थनिमें ऐसे के बतायो है । जैसे रम व्यञ्जनमें करछी
किर सगीर, मूटतास्त्रभावमा न स्वाद बहुत पायो है ॥ २१ ॥

ज्ञानअष्टोत्तरी ।

कर्मको करैमा सो तौ जानै नाहि कैसे कर्म, भरममें
अज्ञादिहीको कर्म करतु है । कर्मको जनैमा भेया सो तौ
कर्म करै नाहि, कर्मसाहि तिहूँ काल धरमें धरतु है ॥

इहै नही जाति पाविलच्छन स्वमान भिन, कह न एरुमेरु
होइ रिचरतु है । जा दिनाते ऐमी दष्टि अन्तर दिखाई दइ,
ता दिनाते आपु लखि आपु ही तरतु है ॥२२॥

संख्या ।

जीन अरुता रहयो परको, परको करना पर ही
परगान्यो । ज्ञाननिधान मदा यह चेतन, ज्ञान करै न करै
कहु आन्यो ॥ ज्यों जग दूर दही घृत तकरी, शक्ति धरै
तिहु काल बरगान्यो । दोऊ प्रगीन लगै दगसेति सु, भिन
रहै अपुमो लपटान्यो ॥२३॥

सांख्य रचित ।

जाके घट ममजित उपजत है, मो तौ करत हमको गीत ।
धीर गहत छोटत जलको संग, गाके कुनही यहै प्रतीत ॥
कोटि उपाय करो कोउ भेदमां, कीर गई जल नेकु न पीत ।
तुलै मध्य करत गहै गुण, घट घट मध्य एकनयनीत ॥२४॥
मिद्वममान चिदानंद जानिके, वापत है घटके उर सीच ।
गाके गुण सग वाहि लगावत, और गुणहि मग जानत कीच ॥
ज्ञान अनत विचारत अंतर, राखत है जियरु उर सीच ।
ऐमें ममजित शुद्ध करतु है, तिनतैं होवत मोक्षनगोच ॥२५॥

चेतन र्मचरित्र ।

धौसाई ।

अत्रिचल धाम धसे शिव भूप । अष्ट गुणात्म सिद्ध
स्वरूप ॥ चरमदह, परमित परमेश । विजित करो रिच

निरमेश ॥ १०८ ॥ निरजन नाम । कालअन्तर्दि
 यप्रिया ॥ १०९ ॥ न स्वहृ होय । सुख अन्त
 निरमेश ॥ ११० ॥ लासलोक प्रगट मत्र वे ।
 पद ॥ १११ ॥ येससर समल प्रतिभाम ।
 गह ॥ ११२ ॥ पाम ॥ ११३ ॥ पटगुणी हानि
 पद ॥ ११४ ॥ चभापहि र्म ॥ उत्पत व्यप
 पद ॥ ११५ ॥ यिते मर शिवराम ॥ ११६ ॥
 पद ॥ ११७ ॥ प्रमान । पायो शिवगड रतननि
 पद ॥ ११८ ॥ यिते वत नाम । इहमिध तिष्ठति
 आतमराम ॥ ११९ ॥ निगमिषा जगम जहू होय । मिद्व
 निमानी दग्धु पेय ॥ मिद्व गमान निहारहु आप । जाते
 मिद्वि मरल मताप ॥ १२० ॥ निश्चयष्टि देय घट
 मादि । मिद्व रु तोमदि अन्तर नाहि ॥ ये मन कर्म होंय
 जहू अग । तू 'भिया' रेतन सरंग ॥ १२१ ॥ ज्ञान दग्ध
 चारित भडार । तू शिवनायक तू शिवमार ॥ तू मन कर्म
 जीत जिय होय । तरी महिमा वरने कोय ॥ १२२ ॥

बोद्धा ।

गुण अन्त या हमके, मिहमिध कहै पसान ।

धोरेमें कछु वरनये, 'मयिक' लेहु पहिचान ॥ १२३ ॥

फुटकर कविता ।

कविता ।

आत्मा अनूपम है दीप्त रागद्वेष विना, देखो भवि
जोंगों ! तुम आपमें निहारकें । कर्मको न अश कोऊ
भर्मको न वश कोऊ, जाकी शुद्धताईमें न और आप
दारकें ॥ जमो गिरगैत बम तैसो ब्रह्म यहाँ लम, यहाँ
यहाँ फेर नाहीं देमिषे विचारकें । जौई गुण मिद्वमाहि
मोई गुण ब्रह्ममाहि, मिद्वब्रह्म फर नाहि निर्वच निर-
धारकें ॥ ८६ ॥

अष्टांगी पाहा ।

चेतन चेतो चेतना, तो चेत चित चैन ।

तातें चेतन चैन त, चेतनता नित नन ॥ ३० ॥

चतुरसरी दोहा ।

अध्यात्ममें आत्मा मम, अध्यात्म, धाम ।

आत्म अध्यात्म मतै धू मम आत्म ताम ॥ ७१ ॥

परमार्थपदपक्ति ।

० राग देव गधार ।

अव मै छाड़ियो पर जजाल ॥ अम मै ० ॥ देव ॥ लण्यो

अनादि मोह अम भारी तज्यो ताहि तत्काल ॥ अम मै ०

॥ ० आत्म रस, धार्यो मै अद्वय, पायो परम,

॥ यत्र मै० ॥ २ ॥ सिद्ध समान शुद्ध गुण राजत, मो
रूप गुणिमाल ॥ यत्र मै० ॥ ३ ॥

२ । राग विलायत ।

या घटमें परमात्मा चिन्मूरति भइया । ताहि मिली
गुह्यसिद्धों पडित परसया ॥ या घटमें० ॥ १ ॥ ज्ञानस्वर
सुधामयी, मनविषु तरैया । तिहूँ लोकम प्रगट है, जो
ठकुरैया ॥ या घटमें० ॥ २ ॥ आप तरै तारै परहि, जे
जल नइया । केवल शुद्ध स्वभावर है, समुझै समुझैया
या घटमें० ॥ ३ ॥ द्रव यहै गुरु है वहै, शिख यहै बसइया
निधुनन मुट्ट चहै मदा, चेतौ चितइया ॥ या घटमें० ॥ ४ ॥

३ । राग काफ़ी ।

॥ जाकी मन लागौ निजरूपहि, ताहि और क्यों भाँपै
ज्या अट्ट धन लहै रक कहूँ, और न काहु दिखाने
जाकी० ॥ १ ॥ गुण अनंत प्रगटे जिह यानक, तापट
को भाँपै । इहविधि हस सरल सुरमागर, आपुहि आ
लपायै ॥ जाकी० ॥ २ ॥

४ । राग सारंग ।

जगतगुरु कब निज आत्म ध्याऊँ ॥ जगत० ॥ टेक
नम दिगवरसुद्रा धरिकें कर निज आत्म ध्याऊँ । ऐस
लखि होइ कब मोको, हो वा छिनको पाऊँ ॥ जगत० ॥ १ ॥

कर घग् त्याग होऊं बनबामी, परमपुरुष लौ लाऊं । रहों
 अडोल जोड पदमामन, करम कलक खपाऊं ॥ जगत०
 ॥ ७ ॥ केवलवान प्रगट कर अपनों, लोमलोक लयाऊं ।
 जन्म अरा दुख देय जलाजलि, हों कर मिद्व कदाऊं ॥
 जगत० ॥ ३ ॥ मुख अनत निलमों तिहें थानरु, काल
 अनत गमाऊं । 'मानसिंह' महिमा निज प्रगटै, यहुर न
 मयमें आऊं ॥ जगत० ॥ ४ ॥

०० । राग मारु ।

जो जो देख्यो जतरागने मो मो होमी बीरारे । दिन
 देख्यो होमी नहिं क्याही, काह होत अमीरा रे ॥ जो०
 ॥ १ ॥ समयो एरु बड़ नहिं घटमी, जो मुख दुखकी
 पीरा रे । तू क्यों सोच करे मन कूड़ो, होय बज्र ज्यो हीरा
 रे ॥ जो० ॥ २ ॥ लगे न तीर कमान बान कहुं, मार
 सकै नहिं मीरा रे । तू मम्हारि पौस्य बल अपनो, मुख
 अनत तो तीरा रे ॥ जो० ॥ ३ ॥ निश्चय ध्यान धरहु
 गा प्रभुको, जो टारै भयभीरा रे । 'भैया' चेत धरम निज
 अपनो, जो तारै भयनी । रे ॥ जो० ॥ ४ ॥

‘१ मानसिंह भैया भगवतीनासनीका परम मित्र था ।

गुरु शिष्य प्रश्नोत्तर ।

मेहा ।

गुरु शिष्य गुरु शिष्य सुनि, आयो गुरुके पास ।
 गुरु गुरु गुरु गुरु गुरु, अचरजही अरदास ॥ १ ॥
 "न प्रथम" मैं गुन्यो, एक नगरके बीच ।
 "गुरु" रिपुमं रिपु रघो, राज करें सब नाच ॥ २ ॥
 नाचमु गाय कर जहाँ, तहाँ भूष बलहीन ।
 प्रपनो जाय चले नहीं, उनहीके आधीन ॥ ३ ॥
 न याही मानें नहीं, यह वासों रमलीन ।
 मत्तर कोड़ाकोडिलों, बदोखानें दीन ॥ ४ ॥
 बदोखान ममान नृप, कर राख्यो उहि ठौर ।
 वासो जोर धल नहीं, उनहीके मिरमौर ॥ ५ ॥
 व जो थाता देत हैं, मोड़ करें यह काम ।
 आप न जानें भूष मैं, ऐमो है पित आम ॥ ६ ॥
 उनकी चेरीसों रचे, तजि निज नारि निधान ।
 वही स्वामि मो कौन वह, जिनको ऐमो ज्ञान ॥ ७ ॥
 कौन देश, राजा करन, को रिपु को कुल नारि ।
 को दामा कहु कृपाकरि, यासो भेद विचारि ॥ ८ ॥

शुम्भराच ।

गुरु बोल संमंजित जिना, मोठ पात्र नाहि । मरें रिद्धि
इक टोर है काया नगरीमाहि ॥९॥ काया नगरी जीव नृप,
अष्ट कर्म अति जोर । मात्र अनानदानी रचे, पगे विषयकी
ओर ॥१०॥ विषयबुद्धि जडा है नहीं, नहा मुमति की चाह ।
जो सुमती सो कुल प्रिया, इहि यात्रे निरगाह ॥११॥
आप पगवे बश परे, आपा टांगो खोय । आपा आपु न
जानहीं, कहो आपु क्यों होय ॥१२॥ आप न जानें आपको,
कौन उवाचनहार । तबहि शिष्य ममंजित लहयो, जान्यों
मबहि विचार ॥१३॥ इहि गुरु शिष्य चतुर्दशी, सुनहु सरे
मन लाय । यहै दाम भगवतको, ममताके घर आय ॥१४॥

इति गुरुशिष्यचतुर्दशी ।

मि त्यागविध्वंसनचतुर्दशी ।

कवित्त मनदर ।

नेकु राग होत जीत भवे रीतराग तुम, तीनलोक पृथ्वपद
येहि त्याग पायो है । यह तो अनृष्टी पान तुम ही बताय देहु,
जानी हम अरही पुचित्त लनचायो है ॥ तनिकहु कष्ट नाहि
पाइये अनत सुग, अपने महजमाहि आप ठहरायो है ।

(गुरु जी न उत्तर दिया ।

जात है परसम त्यागत ही, जारि दीने भ्रम
 न भवत रहस्यो है ॥३॥ वीतराग देव सो तो बनत
 मनुज कहाय शिव लोरुमध्य लहिये । आचारज
 जो न कोउ यहाँ साधु जो बताये सो तो दक्षिणमें
 नर पुनीत मोऊ सिधमान यहाँ नाहि, मम्यकरे
 जाय मगदहिय । शास्त्रकी सरवा तामें बुद्धि अति
 ता, पनम मममें कहो कैसे पय गहिये ॥३॥ तू ही
 रातगग दय राग द्वेष टारि देग, तूही तो कहाय मिद्व अष्ट
 रम नागर्त । तू ही तो आचारज है आचरै जु पचाचार, तूही
 जगनाय चिनवाणीक प्रकाशर्त ॥ परको ममत्त त्याग, तू ही
 दे गो अपिराय, रायक पुनीत व्रत एकादश मामत ।
 मम्यक स्वभाव तेरो, शास्त्र पुनि तेरी बाणी, तू ही भैया
 छानी निच रूपरे निगामते ॥४॥

परित्त मनहरन ।

मोहके निगारे राग द्वेषट निगारे जाहि, राग द्वेष टारें
 मोह नैरह न पाहये । कर्मकी उपायिक निगारिबेको पंच यहै,
 जबरे उगारें वृत्त बने टहराइये ॥ द्वार पात फल फूल सरे
 कूम्हनाय जाय, कर्मनक वृत्तनको गेसे के नमाइये । तरे
 होय निदान प्रगट प्रकाशरूप, बिलसै अनत भुग मिद्वमें
 कहाइये ॥५॥ जबे निगानट निच रूपको समार देखे, कौन

हम कौन कर्म कहाँको मिलाप है । रागद्वेष भवने अनादिके
 भ्रमाये हमें, ताँते हम भूल परे लाम्यो पुण्य पाप है ॥
 रागद्वेष भ्रम ये सुभाष तो हमारे नाहिं, हम तो अनत
 ज्ञान, मानसो प्रताप है । जैसे जिर रंग रंगे तंगे ब्रह्म यहाँ
 लम, तिहँ काल शुद्ध रूप "भया" निरा प्राप है ॥९॥ जीव
 ते अकेलो है त्रिकाल तीनों लोभमध्य, ज्ञान पुन प्राण
 जीके चेतना सुभाष है । अमर्याद परदश परित प्रमान
 धन्यो, अपने महजमाहि आप उद्वेग है ॥ राग द्वेष मोह
 तो सुभारिमें न पाके कहें, यह तो रिभाष पर मगति
 मिलाप है । ध्यानम सुभाषमा रिभाषो अतीत सदा,
 चिदानन्द चेतनेको ऐसे में उपाप है ॥१०॥ मिथ्या भाष जौलों
 तौलों भ्रमों न नातो दूँ, मिथ्याभाष जौलों तौलों कर्मसो
 न छूटिये । मिथ्याभाष जौलों तौलों सम्यक् न ज्ञान होय, मिथ्या
 भाष जौलों तौलों थरि नाहिं हटिये ॥ मिथ्याभाष जौलों
 तौलों मोक्षको भ्रमाय रहै, मिथ्याभाष जौलों तौलों परसग
 जूटिये । मिथ्याको विनाश होत प्रगट प्रकाश जोत, सुधो
 मोक्ष पथ सुध नेक न थहटिये ॥ १२ ॥

। जिनगुणमाला । ७६ ।

ज्ञान अनंतमय आत्मा, दर्शन जासु अनत ।

—सुर अरु धीर्य अनत बल, सौ उदो भगवत ॥१६॥

माय ॥३०॥ उपजे मोघ कपाय कटाच । तन तहँ रहै
 आपसों राच ॥ मो ममतादिक लच्छन जान । योरेमें कछु
 कह्यो बखान ॥३१॥ अब कहँ हय उपादय भेद । जाके
 लखे मिट मन गेद ॥ प्रथमहिं हय रहत मोय । जामे
 त्याग कर्मरी होय ॥३२॥ पुढल न्याग योग्य मर तोहि ।
 इनरी सगति मगन न होहि ॥ एमें नो रगत परिणाम ।
 हय कहत है ताको नाम ॥३३॥ अर रहँ उपायरी बात ।
 जामे ग्रहण अर्थ गिन्यात ॥ निज स्वरूप जो आतमराम ।
 चिन्तनद है ताको नाम ॥३४॥ नान दग्ग चारित भडार ।
 परमधरम धन धारन हार ॥ निराकार निरभय निरूप ।
 मो अविनाशी ब्रह्म स्वरूप ॥३५॥ ताको महिमा जानहि
 मत । जाकी सकृति अपार अनत ॥ ताहि उपादेय जानहि
 जोय । नम्यकट्टी कहिये सोय ॥३६॥ निज स्वरूप जो
 ग्रहण करेय । परमत्ता मर त्यागे देय ॥ एम मान धरहि
 जो कोय । हेय उपादेय कहिये सोय ॥३७॥ अर धीरज
 गुण कहँ बखान । जिनके ते समदृष्टी जान ॥ धर्मरिपे जो
 धीरज धर । कष्ट देख सरघा नहि टरै ॥३८॥ महँ उपमर्ग
 अनेक प्रकार । मचहू धीरज हँ निरधार ॥ मिथ्यामत जो
 देख कोय । चमत्कार तामे बहु होय ॥३९॥ तयहू ताहि
 लखहि अज्ञान । सो धीरजधर सम्यकगन । अर कहँ हरप
 गुणहिं ममुभाय । समदृष्टी यह महज सुभाय ॥४०॥ निज

५ भिन्नो जो ताय । ताके हर्ष महा उर होय ॥ सुख
 ॥ ५८ ॥ उम । तिर निरगै हरपै निसदीम ॥ ५८ ॥
 ॥ ५९ ॥ गुण परचाय । जाने निन आगम सुपसाय ॥
 ॥ ५९ ॥ ३ सुनिनाशी नाहि । यात हर्ष महा उर माहि ॥ ५९ ॥
 ॥ ६० ॥ ४ अनन्य देव । ताकी प्रभुनाकेसर भेज ॥ अनंत चतुष्टय
 ॥ ६० ॥ ५ निज माहि निहार ॥ ६० ॥ जन्म
 ॥ ६१ ॥ दुग नहु जान । तिहै भिन्न अपनपो मान ॥
 ॥ ६१ ॥ निरुमान विवारहि चित्त । तात हर्ष महा उर नित्त ॥ ६१ ॥
 ॥ ६२ ॥ ताक हृदय भयो परकाश । ताकी कुमति गई मय नाश ।
 ॥ ६२ ॥ जाके घट भगवति परकाश । ताके ये गुन होंहि निगाम ॥ ६२ ॥
 ॥ ६३ ॥ मय्यदर्श तहै जो जीय । सो शिररूपी कह्यो सदीय ।
 ॥ ६३ ॥ तात सम्यक्ज्ञान प्रमान । जातें शिवकूल होय निदान ॥ ६३ ॥

मिद्ध चतुर्दशी । दाहा ।

परमदेव परणाम कर, परम सुगुरु आराध ।

परम ब्रह्म महिमा कहैं, परम धरम गुण साध ॥ १ ॥

कवित्त ।

आतन अनोपय है दीमै राग द्वेष विना, देखो भव्य-
 जीय ! तुम आपमें निहारकैं । कर्मको न अश कोऊ भर्मको
 न वश कोऊ, जाकी शुद्धताई मैं न और आप टारकैं ॥

जैमो शिर खेत उस तेमो नख इहों लमै, इहों उहों फेर
नाहि देखिये प्रचारकैं । जेई गुण मिद्धमाहि तेई गुण नख-
पाहि मिद्ध नख फेर नाहि निश्चय निरधारकैं ॥ २ ॥

मिद्धकी समान है प्रिराजमान चिदानन्द ताहीको निहार
निजरूप मान लीजिये । कर्मको बलक अग पक ज्यों
पगार हरयो, धार निजरूप परभाष त्याग दीजिये ॥
धित्तकै सुखको अभ्यास कीजे रैन दिना, अनुमोके रसको
सुधार भले पीजिये । ज्ञानको प्रकाश भास मित्रकी समान
दीमै, चित्र ज्यों निहार चित ध्यान ऐमो कीजिये ॥ ३ ॥
भाषकर्म नाम रागद्वेषको बखान्यो जिन, जाको करतार
जीव भर्म सग मानिये । द्रव्यकर्म नाम अटकर्मको शरीर
रह्यो, ज्ञानावर्णी आदि सब भेद भले जानिये ॥ नोकरम
सज्जात शरीर तीन पावत है, औदारिक वैक्रीय आहारक
प्रमानिये । अतरालसमें जो अहार विना रहै जीव, नो
करम तहाँ नाहि याहीतैं बखानिये ॥ ४ ॥

सत्रिया ।

लोपहि कर्म हरै दुख भर्म सुघर्म सदा निजरूप
निहारो । ज्ञानप्रकाश भयो अघनाश, मिथ्यात्व महातम
मोह न हारो ॥ चैतनरूप लखो निजभूरत, सूरत सिद्धसमान
विचारो । ज्ञान अनत यहै भगवत, वैसे आर पकतिसों
॥ ५ ॥

छापय छद ।

त्रिभिर्भिर्भक्त भिन्न, भिन्न परस्पर परमै ।

त्रिभिर्भिर्भक्त चिद, लख निन दान दरमै ॥

यम दाय रत्नमाहि, मिद्व मममिद्व विगजहि ।-

म दाय परम स्वरूप, ताहि, उपमा मय छाजहि ॥

एत भिर्भिर्भक्त गुण प्रथमहि, चेतनता निर्मल लमे ।

तम पद त्रिकाल उदत 'भक्ति', शुद्ध स्वभावहि नित वम ॥६॥

अष्टकर्मै रूढित, महित निज ज्ञान प्राण धर ।

चिदानन्द भगवान, रमन तिहुँ लोक शीशपर ॥

मिलसत सुखजु अनत, मत ताहो नित भगवहि ।

वेदहि ताहि समान, आयु घटमाहि, लखायहि ॥

इम ध्यान फरहि निर्मल निरति, गुण अनंत प्रगटहि सरन ।

तस पद त्रिकाल उदत 'भक्ति', शुद्ध सिद्ध आत्म दरप ॥७॥

ज्ञान उदित गुण उदित, मुदित भई कर्म कपायें ।

प्रगटत परम स्वरूप, ताहि निज लेत लखायें ॥

दत परिग्रह त्याग, हत निहचे निज मानत ।

जानत मिद्व समान, ताहि उर अतर ठानत ॥

सो अविनाशी अविचल दरन, सर्व नेय ज्ञायक परम ।

निर्मल निशुद्ध शास्वत सुखि, चिदानन्द चेतन धरम ॥८॥

कवित्त ।

यारे मतवारे जीय । जन मतवारे होहु, जिनमत
 आन गहो जिनमत छोरेकैं । धरम न ध्यान गहो
 परमन ध्यान गहो, धरम स्वभाव ताहो, शकति
 सुखोरकैं । परसो मनेह करो, परम सनेह रगो, प्रगट गुण
 गेह करो मोहदल मोरकैं । अष्टादश तोष दरो, अष्ट कर्म
 नाश करो, अष्टगुण भाम करो, कहूँ कूज जोरकैं ॥ ९ ॥
 पर्यामें न ज्ञान नहि ज्ञान रस पचनमें, कर्ममें न ज्ञान नहीं
 ज्ञान कहूँ गधमें । रूपमें न ज्ञान नहीं ज्ञान कहूँ ग्रथनमें,
 शब्दमें न ज्ञान नहीं ज्ञान कर्म बधमें ॥ इनतैं अनीत कोऊ
 आत्म स्वभाव लमै, तहाँ बसै ज्ञान शुद्ध चेतनाक गधमें ।
 गेयो बीतरागदेव कस्यो है प्रकाशमेव, ज्ञानवन पारै ताहि
 मूढ़ पारै धरधमें ॥ १० ॥ बीतराग बन मो तो ऐनसे
 भिगनत है, जाके परकाश निजभास पर लहिये । सुभक्त
 पद दर्व मरि गुरु परजाय भेट, देव गुरु ग्रथ पथ मत्प उर
 गहिय ॥ कर्मको नाश जामें आत्म अभ्यास कहो,
 ध्यानकी हुताम अग्निक्निन्ने ददिये । सोल दग दिय
 रूप अहो अविनाशी भूप, विद्वकी समान सब तोष रिद्ध
 कहिये ॥ ११ ॥ रागकी जु रीतसु तो बड़ी निपरीत कहो,
 दोषकी जु बात ॥ तो महादुख दान है इनही को सगतिमों ।

जो जगजाल के नरक निपात है ॥
इसीने जगजाल घातों निगोद बीच, जाके दुग्गदाहरो
न ॥ १११ ॥ ये ही जगजाल के किराणियों बड़े
भर, जगजाल के भयभ्रम न मिलान है ॥१२॥

मात्रि कवित्त ।

जो जगजाल के नरक निपात है ॥
इसीने जगजाल घातों निगोद बीच, जाके दुग्गदाहरो
न ॥ १११ ॥ ये ही जगजाल के किराणियों बड़े
भर, जगजाल के भयभ्रम न मिलान है ॥१२॥

दाता ।

जो जगजाल के नरक निपात है ॥
इसीने जगजाल घातों निगोद बीच, जाके दुग्गदाहरो
न ॥ १११ ॥ ये ही जगजाल के किराणियों बड़े
भर, जगजाल के भयभ्रम न मिलान है ॥१२॥

ॐ इति मिद्वचतुर्दशी ॐ

सुबुद्धिचौवीसी ।

हृष्य ।

जो जानहि सो जीव, जीव विन धौर न जान ।
जो मानहि मो जीव, जीव विन धौर न मानें ॥
जो देखहि मो जीव, जीव विन धौर न देखें ।
जो जीवहि मो जीव जीव गुण यह विसेखें ॥

पहिमा निपान अनुभूत युत, गुण अनत निर्मल लमे ।
मो जीव, द्रव्य पेशत भवि, मिद्व खेत मडलहिं रमे ॥२८॥

व्यक्ति ।

सुबुधिप्रकाशमें सु आतम तिलाममें सु, प्रिता अन्याम
सुज्ञानको निवाम है । उरपसी गीतिर्म तिनजडा प्रत्यात्म
सु, कर्मनयी जीतमें अनेकमुख भाम हैं । उरपाट २४१
ही निनपद पायत ही, द्रव्यके लपार। ही अत्रा मत्र
पाम है । गीतराग वानी यहै मडा अत्र म माम, सुगर्म
मडा निवाम पूरन प्रकाश है ॥२४॥

श्रीशिवपद पचीमिका । १॥१॥

जब लो जिय इह धानक माहि । तब लो निय जग
रामि रहाहि ॥ इनहि उलधि मुक्तिमें चाहि । ज्ञान अनतहि
तहाँ रहाहि ॥२३॥ मुख अनत तिलमहि निहँ ज्ञान । इहि
भाख्यो है श्री भगवान् ॥ भया मिद्व ममान निहार । निपघंट
माहि यहै पद वार ॥२४॥

अनित्य पचीमिका । २॥१॥

पच रण वमनमों पच रण बूलि जाल, मान वम मत्य
पेन देखे मान नाश है । दयाको निवाम मो, बी बेदीको
झी, रूपको जु कोट सुती नो ।

१८ वाट १८ ६११]
 १८ वाट १८ ६११]
 १८ वाट १८ ६११]
 १८ वाट १८ ६११]

। इन्द्रपथपञ्चीमिका । कवित्त ।

॥२॥ कल्याण्ड इन्डाओ न राखे उर, तेरो नाम
 ॥३॥ नामना हात है । तेरा नाम चिन्तामन चिन्ताओ
 ॥४॥ पाम, तेरो नाम पारम मां दारिद उरत है ॥ तेरो
 नाम प्रमृत पिपेत जरा रोग जाय, तेरो नाम सुखमूल
 दुःखओ दरत है । तेरो नाम धीतराग धरै उर धीतरागा,
 भय तोहि पाय मयसागर तगत है ॥३॥ नदीके निहारतहि
 आतमा निहारयो जाय, जा पै कोउ ज्ञानमत देखै दृष्टि
 धरकें । एक नीर नयो आय एक आगे चरयो जाय, इहा
 थिर छराय रहयो पूर भरकें ॥ ताहूमें कनोल कई मांतिरी
 तरंग उठ, तिनसे पुनि ताहूमें अनेरुधा उछरिकें । तैसें इह
 आतममें कई परिणाम होय, ऐसे परवान है अनत शक्ति
 फरकें ॥१२॥

मनीषा इन्द्रुक्रिया ।

निशत्रोम' यहै मन लाग्यो रहै, सु मुनिन्द्रक पाय
 रय परमा । जिनदरके देगनकी रटनाजु, कइो किम जाहुं
 (आत्माका । २ रातदिन ।

मिना परसों ॥ कथों शिखलायमें जाय वमों, सुख मवि
 लहा मजिहें परसों । कच जोग मिल इम इच्छित है म व,
 आजके कान्हि किधों परमो ॥१६॥

सत्रेया (मत्तगपन्द)

जो जगको मर देखत है तुम, ताहि मिलोकिहें काहे
 न देखो । जो जगको मर जानतु है, तुम ताहि जु जानो
 तो सुधा है लेखो ॥ जो जगमें थिर हैं सुख मानत, सो सुख
 देखत सैन मिशेरों । है घटमें प्रगटे तबही, जगही तुम
 आप निहारके पेलो ॥२०॥

कविच ।

रेवलीके ज्ञानमें प्रमान आन सर भाँम, लोर ओ
 अलोरुनरी जेता कछु बात है ॥ अतीत काल भई है
 अनागतमें होयगी, वर्तमान ममकी विदित यों मिखात है ॥
 चेतन अचेतनके भाग मिश्रमान सने, एक ही मममें जो
 अनंत होत जात है । ऐसी कछु ज्ञानकी विशुद्धता विशेष
 धनी, ताको धनी यहै हम कैयें मिललात है ॥२५॥

आरच्य चतुर्दशी । दोहा ।

नमो पदारथ सागरे, निज अनुभूति प्रकाश ।
 मर्म द्रव्य व्यापी गम्, केवल ज्ञान प्रकाश ॥

कवित्त ।

२२. निन्दित को दूरत स्वरूप निज, भगत है
तान तात उगतायके । बोलत है बोल ऐसे बोलत न
०५ तान लोक स्थनरी देत है बतायके ॥ छहों काय
१०० मत्स्य पैन भासिवेसी, पर द्रव्य नासिवेसी कहै
१०५ मगक । कर्म नयायवेसी आप निधि पायवेसी, सुगमा
अदम्यवेसी सिद्धि द लखायके ॥३॥

प्रश्न । बोहा ।

पूछन है जन जैनरी, चिदानदमों पात ।
आये हो किम देशन, कहो कहाँ को जान ॥७॥

कवित्त ।

दश तो प्रसिद्ध है निगोट नाम मिथुमहा, तीनसे तैताल
राजु जासी परमान है । तहाँकि बसीया हम चेतनके पमवार,
पमत अनादि काल गोन्यो निज ज्ञान है ॥ तहाँतैं निकस कोउ
कर्म शुभ जोग पाय, आय हम इहाँ मुने पुरुष प्रधान है ।
ताके जँय परवेसी महाप्रत, धरवेसी, शिष्य मग करवेसी
चलियो निदान है ॥८॥ एक दिन एक ठौर मिले ज्ञान
चारितमों, पूछी निज बात कहाँ राखरो निग्राम है । बोले
ज्ञान सत्यरूप चिदानद नाम भूप, असग्न्यात परदेश ताके
पुराण है ॥ एक एक देशमें अनंत गुण ग्राम बसै, तहाँ के

बमेया हम चरणांके दाम हैं । तू हू चल मेरे मग दोऊ
मिलि लूँ सुख, मेरे आँख तेरे पाय मिलो योग राम
है ॥९॥ लाल बख पहिरेसो देह नो न लाल होय, लाल
देह भये हम लाल तौ न मानिये । रत्नके पुगने भये दह
न पुगनी होय, देहके पुराने जीर जीरन न जानिये ॥
यमनक नाश भये दहको न नाश होय, देहके न नाश हम
नाश न बखानिये । दह दर पुद्गलकी चिदानंद ज्ञानमयी,
दोऊ भिन्न भिन्न रूप 'भया' उर आनिये ॥१०॥

प्रश्न । कथित (अज्ञानी)

दर्शन भए भए सोई चेतन, दर्शन भए मुक्त नहिं होय ।
चारितभट तरे भवमागर, यह अचरज पृथक् गिशु कोय ॥१२॥

उत्तर बीपाई ।

तेरह रिधि चारितजो धरै । तिह विन तजे न भनदधि तरै ॥
जब ये भार करहिं उर नाश । तरजिय लहै मोक्षपद राम ॥१३॥

रागादिनिर्णयाष्टक । श्लो० ।

मर्व ज्ञेय ज्ञायक परम, केवल ज्ञान चिन्द

॥ चरन बदन करौ, मन घर परमानन्द ॥१॥

(अज्ञानी जीव) ।

मात्रिक कवित्त ।

१. माहरी परणति, है अनादि नहि मूल स्वभाव ।
२. रागादिभ्यः रागि जसे, रागादिक ज्यों रग लगाव ।
३. रग नरल जग मोहत, मो मिथ्यामति नाम कहाव ।
४. रागी मो लगि दुहैं दल, यथायोग्य वरते कर न्याव ॥२॥

दोहा ।

जो रागादिभ्यः जीयके, है कहैं मूल स्वभाव । तो होते
 रागी लोभ, देग चतुर कर न्याव ॥३॥ मयहि कर्मते
 भिन्न है, जीय जगतके माहि । निश्चय नयसों देखिये, फग
 रच कहू नाहि ॥४॥ रागादिकमो भिन्न जर, जीय मयो
 जिह काल । तब तिह पायो मुक्ति पद, तोरि कर्मके
 जाल ॥ ५ ॥ ये हि कर्मके मूल हैं, राग द्वेष परिणाम ।
 इनहीमें सब होत है, कर्म बधने नाम ॥६॥

चा श्रवण छन्द । (२५ मात्रा)

रागी बाधे कर्म समझी भरनमों । बैरागी निर्ध
 स्वरूपाचरनसों ॥ यहै बध अरु मोक्ष कही समुझायके ।
 दगो चतुर सुजान ज्ञान उपजायके ॥ ७ ॥

कवित्त ।

राग रु द्वेष मोहरी परणति, लगी अनादि जीय कहैं
 दोय । तिनको निमित्त पाय परमाणू, बध होय वसु

भेदहि सोय । तिनत होय दह अरु इन्द्रिय, तहाँ त्रिप रम
 भुजत लोय । तिनमें राग द्वेष जो उपजन, तिहँ ममारचक्र
 फिर होय ॥ ८ ॥

दोहा ।

रागादिक निर्यय क्यो योर में ममुभाष ।
 'भया' सम्यक् नैनत, लाज्यो मयहि लखाय ॥ ९ ॥

ॐ इति रागादिनिर्णयाष्टक ॐ

पुण्यपापजगमूलपञ्चीसी ।

चोदयण छन्द ।

पुण्यपापको खेल, जगतमें बनि गयो । इनहीक
 परमाद सुखी दुखिया रूखो ॥ दोउ जगतके मूल, मिनाशी
 जानिये इनहीते जो भिन्न, सुखी गो मानिये ॥ १४ ॥
 मोह मगन ममार, त्रिपय सुखमें रहै । कर न आप सम्हार
 परिग्रह सग्रहै ॥ जाने यह धिर वाम, नाश नहीं होयगो ।
 पाके मानुष जन्म, अकारथ ग्योयगो ॥ १५ ॥ देवधर्म
 परतीति, परीक्षा माचरी । मीर्म नाहि सुदृष्टि, रतन अरु
 साचरी ॥ जन्म अकारथ जाय, सुनो धन दाजरे ।
 पीछे फिर पछताय, बहुर नहिं दाजरे ॥ १६ ॥ पुण्य पाप
 परतथ, दोउ जगमूल है । इनहीमें ममार, भरमकी भूलहै ॥

मात्रि कवित्त ।

१. १२१ परगति, है अनादि नहि मूल स्वभाव ।
 १२२ ३३ ३३ ३३, रागादि ज्यो रग लगाव ।
 १२३ ३३ ३३ ३३, मो मिथ्यामति नाम कहाव ।
 १२४ ३३ ३३ ३३, यथायोग्य परतै कर न्याव ॥२॥

दादा ।

१. १२५ ३३ ३३, है फट्ट मूल स्वभाव । तो होते
 १२६ ३३ ३३, देख चतुर कर न्याव ॥३॥ मयहि फर्मते
 १२७ ३३ ३३, जीव जगतके माहि । निश्चय नयसों देखिये, फरक
 १२८ ३३ ३३, नाहि ॥४॥ रागादिकमो मित्र जय, जीव भयो
 १२९ ३३ ३३, तिह पायो मुक्ति पद, तोरि फर्मके
 १३० ३३ ३३, ये हि फर्मके मूल है, राग द्वेष परिणाम ।
 १३१ ३३ ३३, इनहीमें मय होत है, कर्म बघके नाम ॥६॥

शास्त्राय धन्य । (२५ मात्रा)

रागी बाधे करम मरमकी भरनमों । पैरागी निर्मय
 स्वरूपाचरनमों ॥ यहै बध अरु मोघ कही ममुक्तायके ।
 दगो चतुर सुजान ज्ञान उपजायके ॥ ७ ॥

कवित्त ।

राग रु द्वेष मोहकी परगति, लगी अनादि जीव कहै
 दोष । तिनको निमित्त पाय परमाणू, बध होय वसु

भदहि मोय । तिनत होय देह अरु इन्द्रिय, तहाँ पिपें रम
 भुजत लोय । तिनमें राग द्वेष जो उपजत, तिहें ममारबक
 फिर होय ॥ ८ ॥

दोहा ।

रागादिकु निर्णय कछो, थोरे में ममुभाय ।
 भैया मम्यक नेनत, लीज्यो मचडि लखाय ॥ ९ ॥

ॐ इति रागादिनिर्णयाष्टक ॐ

पुण्यपापजगमूलपचीसी ।

चांद्रायण छन्द ।

पुण्यपापको खेल, जगतमें बनि रह्यो । इनहीके
 परसाद सुखी दुखिया कछो ॥ दोउ जगतके मूल, मिनाशी
 जानिय इनहीते जो भिन्न, सुखी सो मानिये ॥ १४ ॥
 मोह मगन समार, त्रिपय सुखमें रहै । करे न आप सम्हार
 परिग्रह मग्रहै ॥ जाने यह धिर बाम, नाश नहीं होयगो ।
 पाक मानुष जन्म, अकारय ग्योयगो ॥ १५ ॥ देवधर्म
 परतीति, परीक्षा साचफी । सोरै नाहि सुदृष्टि, रतन अरु
 काचका ॥ जन्म अकारय जाय, मुनो मन बाजरे ।
 पीछ फिर पडताय, बहुर नहि दावरे ॥ १६ ॥ पुण्य पाप
 परतक्ष, दोउ जगमूल है । इनहींमें ममार, भरमफी भूलहै ।

माना, नए नहि हमरो । ताही त
 म न वज को ॥ १७ ॥ शुद्ध निर्जने
 मन पाम है । ताको अनुभव केगे, यही
 । नरह भूल न जाहु, पुण्य अरु पापमें ।
 । प्रसाश, लहाग आपमें ॥ १८ ॥ पुण्य पाप
 । न कोट पाइये । औरनकी कहा चली, जिनैरन
 ॥ १९ ॥ ये ही जगके मूल, रह समुझायक । जो इनसेनी
 भन, रमै शिव जायके ॥ १९ ॥

बोहा ।

कहा चर्मकी दहमें, परम परे हो आन ।
 देखो धर्म भमारिक, छाड़ भरमकी दान ॥ २० ॥
 परम परतहै भरमतै, धरम तुम्हारो नाहि ।
 परम पराचा कीजिये, शर्म कहाँ इहि माहि ॥ २१ ॥
 फरन भरनतै होयगो, परन नरनके माहि ।
 ज्ञान चरनके धरन निन, तरन तुम्हारो नाहि ॥ २२ ॥
 सरन मदा दूडत रहै, मग्न बचावहि कोय ।
 हरन गान निरसे पुर, तरन कहामों होय ॥ २३ ॥
 जीव कौन पुद्गल रहा, भौ गुण भौ परजाय ।
 जो इतनो समुझै नही, मो मूरख गिराय ॥ २४ ॥

पुण्य पाप वश जीव मर, वसत जगतमें जान ।

‘भैया’ इनतें भिन्न जो, ते सब मिद्ध ममान ॥ २७ ॥

जिनधर्मपञ्चीसिका । दोहा ।

प्रगट देव परमात्मा, चिदानन्द भगवान् ।

घटत हों तिनके चरन, नाथ गीश घर ध्यान ॥ १ ॥

ज्यों लीपक सयोगतें, उची करे उदोत ।

त्यों ध्यावत परमात्मा, जिय परमात्म होत ॥ २६ ॥

अनादिउत्तीमिका ।

दोहा ।

ऊहों सु द्रव्य अनादिके, जगन माहि जयवत ।

को स्मि ही कर्त्ता नहीं, यों भारै भगवत ॥ २ ॥

अपने गुण परजायमें, वरतै मर निरधार ।

को काह भेट नहीं, यह अनादि विस्तार ॥ ३ ॥

अपने अपने मङ्गल स्रव, उपजत तिनगत वस्त ।

हैं अनादि को जगत-यह, इहि पङ्कार समस्त ॥ २६ ॥

चेतन थर पुद्गल मिले, अपने कई विहार ।

तामो तिन ममुम्मे कहै, रन्धो तिनहिं मसार ॥ २७ ॥

यह समार अनादि को, यही भाँति चल आय ।

अपने तिनशे थिर रहै, सो मर उस्तु समाय ॥ २८ ॥

१. १. १. जलम् । रोमं गिरपुर जात ।
 १. १. २. अग्निमो भुक्ति होत रे आत ॥ १७ ॥
 १. १. ३. अग्नि, रोक्न हारो धौन ।
 १. १. ४. अग्नि, निन निमित्तके होन ॥ १८ ॥
 १. १. ५. अग्नि, उलट रह्यो जगमाहिं ।
 १. १. ६. नो चने, मिद्व लोक नो जाहिं ॥ १९ ॥
 १. १. ७. अग्नि निमित्तही, उलट रह्यो उपयोग ।
 १. १. ८. अग्नि मभय, उपादान तुम जोग ॥ २० ॥
 १. १. ९. अग्नि निमित्त, हमपै कही न जाय ।
 १. १. १०. अग्नि, देव त्रिभुवनराय ॥ २१ ॥
 १. १. ११. अग्नि, मोही मावो आहि ।
 १. १. १२. अग्नि, अनादिके, गली कहोगे काहि ॥ २२ ॥
 १. १. १३. अग्नि, यह गली जाको नाश न होय ।
 १. १. १४. अग्नि, निनशत गहै, गली कहाँत मोय ॥ २३ ॥
 १. १. १५. अग्नि, तुम जोर हो, तो क्यों लैत अहार ।
 १. १. १६. अग्नि, योगमो, जीवत मय समार ॥ २४ ॥
 १. १. १७. अग्नि, जोगमो, जीवत है जगमाहिं ।
 १. १. १८. अग्नि, मसारके, मरते कोऊ नाहिं ॥ २५ ॥
 १. १. १९. अग्नि, अग्नि, निमित्त लैत ये नैन ।
 १. १. २०. अग्नि, कित गयो, उपादानद्वय दैन ॥ २६ ॥
 १. १. २१. अग्नि, अग्नि जो, करै अनेक प्रकाश ।
 १. १. २२. अग्नि, निन ना लैत, अग्नि मय भाम ॥ २७ ॥

कहै निमित्त वे जीउको, मो भिन जगके माहि ।
 मरै हमारे वश परे हम भिन मुक्ति न जाहि ॥ २८ ॥
 उपादान कहै रे निमित्त, ऐसे बोल न बोल ।
 ताको तन निज भवत है, तेही कर मिलोल ॥ २९ ॥
 कहै निमित्त हमरो तजे, ते कर्म शिख जत ।
 पर महाप्रत प्रगट हैं, और हुनिया विरुयात ॥ ३० ॥
 पच महाप्रत जोग त्रय, और मरुल व्यवहार ।
 परको निमित्त खपायके, तन पहुँचै भरपार ॥ ३१ ॥
 कहै निमित्त जग मैं बढो, मोत बढो न कोय ।
 तीन लोफके नाथ भव, मो प्रसादतैं होय ॥ ३२ ॥
 उपादान कहै तू कहा, चहुँ गतिमें ले जाय ।
 तो प्रसादतैं जीव मन, दुरी होहि रे माय ॥ ३३ ॥
 कहै निमित्त जो दुर सहै, मो तुम हमहि लगाय ।
 सुखी सैन तैं होत है, ताकी देहु बताय ॥ ३४ ॥
 जा सुखरो तू सुख कहै, मो सुख तो सुख नाहि ।
 ये सुख, दुखके मूल है, सुख अविनाशी माहि ॥ ३५ ॥
 अविनाशी घट घट बर्म, सुख क्यों मिलमत नाहि ?
 शुभ निमित्तके योग भिन, परे पर मिललाहि ॥ ३६ ॥
 शुभनिमित्त डढ जीउको, मिल्यो कई मरसार ।
 पै डकसम्पक दश भिन, भटभट फिरयो गंगार ॥ ३७ ॥

१ नम नटा, परित मुकृतिमें जाहि ।
 २ गतिन है, ते शिवको पहुँचाहि ॥ ३८ ॥
 ३ मरना, मोर योगही रीति ।
 ४ लभो, जोर लई शिवप्रीति ॥ ३९ ॥
 ५ १० तो तहाँ, अत्र नहि जोर बमाय ।
 ६ १० लाखम, पहुँच्यो कर्म रूपाय ॥ ४० ॥
 ७ १० ता तहाँ, निजबल पर परकाश ।
 ८ १० प्रिय भोगवँ जन न बरन्यो ताम ॥ ४१ ॥
 ९ १० अरु निमित्त ये, मर जीवन्त धीर ।
 १० १० लक्षणिक ममारही, मो पहुँचे भयतीर ॥ ४२ ॥
 ११ १० मरिमा, ब्रह्मकी, कैसे परमी जाय ।
 १२ १० अगोचर तस्तु है, कहियो रचन बनाय ॥ ४३ ॥
 १३ उपादान अरु निमित्तको, मरम रन्यो मराद ।
 १४ ममदृष्टीको सुगम है, मृग्यतो वरुनाद ॥ ४४ ॥
 १५ जो जानै गुण ब्रह्मके, मो जानै यह भेद ।
 १६ सास पिनागममो मिल, तो मत कीज्यो रेद ॥ ४५ ॥
 १७ नगर आगरो अग्र है, जैनी जनको वाम ।
 १८ तिहँ वानकरचना करी, भैया'समति प्रकाश ॥ ४६ ॥
 १९ सप्त पित्रम भूपको, नरद्वर्म पचास ।
 २० फाल्गुण पहिले पंचम, दशो दिशा परकाश ॥ ४७ ॥

मेहा

गागमाय छूटगो नहीं, मिटथो न अंतर दोय ।
मनति चाढ़े बघरी, होय कहींमो मोर ॥ १७ ।

पंचेन्द्रियमराद । नहा ।

पर द्रव्यनमों भिन्न जो, स्थित्य भास गमना ।
मो चेतन परमात्मा, ठरयो ज्ञान प्रशान ॥ १४० ॥
जो देखे गुण द्रव्यके, जानें मरगो मर ।
मो या घट में प्रगट है, कहा रगत है रंग ॥ १४१ ॥
गुण अनतरो नाथ वह, चिदानन्द भगवान ।
दर्शन ज्ञान सिराजतो, देखो घर निज ध्यान ॥ १४२ ॥
देखनदारो ब्रह्म वह, घट घटमें परत-अ ।
मिथ्यातमक नाशते, मूके मयरो म्यच्छ ॥ १४३ ॥
जैमो शिर तैमो इहाँ, भैया फल न कोय ।
देखो सम्पक नयनमों, प्रगट सिराज मोय ॥ १४४ ॥
निरट ज्ञानदग देखते, निरट चर्मदग होय ।
निरट रट जब रागरी, प्रगट निदानद जोय ॥ १४५ ॥

ईश्वरनिर्णयपञ्चमी । कविस ।

जैमे कौड ग्यान परथो मारके महन बीस
भूस मरथो है । चानर

१ अण, हयमें निहार मिह आप कू
 रुटिकरी शिनाम मिलो गन जाय
 १ क सुमटाओ कौनो पकरथो है । तमें ही
 गताभाय मान हम, अपनो स्वभाय भूलि
 १ ४ ॥ १२ ॥

कर्त्ता अकर्त्ता पचीसी ।

प्राप्त ।

वर्षनको कर्त्ता नहीं, गता सुद्ध सुभाय । ता ईश्वरके
 चरनको, पढीं शीश नयाय ॥ १ ॥ जो ईश्वर करता कहें,
 भुक्ता कहिये पौन । जो करता सो भोगता, यह न्यायको
 मौन ॥ २ ॥ दुहें दोषते रहित हैं, ईश्वर ताका नाम ।
 मनबनगीम नगार्हें, कर ताहि परगाम ॥ ३ ॥ कर्मनते
 करता कहें, जाय नान न होय । ईश्वर ज्ञानममूह है, किम
 कर्त्ता हैं सोय ॥ ४ ॥ ज्ञानयत ज्ञानहि करे, अज्ञानी अज्ञान ।
 जो ज्ञाता कर्त्ता कहै, लगे दोष अममान ॥ ५ ॥ ज्ञानीप
 जड़ता कहा, कर्त्ता ताको होय । पडित हिये विचारक,
 उत्तर दीन मोय ॥ ६ ॥ अज्ञानी जड़तामयी, करे अज्ञान
 निशक । कर्त्ता भुगता जीव रह, यो भारै भगवत ॥ ७ ॥
 ईश्वरकी निय जात है, तानी तया अज्ञान । जो इह न
 दो, सो हैं गत प्रमान ॥ ८ ॥ अज्ञानी कर्त्ता कहै,

तो सब धन बनाव । ज्ञानी हू जड़ता करे, यह तो बने न
 न्याव ॥ ९ ॥ ज्ञानी करता ज्ञानको, करे न करुँ अज्ञान ।
 अज्ञानी जड़ता करे, यह तो यात प्रमान ॥ १० ॥ जो
 कर्ता जगदीश है, पुण्य पाप किहू होय । सुख दुख काशे
 दीजिये, न्याय करहु बुध होय ॥ ११ ॥ नरकनमें जिय
 डारिये, पकर पकरके मरे । जो ईश्वर करता कहो, तिनको
 कहा गुनाह ॥ १२ ॥ ईश्वरकी आज्ञा मिला, करत न कोऊ
 काम । हिमादिकु उपदशको, कता कहिय राम ॥ १३ ॥
 कर्ता अपने कर्मको, मजानी निर्धार । दोष दत्त जगदी
 शको, यह मिथ्या आचार ॥ १४ ॥ ईश्वर तो निदोष है,
 करता भुक्ता नाहि । ईश्वरको कता कहै, त मरत जग
 माहि ॥ १५ ॥ ईश्वर निर्मल मुकुटत, तानलोह आभाम ।
 सुख मत्ता चतन्यमय, निरोग जान रिलाम ॥ १६ ॥ जाके
 गुन तामें बसे, नहीं और में होय । मृगी दृष्टि निहारतै,
 दाप न लागै कोय ॥ १७ ॥ बीनरागयानी निमल, दोष
 रहित तिहुंराल । ताहि लखे नहि मूढ़ जन, भूठे गुरुके
 बाल ॥ १८ ॥ गुरु अंधे शिष्य अवसी, लख न पाट
 कुपाट । मिना चक्षु भटकत फिर, सुने न हिय कपाट ॥ १९ ॥
 जोला मिथ्यादृष्टि है, तोला कर्ता होय । सो हू भावित
 कर्मको, दर्शन कर न कोय ॥ २० ॥ दर्श कर्म पुद्गलमयी,
 कर्ता पुद्गल ताम । ज्ञानदृष्टिके होत ही, सुझे मय परकाश

॥ २१ ॥ नीलो जीव न जान ही, छोड़ो कायके धीर ।
 ताँता रचा कौनसी, कर है साहस धीर ॥ २२ ॥ जानत
 मैं मन नाशो, मानत आप समान । रचा पात करत है,
 मरमें लगत जान ॥ २३ ॥ अपने अपने महजक, कर्ता
 न यह तब । यह धर्मो मूल है, समस्त लहु जिय
 मर ॥ २४ ॥ 'भेषा' बात अपार है, वहै कहाँ कोय ।
 गहरान समझियो, जानत जो होय ॥ २५ ॥

ॐ इति कृत्ताध्यात्मगीता ॐ

अथ मनवत्तोमी लिख्यते ।

जय मन मूघो ध्यानमें, टडिय भई निराश ।
 तब इह आतम प्राने, कीने निन परकाश ॥ १५ ॥
 तब उड़े आरमों, चक्रवर्ति जगमाहि ।
 फेरत ही मन एरुसी, बले मुक्तिमें जाहि ॥ २४ ॥
 बाहिल परिगढ़ रचनहि, मनमें धरै विकार ।
 तादृल मच्छ निहारिये, पड़ नरक निरधार ॥ २५ ॥
 भावनहीतें यह है, भावनहीतें मुक्ति ।
 जो जानै गति भावसी, सो जानै यह युक्ति ॥ २६ ॥

फुटकर विषय ।

कवित्त ।

तेरो ही स्वभाव चिनमूगति गिराजतु है, तेरो ही
 स्वभाव मुख गागरमें लहिये । तेरो ही स्वभाव ज्ञान दर-

सनह राजतु है, तेरो ही स्वभाव ध्रुव चारितमें बहिये ॥
तेरो ही स्वभाव अपिनाशी सदा दीमतु है, तेरो ही
स्वभाव परमात्ममें न गहिय । तेरो ही स्वभाव सब आन
ससै जळमाहिं, याने वोहि जगतसो ईश सरदहिये ॥ १ ॥

श्लोका ।

त्याग बिना तिरयो तहों, दखतु हिये निवार ।
तूयो लेपहि त्यागतो, सब तरि पहुँचे पार ॥ २४ ॥
रोग बढो ममारमें, पहुँचाई जियलोक ।
त्यागहितें मर पाइये, सुग अन्तके थोक ॥ २५ ॥

अथ परमात्मजातक ।

श्लोका ।

मकल देवमें देव यह, मरल मिद्वमें मिद्व ।
सरल माधुम मातु यह, पेट' निजातमरिद्व ॥ २ ॥

सोरठा ।

पीरे' होहु सुजान, पीरे' का रे है रह ।
पीरे तुम अपन ज्ञान, पीरे'-सुधा सुषुद्धि यह ॥ ४ ॥

श्लोका ।

फिरे बहुत ससारमें, फिरि फिरि थाके नाहि ।
फिरे जगहि निजरूपको, फिरे न पहुँगति माहि ॥ १३ ॥

१ दख । २ (पियरे) अर्थात् प्यारे हो । ३ दुःखित ।

४ पान पर ।

परमायुष्यं परमं तद्धी, परमायुष्यं निजं वाम ।
 परमायुष्यं परमं तद्धी, परमायुष्यं निजं वाम ॥१६॥
 परमायुष्यं जानें परम, परं नहि जाये भेद ।
 परमायुष्यं निजं परमिषो, दग्धं ज्ञानं भवेत् ॥१७॥
 परमायुष्यं निजं जानिषो, यद्दं परमसो' राव ।
 परमायुष्यं जानें नहि, परं परमं सिद्धिं वार ॥१८॥
 आप पराये प्रग परं आपा दग्धो मोष ।
 आप पराये जानें नहि, आप प्रगट क्यो होष ॥१९॥
 निनरो महिमा न लगे, ते निन दोग्धि निष्ठा ।
 निनपाती यो वदन् है, जिन जानहु कद् ध्यान ॥२०॥
 स्थान धरो निनरूपो, ध्यानमाहि उर आन ।
 तुम तो गता जगतरे, येतहु निनती मान ॥२१॥
 येतनरूप आप है, जो वदितानें रोष ।
 हीनलोक्क नायसी, महिमा पाये मोष ॥२२॥
 निन पुनहि निनर नमहिं घरहि गुणिता ध्यान ।
 केवलपदमहिमा लगहि, ते निय मम्यरायान ॥२३॥
 तुम तो परम ममान हो, मदा अलिप्त स्वमार ।
 लिप्त भये गोरमो गिरे, तारी कीन उपाय ॥२४॥

१ उवाच । २ परन्तु । ३ आनया । ४ आप अपारा
 नहीं जानता । ५ 'गो' इन्द्रियाँ 'रस' विषयने ।

वेदमात्र^१ मय त्यागि करि, वेद^२ जलसो रूप ।

वेद^३ माहि सय रोज है, जो वेद चिद्रूप^४ ॥२८॥

अपने मध्य स्वरूपमों, जो जिय राखि प्रेम ।

सो निहचे शिरपद लहै, मनसावाचा नेम ॥३०॥

जो जन परसा हित करै, निज सुधि गये निमार ।

सो चिन्तामणि रत्नमम, गयो जन्म नर द्वारि ॥३८॥

जैसे प्रगट पतङ्गके, दीप माहि परकाश ।

तैसे ज्ञान उदोतमों, होय तिमिरसो नाश ॥३९॥

आप अकेलो जलमय, पश्यो भग्नके फट ।

ज्ञानशक्ति जानें नहीं, कैम होय सुख^५ ॥४४॥

शिरस्वरूपके लखतहीं, शिरमुख होय अनत ।

शिरममाभिमें हम रह, शिरमूरति भगरत ॥४५॥

या मायासों ताचिके, तुम जिन भूलहु हम ।

मगति थारी त्यागिके, चीन्हो अपनो अस ॥४८॥

जोगी^६ न्यारी जोगतें, करै जोग^७ सय राज ।

जोग^८ जुगत जानें मर, मो जोगी शिरराज ॥४९॥

१ स्त्रीपुनपुसम्मान । २ ज्ञान । ३ शान्तिमें । ४ जो यन्त्रि
चिद्रूपसे जानता हो तो, नहीं तो कुछ नहीं । ५ मन धीर वचनसे ।
६ सूय । ७ आत्मा । ८ मन वचन धारके योगसे । ९ योग्य
(अचित) । १० योग, ध्यान । ११ मोक्ष ।

॥१॥ महिमा नगामें, लोचनोक्त प्रकार ।
 मा अतिनाशी घट रिपे, कीन्दा आय निबाम ॥४०॥
 इन्द्ररूप स्वरूपमें, परमरत्न हूँ न दोष ।
 मो अतिनाशी आत्मा, निजघट परगट होय ॥४१॥
 ॥४२॥ 'गा' परगट भयो, तम अति नामे दूर ।
 गम कर्म मारग लग्यो, यह महिमा रहि पूर ॥४३॥
 ॥४४॥ तनकी गणनि रिये, चेतन होत अज्ञान ।
 ते नगमा ममता धरि, अपुनो यौन समान ॥४५॥
 ते तनमों दुर्य होत है, यहै अचमो मोहि ।
 त तनसा ममता धरि, 'चेतन ! चेत न तोहि ॥४६॥
 जा तनमा तू निज कहै सो तन तो तुम नाहि ।
 भान प्राण मयुक्त जो, मो'तन तो तुम माहि ॥४७॥
 जाके लगन यहै लग्यो, यहै भि यहै पर होय ।
 महिमा मम्यकान्तासी, विरला बूझ कोय ॥४८॥
 छहौं द्रव्य अपने महज, राजत है जगमहि ।
 निदोष दृष्टि त्रिलोकिये, परमें कन्है नाहि ॥४९॥
 जद 'चेतनकी मिथता, 'परम'द्वको रान ।
 मम्यक हात यहै लग्यो, एक पथ द्वै पाज ॥५०॥
 ममुझे पुरख ब्रह्मको, रहे लोम लौं लोय ।
 जान चुक हूँ परै, तामों कहा बसाय ॥५१॥

अपनी नयनिधि छाडि कै, मागत घर घर भीख ।
 जान बूझ कृप परै, ताहि कही कहा सीख ॥६५॥
 मूढ़ मगन मिथ्यातमें, ममुझ नाहि निठोल ।
 कानी कौडी कारणें, खोरै रतन अमोल ॥६६॥
 कानी कौडी विषय सुख, नरमय रतन अमोल ।
 पुरव पुन्यहि रर चढयो, भेद न लहै निठोल ॥६७॥
 चौरामी लखमें फिरै, रागद्वेष परमद्व ।
 तिनसों प्रीति न कीजिये, यहै ज्ञानसो अद्व ॥६८॥
 चल चेतन तहाँ जाइये, जहाँ न राग विरोध ।
 निन स्वभाव परकाशिय, कीजे आत्म योग ॥६९॥
 तेरे बाग सुझान है, निज गुण फूल विनाल ।
 ताहि मिलोइदु परम तुम, छाडि आल जनाल ॥७०॥
 छहों द्रव्य अपने सहज फूल फूल सुरग ।
 तिनसों नेह न कीजिये, यहै ज्ञानसो अग ॥७१॥
 माच निमारयो भूलरु, कगी झठयो प्रीति ।
 ताहीतें दुख होत हैं, जा यह गहा अनीति ॥७२॥
 हित शिवा इतनी यहै, हम सुनहु आदेश ।
 गहिये शुद्ध स्वभावसो, ताजिये कर्म क्लेश ॥७३॥

१ निठला बेछाम मूल । २ कृती । ३ बगीचा ।

४ शुद्धात्मा ।

भारता ।

कदाचिदपि यः शीति, मोहि वनात् पद्म तुम् ।
 तिनहीमो पुनि प्रीति, जो नरसहि ले जात है ॥७५॥
 अहो ! जगतक रूप मानहु एनी शीतली ।
 त्यागहु पर परजाय, फारे मूले भरममें ॥७६॥
 एहो ! चेतागण । परमा प्रीति पदा करी ।
 जा नरसहि ले जाय, तिनहामों राखे मरी ॥७७॥
 तुम तो परम गयान, परमों प्रीति पदा करी ।
 किदि गुण भव अयान, सोनि पताउहु मांच तुम् ॥७८॥
 परम शुभाशुभ दोष, तिनमो आपा मानिये ।
 कदाहु मुक्ति क्यों होय, जा इन मारग अनुमरे ॥७९॥
 मायाहीन फन्द, उरमे भवनराय तुम् ।
 ऐसे हाहु स्वठन्द, दगाहु ज्ञान गिरागिरे ॥८०॥
 एहो ! परम गयान, कौन सयानपे तुम् करी ।
 काह भव अयान, अपनी जो निधि लाडिके ॥८१॥
 नीनलोचक नाथ, जगगामी तुम् क्यों मरे ।
 गहहु ज्ञानमो साध, आपहु अपने धनविष ॥८२॥
 तुम पूना मम चन्द, पूरण ज्योति मदा मरे ।
 पर पराय फन्द, चेतु भवनराय ज ॥८३॥

जानहि गुण पयाय, ऐसे चेतनगाय हैं ।
 नैननि लेहु लासाय, एही ! मन्त सुजान नर ॥८४॥
 सर कोउ करत मिलोल, अपनेअपने महजमें ।
 भेद न सहत निठोल', भूलत मिथ्या भरममें ॥८५॥
 दोहा ।

पुद्गलको कहा दसिये, धर मिनाशी रूप ।
 देखहु आतममम्पदा, चिडिलामचिद्रूप ॥८८॥
 नित दसहु नित दसिये, पुद्गलहोगों प्रीत ।
 पुद्गल हारे हार अरु, पुद्गल जीते जीत ॥८९॥
 जगत फिरत के जुग भये, सो कहु सियो निचार ।
 चेतनअव रिन' चेतहु, नरमन लहअतिमार' ॥९१॥
 ऐमी मति विभ्रम भइ, मियन लागत धाय' ।
 के दिन के छिन के घरी, यह मुख बिर ठहराय ॥९३॥
 देखहु तो निज दृष्टिगो, जगमें बिर रनु आइ ।
 मरै मिनाशी दसिये, को तज गहिये काह ॥९४॥
 केवल शुद्ध स्वभावमें, परम अतीन्द्रिय रूप ।
 मो अमिनाशी आतमा, चिडिलाम चिद्रूप ॥९५॥
 जैमो शिखेतहि रमै, तैमो या तनमाहि ।
 निश्चय दृष्टि निहारिये, फेर रच कहूँ नाहि ॥९६॥

१ मृग । २ स्थान । ३ श्रेष्ठ । ४ दोड़ने । ५ निद्रापरमात्मा ।
 ६ मोनक्षेत्रम ।

चेतन की उपाधितन, गगद्वेषको संग ।
 जे प्रगट निज अभ्युदा, शिखर होय अमग ॥९७॥
 तू प्रनन्द को नी, सुगमय तोहि स्वभाष ।
 काले निज गगद निज, होय बेठ शिखर ॥९८॥
 जे निज गगद ते दश दिशि होय प्रकाश ।
 तमा निज गगदी, कहत 'भगवतीदाम' ॥९९॥

६ ज्ञान परमात्मशतनम् ॐ

जगत्सा रू यद्व तू, जगले ज्ञान कमान ।
 ज्ञान स्वयल्लगो परम त, मारी मनमथ' जान ॥६॥
 परम धरम अवधारि तू, परमगति कर दूर ।
 ज्यों प्रगटे परमात्मा, मुख सपति रहै पूर ॥७॥

ॐ इति सपूर्ण ॐ

ॐ समयसार नाटक ॐ

अनुभवका वर्णन । दाहा ।

वस्तु विचारत ध्यानत, मन पारि विश्राम ।
 रम स्वादत मुख उपन, अनुभौ ताको नाम ॥१७॥
 अनुभौ चिंतामणि रतन, अनुभव है रम रूप ।
 अनुभौ मारग मोनको, अनुभौ मोच स्वरूप ॥१८॥

सवैया ३१ सा ।

अनुमौके रसको रमायन कहत जग, अनुमौ अभ्याम
बहु तीरथकी ठौर है । अनुमौकी जो रसा कहावै सोई
पोरमासु, अनुमौ अघो रसासु ऊरधकी दौर है ॥ अनुमौकी
केलि इह कामधेनु चित्रावेलि, अनुमौको स्वाढ पच
अमृतको दौर है ॥ अनुमौ करम तोरे परमसो प्रीति जोरे,
अनुमौ समान न धरम कोऊ और है ॥१९॥

जीव द्रव्यका लक्षण । मोहा ।

चेतनवत अनतगुण पर्यय शक्ति अनत ।

अलस अर्साडित सर्वगत, जीवद्रव्य निरत ॥२०॥

पुद्गलद्रव्यका लक्षण ।

फरम वर्ण रस गधमय, नरदपास सठान ।

अनुरूपी पुद्गलद्रव्य, नम प्रदेश परवान ॥ २१ ॥

धर्म द्रव्यका लक्षण ।

जैसे सलिल समूहमें, करे मीनगति धर्म ।

तैसे पुद्गल जीवको, चलन महाई धर्म ॥२२॥

अधर्म द्रव्यका लक्षण ।

ज्यों अथी औपम समै, जेठे छाया माहि ।

त्यों अधर्मकी भूमिमें, जड चेतन ठहराहि ॥२३॥

आकाश द्रव्यका लक्षण ।

संतत जाके उदरमें, सकल पदारथ वाम ।

जो भाजन सब जगतको, मोई द्रव्य आकाश ॥२४॥

इत्युक्तं चत्वारः लक्षणम् ।

यः प्रियं वदति, मन्त्रं वदति यति ठानि ।

मन्त्रं वदति, मन्त्रं वदति मो जानि ॥ २५ ॥

जीवविलास वर्णन ।

प्रियता, प्रियता उन्धता, नायता सुप्रियता ।

उन्धता चतन्धता, ये मन्त्र जीवविलास ॥ २६ ॥

अजीवतत्त्व विलास वर्णन ।

तन्धता मनता चतन्धता, जड़ता जड़समल ।

लघुता गुल्फता गमनता, ये अजीवके मेल ॥ २७ ॥

पुण्यतत्त्वका वर्णन ।

जो प्रियता मानि धधे, अह उन्धता होइ ।

जो सुप्रियता जगतमें, पुण्य पदार्थ सोइ ॥ २८ ॥

पापतत्त्वका वर्णन ।

सहेश मानि धधे, सहेश अधोमुल होइ ।

दुःखदायक मसारमें, पाप पदार्थ सोइ ॥ २९ ॥

आश्रयतत्त्वका वर्णन ।

जोइ कर्म उदोत धरि, होइ क्रियागम रत्न ।

करपी नूतन कर्मसौ, सोइ आश्रय तत्त्व ॥ ३० ॥

संयततत्त्वका घर्षण ।

जो उपयोग स्वरूप घरि, वर्तै जोग विरच ।

रोकै आगत करमसों, मो है मवर तत्त्व ॥३१॥

निर्जरातत्त्वका घर्षण ।

पूरव मत्ताकर्म करि, धिति पृग्ण जो आउ ।

गिगैका उदित भयो, मो निर्जरा लगाउ ॥३२॥

बधतत्त्वका घर्षण ।

जो नवरर्म पुरानयो, मिलै गठि दिद होइ ।

शक्ति पदायै बशकी, बध पदाग्र्य सोइ ॥३३॥

मोक्षतत्त्वका घर्षण ।

धितिपृग्ण करि कर्म जो, सिंग बध पद मान ।

हस्त अम उज्जल परै, मोक्षतत्त्व मो जान ॥३४॥

चिदानंद भगवान्की स्तुति ।

शोभित निज अनुभूति युत, चिदानंद भगवान् ।

माग पदारथ आतमा, मक्ल पदारथ जान ॥३५॥

भिद्व भगवान्को नमस्कार ।

— मरीया २३ मा ।

जो अपनी धुनि आप विरानित, है परधान पदारथ
नामी । चेतन अरु मदा निरुलभ, महा सख मागरो

अनुभूति प्रवर्धना अर्थेष्टान् । सूर्या ३१ सा ।

उत्तम मन्त्रके उच्च मणि मङ्गलमें, आत्म अटल
तम ध्यान विनाश है । तसे परमात्मको अनुभूति रहत
जाना, तेना अविद्या के पक्षपात है । नयको न
लक्ष्य परमात्म । न परम, निक्षेपके समको विधाय होत
जात । जे तन्मात्र है तेउ तहों बाधक है, बाकी
गगद्वय रक्षा । सां । तातु है ॥ १० ॥

अज्ञान विनाश करन । सूर्या २१ सा ।

फोऊ बुद्धि नर तिरये शरीर घर, भेदज्ञान दृष्टिसे
विनाश रन्तु प्राप्त तो । अतीत अनागत परतमान मोहरम,
भीमयो विनाश लगे वरम विनाश तो ॥ बधको विदारि
महा मोहका स्वभाव डारि, आत्मको ध्यान करे देखे परगाम
तो । परम अलक एक रहित प्रगटरूप, अचल अशक्ति
विलोके दव सामतो ॥ १३ ॥

गुणगुणी अभेद करन । सूर्या २३ सा ।

शुद्ध नयातम आत्मकी, अनुभूति विज्ञान विभूति है
साई । वस्तु विचारन एक पदार्थ, नामके भेद कहात दोई ॥
यों सरग सदा लगि आपुढि, आत्म ध्यान करे जय कीई ।
मेदि अशुद्ध विभाव शासन, मिद स्वरूपकी प्राप्ति होई ॥ १४ ॥

ज्ञाना का चिंतन करना । सूर्या ३१ भा ।

अपने ही गुण परजायमा प्रगहरूप, परिणयो तिहूँ काल
अपने आशरमो । अतर ताडिर परागमान एकरूप, सीखता
न गहभिल रह भौ विकारसा ॥ चेतनाक्रम सगग भरि
रह्यौ जीव, जसे लूण फार भरयो है रम चारसों । पूरण
स्वरूप अति उजल विनानधन, मोको होहु प्रगट विशेष
निरधारमो ॥ १५ ॥

द्रव्य पर्याय अभेद करना । करित्त ।

जहँ ध्रुवधर्म कमल्य लतन, मिट्ट ममाधि माध्यपद
मोई । शुद्धोपयोग जोग महि भदित, मायक ताडि लह मर
कोई ॥ यो परतत्त परोन्त स्वरूपमो, सायक माध्य अस्थाय
दोई । दृष्टको एक ज्ञान मचय करि, सेरे मिर उठक थिर
होई ॥ १६ ॥

द्रव्य गुण पर्याय भेद करना । करित्त ।

दरमन ग्यान चरण त्रिगुणात्म, ममलरूप कटिधे
विनहार । निहचै दृष्टि एकरूप चेतन, भेद रहित अविचल
अविकार ॥ सम्यक्दृष्टि प्रमाण उभयनय, निर्मल ममल
एक ही गर । यो ममकाल जीवकी परणति, कहें निनेट गह
गणधार ॥ १७ ॥

व्यवहार कथन । दोहा ।

एकस्य आत्म दस, ज्ञान चरण द्य तीन ।
भदभाष परिणाम यो, विवहारे गु मलीन ॥१८॥

निश्चयरूप कथन । दोहा ।

यदपि ममल व्यवहार सौ, पर्यय शक्ति अनेक ।
तदपि नियत नय देखिये, शुद्ध निरजन एक ॥१९॥

शुद्धस्वरूप कथन । दोहा ।

एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक और ।
ममल मिमल न विचारिये यहै मिद्धि नहि और ॥२०॥

शुद्ध अनुभव प्रथमा कथन । सरीया ३१ सा ।

जाके पद साहत सुलक्षण अनत नान, मिमल मिमा-
शत ज्योति लहलही है । यद्यपि त्रिभि धरूप व्यवहारम
तथापि, एकता न तजे यों नियत अग रही है ॥ सो है
जीव कैमोह जुगतिके सगीव ताके, ध्यान कवेहूँ मेरी
मनमा उमही है । जाते अविचल - रिद्धि होत और भाँति
मिद्धि, नाहीं नाहीं नाहीं यामे घोखो नाहीं, मही, है ॥२१॥

जाताकी व्यवस्था । सरीया ३२ सा ।

वै अपनो पद आप ममारत, कै शुरूके मुखकी सुनि बानी ।
दनिजान जग्यो जिन्हके, प्रगटी मुखिये कला रजधानी ॥

भाय अनंत भये प्रतिरिचित, जीरति मोक्ष दशा ठहरानी ।
नेनर दर्पण ज्यों अरिमार, रह थिर रूप मदा मुखदानी ॥२१॥

भेदज्ञान प्रकाशा कथन । सूरैया ३१ सा ।

‘याही वर्तमानमम भव्यको मिटयो मोह, लग्यो है
अज्ञातिको पग्यो है कर्ममलमा । उड़ कर भेदज्ञान महा
रुचिको निघान, उरको उपागे भातों न्यागे दू द दलमा ॥
जाते थिर रह अनुमा जिलाम गह रकिरि, रुझूँ अपन यो न
रह पुद्गलमा । यह करतुति यो जुदाह करे जगत सो,
पायक ज्यों मिला करे कंचन उग्रल सो ॥ २३ ॥

परमार्थकी शिक्षा कथन । सूरैया ३२ सा ।

उनारमी कहै भया भय सुनो मेरी सीख, केहू भाँति
कैसेहूँ के एसो काज कीजिये । एरह सुदृग्त मिथ्यात्मको
विध्वंस होइ, ज्ञानको जगाय अमहम खोज लीजिये ॥
गहीको विचार गओ ध्यान यह कौतूहल, योही भर जन्म
परम रम पीजिये । लजिये भववर्माको जिलाम गरिमाररूप,
अत कर मोहको अननफल जोजिये ॥ २४ ॥

निश्चय आत्मस्वरूप करन । अद्वित छन्द ।

‘यह विचक्षण पुष्प सग हैं एर हों ।
अपने रम सू भरयो आपनी टेक हों ॥

मोहकर्म मम नाहि नाहि भ्रमरूप है ।

शुद्ध चेतना मित्रु हमारो रूप है ॥ ३२ ॥

ज्ञान व्यवस्था कथन । सूर्या ३१ सा ।

जगती प्रतीतिमें लरयो है निजपरगुण, दृग ज्ञान
 त्रिविध परिणयो है । निशब्द विवर आपो आछो
 विहराम पायो, आपुरीमें आपनो सहारो सोधि लयो है ॥
 रहत पनारसी गहत पुरुषाग्रहो, सहज स्वभावसों निभाव
 भटि गयो है । पन्नाके पन्नाये जैसे कचन निमल होत,
 तसे शुद्ध चेतन प्रकाश रूप भयो है ॥ ३३ ॥

ॐ इति श्री समयमार नाट्यना प्रथम जोषद्वार समाप्त भया ॐ

द्वितीय प्रजीवद्वार प्रारम्भ ॥ २ ॥

चेस्तु स्वरूप कथन । मोहा ।

चेतनगत अनतगुण, सहित सु आतमराम ।

पात अनमिल और सन, पुद्गलके परिणाम ॥ ४ ॥

अनुभव प्रशस्ता कथन । कवित्त ।

जय चेतन सभारि निज पौरुष, निरखे निज दृगमों
 निज मर्म । तब सुररूप निमल अग्निनाशिर, जाने जगत
 गिरोमणि धर्म ॥ अनुभव करै शुद्ध चेतनको, रमे स्वभाव
 यमे मय कर्म । इहि विधि मधे मुक्तिको मारग, अरु
 ममीप आनै निमशर्म ॥ ५ ॥

मेदा ।

परणादिक रागादि जड, रूप हमारी नाहि ।
 एर तब नहि दूसरो, दीसे अनुभव माहि ॥ ६ ॥
 राडो कहिये कनकसो, कनक म्यान सयोग ।
 न्यारो निरखत म्यानमों, लोह कहे सर लोग ॥ ७ ॥
 चरणादिक पुद्गल दशा, धरै जीव चहुरूप ।
 वस्तु विचारत कर्ममों, भिन्न एक चिद्रूप ॥ ८ ॥
 ज्यों घट कहिये धीरको, घटको रूप न धीर ।
 त्यों वर्णादिक नामसों, जडता लहे न जीव ॥ ९ ॥
 निराश्रय चेतन अलख, जाने सडज मुकीव ।
 अवल अनादि अनत नित, प्रगट जगतमें जीव ॥ १० ॥

अनुभव विधान रुधन । सबैया ३१ सा ।

रूप रम्यत मूरतीक एक पुद्गल, रूप विन और यों
 अजीव द्रव्य द्विधा है । चार है अमूरतीक, जीव भी अमूर-
 तीक, याहीतें अमूरतीक वस्तु ध्यान सुधा है ॥ औरसों न
 कबहु प्रगट आपा आपहीसों, ऐसी थिर चेतन स्वभाव
 शुद्ध सुधा है । चेतनको अनुभौ आशये जग तेई जीव,
 जिन्हके अलख रस चागवेसी क्षुधा है ॥ ११ ॥

अनास विलास कथन । सय्या २३ सा ।

१। प्रथम भगवत्प अनासि, विलास मोहो अविनेक
 २। ॥ तमे और मरुप न दीमत, पुढल नृत्य करे
 ३। ॥ परा मय दिवायत कौतुक, मौज लिये
 ४। ॥ दगमे । मोहमो भिन्न जुगे जड़मो चिन, मृगति
 ५। ॥ सनदागे ॥ १३ ॥

वान विलास कथन । सय्या २४ सा ।

जैसे करन गर काठ बीच खड करे, जैसे राजहम
 गिरगार दूज जलको । तैसे भेदज्ञान निज भेदक शक्ति
 सेती, भिन्न भिन्न करे चिगानद पुढलकों ॥ अग्रधियों धावे
 मनपर्यकी अस्था पाव, उमगिके आवे परमांगधिक
 यलकों । याही भोति पृथ मरुपकों उदोत वरे, करे
 प्रतिविमित पदारथ समलको ॥ १४ ॥

॥ द्वितीय अनीनद्वार समाप्त हुआ ॥

तृतीय कर्तावर्म प्रियाद्वार प्रारम्भ ॥ ॥

नका माशोत्थ । सय्या २१ सा ।

१। जीरमह मै मदीय एक, दुमरो न और
 २। ॥ अतः रिने- ॥ आपा पर भेद
 ३। ॥ मिदि ॥ भासे छहो

दरबके गुण परजाय मय, नासे दुख लग्यो मुन पुर
 परमसो । कर्मको उरतार मान्यो पुढल पिंड, आप कर्म
 भयो आतम धरमको ॥२॥ जाहो ममै जोय दड बुद्धि
 प्रसार तजे, चेष्ट स्वरूप निज मेदत भरमसो । महा कर्म
 मति मडन अगड रम अनुमौ अस्याम परकामरु दंडो
 ताही ममै घटमें न रह विपरीत भार, जेने तद नन्दे नन्द
 प्रगटि धरमको । ऐसी दशा आये लय मावद कर्म
 करता हे कैमे रहे पुढल धरमको ॥३॥

प्रथम आत्माकू कर्मको स्वी नन्दे

अकर्ता माने है । मर्यादा ३३

जगमें अनादिको अनादी बड़े जो बड़े कर्म
 यारी किरियारी प्रतिपात्ती है । अतः कर्म नन्दे कर्म
 भयो उदामी, ममता मिटाय दंड नन्दे है ॥
 निरमै स्वभाव लीनो अनुमौरी नु मं द कर्म
 दृष्टि निहचेमें रागी है । मर्यादा कर्म नन्दे कर्म
 बोरी, परममो प्रीति जोरी कर्म नन्दे है ॥ ३॥

ज्ञानको सामर्थ्य दृष्टि नन्दे ३३

जैसे जे दरब ताके तैरे नन्दे कर्म नन्दे कर्म
 पै मिले न काहु आत्मको नन्दे कर्म नन्दे कर्म

मद, पण्डित अमिलाप व्या नितर जुगे कानसो ॥ ऐसो
सपिवेळ जाके हिगद गगद भयो, ताको भ्रम गयो ज्यो
गिमिर भाग भानमा । मोह जीव करमसो कृता मो टीसे
पहि, अरुगता कह्यो शुद्धताके परमानमो ॥५॥

जीव और पुद्गलका जुदा जुदा लक्षण ।

छप्पय छन्द ।

जीव ज्ञानगुण महित, आपगुण परगुण ज्ञायक ।

आपा परगुण लखे, नाहि पुद्गल इहि लायक ॥

जीवरूप चिद्रूप सहज, पुद्गल अचेत जड़ ।

जीव अमूर्त मूर्तीक, पुद्गल अतर बड ॥

जपलग न होय अनुभौ प्रगट, तमलग मिथ्यामति लस ।

कृता जीव जड़ करमको, सुबुद्धि मिथ्याक भ्रम नमै ॥६॥

दाहा ।

कर्ता परिणामी दरन, कर्मरूप परिणाम ।

क्रिया पर्यवर्ती फिरन, वस्तु एरु अत्र नाम ॥ ७ ॥

कर्ता कर्म क्रिया करे, क्रिया कर्म करतार ।

नाम भेद बहुविधि भयो, वस्तु एरु निर्धार ॥ ८ ॥

एक कर्म कर्तृपता, कर न, कर्ता दोय ।

दुधा द्रव्य मत्ता तु तो, एरु भाव क्यों होय ॥ ९ ॥

कर्ना कर्म और नियाको विचार कहे हैं ।

सूत्रिया २१ सा ।

एक परिणामक न र्त्ता दग्गदोय, दोय परिणाम
एक द्रव्य न धरत है । एक करतृति दोय द्रव्य करहूँ न
करे, दोय करतृति एक द्रव्य न करत है ॥ जीर पुदगल
एक रेत अवगाहि शेउ, अपने अपने रूप कोउ न टरत
है । जइ परिणामनि को करता है पुदगल, चिदानंद चेतन
स्वभावर आचरत है ॥ १० ॥

यथा कर्म तथा कर्ता एकरूप कथन ।

सूत्रिया ३१ सा ।

शुद्ध भाव चेतन अशुद्ध भाव चेतन, दुहूँको करतार
जीर और नहि मानिये । कर्मपिंडको रिलाम वर्ण रम गध
फाम, करता दहूँको पुदगल परमानिये ॥ तात वर्णादि
गुण ज्ञानावस्थादि कर्म, नाना परकार पुदगलरूप जानिये ।
ममल विमल परिणाम जे जे चेतनके, ते ते मर अलए
पुरुष यों बखानिये ॥ १२ ॥

मिथ्यात्मी जीर कर्मको कर्ता माने है

सो भ्रम है । सूत्रिया ३१ सा ।

जैसे महा धूपकेतपतिमें त्रिमाये मृग, भरमसे मिथ्याजल
पीनेको धायो है । जैसे अधरार माहि जेवरी निरसि नर,

मगममा जगि मरप मानि आयो है ॥ अपने स्वभाज जैसे
मागर है थिर मदा, यमन सयोगमों उठरि अहुलायो है ॥
तस जगि जडमों अव्यापन सहजरूप, भग्ममों करमसो र्ता
कहाया है ॥१४॥

अमयकन्ती भेदज्ञानते कर्मके कर्ताका

अम दूर करे है ते ऊपर दृष्टान ।

जैसे रानहसके जन्मके सपरमत, देखिये प्रगट न्यारो
झार न्यारो नीर है । तसे समझितीके ' सुदृष्टिमें सहजरूप
न्यारो जीव न्यारो कर्म न्यारो हो शरीर है ॥ जय शुद्ध
चेतनके अनुमौ अभ्यास तर, भासे आप अचल न दूजो
और मीर है । पूर्य करम उद आइके दिखाई दइ, कर्ता न
होइ तिन्हको तमागमीर है ॥ १५ ॥

दोहा ।

ज्ञानभा नानी करे, अजानी अज्ञान ।

द्रव्य कर्म पुढगल करे, यह निश्चै परमाण ॥१७॥

ज्ञान स्वरूपी आतमा, करे ज्ञान नहि और ।

द्रव्य कर्म चेतन करे, यह व्यग्रहारी दौर ॥१८॥

शिष्यप्रश्न-कर्तृत्व स्थान । सनेया २३ सा ।

पुढल कर्म करे नहि जीव, कही तुम मैं समझी नहि
तेमी । कौन करे यह रूप कहो, अर को कर्ता करनी कहु

कमी ॥ आप ही आप मिलै मिथुर जड, क्योंकर मो
मन मगय ऐसी । शिष्य मदेह निरागण राख, बात रुठ
गुरु है कतु जैसी ॥ १९ ॥

मोहा ।

पुद्गल परिणामी दरम, मदा पश्यवे मोय ।
याने पुद्गल कर्मका, पुद्गल कता होय ॥ २० ॥

पुन शिष्य प्रश्न — अविज्ञ धव ।

ज्ञानरतको भोग निर्जग हतु है । अनामीको भोग
बय फल देतु है ॥ यह अग्रजकी बात हिने नहि आग्रही ।
पढ़े कोऊ शिष्य गुरु समझावही ॥ २१ ॥

शिष्यका सवेष्ट निराकरणके लिये गुरु गवार्थ
उत्तर छहे हैं । सविद्या ३१ सा ।

दया दान पूजादिक विषय कपायादिक, दुहैं कर्म भोगै
पै दुहूको एत गेत है । ज्ञानी मूढ कर्म करत दीसे एक्से
पै परिणाम, भेद न्यारो न्यारो फल दत्त है ॥ ज्ञानरत
कर्मनी करे पै उदासीन रूप, ममता न धरे ताते निर्जराको
हेतु हैं । वह करतति मूढ करे पै मगनरूप, अध भयो
ममतामों बय फल लेत है ॥ २२ ॥

कल्लोल, फैने, चंचल सुमाय लोकालोकलों उछलने है ॥
 ऐसी नय कल तासी पच तजि धानी जीय, गमरसी भये
 एम्तासों नहि टले है । महा 'मोह' नासे शुद्ध अनुभौ
 अग्यासे निच, बल परमात्मि मुगरामि माहि रले है ॥२६॥

ज्ञाता होय सो आत्मानुभवमें विचार करे है ।

सूत्र ३१ मा ।

जैसे महा रत्नकी ज्योतिमें लहरि उठे, जलकी तरंग
 जैसे लीन होय जलमें । तैसे शुद्ध आत्म दरय परजाय
 करि, उपने बिनसे बिर रहे निज धलमें ॥ ऐसी अविकलपी
 अनलपी आनन्द रूपि, अनादि अनन्त गर्ह लीने एक
 पलमें । ताको अनुभव कीने परम पीयूष पीजे, बघकों
 पिलाय डारि दीजे पुदगलमें ॥ २८ ॥

आत्माका शुद्ध अनुभव है सो परम पदार्थ है

ताकी प्रशंसा । सूत्र ३१ मा ।

द्रव्यार्थिक नय परयायार्थिक नय दोउ, श्रुत ज्ञानरूप
 श्रुतज्ञान तो परोख है । शुद्ध परमात्माको अनुभौ प्रगट
 ताते, अनुभौ विराजमान अनुभौ अदोष है ॥ अनुभौ प्रमाण
 भगवान् पुरुष पुराण, धान श्री विज्ञानधनमहा सुख पोख
 है । परम पतिर्यो अनन्त नाम अनुभौक, अनुभौ निना न
 कहूँ और और भोग है ॥ २९ ॥

गेदा

१. गीर्वाण न मिथ्याभास उदु, धरै मि याती जीव ।

ता । नहि उर्मको, कत्ता- कयो मनीव ॥ ३१ ॥

२. गीर्वाणो है सा कर्मको कर्ता है और

गानी अकर्ता है सो रहे है । चौपाइ ।

३. मोई रत्ताग । जो जाने सो जानन द्वारा ॥

४. गीर्वाण मोई । जान मो करता नहि छोई ॥ ३२ ॥

५. गीर्वाणो है सो द्रव्यकर्मका कर्ता नहीं,

मात्रकर्मका कर्ता है । छाप्य छ ।

६. रम पिंट अरु राग भाव, मिलि एक होय नहि ।

दोउ भिन हरष यमहि दोउ न जीव महि ॥

७. रम पिंड पुद्गल, भाव, गगानिक मूट अम ।

अनर एक पुद्गल अनंत, किम धरहि प्रज्ञेति नम ॥

८. निज निज मिलाम जुन जगत महि, जया सहज परिरामहि

तिम । कस्तार जीव जइ करमको, मोह मिरल जन कहहि

इम ॥ ३४ ॥

९. रत्ता कम क्रिया तृतीय द्वार समाप्त ॥

अथ पुण्य पाप अकृत्य करण चतुर्थद्वार प्रारम्भ ॥ ३५ ॥

१०. मोहते शुभ अरु अशुभ कर्मकी द्विधा दीये है

सो एकरूप दिग्या है । मरीया ३१ मा ।

जैसे फाटु चढाली जुगल पुत्र जो निन, एक दीयो

वामनकू एक घर राग्या है । वामन कहायो तिन मद्य
माम त्याग कीनो, चाटाल म्हायो तिन मद्यमास चारुयो
है ॥ तेसे एक वेदनी कर्मके जुगल पुत्र, एक पाप एक
पुन्य नाम भिक्ष भारयो है । दुह माहि दौर धूप दोऊ कर्म
बध रूप, याते ज्ञानरत कोउ नाहि अभिलाख्यो है ॥३॥

मोक्षमार्गमें पापपुण्यका त्याग कछा तिम
मोक्ष पद्धतिका स्वरूप कहे है । सूरिया ३१ सा ।

शील तप सयम त्रिति दान पूजादिर, अथवा अस-
यम कषाय त्रिपै भोग है । कोउ शुभरूप कोउ अशुभ
स्वरूप मूल, वस्तुके त्रिचारत दुग्धि कमे रोग है ॥ ऐसी
चद पद्धति बगानी बीतराग देख, आत्म धरममें करत
त्याग जोग है । भौ जल तरवा रागद्वेषके हरया म्हा-
मोक्षके फरया एक शुद्ध उपयोग है ॥ ७ ॥

मोक्ष प्राप्तिका कारण अतर दृष्टि है मोक्षके है,
सोरठा ।

अतर दृष्टि लसाय, अर स्वरूपको आच्छाद,
ए परमात्म भाव, शिव कारण है ॥ १ ॥
बध होनेका कारण बाह्यदृष्टि है ॥ २ ॥
सोरठा ।

कर्म शुभाशुभ दोय, पुढगलकिं है ॥ १ ॥
इनसों मुक्ति न होय, नारद के मते ॥ २ ॥

ज्ञान मात्र मोक्षमार्ग है सो कहे है ।

सूत्र २० सा ।

मुद्विक्त गावरा बायक कर्म मर, यातमा
अनादि कर्म माहि तुम्हो है । येतपरि कहे जो कि
पाप पुण्य मलो, गोइ महा मुद मोक्ष मार्गमों तुम्हो
॥ मर्मकू मरमा निरहिमें प्रगट्यो ज्ञान, उग्र
जमि कियो साधन हस्यो है । आग्नीमो उज्ज्वल
नारमो कत आय, काश मर्म हूँ के कारिजमो
हस्यो है ॥ १७ ॥

ज्ञान का अरु कर्म का ब्योरा कहे है ।

सूत्र २१ सा ।

जोला अष्ट कर्ममो निनाश नाहि, सरथा, तोला
अतरातमाम धारा दोइ बरनी । एक ज्ञानधारा एउ शुभा-
शुभ कर्मधारा, दुहसी प्रवृत्ति न्यारी न्यारी न्यारी बरनी ।
इतनो विशेष जु कर्म धारा न रूप, पराधीन शक्ति
विधि वध करनी । ज्ञान धारा मोक्षरूप मोक्षनी करन
हार, दोषकी हरनहार भौ समुद्र लगनी ॥ १४ ॥

मोक्ष प्राप्ति ज्ञान अरु क्रियाने होय ऐसा जो
स्याद्वाद है तिनकी प्रशम्भा करे है । सूत्र २१ सा ।

समुझे न ज्ञान कह कर्म क्रियेमों मोक्ष, ऐसे जीव
निम्न मिथ्यातमी गहलमें । ज्ञान पक्ष गह कहे आत्मा

अथ मदा, धरते सुखद तेउ ह्ये है चहलमें ॥ जया योग्य
करम करे पे ममता न धरै, रहे सागधान ज्ञान ध्यानकी
महलमें । तेई भव मागरके उपर ह्ये तरे जीव, जिन्ह को
निगम स्यादवादके महलमें ॥ १५ ॥

ॐ पुण्यपाप एतत्प्रकरण चतुर्थद्वार समाप्त भया ॐ

अथ पंचम आश्रयद्वार प्रारम्भ ॥ ६ ॥

द्रव्य आत्मनका और भाव आत्मनका तथा
सम्पक्कज्ञानका लक्षण फटै है । मरीया २३ सा ।

द्वित आत्मन मो कहिये जिहिं पुटल जीव प्रदेण गरासे ।
भाजित आत्मन सो कहिये जिहिं, राग रिमोह रिरोध तिकासे ॥
सम्पक् पद्धति मो कहिये जिहिं, द्वित भाजित आश्रय नासे ।
ज्ञानकला प्रगटे तिहि धानर, अतर राहिर और न भासे ॥ ३ ॥

ज्ञाना निराश्रयी हैं सो कहे है । चौपाई ।

जो द्रव्याश्रय रूप न होई । जहँ भागाश्रय भाव न कोई ॥
जानी दशाज्ञानमय लहिये । मो ज्ञाता निराश्रय कहिये ॥ ४ ॥

ज्ञानाका सामर्थ्य (निराश्रयपणा) कहे हैं ।

मरीया ३१ सा ।

जेते मन गोचर प्रगट बुद्धि परवर, तिन परिशामनरी
ममता हरतु है । मनसो अगोचर अबुद्धि परवर भाव,

तिनक बिनाशकरो
एतिसो पतन करे
ऐसे चानकत ने
सुखचक्षण करतु ।

रतु है ॥ याही भाँति पर पर
जतन करे भौ जल तरतु है ।
रुद्रागे, मदा, जिन्हकी सुख

रतु ।

चो द्वित भागमु ४ । अनहित भाग विरोध ।
धामर भाग विमल ५ । निर्मल भागसु बोध ॥ ८ ॥
राग विरोध वि । मल, घेद आश्रय मूल ।
यद कर्म रुद्रागे, कर धरमकी भूल ॥ ९ ॥
जहाँ न रागादि दग्ध, सो सम्यक् परिणाम ।
यात सम्यक्पाकी, कयो निराश्रय नाम ॥ १० ॥

ज्ञाना निराश्रयणाम तिलास करे है सो कहे है ।

संख्या ३८ सा ।

जे कोइ निकट भगवामी जगयासी जीव, मिथ्यामत
भेदि ज्ञान भाग पण्डित्ये है । जिन्हके सुदृष्टिमें न राग
द्वेष मोह कहैं, विमल विलोकनिमें तीनों जीति लये हैं ॥
तजि परमाष्ट घट मोधि जे निरोधि जोग, शुद्ध उपयोगकी
दशामें मिलि गये हैं । तेइ उध पद्धति विहारि पर सग
भारि, आप में मगन हैं के आप रूप भये हैं ॥ ११ ॥

ज्ञानाके जयोपशम भावते तथा उपशम भावते
चञ्चलपणा है सो कहे है ।

जेते जीव पड़ित जयोपशमो उपशमी, इनही अवस्था ज्यों
लुहारकी मढ़ासी है । छिन आगि माहि छिन पानी माहि
तसे घेउ, छिनमें मिथ्यात छिन ज्ञानकला भासी है ॥
जोंलां ज्ञान रह तोला मिथल चरण मोढ़, जसे कीले
नागकी शक्ति गनि नामी है । आगत मिथ्यात तय नाना
रूप बर करे, जेउ कीले नागही शक्ति परगासी है ॥१०॥

नोहा ।

यह निचोर या ग्रथको, यह परम रम पोख ।

तजे शुद्धनय बव है, गहे शुद्धनय मोख ॥ १३ ॥

जीवके चाछविलास अतरविलास चतावे है ।

भवैया ३१ सा ।

कर्मके चक्रमें फिरत जगनामी जीव, है रह्यो बाहिर
मुख व्यापत निपमता । अतर सुमति आई निमल बढ़ाई
पाई, पुद्गलमें प्रीति टूटी छूटी भाषा ममता ॥ शुद्धन
निराम कीनो अनुमौ अम्याम लीनो, अमभाउ छाड़ि
दीनो भीनो चित्त समता । अनादि अनत अतिकल्प अचल
ऐमो, पद अमलनि अवलोके राम रमता ॥ १४ ॥

आत्माका शुद्धपणा सम्यग्दर्शन है तिसकी
प्रशंसा करे है । सवेया ३१ सा ।

लांके पराशरमें न दीसे राग द्वेष मोह, आसन्न मिटत
नहि नष्टो तम है । तिहुँ काल जामें प्रतिविम्बित अन्नरूप,
आपटु अनत सत्ताजनतत सरस है ॥ भाग्यश्रुत ज्ञान परिणाम
जो विचारि वस्तु, अनुमौ करै न जहाँ बाणोको परस है ।
अतुल प्रखंड अविप्लव अविनासी धाम, विद्वानन्द नाम
तेमो सम्यक् दरम है ॥१५॥

ॐ इति पञ्चम आश्रवद्वार समाप्त भया ॐ

अथ ऋद्धो सचः द्वार प्रारम्भ ॥ ६ ॥

ज्ञानसे जड़ और चेतनका भेद समझे तथा
समर है तिम ज्ञानकी महिमा कहे है ।

सवेया २३ सा ।

शुद्ध सुखद अभेद अनावित भेद विज्ञान ॥ तीछन
आरा । अतर भेद स्वभाव विभाव, करै जड़ चेतनरूप दुकारा ॥
सो जिन्हके उरमें उपज्यो, ना रुचे तिन्हको परसग महारा ।
आत्मको अनुमौ करिते, हरसे परसे परमात्म प्यारा ॥३॥

मवरका कारण सम्यक्त्व है ताते सम्यक्दृष्टिकी
महिमा कहे है । सवेया २३ सा ।

भेदि मिथ्यात्व सु वेदि महारस, भेद विज्ञानकला जिनि

पारै । जो अपनी महिमा अधारत, त्याग करे उसों जु पराई ॥ उद्धत रीत बसे निनके घट, होत निरतर ज्योति मरिई । ते मतिमान सुख्य समान, लगे तिनको न शुभाशुभ काइ ॥ ५ ॥

दोहा ।

भेदज्ञान तगलौ भलो, जगलौ मुक्ति न होय ।

परम ज्योति परगट जहाँ, तहाँ विकल्प न कोय ॥७॥

मुक्तीको उपाय भेद ज्ञान है उसकी महिमा कहे है ।

चौपाइ ।

भेदज्ञान सख निन्ह पायो । मो चेतनशिररूप कहायो ।

भेदज्ञान निन्हके घट नाही । ते जड़ जीव बध जग मारि॥८॥

दोहा ।

भेदज्ञान मायू भयो, ममरस निर्मल नीर ।

धोषी अतर आतमा, धोवे निनगुण चीर ॥९॥

भेदज्ञानकी जो क्रिया है सो दृष्टातते कहे है ।

सवेया ३१ सा ।

जैसे रज मोघा रज मोघिके दरब काढ़े, पारक कनक काढ़े दाहत उपलकी । परके गरभमें ज्यों डारिये कतक फल, नीर करे उज्जल नितोर डाले मलमो ॥ दधिके मयैथा मथि

चौपाह ।

ना भिन नातरिया अगगाह । जो भिन त्रिया मोक्षपद चाहे ॥
जो भिन मोक्ष कहै सँ मुखिया । सो अजान भूतनमें मुखिया ॥ १० ॥

बोहा ।

१. निधि ले जागे पुरुष, ते शिखरूप सदीव ।
२. मोक्षहिं समारमें, ते जगधामी जीव ॥ १५ ॥
जो पद भौपद भय हरे, सो पद सेउ अनूप ।
जिहि पद परमत और पद, लगे आपदा रूप ॥ १६ ॥
ज्ञान विना मोक्ष प्राप्ति नहीं सो कहें हैं ।

सरैया, ३८ सा ।

कोई घर कष्ट महे तपमों शरीर दह, धूम्रपान करे
अगोमुख हके भूले हैं । कई महावत गह क्रियामें मगन
रह, यह मुनिभार पै प्यार कैसे पूले हैं ॥ इत्यादिक जीव
निको मर्यादा मुक्ति नाहि, फिरे जगमाहि ज्यों प्यारके
पधुलें हैं । जिन्हकें हियमें ज्ञान तिन्हही को निराण,
करमक करतार भ्रममें भूले हैं ॥ २० ॥

बोहा ।

लौन भयो अगद्वारमें, उक्ति न उपज कोय ।
दीन भयो प्रभुपद अपे, मुक्ति रूझात होय ॥ २१ ॥

प्रभु सुमरो पजो पड़ो, फगो निनिव व्यवहार ।

मोच सरूपी आतमा, ज्ञान गम्य निर्धार ॥ २२ ॥

सवैया २३ सा ।

ज्ञान उद जिहके घट अंतर, ज्योति जगी मति होत
न मेली । बाहिज दृष्टि मिटी जिन्हके हिय, आतम ध्यान
मला मिधि फैली ॥ जे जड़ चेतन मिच लागेसो, निवेन
निचे परखे गुण खेली । त जगमें परमारथ जानि, गढ़
रुचि मानि अध्यात्म सँली ॥ २४ ॥

दोहा ।

बहुनिधि त्रिया क्लेशसों, शिखर पद लहे न कोय ।

ज्ञानकला परकाशते, सहज मोक्षपद होय ॥ २५ ॥

ज्ञानकला घटघट बसे, योग युक्तिरु पार ।

निजनिज कला उदोतकरि, मुक्त होइ मंसार ॥ २६ ॥

अनुभवी ज्ञानीका मामर्घ्य कहे है ।

सवैया ३१ सा ।

जिन्हके हियमें सत्य मूरज उद्योत भयो, फैली मति
किरण मिध्यातितम नष्ट है । जिन्हके सुदृष्टिमें न परपे
निषमतासों समतामों प्रीति ममतामों लष्टपुष्ट है ॥ जिन्हके
कटाक्षमें सहज मोक्षपथ मधे माधन निरोध जाके तनको

न ... ३१ । निहिले पतमसी मिलोन यह है ममायी, डोले
३१ ३१ । एव मोने न मिष्ट है ॥ २८ ॥

चीकई ।

ए - ३१ ११ सुज । ज्ञान मगन ममता न ग्रथु जै ॥
३१ ११ । गीता लहिये । यों युव परिग्रहवत न कहिये ॥ ३१
हाथीका अगलरु गुण दिखाये ॥

१ नयेया ३१ सा ।

न जे मनगलितनिलाम भोग जगतमें, ते ते निनामीरु
न राये न रहत हैं । और जे जे भोग अभिलाष चित्त
पगिषाम ते ते निनासीरु धारूप ह्वे बहत हैं ॥ एकता न
दुहा माहि ताते बाछा फुरे नाहि, ऐसे भ्रम फारिजरी मूरख
चहत हैं । मतत रह सयेत परमोन करें हत, यानें ज्ञानरतरी
अगलरु कहत हैं ॥ ३० ॥

मयेया ३१ सा ।

जैसे फिटकरी लोद हरडेकी पुट बिना, ज्वेत रख डारिये
मजीठरग नीरमें । मीग्या रहे चिगकाल मर्वथा न होइ लाल,
भेदे नहि अतर सुपेदी रह चीरमें ॥ तैसे ममकित्तत राग
द्वेष मोह विन, रह निशि वामर परिग्रहकी भीरमें । पूरन
करम हरे नूतन न बध कर, जाचे न जगत मुख राचे न
शरीरमें ॥ ३३ ॥

दोहा ।

ज्ञानी ज्ञान भगन रह, रागादिक मल खोय ।
चित उदाम करणी करे, कर्मरध नहि होय ॥ ३५ ॥
मोह महातम मल हरे, धरै सुमति परमात्म ।
मुक्ति पथ परगट करे, दीपक ज्ञान गिलाय ॥ ३६ ॥

ज्ञानरूप दीपकका स्वरूप कहे हे ।

मंत्रेया ३१ सा ।

जामें धूमको न लेश यातको न परवेश, करम पतगनि
को नाश करे पलमें । दशाको न भोग न मनेहको मयोग
जामें, मोह अधमारको त्रियोग जाके थलम ॥ जामें न तताई
नहि रागरकताई रच, लहलह ममता ममाधि जोग जलमें ।
ऐसे ज्ञानदीपकी मिला जगी अभाग रूप, निगवार परि पै
दूरी है पुद्गलमें ॥ ३७ ॥

सद्गुरु मोक्षका उपदेश करे ह ।

मंत्रेया ३१ सा ।

जोला ज्ञानको उद्योत तोला नहि रध होत, बरते
मिथ्यात्त तब नाना बध होहि है । ऐमो भेद सुनके लग्यो
त निपय भोगनमू जोगिनीमू उद्यमकी रीति तै निछोहि है ॥
सत तू कह मैं समकितवत, यद् तो ॥ ३८ ॥

है । शिष्य भिद्य होहि अनुभू दशा हरोहि मोक्ष
न जाय गहि गमी मति मोही है ॥३९॥

चौपाद ।

न भिद्ये नष्ट जागी, ते जगमाहि महज नैरागी ।
न भिद्ये सुखमाहा, यह विपरीति मभवे नाही ॥४०॥

दोहा ।

न भिद्ये शिष्य बल, शिष्य माँरे समकाल ।
ज्या लोचन न्यारे रह, निरखे दोऊ ताल ॥४१॥

चौपाद ।

भूत कर्मसों कता होवे । फल अभिलाष बरे फल जोवे ।
ज्ञानी क्रिया कर फल सनी । लगे न लेष निर्जरा दूनी ॥४२॥

दोहा ।

यधे कर्मसों भूत ज्यों, पाट कीट तन पेम ।
सुले कर्मसों समझिती, मोरग्य धदा जेम ॥४३॥
ज्ञानी है सो कर्मका कर्ता नहीं है सो कहे है ।

संख्या २३ सा ।

जे निज पूरव कर्म उदै सुख, भुजत भोग उदास रहेंगे ।
जे दुखमें न विलाप करें, निरखें हिये तन ताप सहेंगे ॥

हैं जिनके दृढ़ आत्म ज्ञान, प्रिया सरिके फल से न चहें।
ते सु विचक्षण ज्ञायक हैं, तिनको करता हम तो न चहें ॥३४॥

ज्ञानीका आचार विचार कहे हैं। सरीस ३४ का।

जिन्हके मुग्धतामें अनिष्ट इष्ट दोउ सम, जिन्हके आचार
विचार शुभ ध्यान है। स्वार्थ से त्यागि वृत्तों हैं
परमार्थको, जिन्हके मनमें नश हैं न गमन है ॥
जिन्हके ममज्ञमें शरीर ऐसी मानियत, धारणाओं ध्यानक
कृपाणसो मो ध्यान है। पारखी पदार्थक नामा अम
भारथके, तेई साधु तिनहीका यथाथ ज्ञान है ॥ ४३ ॥

सम्पत्तके अष्ट अंगका स्वरूप कहें हैं।

सरीस ३१ मा।

धर्ममें न सरी शुभ कर्म फलक व इच्छा, अशुभको
देखि न गिलानि आनि चित्त में। नाहि इष्टि रामे का
प्राणीको न दोष भावे, न वक्त न नि निनि टाणे प्रोच
चित्तमें ॥ प्यार निन स्पर्श वद्वहका तरंग लटे, एई
याठो अंग जब जागे ममकिञ्च। नाहि ममस्मिन्को धर्मो
ममकितवत, वहि मोच फल से न आव फिर इतमें ॥ ४९ ॥

ज्ञानचेतना आ धर्मचेतनाका वर्णन।

पद्य ३१ मा।

जहाँ परमात्मरश्मि प्रकाश तहाँ, धर्म

मत्स्य पुराणी रूप ३ । जहाँ शुभ अशुभ कर्मों की गढ़ास
 ११० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

१०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

गर्भ ३१ सा ।

कर्मजाल वर्गणां लोके न वधे जीव, यथे न कदापि मन
 १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

कर्मजाल वर्गणां लोके न वधे जीव, यथे न कदापि मन

गर्भ ३२ सा ।

कर्मजाल वर्गणां लोके न वधे जीव, यथे न कदापि मन
 १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥
 १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

याहीते प्रियत्तण अरघ कसो तिहूँकाल, गग द्वेप मोह
नाहि मम्यक् स्मभारमें ॥ ५ ॥

सर्ग्या ३१ सा ।

कर्मजाल जोग हिमा भोगमों न बधे है, तथापि ज्ञाता
उद्यमी बखान्यो जिन वैनमें । घानदृष्टि दत्त रिप भोगनिमों
हेत दोऊ, क्रिया एक खेत यांतो बने नाहि जेनमें ॥ उदै
बल उद्यम गहै पै फलसो न चहै, निरदे दगा न होइ
हिरदके नैनमें । आलस निरुद्यमसी भूमिका मिथ्यात माहि
जहाँ न सँभारे जीव मोह नींद सैनमें ॥ ६ ॥

आलसीका अर उद्यमीका स्वरूप कहे हैं ।

चोपाइ ।

जो जिय मोह नींदमे सोवे । ते आलसी निरुद्यमी होवे ॥
दृष्टि खोलि जे जगे प्रवीना । तिनि आलस तजि उद्यम कीना ॥९

दीहा

बध बढ़ान अघ है, त आलसी अजान ।

मुक्त हेतु करणी करे, ते नर उद्यमवान ॥ ११ ॥

जबलग ज्ञान है तबलग वैराग्य है ।

सर्ग्या ३१ मा ।

जबलग जीव शुद्ध बन्तुकों विचारें ध्यावे, तबलग
भोगसों उदासी मरग है । भोगमें मगन तत्र ज्ञानकी जगन

॥ हि मे. १ अमितायसी दशा मिथ्यात धन है ॥ तान
 ४ ॥ ताने मगासो मिथ्यानी जीव, मोममो उगसिमो
 ५ ॥ १ धन है । ऐसे जानि भोगमा उगमि है सुगति
 ६ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

ये पादुकीके अष्टबुद्धिका वर्णन करे हैं ।
 चीपाह ।

म ॥ १ ॥ मैं कीन्हीं कैमी । अर यों करो कह जो ऐमी ।
 २ ॥ निपरीत भाव है जाम । मो उरते मिथ्यात दशमै ॥ २४ ॥
 पाहा ।

॥ गदबुद्धि मिथ्यादशा, धरे मो मिथ्यावत ।

निमल भयो समारम, कर निलाप अनत ॥ २५ ॥

जिसय मोहकी निकलना नहीं ते साधु है मो
 फहे हैं । छद् अद्विष्ट ।

सदा कर्मसों भिन, सहज चेतन रह्यो ।

मोह निमलता मानि, मिथ्यात्वी हो रह्यो ॥

करे निमल अनत, अहमति धारिक ।

मो मुनि जो थिर होइ, ममत्त निवारिके ॥ ३१ ॥

सम्यक्त्वो आत्मस्वरूपमे कैसे स्मर होय है ।

संख्या ३१ मा ।

॥ अमर्यात लोक परमान जे मिथ्यात भाव, तेई व्यग्र-

हार भाय कवली उरुन है । निन्दके मिथ्यात्व गयो
मम्यक दरम भयो, ते नियत लीन व्यग्रहात्मों मुक्त हैं ॥
निरपिकल्प निरुपाधि आत्म ममाधि माधि जे सुगुण मोक्ष
पथकी हुम्त है । तेइ जीउ परम दशाम विर रूप हके,
धर्ममें धुके न परममो रुकन है ॥ ३२ ॥

दाहा ।

चेतन लक्षण आत्मा, जइ लक्षण तन जाल ।
तनकी ममता त्यागिके, लीने चेतन चाल ॥ ३६ ॥

आत्माकी शुद्ध चाल कहे हैं । सर्वथा २३ मा ।

जो जगकी फरणी सर ठानत, जो जग जानत जोरत
जोई । देह प्रमाण पैं दहसु दूमरो, दह अचेतन चेतन मोई ॥
दह धरे प्रभु ददसु भिन्न, रहे परछन लखे नहिं कोई ।
लक्षण वेदि विचक्षण युक्त, अखनमो परतत्त न होई ॥ ३७ ॥

जे पिंड ते ब्रह्मांड ये ज्ञात साची है ।

सर्वथा ३१ मा ।

याहि नर पिंडमें विगने त्रिभुवन धिति, याहीमें त्रिविधि
परिणामरूप सृष्टि है । याहीमें कर्मकी उपाधि दुःख दावानल
याहीमें ममाधि सुख वाग्दिकी वृष्टि है ॥ याहीमें करतार कर्तृति
यामें विभूति, यामें भोग याहीमें प्रियोग याम वृष्टि है । याहीमें

निगम, न- गर्भित गुणरूप, ताहिसे प्रगट जाके अंतर
तथा ॥ ७६ ॥

अमररूप तो अलग जानसे नोय है ।

मैया २३ सा ।

न- न रह प्रभु कारण, कह कही उठि जाहि कहीके ।

आम हरे घडि मृगत, कह पहार चढ़े चढ़ि छीके ॥

न- न अममानके उपरि, नैह कह प्रभु हठ जमीके ।

मने मनी नहि दूर दिशान्तर, मोहिम है मोहि समन नीके ॥४८॥

मोहा ।

कह मुगुन जो समझती, परम उदामी होय ।

मुधि चित्त अनुभौ नैर, यह पद परमै मोय ॥ ४९ ॥

आत्मानुभवमें क्या बिगार करना सो कहे हैं ।

मैया २४ सा ।

अलग अमरति अरुपी अविनाशी अज, निरागर
निगम निरजन निरर है । नानारूप भेष धरे भेषको न
लेश धरे, चेतन प्रवेश धर अतन्यरा सध है ॥ मोह वर
मोहीमो प्रिराने नामे तोहीमों न मोहीमा तोहीमा न रागी
निरवध है । ऐमो चिदानन्द याहि घटमे निकट तेरे, ताहि
नू निराग मन और सध धव है ॥ ५४ ॥

आत्मानुभव करनेकी विधिकी क्रम कहें हैं ।

सूत्र ३१ सा ।

प्रथम सुदृष्टियों शरीररूप कीजे भिन्न, तामें और सूक्ष्म शरीर भिन्न मानिये । अष्ट कर्म भावकी उपाधि मोई कीजे भिन्न, तामें सुनुदिकों गिलास भिन्न जानिये ॥ तामें प्रथम चेतन गिराजत अखण्डरूप, यह श्रुतान्तके प्रमाण ठीक जानिये । बाहिरों विचार करि बाहीम मगन हूजे, बाह्य पद साधिवेको ऐसी विधि ठानिये ॥५५॥

१ आत्मानुभवते कर्मका र्थ नहीं होय है ।

चोपाइ ।

इहि विधि वस्तु व्यग्रस्था जाने । गगादिक निजरूप न माने ॥
सातें ज्ञानगत जग भाही । कर्म बंधको करता नही ॥५६॥
अनुभवी जो भेदजानी है निनकी क्रिया कहे हैं ।

सूत्र ३२ सा ।

ज्ञानी भेदज्ञानमो गिलास पुद्गल कर्म, आत्मीय धर्ममो निरालो करि मानतो । ताही मूल कारण अशुद्ध राग भाव ताके, नासिवेको शुद्ध अनुमौ अग्याम ठानतो ॥ याही अनुक्रम पररूप भिन्न र्थ त्यागि, आप साहि आपनो स्वभाव साहि आनतो । साहि शिरवाल निरग्र होत तिहुँकाल, कैवल मिलोक प्राई लोकालोर

२ इति अष्टम उपाय समाप्त

अथ जन्मी मोक्षद्वार प्रारम्भ ॐ

श्रिया ३१ सा ।

आगमा दुफारा करे शानी जीव, आ
मिन्न मिन्न चरचे । अनुमौ अभ्याम लह प
रम भ्रमको खनानो खोलि खरचे ॥ १ ॥
ता प्राप्ति केवल निरुद्ध आवे, पूरण ममाधि
मभको परचे । भयो निरदोष याहि करनी न बहुत
मो निद्विनाथ ताहि बनारसि खरचे ॥ २ ॥ काहु एक
गगन हूँ परम पनि, ऐसी बुद्धि छेनी घटमाहि डार
है । पैटी नो करम भेदि दरव करम छेदि, स्वभाव विमात्र
मधि गोवि लीनी है ॥ तहाँ मध्यपाती होय, लखी
वारा दोय, एउ सुधामई एक सुधारम भीनी है ॥ सुध
मिगि सुगमिधुमें भगन होय, येती सव क्रिया एउ
माधि कीनी है ॥ ३ ॥

जमी छेनी लोहकी, करे एकमों दोय ।
जड चेतनकी मिश्रता, त्यो सुबुद्धिमों होय ॥ ४ ॥

श्रिया ३२ सा ।

कोउ अनुमनी जीव कहे मेरे अनुमोंमें, लक्षण वि
मिन्न करमको जाल है । जाने आप आपनों जु आप
आपगिरे, उत्पत्ति नाश एव भोग कल्याण है ॥

चिक्कलप मोंमो न्यारे सरवथा मेरे, निश्चय स्वप्नार यह
च्यवहार चाल है । मैं तो शुद्ध चेतन अनंत चिनमुद्रा धारि,
प्रभुता हमारि एकन्य तिहूँ काल है ॥९॥

मोहा ।

चेतन लक्षण आत्मा, आत्म मत्ता माहि ।

सत्ता परिमित घन्तु हं, भेद तिष्ठमें नाहि ॥१२॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

जाके येतन भार चिदात्म मोह है ।

और मात्र जो धरं सो औरें कोइ है ॥

જો ચિન મહિત્ત માત્ર ઉપાદ જ્ઞાનને ।

त्याग योग्य परभार पगये मानने ॥१५॥

सर्वेया ३१ भा ।

जिन्हके सुमति जागी भोगमो भये विरागी, परमस
त्यागि जे पुरुष त्रिभुवनमें । गंगादिक भावनिमो जिन्हकी
रहनि न्यागी, कहू मगन ह्ये न रह धाम धनमें ॥ जे सदैव
आपसों निचारे मगवाग शुद्ध, जिन्हके त्रिमलदा न व्यापे
कहु मनमें । तेई मोक्ष भारगके साधक रहावे जीव, भावे
रहो मंदिरमें भावे रहो वनमें ॥१६॥

१. १०० । ३ । ४ मरिया २३ भा ।

चेतन -मंडित अंग अपेक्षित, शुद्ध पत्रि पदार्थ मेगे ।

राग विरोध विमोहे दशा, ममभे भ्रम नाटक पुद्गल केरो ॥

१३. अलौकिक है यह कर्म जु घेरो ।
१४. मंदा तिनको परमारथ नेरो ॥१७॥

१५. ३५ सा ।

१५. ३५ सा । गता है आकाश द्रव्य, धर्म द्रव्य
१६. गता है । लोक परमान एक सत्ता है
१७. ३५ सा । के जगू अमख्य सत्ता अगणित है ॥
१८. गता शब्द परमाणु की अनंत सत्ता, जीवकी अनंत सत्ता
१९. न्यायी न्यायी मिले हैं । कोठ मंता फाड़ुओं न मिले एकमेक
२०. होय सवे अमहाय यी अनादि की रीति है ॥२१॥ एह
२१. एह द्रव्य इनही की है जगतेपाल, तामें पांच जड एक
२२. चेतन मुपात है । फाड़की अनंत सत्ता काहूँ सों न मिले कोड,
२३. एक एक सत्तामें अनंत गुण गाम है ॥ एक एक सत्तामें
२४. अनंतम परजाय फिर, एक कर्म अनेक डोह भौति परमाण है ।
२५. यहै स्याद्विधि यह मंतेकी मर्याद, यहै मुख भोष यह
२६. मौक्तकी निदान है ॥२२॥ साधि दधि मधनमें राधिरैस
२७. पयनमें, जहाँ तहाँ ग्रधनमें सत्ताही की सोर है । ज्ञान भाँतु
२८. सत्तामें सुधा निधान सत्ताहीमें, सत्ताही दुरेनि साक सत्ता
२९. मुख मोर है ॥ सत्तामें स्वरूप मौख सत्ता भूल यहै दोष,
३०. सत्ताके उलधे धूमगाम चहुँ ओर है । सत्ताकी समाधिमें
३१. निराजि रह सोइ माहु, सत्ताते निभसि और गहे मोई चोर
३२. है ॥२३॥ जामें लाक बेनोहि वापना उद्धेद नाहि, पाप

पुण्य खेन नाहि क्रिया नाहि करनी । जामें रागद्वेष नाहि
जामें बघ मोक्ष नाहि, जामें प्रभु दाम न आकाश नाहि
धरनी ॥ जामें कुल रीति नाहि जामें द्वार जीत नाहि, जामें
गुरु शिष्य नाहि विषय नाहि भरनी । आश्रम वरण नाहि
काहुना मरण नाहि गमा शुद्ध मत्तानी समाधि भूमि
वरनी ॥ २४ ॥

दास ।

शुद्धात्म अनुभव जहाँ, शुभाचार तिहि नाहि ।

करम करम मारग विष, शिष्य मारग शिष्य मात्रि ॥ २५ ॥

सत्रिया ३१ मा ।

ज्ञानावरणीके गये जानिये नु है सु मर, दर्शनावरणके
गयेते सब देखिये । वरनी करमक गयत निराबाध रस,
मोहनीक गये शुद्ध चारित्रि जियेगिये ॥ आयुकर्म गये
अवगाहन अटल होय, नामकर्म गयेते अमरतीरु पतिये ।
अगुरु अलघु रूप होय गोत्र कर्मगये, अतराय गयेते अनत
बल लेगिय ॥ २६ ॥

ॐ इति नवमा मोक्षद्वार समाप्त भया ॐ

अथ दशमो सर्वविशुद्धि द्वार प्रारम्भ ॥ २७ ॥

चौपाई ।

जीव करम करता नहि णसे । रस भोक्ता स्वभाव नहि तैसे ॥
मिथ्यामतिमों कर्ता होई । गये अज्ञान अकरता मोई ॥ २८ ॥

संज्ञा ३१ सा ।

जीव अर पुटल करम रह एरु खेत, यद्यपि तथापि
सत्ता न्यारी न्यारी कही है । लक्षण स्वरूप गुण परजे
प्रकृति भेद, दुहमें अनादि हीकी दुमिधा ह्वे रही हैं ॥ एते
पर भिन्नता न भासे जीव करमकी, जोलों मिथ्या भाव
तोला योंधी वायू कही है । ज्ञानके उद्योत होत ऐसी सूधी
दृष्टि भई जीव कम पिंडको अकरता सही है ॥ १२ ॥

दोहा ।

एक वस्तु जसे जु है, तामों मिले न ध्यान ।
जीव अकर्ता कर्मको, यह अनुभों परमान ॥ १३ ॥

चौपाई ।

जो दुरमति रिकल अज्ञानी । जिन्ह स्वरीत पररीत न जानी ॥
माया मगन भरमके भरता । ते जिय भाव करमके करता ॥ १४ ॥

दोहा ।

जे मिथ्यामति तिमिरसों, लखे न जीव अजीव ।
तेई भावित कर्मको, कर्ता होय सदीव ॥ १५ ॥

दोहा ।

प्रिया एक कर्ता जुगल, यों न जिनागम मांहि ।

अथवा करखी औरकी, और करे यो नाहि ॥ २० ॥

रुच और फल भोगवे, और उने नहि एम ।

ना करता मो भोगता, यहै यथात जेम ॥२१॥

नात भावित कर्मको, करे मिथ्याती जीर ।

सुख दुख आपन मपदा, भुजे महज मदीर ॥२४॥

सर्षेया ३८ सा ।

फोई मूढ़ भिखल एत पक्ष गह कह, आतमा अमर-
तार पर्य परम है । तिनरो जु मोउ कह जीर करता है
तासे, फेरि कह कर्मको करता करम है ॥ ऐसे मिथ्या
मगन मिथ्याती ब्रह्मघाती जीर जिन्हके हिये अनादि
माहरो भरम है । तिनरु मिथ्यात्न दूर करवेरु कहे गुरु,
स्वादवाद परमाण आतम परम है ॥ २५ ॥

होहा ।

चेतन करता भोगता, मिथ्या मगन अज्ञान ।

नहि करता नहि भोगता निश्चै सम्यग्ज्ञान ॥२६॥

सर्षेया ३८ सा ।

जैसे माग्यमति कह अलख अमरता है, सर्षेया प्रसार
करता न होइ कगही । नैसे निनमनि गुरुमुख एर पक्ष
सुनि, यादि भाँति माने मो एसात तजो अगही ॥ जोलों
दुरमति तोलों कर्मको करता है, सुमनों मदा अकरतार

क्यों मरही । जाके पट जापक - नाव चयो बरहीने
 मा तो जगजालसे निगनो मगे तरह ॥ ७७ ॥

सवेया २१ सा ।

तेसे काह चतुर मवारि हं मुक्कन माल, मालाकी
 क्रियामे नाना भौतिको विज्ञान हं । क्रियाको विकल्प न
 त्वे पहिरन वारां मोनिको जोमामे मंगन सुखवान हं ॥
 तम न करे न भु न अथवा कर मो भुजे, और करे और
 भु न भव नय प्रमान है । यद्यपि तयापि विकल्पविधित्याग
 निरविकल्प अनुभौ अमृत पान हं ॥ ७७ ॥

पेहा ।

द्रव्यकर्म कर्तो यत्नाय, यह, व्यवहार कहावे ।
 निश्च जो जमा दरर, तैसे ताको माव ॥ ७८ ॥

सवेया-३१ सा ।

ज्ञानको महज ज्ञेयाकाररूप गरिखमे, यद्यपि - रापि
 ज्ञान ज्ञानम्प कसो है । ज्ञेय ज्ञेयरूपसों अनादिही - मर
 याद, काह रस्तु काहको स्वभाव नहि गसो है ॥ गतेपनि
 कोउ मिथ्यामति कहे ज्ञेयाकार, प्रतिभामतिमो झ - अशुद्ध
 हं रह्यो है । याही दुरुद्धिसों विज्ञन भयो डोल है, सद्ध
 भे, न धरम यों भर्म मोहि - बखो है ॥ ७९ ॥

चौपाइ ।

१०० । अगमें अग होइ । वस्तु वस्तुओं मिले न कोइ ॥
१०१ । जाने जग नेती । सोऊ, भिन रह मर सेती ॥५०॥

दोहा ।

न ऊर फल भोगवे, जीन अज्ञानी कोइ ।
१०२ । कपनी व्यवहारसी, वस्तु म्यक् न होइ ॥५१॥

दोहा ।

अपार वानसी पग्येति, पै यह ज्ञान ज्ञेय नहि होय ।
नेयरूप पट द्रव्य भिन्न । पद, ज्ञानरूप आतम प' मोय ॥
जाने भेद मान गुणिचक्षुष । गुण लक्षण सम्यक् दृग जोय ।
मूरख कहै ज्ञान महि आकृति, प्रगट कलकलने नहि कोय ॥५२॥

दोहा ।

शुद्ध द्रव्य अनुमो कर, शुद्ध दृष्टि घटमाहि ।
ताते सम्यक् नर, सहज उखेदक नाहि ॥ ५३ ॥

सर्गा ३१ सा ।

जैसे चंद्र किरण प्रगटि भूमि, स्वत करे, भूमिमी
न होत म' । ज्योतिगी रहति है । तैसे ज्ञान शक्ति प्रकार
हय उपादेय, ज्ञेयाकार दीसे पै न ज्ञेयको गहति है ॥
शुद्ध वस्तु शुद्ध परयायन्य परित्यजे, सत्ता परमाण माहि
ढाह न ढहति है । सो तो और रूप कह न होय सरवथा,

निश्चय अनादि जिनगणी यों कटति है ॥ ५७ ॥ कोउ
शिष्य कहूँ स्वामी राग द्वेष परिणाम, तानो मूल प्रेरक
कहूँ तुम कोन है । पुद्गल करम जोग किंधो इद्रिनिरे
भोग, कींधो घन कींधो परिजन की मे मोन है ॥ गुरु कहे
छहो द्रव्य अपने अपने रूप, मनिको सदा असहाई परि-
योण है । कोउ द्रव्य काहूँ न प्रेरक कदाचि ताते, राग
द्वेष मोह मृपा मदिरा अचान है ॥ ६० ॥

दोहा ।

कोउ मूरख यों कहे राग द्वेष परिणाम ।
पुद्गलकी जोरावरी, बरते आत्म राम ॥ ६१ ॥

ज्यों ज्यों पुद्गल बल करे, धरि धरि कर्म जु मेप ।
राग द्वेषको परिष्कमन, त्यों त्यों होय विशेष ॥ ६२ ॥

यह सिद्धि जो निपरीत पख, गहे सहै कीय ।
भो नर राग विरोधसों, कन्हूँ मिथन होय ॥ ६३ ॥

सुगुरु कहे जगमें रहे, पुद्गल भग मदीन ।
महज शुद्ध परिणामको, औमर लह न जीन ॥ ६४ ॥

ताते चिद्भावन रिपे, समरथ चेतन राव ।
राग विरोध मिथ्यातमें, सम्यकमें जिनभाव ॥ ६५ ॥

ज्यों दीपक रजनी ममें, चहुँ दिशि करे उदीत ।
प्रगटे घटघट रूपमें, घटघट रूप न होत ॥ ६६ ॥

जहाँ ज्ञान कि न-न तहाँ मोक्ष मग मोय ।
 यह जाने प-ए, यह पदमें धिर होय ॥८४॥
 ज्ञान जाव-गना, कर्म जीव-कर्म
 ज्ञान मोक्ष है, कर्म जगतको भूल ॥८५॥
 ज्ञान चेतना, नगे, प्रगट केवल राम ।
 कर्म चेतनाम उस, कर्म बध परिणाम ॥८६॥
 चीपाई ।

सृष्टा मोहना परलति केनी । ताते करम चेतना मैनी ॥
 ज्ञान होत हम ममभयेती । जीव मदीर भिन्न परसेती ॥८७॥
 दोहो ।

जीव अनादि स्वरूप मम, कर्म रहित निम्पाधि ।
 अविनाशा अशरण सदा, सुखमय मित्र ममाधि ॥८८॥
 चीपाई ।

म त्रिशूल करणीमों न्याग । दिविनाम प-जगत
 उज्याग ॥ राम विरोध मोह म-नाही । मेरो अवलपन
 मुक्तमाही ॥८९॥

सवैया ३ सा ।

मम्यरूपत कह मपन गुण, मैं निन गग विरोधसा
 तो । है करतृति कर निर्बुद्ध मो ये विप-रम लाग
 तीतो ॥ शुद्ध स्वचैतनरो अनुमै करि, मैं नग मोह महा

गो गोत सगीप भयो अर मो वहु, काल अनत इही
१२३ ते ॥१००॥

गदा ।

रिचनणु मै रहैं, मदा ज्ञान रम राचि ।
शुद्धात्म अर्जुभूतिमो, खलित न होहु रुदाचि ॥१०१॥
वर्जकम विपतरु भये, उद भोग फलफल ।
मैं इनको नहि भोगता, मदज होहु निर्मूल ॥१०२॥
जो परकृत कर्मफल, रुचिसे भुजै नाहि ।
मगन रह आठो पहर, शुद्धात्म पद माहि ॥१०३॥
मो सुख कर्मदशा राहत पावे मोक्ष तुरत ।
बुजै परम समाधि सुर, आगम काल अनत ॥१०४॥

सर्ग ३८ सा ।

जबहीते चैतन विभावमों उलटि आप, समे पाय
अपनो स्वभाव गहि लीनो है । तबहीते जो जो लेने योग्य मो
मो सन लीनो, जो जो त्यागि योग्य सो मो मन छाडि दीनो
है ॥ लेवेको न रही और त्यागवेको नाहि और, पाकी कहों
उतरयो जु करज नरीनो है । मग त्यागि अग त्यागि,
उचन तरग त्यागि, मन त्यागि बुद्धि त्यागि आपा शुद्ध
कीनो है ॥१०५॥

नोहा ।

शुद्ध ज्ञानके ढह नहि, मुद्रा मेप न कोय ।

ज्ञाते कारण मोक्षमे, द्रव्यलिंग नहि होय ॥१०९॥

द्रव्यलिंग न्यासी प्रगट, कला वचन रिज्ञान ।

अष्ट महागिनि अष्ट मिद्धि, एहें ठोइ न ज्ञान ॥११०॥

दर्शनज्ञान चरण दशा, करे एक जो कोइ ।

धिर हूँ साधे मोक्षमग, सुखी अनुमंभी मोइ ॥११४॥

भय्या ३८ सा ।

कोइ दृग ज्ञान चरणातपमे घेठि ठोर, मयो निरदोष

परस्तुमी न परमं । शुद्धता विचार व्यापे शुद्धतासे केलि करे,

शुद्धतामें धिर हूँ अमृतधारा बरस ॥ त्यागि तन कष्ट हूँ

स्पष्ट अष्ट करमको, परि वान अष्ट नष्ट करे और करसे ।

माई निरुलष मिजई अलष काल माहि, त्यागि भौ विधान

निराण पड दग्गसे ॥१११॥

चीपई ।

जैसे मुग्ध धान पहिचाने । तुप तंदुलको भेद न जाने ।

तैसे भटमती व्यग्रहारी । लखे न बध मोक्ष निवि न्यासी ॥११२॥

दोहा । -

जे व्यग्रहारी भूढ नेर, पर्यय बुद्धी जीर ।

तिनके बाध क्रियाहिमो, है अलख सदीय ॥११३॥

१०॥ १ गत मगोय गयो अय मो कहु, काल अनत इही
ति ॥ १० ॥

गदा ।

देव १०॥ मैं रहूँ, मदा ज्ञान रम राचि ।

१०॥ अतुभूनिमो, सलित न होहु रुदाचि ॥१०१॥

१०॥ रिपनरु भय, उदै भोग फलफल ।

१०॥ नहि भोगता, महज होहु निर्मूल ॥१०२॥

१०॥ परहत रमफल, रुचिमे भुजे नाहि ।

१०॥ मगन रह आठे पहर, शुद्धानम पद बांहि ॥१०३॥

१०॥ मो सुध कर्मदशा राहत पावे मोक्ष तुरत ।

१०॥ भुजेपरम ममाधि सुरत, आगम काल अनत ॥१०४॥

संख्या ३८ भा ।

जबकीत चेतन विभावमो उलटि आप, समे पाप
अपनो स्वमात्र गहि लीनो है । तबहीते जो जो लेने योग्य मो
मो सग लीनो, जो जो त्यागि योग्य सो मो मय छाडि दीनो
है ॥ लेवेको न रही और त्यागवेको नाहि और, बाकी कहीं
उपरयो जु कारज नवीनो है । मग त्यागि अग त्यागि,
उचन तरग त्यागि, मन त्यागि बुद्धि त्यागि आपा शुद्ध
कीनो है ॥१०८॥

बोहा ।

शुद्ध ज्ञानक दह नहि, मुद्रा मेप न कोष ।
 ताने कागण मोनरो, द्रव्यलिंग नहि होय ॥१८९॥
 द्रव्यलिंग न्यारो प्रगट, कला धरन भिन्नान ।
 अष्ट महानिधि अष्ट मिद्धि, एहे होइ न ज्ञान ॥१९०॥
 दर्शनज्ञान चरण टगा, करे एक जो कोइ ।
 धिर ह्म साध मोक्षमग, सुधी अनुर्मगी मोइ ॥१९१॥

मतेया ३१ सहा । (११११)

कोइ रग ज्ञान चरणातममे बेठि टोर, मयो सिंदोर
 परगस्तुमो न परमै । शुद्धता विचार द्यावे शुद्धतास अनिरुद
 शुद्धतामे धिर ह्म अमृतवारा परसे ॥ त्यागि हन कष्ट ह्म
 स्पष्ट अष्ट परमको, जरि धान अष्ट नष्ट करि दी दान ।
 मोई विमलव भिजई अलप काल माहि, त्यागि मो विज्ञान -
 निरगण पद टगसे ॥१९४॥

चोप ६ ।

जैसे मुग्ध धान पहिचाने । तुष तदनमो द्ध दान ।
 तैसे मृदमती व्यग्रहागी । लखे न बध मोचनिहेनग ॥१९५॥

बाहा ।

जे नववहागी मूढ नर, पयव कुंजग ।
 तिनके बाह्य क्रियादिको, ई द्रव्यजै ॥१९७॥

१० बाहिज दृष्टिर्ना, बाहिज क्रिया करत ।

११ मोक्ष परपरा, मनमें हरष धरत ॥१२१॥

१२ आत्म अनुभौ कथा, कह ममकृती कोय ।

१३ मुनिके तामों रुह, यह शिष्यपथ न होय ॥१२२॥

सवैया ३८ सा ।

आचारज कह जिन वचनको निमतार, अगम अपार
 । कह्य हम कितनो । बहुत बोलबेमों न मरुमुद चुप भलो
 बोलिनेसो वचा प्रयोनन है जितनो ॥ नानारूप जल्पनमो
 नाना निरुलप उठे, ताते जेतो शरिज कथन भलो तिननो ।
 शुद्ध परमात्मामो अनुभौ अभ्यास कीजे, ये ही मोक्ष पथ
 परमारय है इतनो ॥ १२४ ॥

गहा

शुद्धात्म अनुभौ क्रिया, शुद्ध ज्ञान द्यौ दौर ।

मुक्ति पथ माधन वहै, बागजाल सब और ॥१२५॥

जगत चक्षु आनदमय, ज्ञान चेतना आम ।

निर्विकल्प शाश्वत सुधिर, कीच अनुभौ ताम ॥१२६॥

अचल अखण्डित ज्ञानमय, पूरण बीतममत्तर ।

ज्ञानगम्य आधारहित, सो है आत्म तत्त्व ॥१२७॥

ॐ इति दशमो मन्वन्तिशुद्धिद्वार ममात्म मया ॐ

अथ श्री ममयनाय नाटकको आरम्भो
स्याद्वादद्वार आरम्भ ॥१॥

मरीया ३१ मा ।

शिष्य कहे म्यामी जीव स्यागीनकी पदार्थों और यह
है कीवो अनेक मान लीजिये । जीवहै मरने कीजो जाड़ा
है जगत माहि, जीव अग्निशरकी स्थिर स्थिति ।
मरगुरु रह जीव है मरैव निजार्थन "हृत्वेनम्" दग्ग
दृष्टि दीनिय । जीव पराधीन कर्मों इन्द्रिय, नादि
जहाँ तहाँ पयाय प्रमाण कीजिय ॥ १॥

मरीया ३१ मा ।

द्रव्य क्षेत्र काल मात्र चोरे स वस्तुनि, अरु
चतुष्क रम्तु अस्तिरूपमानिय । एतत्तु रम्तु न अस्ति
नियत अग, तारी भेद द्रव्य कर्मों नर जगनिये ॥ दग्ग
जो रम्तुजेत गत्ता भूमि कान् वन, मन्माय मन्म मूल
मरुति रम्तानिये । याही जीवन विह्वल उद्धि रत्नपना,
व्यवहार दृष्टि अग भेद पदार्थों ॥ १॥

मरीया ३१ मा ।

ज्यों तन कचुकि न्यायन, तिननु नादि भुनय ।
ज्यों शरीरके नाशने, कर्म अस्तिरूप अग ॥ २॥

ॐ इति श्री ममयनाय नाटकको आरम्भो मन्मा

नारायण भया ॐ

१०० मो साधय साधकद्वार प्रारभ ॥ १२ ॥

दाता ।

१०१ ज्ञान दशा, अथवा मिद्व महत ।

१०२ गनिता आदि बुध, क्षीणमोह परयत ॥ १ ॥

१०३ धि जो परमाय निप, उमे रमे निजरूप ।

१०४ सा १५ शिव पथको, चिद्विवेक चिद्रूप ॥ ३० ॥

कवित्त ।

ज्ञानदृष्टि जिन्हके घट अंतर, निरखे द्रव्य सुगुण पर-
जाय । जिन्हक महज रूप दिन दिन प्रति, स्याद्वाद साधन
प्राप्ताय ॥ जे केवल प्रणीत मारग हुए, चित्र चरण
गमे ठहराय । ते प्रणीत करि क्षीण मोह मल, अविचल
होहि परमपद पाय ॥ ३३ ॥

सवेया ३१ मा ।

चाकमो फिरत जाको ससार निरुट आयो, पायो
जिन्ह मम्यक मिथ्यात्व नाश करिके । निरद्वद मनमा
सुभूमि साधि सीनी जिन्हे, कीनी मोक्षकारण अरस्था
ध्यान धरिके ॥ सोही शुद्ध अनुभौ अभ्यामी अविनाशी
भयो, गयो ताको करम भरम रोग गरिके । मिथ्यामति
अपनो स्वरूप न पिछाने ताते, डोले जग जालमें अनत
फाल भरिक ॥ ३४ ॥

आहा ।

पिनमि अनादि अशुद्धता, होइ शुद्धता पोय ।
 ता परगतिमो बुध कह, ज्ञानक्रियाओं मोख ॥३६॥
 जमी शुद्ध मम्यङ् कला, बगी मोक्ष मग जोय ।
 यहै कर्म चरण कर, क्रम क्रम पूरण होय ॥३७॥
 जाके घट ऐसी दशा, माधक ताको नाम ।
 जैसे जो दीपक घर, मो उजियारो धाम ॥३८॥

सर्गशा ३१ सा ।

जाके घट अतर मिथ्यान अधकार मयो, भयो पर
 काग शुद्ध ममस्ति भानको । जारी मोह निद्रा घटि
 ममता पलङ्क फटि, जान्यो निज मगम अगची मगजानको ॥
 जारी ज्ञान तेन पयो उहिम उदार जग्यो, लग्यो सुख
 पोष समरम मुधापानको । ताही मुनिचक्षणको मसार
 निकट आयो, पायो तिन मार्ग सुगम निराणको ॥३९॥

समारमागरसे पार होनेके लक्षण ।

सर्गशा ३१ सा ।

जाके हिरदमें स्यादशाद साधना रगत, शुद्ध आत्मको
 अनुभौ प्रगट भयो है । जाके सकलप मिश्रलपक निहार
 मिटि, सदाकाल एक भाव रम परिणयो है ॥ जाते बध विधि

१) अमीना, मेमो मुनिवार पन मोउ छाडि
ताका ताका मडिमा उद्योत दिन दिन प्रति,
॥ ४० ॥

आत्मसुखरी प्राप्ति का उपाय ।

१-१२ प नामनि अनेक एतन्मिम्प, अयिर इत्यादि
न तीव्र कहिये । दासे एक नयकी प्रतिपदी अपर
न । मो न टियाय वाद विवादमें रहिये ॥ विरता न होय
आत्मसुखरी तरगनिमें, स्वयलता पड़े अनुमौ दशा न लहिये ।
ताका जीव अगल अगलिन आवट करु, एमो पद माधिक
गमावि सुख नहिये ॥४१॥

चौपाई ।

स्वपर प्रकाशक शक्ति हमारी । ताते वचन भेद भ्रम भारी ॥
मेव दशा द्विगता परकाशी । निरुद्धा पररूपा भामी ॥४४॥

नेहा ।

निज स्वम्प आत्म शक्ति पररूपी पर वस्त ।

जिन्ह लगि लीनो पैच यह, तिह लखि लियो ममस्त ॥४५॥

सौर्या ३१ मा ।

कर्म अस्थामें अशुद्धमों मिलोमियत, कर्म कलमों
गति शुद्ध अग है । उमै नय प्रमाण मममाल शुद्धाशुद्धम्प,
एमो परयाय वारी जीव नाना रंग है ॥ एकही मममें

त्रिधाम्प प तथापि याकी, असहित चेतना शक्ति मरग
 हैं । यहै म्यादनाद यामो भेद म्यादनादी जाने, मूरत न
 माने जाकी हियोदग भग हैं ॥ ४६ ॥ निहचे दरत दृष्टि
 दीजे तब एक रूप, गुण परयाय भेद भायसों बहुत है ।
 अमरुय प्रदश मयुगन मत्ता परमाण, ज्ञानकी प्रभामों
 लोकाञ्जल कमान जुन है ॥ परजे तरगनाके अग छिनभगुर
 है, चेतना शक्तिमों असहित अचुत है । मो है जीव
 जगत रिनायक जगत मार, जाकी मौज महिमा अपार
 अदभुत है ॥ ४७ ॥ बि र शक्ति परणतिमों रिक्त
 दीसे, शुद्ध चेतना निगारते महज सत है । कर्म मयोगमों
 कहाय गति जोनि बास, निहचे स्वरूप सदा सुखत महत
 है ॥ ब्रायक स्वमार धरे लोकाञ्जल परकामि, मत्ता पर-
 माण मत्ता प्रकाशभत है । सो है जीव जानत जदान कौतुक
 महान, जाकी कीरति कहान अनादि अनत है ॥ ४८ ॥
 पच परकार नानापरणको नाश करि, प्रगटि प्रमिद जग
 माहि जगमगी है । ज्ञायक प्रभामें नाना ज्ञेयकी अस्थाय
 धरि, अनेक भई पे णकताके रस पगी है ॥ याही भाँति
 रहेगी अनादिमाल परयत, अनत शक्ति फेरि अनतसों
 लगी है । नरदद दवल में कैवल स्वरूप शुद्ध, ऐमो ज्ञान
 ज्योतिकी मिखा समावि जगी है ॥ ४९ ॥

शुद्धि गुणानाधिकार प्रारम्भ ॥१४॥

मैयाँ २८ सा ।

विषय में जहाँ निर्मल ज्योति, जोगसो
निश्चय प्रमानिये । वहाँ दृढ़ दशमो कदाये
गति, सति बुद्धि ज्ञान भेद व्याहार मानिये ॥
परिचयानि थापा पर चेदे, प्रारम्भ अल्प ताते
अमानिय । करें भेदाभेदको विचार विस्ताररूप,
तब उपपादय माँ विशेष जानिये ॥१५॥

लेन ।

गौतम गुणस्थानर दशा, जगत्समी जिय भूल ।

आश्रय सार भाग दे, बंध मोचसो मूल ॥१६॥

श्रीपाद ।

आश्रयमार पुरणति जौलो । जगत्समी चेतन हैं तोलो ॥
आश्रय सार सिद्धि व्याहारा । दोऊ मरपथ शिखर
धारा ॥ ११३ ॥ आश्रयरूप बंध उत्पत्ता । सार ज्ञान मोक्ष
पद दाता ॥ जो सारसो आश्रय छोड़े । ताको नुस्कार
अथ कीजे ॥ ११४ ॥

जैसे बटवृक्ष एक नामे फल है, अनेक फल फल बटु
बीज बीज बीज बट है । बटमाहि फल फलमाहि बीज नामे
बट, बीजे जो विचार तो अनंतता अघट है ॥ जैसे एक

मत्तामे अनत गुण
रु है । ठटमें अन
मत्ता ऐमो जीव -

मे अनत नृत्य भुज्जने
म अनतरूप, रूपने अनत

समयमात्र पात्र १५, नाटक-भाव २० ।
सोहै आगम नाथने परमाख्य किन्हे १६ ।
इवि सपूर्ण ६ ।

ॐ ज्ञान-पद्मीसी ॥

(महाशिव उतासीदास-कृत भेद-सूत्र)
सुग-ना तिगियग-योनिषे, नन्द-सुख-सुख १
महामोहर्षी नीदसों मोहि छत ॥ २ ॥
जैमे जगक जोरमो, नै-नै-नै-नै-नै ३
तमे हुसरमक उदय, नन्द-सुख-सुख ४
लग भूय ज्वरक गन ॥ ५ ॥
अशुभ गये शुभके नै-नै-नै-नै-नै ६
जैस पवन सकेहै नै-नै-नै-नै-नै ७
रवा मनमा चकड़ नै-नै-नै-नै-नै ८
जहाँ पवन नहि नै-नै-नै-नै-नै ९
न्या सव परिहृत्त नै-नै-नै-नै-नै १०

१. रचिमो नीम चपाय ।
 २. प्रगन रिषय मुखपाय ॥ ६ ॥
 ३. निर्मिष तन जय होय ।
 ४. रिषय न वालें कोय ॥ ७ ॥
 ५. नूढहि अध अदेख ।
 ६. निन विवेक घर भेख ॥ ८ ॥
 ७. खल लगे, खेउट शुद्ध रिचार ।
 ८. पापहु भय जल पार ॥ ९ ॥
 ९. मानै नहीं, महामत्त गजराज ।
 १०. गतिनाम धिरे, गिनै न काज अराज ॥ १० ॥
 ११. नर दाउ उपायकै, गदि आनै गज साधि ।
 १२. यो यामनयम करन सो, निर्मल ध्यान ममाधि ॥ ११ ॥
 १३. तिमिर रोगमा नन ज्यो, लगी और सो और ।
 १४. त्यो तुम सगयमें परे, मिथ्यामतिकी दौर ॥ १२ ॥
 १५. ज्यो औपध अजन किये, तिमिर-रोग मिट जाय ।
 १६. त्यो मतगुरु उपदेशतैं, सगय वेग पिलाय ॥ १३ ॥
 १७. जैमें सब यादव जरे, द्वारापतिसी आगि ।
 १८. त्यो मायामें तुम परे, कहां जाहुगे भागि ॥ १४ ॥
 १९. दीपायनमों ते बचे, जे तपसी निरग्रथ ।
 २०. तजि माया ममता गहो, यहै मुरतिको पन्थ ॥ १५ ॥

ज्यों कुशातुके फेंटमो, घट बढ़ कचन कान्ति ।
 पाप पुन्य हर त्यों भये, भूदातम बहु भाँति ॥ १६ ॥
 कचन निच गुन नहि तने, हीन धानक होत ।
 घट घट अन्तर आतमा, सहन सुभाष उदोत ॥ १७ ॥
 पद्मा पीट पकाइये, शुद्ध बनर ज्यों होय ।
 त्यों प्रगट परमातमा, पुण्य पाप मल खोय ॥ १८ ॥
 पर राहुके ग्रहणमों, छर मोम उरि छीन ।
 मगति पाय कृसाधुमों, मज्जन होय मलान ॥ १९ ॥
 निम्बादिक चन्दन करं, मलयाचलसी राम ।
 दर्जनत सज्जन भये, रहत माधुके पास ॥ २० ॥
 जमें ताल मदा भर, जल आर चहुँ ओर ।
 तमें आसन द्वारमों, कर्म-बन्धको जोर ॥ २१ ॥
 ज्यों जल आगत मृदिये, छाय मगर पानि ।
 तमें मगरक मिये, कर्म निर्जरा जानि ॥ २२ ॥
 ज्या नूटी मयोगत, पारा मूर्खित होय ।
 त्यों पुद्गलमों तुम मिले, आतम शक्ति ममोय ॥ २३ ॥
 मेलि खटाइ माजिये, पारा परगटरूप ।
 शुक्लध्यान अम्पामन, दर्शन ज्ञान अनूप ॥ २४ ॥
 फहि उपदश 'वनारसी' चेतन अरु रछु चेत ।
 आप तुम्हागत आणको, उदय करनक हेत ॥ २५ ॥

६१ अर्थवचनिका ६०

(अतारसीनामनी)

१ । तत्त्व अनागुण अनन्तपर्याय, एक एक
 २ । प्रवेश, एक एक प्रदशनिर्दिष्ट अनन्त
 ३ । एक हीमार्गधारिण अनन्त अनन्त पुद्गल
 ४ । एक पुद्गल परमाणु अनन्तगुण अनन्त पर्याय
 ५ । अजमान, यह एक समारास्थित जीव पिंडही
 ६ । याही भौति अनन्त जीवद्रव्य सपिंडरूप जानने ।
 ७ । जीव द्रव्य अनन्त अनन्त पुद्गलद्रव्यकरि मयोगित
 (सयुक्त) मानने । तामो यौरी—

अन्य अन्यरूप जीवद्रव्यही परनति; अन्य अन्यरूप
 पुद्गलद्रव्यकी परनति, तामो व्यौरी—

एक जीवद्रव्य जा भौतिकी अस्थालिये नानाकाररूप
 परिनिर्म मो भौति अन्य जीवमो मिलै नाही । बाकी और
 भौति । याही भौति अनन्तानन्त स्वरूप जीवद्रव्य अनन्तानन्त
 स्वरूप अस्थालिये वर्तहि । काहु जीवद्रव्यके परिनाम
 काहु जीवद्रव्य औरस्था मिलै नाही । याही भौति एक
 पुद्गल परमाणु एक समयमाहि जा भौतिकी अस्थालिये धरै,
 सो अस्थालिये अन्य पुद्गल परमाणु द्रव्यमो मिलै नाहीं, तात

पुद्गल (परमाणु) का भी अन्य अन्यता जाननी ।
 अथ जीवद्रव्य पर एक क्षेत्रावगाही अनादिकालके,
 ताम्र विशेष इतना - द्रव्य एक, पुद्गल परवान् द्रव्य
 अनन्तानन्त चलाचलम् ३ आगमनगमनरूप अनन्ताकार, परिण
 मरूप यधमुक्तिगति लिये वर्चहि । ।

अथ जीवद्रव्य की अनन्त अवस्था ताम्र तीन अवस्था
 मुरूप थापी । एक अशुद्ध अवस्था, एक शुद्धाशुद्धरूप मिश्र
 अवस्था, एक शुद्ध अवस्था, ए तीन अवस्था ससारी जीव
 द्रव्यकी । समारातीत मिद्ध अनन्तस्थितरूप कहिये ।

अत्र तीनह अवस्थाकी विचार—एक अशुद्ध निश्चया
 त्मक द्रव्य, एक शुद्धनिश्चयात्मक द्रव्य, एक मिश्रनिश्च
 यात्मक द्रव्य, अशुद्धनिश्चय द्रव्यको सहकारी अशुद्ध व्य
 वहार मिश्रद्रव्यको महकारी मिश्र व्यवहार, शुद्ध द्रव्यकी
 महकारी शुद्धव्यवहार ।

अथ निश्चय व्यवहार को विवरण लिख्यते ।

निश्चय तो अमेरूप द्रव्य, व्यवहार द्रव्यके यथा
 स्थित भाव । परतु विषय इतना पुयात्काल समारावस्था
 तात्काल व्यवहार कहिये । मिद्ध व्यवहारातीत कहिये,
 यातें जु समार व्यवहार णकरूप दिखायो । समारी मो
 व्यवहारी, व्यवहारा सो ससारी ।

१११ तत्कालं प्रत्यक्षं को विवरण लिखते ।

११२ १११ तत्कालं प्रत्यक्षं, तत्कालं अशुद्ध निश्च-
 यतः ११२ अशुद्ध्याहारी । मध्यगृहीतं होतं मात्र चतुर्थ
 ११३ । तद्वन्म गुणस्थानम्पर्यन्तं मिश्रनिश्चया-
 ११४ व्यग्रहारी । केवलज्ञानी शुद्धनिश्चयात्मक
 ११५ ।

११५ अथ तौ द्रव्यको स्वरूप, व्यवहार ससारा
 ११६ स्थितं भाव, ताको विवरण रुहे हैं,—

११७ मध्यगृहीतं जीव अपनी स्वरूप नहीं जानती तौ
 ११८ दम्भरूपविष मगन होय करि कार्य मानतु है ता कार्य
 ११९ स्वरूप तौ अशुद्धव्यग्रहारी कहिए । मध्यगृहीतं अपनी
 १२० स्वरूप परोक्ष प्रमानकरि अनुभवतु है । परमत्ता परस्वरूप
 १२१ समी अपनी कार्य नहीं मानती सती जोगद्वारकरि अपने
 १२२ स्वरूपको ध्यान विचाररूप क्रिया करतु है, तौ कार्य करती
 १२३ मिश्र व्यग्रहारी कहिए । केवलज्ञानी यथाख्यातचाग्रिक
 १२४ बलकरि शुद्धात्मस्वरूपको समनशील है तौ शुद्धव्यग्रहारी
 १२५ कहिए । जोगाद् अस्वभाव विद्यमान है तौ व्यग्रहारी नाम
 १२६ कहिए । शुद्ध व्यग्रहारकी मगद त्रयोदशम गुणस्थानकमी
 १२७ लेकरि चतुर्थम गुणस्थानकपर्यन्त जानती । अमिद्वत्परि-
 १२८ यमनान् व्यवहार ।

अथ तीनहूँ व्यवहारको स्वरूप कहे हैं—

अशुद्ध व्यवहार शुभाशुभाचाररूप, शुद्धाशुद्धव्यवहार शुभोपयोगमिश्रित स्वरूपाचरनरूप, शुद्धव्यवहार शुद्धस्वरूपाचरनरूप । परंतु विशेष इनको इतना जु कोऊ कहे कि— शुद्धस्वरूपाचरणात्म तो मिट्टीहूँरिष छती है, उहाँ भी व्यवहार मज्ञा कहिए—सो यों नहीं—चातममारी अवस्थापर्यंत व्यवहार कहिए । ममारानस्थाके मिटत व्यवहार भी मिटी कहिए । इहाँ यह थापना कीनी है तातें मिट्टी व्यवहारानीत कहिए । इति व्यवहारविचार समाप्त ।

अथ आगमअध्यात्मको स्वरूप क. ज्यते ।

आगम—वस्तुको स्वभाव सो आगम कहिए । आत्माको जु अधिकार सो अध्यात्म कहिए । आगम तथा अध्यात्म स्वरूप भाव आत्मद्रव्यरूप जानने । ते दोऊ भाव ससार अवस्थारिष त्रिकालवर्ती मानने । ताकोँ ज्यौरौ—आगमरूप कर्मपद्धति अध्यात्मरूप शुद्धचेतनापद्धति । ताकोँ ज्यौरौ—कर्मपद्धति पौद्गलीकद्रव्यरूप अथवा भावरूप, द्रव्यरूप पुद्गलपरिणाम, भावरूप पुद्गलाकारआत्माकी अशुद्धपरिणतिरूप परिणाम—ते दोऊ परिणाम आगमरूप थापे । अब शुद्धचेतनापद्धति शुद्धात्मपरिणाम मो भी द्रव्यरूप अथवा भावरूप । द्रव्यरूप तो जीवद्रव्यपरिणाम—भावरूप ज्ञानदर्शन सुख तीर्थ आदि अनन्तगुण परिणाम, ते

२. उ. परिणाम अध्यात्मरूप, जानने । आगम अध्यात्म
३. पदार्थों पर अनन्तता माननी ।

आत्मता का ताको विचार—

जो ताको स्वरूप दृष्टान्तकरि निगिड्यतु है नेम—
जु. १. बीज एक दायिपै लीजै, ताको विचार, दीर्घ
२. १. बीज तो वा उटके बीजविषं, एक उटको वृक्ष है ।
मो वृक्ष तमा कहु भागिफल होनहार है तसो विस्तार-
निय निग्रमान वाम गाम्तरूप छतो है, अनेक-शाखा
आग्या पत्र पुष्पफल सयुक्त है, फल फलविषे अनेक बीज
हादि । या भातिकी अवस्था एक उटक बीजविषं विचारिण ।
भी और सूक्ष्मदृष्टि दीज तो जे जे वा बट वृक्षविषे बीज हैं
ते ते अतगभित बटवृक्षमयुक्त होंहि । याही भाति एक बट-
विषे अनेक अनेक बीज, एक एक बीज विषे एक एक बट
ताको विचार बीज तो भागिनयप्रदानकरि न बटवृक्षनिही
वा मर्यादा बाइए न बीजनिही मर्यादा पाइए । याही भाति
अनतताको स्वरूप जाननी । ता अनतताको स्वरूपको केवल-
त्वानी पुरुष भी अनन्त ही दख जाणै कह-अनतको थोर
अत है ही नाही जो ज्ञानविषं भागै । तात अनतता अनत-
हीरूप प्रतिभागै, या भाति आगम अध्यात्मकी अनतता
जाननी । तागै विशेष इतनी जु अध्यात्मको स्वरूप अनत
आगमको स्वरूप अनतानतरूप, यथापना प्रधानकरि

अध्यात्म एक द्रव्याश्रित । आगम अनतानत पुद्गलद्रव्याश्रित । इन दुहूँको स्वरूप मर्यादा प्रकार ताँ केवलगोचर अगमात्र मतिश्रुतज्ञानग्राह्य ताँ मर्यादा प्रकार आगमी अध्यात्मी तो केवली, अगमात्र मतिश्रुतज्ञानी, ज्ञातादेश मात्र अधिज्ञानी मन पयवचानी, ए तीना यथास्थित ज्ञानप्रमाण न्यूनाधिरूप जानने । मिथ्यादृष्टी जीव न आगमी न अध्यात्मी है । रहित ? यतिं जु कथन मात्र ताँ त्रयपाठके बलपरि आगम अध्यातमसी स्वरूप उपदेश मात्र कहें परंतु आगम अध्यातमसी स्वरूप मध्यक प्रकार जानै नहिँ । ताँ मूढ़ जीव न आगमी न अध्यात्मी, निर्देहस्वात ।

अब मूढ़ तथा ज्ञानी जीवके विशेषणों
और भी सुनो—

ज्ञाता तो मोक्षमार्ग माधि जानै । मूढ़ मोक्षमार्ग न माधि जानै काहे—याँ सुनो—मूढ़ जीव आगमपद्धतिको व्यवहार नहै, अध्यात्मपद्धतियों लिख्य कहै नाँ आगम अग एकान्तपनी माधिक मोक्षमार्ग दिखावे अध्यात्म अंगको व्यवहार न जानै यह मूढ़दृष्टिसे स्मरण, बाढ़ि याही भोति सूझै काहेत ?—याँ—जु आगम अंग वाक्यत्रिरूप प्रत्यक्ष प्रमाण है ताको स्वरूप माधियो सुगम । ता वाक्यक्रिया करती मती आपहुँ

मृत् जीव मोक्षो अविशारी मान, अन्तरगमित जो अध्या-
त्मप रिता मो अतरदृष्टि ग्राह्य है मो क्रिया मृदनीय
१ जने । अन्तरदृष्टिके अभावमो अन्तरक्रिया दृष्टिगोचर
ता नाहा, तांत मिथ्यादृष्टी जीव मोक्षमार्ग माधिवेको
पावय १ ।

अथ सम्यग्दृष्टिको विचार सुनौ—

सम्यग्दृष्टी कहा मो सुनो—सजय विमोह विम्रम ए
तीन भाव चार्म नाही मो सम्यग्दृष्टी । सजय विमोह विम्रम
कहा ?—तामो स्वरूप दृष्टान्तरनि दिगापतु है सो सुनो—
जैम स्वार पुरुष जाहु एकरूपानस्त्रिपै ठाढ़ । तिह चारि-
इके आगे एर सीपमो खट निनही और पुरुषन आनि
दिसायो । प्रत्येक प्रयेरत प्रश्न कीनी कि यह कहा है—सीप है
के रूपी है ? प्रयम ही एक पुरुष मरीगालो बोल्यो—रन्धु
मुव नाहीन परत, किगो सीप है किधो रूपो है मोरी
दृष्टिनिपै यार्सी निरधार होत नाहिने । मो दूजो पुरुष
विमोहगालो बोल्यो कि—रन्धु मोहि यह मुधि नाही कि
तुम सीप कौनमो कहतु है रूपी कौनसी कहतु है ? मेरी
दृष्टिनिपै कछु आयतु नाही, तांत हम नाहिने जानत कि तू
कहा कहतु है अथवा रुप हँ रहे बोलै नाही गहलरूपमो ।
भी तीसरो पुरुष विम्रमगालो बोल्यो कि—यह तौ प्रत्यक्ष

प्रमान रूपों हैं या तो सीप सौन रहै ? मेरी दृष्टिविषे तो रूपों सुभक्तु है तात न रईया प्रमार यह रूपों हैं । मो तोनों पुरुष तो वा सीपको स्वरूप जान्यो नाहीं । तात तीनों मिथ्यागदी । अब चौथो पुरुष चीन्यो कि यह तो प्रत्यक्ष प्रमान सीपको रहै है याम कहा धोखो, सीप सीप सीप, निरार सीप, या तो जु रोई और उस्तु कहै मो प्रत्यक्ष प्रमान, आमरु अवका प्रप्र । जेमें सम्यग्दृष्टीको स्वरूप-रूपविष न ममै न रिमोह न रिभ्रम, यथायु दृष्टि है । तात सम्यग्दृष्टी जीव अन्तरदृष्टि करि मोक्षपद्धति माधि जान । राशभा, बाह्यनिमित्तरूप मान, तो निमित्त नानारूप, एक रूप नाहीं, अन्तरदृष्टिके प्रमान मोक्षमार्ग सारी, सम्यग्ज्ञान स्वरूपाचरनकी कनिका जामे मोक्षमार्ग साची । मोक्षमार्ग की माधियो यह न्यग्रहा, शुद्धद्रव्य अक्रियारूप मो तिखे । अम निश्चय व्यवहारको स्वरूप, सम्यग्दृष्टी जान । सुद जीव न जानै न मान । मरु जीव वधपद्धति को माधिरि मोक्ष कहै, मो बात ज्ञाता मान नाहीं । काहेत ?—यात—जु वधक माधते उध मर, मोक्ष उध नाहीं । ज्ञाता जर कंचित उधपद्धति विचार तर जान कि या पद्धतिसो मेरो द्रव्य अनादिको चन्द्ररूप चर तो आगे हैं—अप्र या पद्धतिसो मोह तोरि रहै तो या पद्धतिको राग पुर की त्यो हे जर काहे करो ? मात्र भी उधपद्धतिविष मगन होय नाहीं मो

माता यज्ञो स्वरूप विगारै अमुम ध्याय मायं श्रवन करे
नयनाभ्यां तप त्रिषा अपन शुद्धस्वरूपक मन्मथ होइपरि
१४ । १६ मातासो यागार, याहीसो नाम मिथुन्यगार ।

॥ यन्नेयउपादेयरूप ज्ञानाकी शाल ताशो
उच्चार लिख्यते—

हय—“यागरूपं तौ अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ज्ञेय—
 विनारूप अथ पटद्रव्यकी स्वरूप, उपादय—आवरण-
 रूप अपने द्रव्यकी शुद्धता, ताको धौर्ग—गुणस्थानक
 प्रमाण हयज्ञेयउपादयरूप शक्ति मानाई होइ । ज्यों त्यों
 ज्ञाताकी हयज्ञेयउपादयरूप शक्ति प्रदर्शना होय त्यों त्यों
 गुणस्थानककी पटप्रागी कही हैं, गुणस्थानकप्रधान ज्ञान गुण
 स्थानक प्रमाण किया । तामें विशेष इतनी जु एक गुणस्था-
 नकप्रती अनेक जीव होइतौ अनेक रूपसे ज्ञान कहिण, अनेक
 रूपकी किया कहिण । भिन्न भिन्न मत्ताके प्रधानकरि गहता
 मिल नाई । एक एक जीवद्रव्यनिर्णय अन्य अन्य रूप उदीर भाव
 होइतिन उदीरभावानुमारी ज्ञानकी अन्य अन्यता जाननी ।
 परतु विशेष इतनी जु कौऊ जातिसे ज्ञान ऐसी न होई जु
 परमत्तावलम्बनशीली होइकरि मोक्षमार्ग याचात् कहै ।
 काहें अवस्थाप्रधान परमत्तावलम्बक है । ज्ञानको परमत्ताव-
 लम्बी परमार्थता न कहै । जो ज्ञान होय सो परमत्तावलम्बन

शीली होइ तारी नाउ ज्ञान । ता प्रार्थनाद्वय नि-
 चरूप नानाप्रकारके उदीकमार होहि । त्वि उ-
 ज्ञाता तमामगीर । न कत्ता न मोक्षा न-
 यों कहै कि या भातिके उदीकमार होइ इ-
 गुनस्थानरु कहिय मो भूओ । निनि द्रष्टा मग्न मरदा
 प्रकार जान्यो नाहीं । काहूँ—यतै इ-
 निकी यौन बात चलारै कस्तक द-
 त्वता जाननी । केरलीके भा उ-
 काहूँ केरलीकी टड कपाट-
 नाहीं । तौ कयलीरिपे ना उ-
 स्थानरुनी यौन बात चलारै ।
 ज्ञान नाहीं, ध्यान स्वशक्तिय-
 शक्ति ज्ञायक प्रमान ज्ञान स्व-
 प्रमान यह ज्ञाताको मार्य-
 ताई लिखिये कहाताई कहि ।
 तीत, ततैं यह पिचार क-
 मो थोरीही लिखो सु-
 सो यह चिड़ी सुन-
 यथोरा यथा मुन-
 ज्ञाने वचनानुमाने ।

याहि पुण्या मङ्गला मण्डहैगो ताहि स्याणकारी हे
भाग्यमाय ।

ॐ इति परम यज्ञचक्रिना ॐ

ॐ स्वरूपनबोधन ॐ

(श्रीमद्भद्रकलह प्रणीत)

मुक्ताम्मुक्तस्वरूपो यः, कर्मणि मयिदादिना ।

अक्षय परमात्मान, ज्ञानमूर्ति नमामि तम् ॥ १ ॥

प्रथम-मगलाचरण करते हुए श्री अमलकमण्डपाय
रूप हैं कि जो अग्निश्वर, ज्ञानमूर्ति, परमात्मा, ज्ञानोप-
रणादि द्रव्यमौल, रागादिक भावमौल, व'शरीररूप
नोर्ममसे मुक्त (रजित) है और मय्यगान आदि अपने
स्वाभाविक गुणासे अमुक्त (युक्त) है उन परमानन्दमय
परमात्माको नमस्कार करता हूँ ।

अत्र उपर्युक्त तीन प्रकारक कर्मोंसे नष्ट कर देनेके
कारण जो मुक्तरूप है और अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्त
वीर्य आदि गुणोंसे युक्त होनके कारण जो अमुक्तरूप है
और ज्ञान ही निनकी मूर्ति है ऐसे अग्निश्वर परमात्माको
हम नमस्कार किया गया है ।

मीमांसक, परमात्माको कर्मरहित नहीं मानते इसलिये उनका मतका निराकरण करनेके लिये “कर्ममुक्त” विशेषण दिया गया है। नैययिक व बशेषिक, मुक्तजीवमें ज्ञानादि विशेष गुणका भी अभाव मानते हैं इसलिये “ज्ञानादिसे अमुक्त” विशेषण दिया है। कोई कोई मतावलम्बी मुक्तिसे फिर वापिस आना मानते हैं इसलिये “यक्षय” विशेषण दिया गया है। मारुत मतावलम्बी, परमात्माको ज्ञानरहित मानता है इसलिये “ज्ञानमृति” विशेषण दिया गया है और मुक्तामुक्त कहनेसे स्वाद्वशादकी मिद्धि भी की गई है तथा आगे भी प्रायः प्रत्येक श्लोकमें स्वाद्वशादकी मिद्धि भी आयेगी ॥ १ ॥

मोऽस्त्यात्मा मोषयोगोऽय क्रमाद्वेतुफलारहः ।

यो ग्राह्योऽग्राह्यनाद्यन्त स्थित्युत्पत्तिव्यथात्मकः ॥ २ ॥

अर्थ—रह परमात्मा आमरूप होनेसे कारणस्वरूप है और ज्ञानदर्शनरूप होनेसे कार्य स्वरूप भी है। इसी तरह केवलज्ञानके द्वारा जानने योग्य होनेसे ग्राह्यस्वरूप है और इन्द्रियोंके द्वारा न जानने योग्य होनेसे अग्राह्य स्वरूप भी है।

द्रव्याधिक नयनी अपेक्षा नित्यरूप है और परिणामनशील होनेसे पर्यायाधिक नयनी अपेक्षा उत्पाद विनाश

मीमांसक, परमात्माको कर्मरहित नहीं मानते इसलिए उनका मतका निराकरण करनेके लिये "धर्ममुक्त" विशेषण दिया गया है। नैयायिक व वैशेषिक, मुक्तजीर्णमें ज्ञानादि विशेष गुणका भी अभाव मानते हैं इसलिए "ज्ञानाग्निमे अमुक्त" विशेषण दिया है। कोई कोई मतानुसारी मुक्तिमें फिर वापिस ज्ञाना मानते हैं इसलिए "अक्षय" विशेषण दिया गया है। भार्य मतानुसारी, परमात्माको अनरहित मानता है इसलिए "तानमूर्ति" विशेषण दिया गया है और मुक्तामुक्त कहनेसे स्वाद्वशाकी मिट्टि भी की गड है तथा आगे भी प्राय ग्रन्थक इतिहासमें स्वाद्वदकी मिट्टि की जायगी ॥ १ ॥

मोऽस्त्यात्मा मोपयोगोऽय क्मादेतुफलाय ॥

यो ग्राह्योग्राह्यनाद्यन्त स्थित्युपनिब्यशात्मक ॥ २ ॥

अर्थ—यह परमात्मा आत्मरूप होनेमें कारणस्वरूप है और ज्ञानदर्शनरूप होनेसे कार्य स्वरूप भी है। इसी तरह फलजानने के द्वारा जानने योग्य होनेसे ग्राह्यस्वरूप है और इन्द्रियोंके द्वारा न जानने योग्य होनेसे अग्राह्य स्वरूप भी है।

द्रव्याधिक नयकी अपेक्षा नित्यरूप है और परिणामनशील होनेसे पयायार्थिक नयकी अपेक्षा उपाद विनाश

अतः नैवेद्यं । इमं प्रकारं परमात्मामेव अनेकं तरहसे
अनेक-विध मित्र होता है ॥ २ ॥

अतः अविभिर्भेदमिदात्मा चिदात्मकः ।

अतः अविभिर्भेदमिदात्मा चिदात्मकः ॥ ३ ॥

अतः प्रमेय-साधक धर्माका अपेक्षासे यह परमात्मा
अनन्त है और ज्ञान दर्शनकी अपेक्षासे चेतनरूप भी है
अतः दोनो अपेक्षाओंसे चेतन अचेतन स्वरूप है ।

सामर्थ्य-आत्मा एक चेतना नामक गुण है, जिस
गुणकी ज्ञान व दर्शन ये दो पर्याये होती हैं और इस चेतना
गुण अथवा इसकी ज्ञान दर्शन पर्यायाही अपेक्षासे ही आत्मा
चेतन कहलाता है । इस चेतना मुख्यक अतिरिक्त आत्मामें
और जो प्रमेय-साधक होनेसे वस्तु-ज्ञान-साधक होती
है) आदि अनन्त गुण ऐसे हैं जो कि पुद्गलादि अचेतन
पदार्थोंमें भी पाये जाते हैं उन गुणोंकी अपेक्षा आत्मा एक
परमात्माकी अचेतन भी कह सकते हैं और इसीलिये आत्मामें
चेतनपना व अचेतनपना मिश्र होता है ॥ ३ ॥

ज्ञानाद्भिन्नो न चामिन्नो, मित्रामित्रं कथंचन ।

ज्ञान पूजाप्रीभूत, सोऽयमात्मेति कीर्तितं ॥ ४ ॥

अर्थ-यह परमात्मा ज्ञानसे भिन्न है और ज्ञानसे भिन्न

नहीं भी है । अर्थात् ज्ञानसे कथञ्चित् (किसी अपेक्षासे) भिन्न है सर्वथा (सुख अपेक्षाओंसे) भिन्न भी नहीं है । इसी प्रकार यह परमात्मा ज्ञानसे अभिन्न है और ज्ञानसे अभिन्न भी नहीं है अर्थात् ज्ञानसे कथञ्चित् अभिन्न है सर्वथा अभिन्न भी नहीं है, क्योंकि पहिले पिछले सुख ज्ञानोंका समुदाय ही मिलकर आत्मा कहलाता है ।

भारार्थ—आत्मा नित्य परिणामनशील पदार्थ है और उसमें अनन्त गुण हैं निरन्तर ज्ञानगुण एक ऐसा है जो हमारे अनुभवमें आता है और जिसके द्वारा हम अपने व दूसरेकी आत्माको जान सकते हैं इस कारण ज्ञानगुणको ही यहाँ आत्मा कहा गया है । दूसरी बात यह है कि यह ज्ञान या चेतना गुण आत्मामें हमेशा रहते हुए भी परिणामता (बदलता) रहता है इस कारण किसी एक समयके ज्ञान मात्र ही आत्मा न होनेसे ज्ञानसे आत्मा भिन्न है और सर्व सभ्योंके ज्ञानोंका समुदाय रूप होनेसे ज्ञानसे आत्मा अभिन्न है इसी कारण ज्ञानसे आत्माको सर्वथा भिन्न वा अभिन्न न मानकर कथञ्चित् भिन्न अथवा अभिन्न माना गया है ॥ ४ ॥

स्वप्नप्रमितश्चाय, ज्ञानमात्रोऽपि नैव न ।

ततः सर्वगतश्चाय, विश्वस्थापी न सर्वथा ॥ ५ ॥

१५-३६ अरहत परमात्मा अपने परम औदारिक
 २५ १३१ है और बगल नहीं भी है अर्थात् समुदात
 १ २१११ रहने हुए भी आत्माके प्रदशोका कारण
 १०० १०११ आदि गरीबों का साथ बाहर निश्चयना)
 १०० १०११ समय रहती भगवानकी आत्माके प्रदश
 १०० १०११ आत्माके फल पाते हैं उस समय आत्मा औदारिक
 १०० १०११ नहीं है । इसी तरह वह परमात्मा ज्ञानमात्र
 १०० १०११ ज्ञानमात्र नहीं भी है अर्थात् ज्ञानगुणों मुख्य
 १०० १०११ व अन्य समस्त गुणोंको गौण करके यदि विचार
 १०० १०११ तो आत्मा या परमात्मामें ज्ञानमात्र ही दृष्टिमें आता
 १०० १०११ है और यदि अन्य गुणोंको मुख्य किया जाय तो ज्ञानमात्र
 १०० १०११ दृष्टिमें नहीं भी आता है । इसी तरह जब केवलज्ञानक
 १०० १०११ द्वारा सम्पूर्ण लोक व अलोकको जानने की अपेक्षा लेते हैं
 १०० १०११ तब परमात्माको सर्वगत भी कह सकते हैं क्योंकि सम्पूर्ण
 १०० १०११ पदार्थ परमात्मासे गत हैं अर्थात् ज्ञात हैं और सम्पूर्ण पदा-
 १०० १०११ र्थोंको जानते हुए भी अरहत परमात्मा अपने दिव्य औदा-
 १०० १०११ रिक शरीरमें ही स्थित रहता है इसलिये वह विद्वन्पापी
 १०० १०११ नहीं भी है ।

मार्ग-परमात्मामें उपर्युक्त धर्म कथचित् मिद्ध होते
 हैं, सर्वथा मिद्ध नहीं होते ।

नानाज्ञानरवरात्राद्यादकोऽनेकोपि नैव म ।
चेतनस्वभावात्त्वादकानिकात्मसो भवेत् ॥ ६ ॥

अर्थ—उम आत्मामें मतिज्ञान, (इन्द्रिय व मनस, गुणों को जानना) श्रुतज्ञान (मतिज्ञानसंज्ञा, गुण, वदार्थक मयरीको जानना) आदि अनेक ज्ञान हान इत्या और भी सम्बन्ध (गद्या शब्दा) चारित्र (यथा आनन्द) आदि अनेक गुण होते हैं चिनके कारण वह आत्मा यद्यपि अनेकरूप हो रहा है तथापि अपने सत् स्वरूपमें अप्रकाश रूपमें नहीं छोटता । इसलिये हम आत्मामें क्याचिन्तन रूप भी जानना चाहिये और क्योंकि अनेक रूप भी जानना चाहिये ।

भाषार्थ—जैसे एक पुरुष एक स्वरूप होकर भी पिता, पुत्र, चचा, भतीजा आदि रूप धारण करे क्योंकि पिताकी अपेक्षा उमकी पुत्र और पुत्रकी अपेक्षा उमकी पिता, भतीजेकी अपेक्षा चचा और चचाकी अपेक्षा भतीजा रहते हैं । उमों तैरह एक आत्मा आनन्दकी अपेक्षा एक स्वरूप होकर भी अपने समीप अनेक रूप धारण करता है ।

नाञ्जक्त-य, स्वभावार्थक, प्रमाण ।

तन्मात्रेणातनी वा ते नाना वा नाममोचर ॥ ७ ॥

परि- यह आत्मा अपने स्वरूपकी अपेक्षा रक्त-य
(रक्त-य नाम धातु) जलम सर्वाया अरक्तव्य (न रुद्ध जाने
वाला) भी जान दे । और पर पदार्थोंक स्वरूपकी अपेक्षा
अरक्तव्य होनेसे सर्वाया वक्तव्य भी नहीं है ।

१४-अन्येक पदार्थ अपने धर्मों की अपेक्षासे कहा
जाता है या पुकारा जाता है परके धर्मोंकी अपेक्षासे नहीं
पुकारा किया जाता जैसे कि आमका फल आमके नाम
से कहा जाता है, केला अमरुद आदि क नामसे नहीं
कहा जाता । इसलिए अन्येक वस्तुमें अपने स्वभावसे कह
जान की योग्यता व अन्य पदार्थोंक स्वभावसे न कहे जाने
की योग्यता समझने हुए आत्मामें भी ऐसा ही समझना
चाहिये ।

म स्याद्विधिनिषेवात्मा स्वधर्मपरधर्मयो ।

समृत्तिप्रोधमूर्तित्वादमूर्तिश्च निपर्ययात् ॥ ८ ॥

- अर्थ-यह आत्मा अपने धर्मोंका विधि न करनेवाला व
अन्य पदार्थोंके धर्मोंका अपनेमें निषेध करनेवाला है
और ज्ञानके आकार होनेसे वह आत्मा मूर्तिक तथा पुद्ग-
लमय शरीरसे भिन्न होनेके कारण अमूर्तीक है ।

भावार्थ-आत्मामें जैसे स्वरूपकी अपेक्षा विधिरूप
धर्म है वैसे पररूपकी अपेक्षा निषेधरूप धर्म भी है ।

क्योंकि जैसे जानादि आत्मिक धर्मों में गहरा आत्मा की मत्ता मिट्ट होती है उसे उपरमादिक पुद्गलके धर्मों की अपेक्षा आत्मा की मत्ता नहीं मिट्ट होती, इसके अतिरिक्त ज्ञानका पुञ्ज होनेके कारण उसे आत्मा मूर्तिक कहा जा सकता है उसी तरह पुद्गल परमाणुओंका बना हुआ न होनेसे अमूर्तिक भी कहलाता है ॥ ८ ॥

इत्याद्यनेकधर्मस्तत्र बधमोक्षौ तयो फलम् ।

आत्मा स्वीकृते तत्तन्मात्रेणै स्वयमेव तु ॥ ९ ॥

अर्थ—इस प्रकार पहले कहे हुए क्रमके अनुसार यह आत्मा अनेक धर्मों को धारण करता है और उन धर्मोंके फलस्वरूप, बध व मोक्षरूप फलको भी उन २ कारणोंसे स्वयं अपनाता है ।

भावार्थ—यह आत्मा रामदेवादि कारणोंसे कर्मका बध करके पराधीन व दुखी भी अपने आप होता है और ज्ञान, ध्यान, तप, जप आदि कारणोंसे बध अवस्थाको भट करके मुक्तिको प्राप्त कर स्वाधीन भी स्वयं ही हो जाता है ॥ ९ ॥

कर्तो य कर्मणा भोक्ता, तत्फलाना ॥ एव तु ।

बहिरन्तरूपायांश्च तेषा मुक्तत्वमेव हि ॥ १० ॥

अर्थ—तो आत्मा बाह्य शत्रु मित्र आदि न अतरंग नाशक नादि कारणोंसे ज्ञानावरणादिक रमोका कर्ता व उन्मुख शत्रु दुष्टादि कृत्ता का भोक्ता है, वही आत्मा बाह्य शत्रु, दुष्ट धन, धान्यादि का त्याग करनेसे कर्मोंके कर्ता कर्मणके व्यवहारसे मुक्त भी है। अर्थात् जो ससार-राम रमाका कर्ता व भोक्ता है वही मुक्तदशामें कर्मोंका कर्ता भोक्ता नहीं भी है ॥ १० ॥

आत्मस्वरूपकी प्राप्तिका उपाय—

मन्त्रेष्टिज्ञानचारित्र्यमुपाय स्यात्समलब्धये ।
तत्र यथात्म्यसंस्थित्यमात्मनो दर्शनं मत ॥ ११ ॥
यथाप्रद्वस्तुनिर्णीति मम्यम्मानं प्रदीपयन् ।
तत्स्वार्थं यत्रमायात्मरथश्चित्प्रमिते पृथक् ॥ १२ ॥
दर्शनज्ञानपयायपुत्रगेत्तरभाविषु ।
स्थिरमालम्बनं यद्वा माध्यस्थ्यं सुखं दुःखयो ॥ १३ ॥
ज्ञाता दृष्टा ज्ञेयसोऽहं सुखं दुःखं न चापरं ।
इतीदं भावनादाढ्यं चारित्र्यमथवा परम् ॥ १४ ॥

अर्थ—मन्त्र-दर्शन मम्यज्ञान और मम्यकचारित्र्य ये तीनों अपने शुद्ध आत्मस्वरूपकी प्राप्ति अर्थात् ससारसे मुक्त होनेके कारण हैं। आत्माके वास्तविक स्वरूप या

मात्र तत्वाके मन्त्रे अद्यानद्यो तो मन्त्रार्जन कहत है।
 पदार्थों के सात्त्विकरूपनेसे निर्गुण करनेको मन्त्रार्जन कहते
 हैं। यह सम्प्रदान दीपक का गुण करना तथा अन्य
 पदार्थों का प्रसादन कहता है। अतः निमित्तों को पूज
 है उसमें अथर्विन् विच मो है। जो अर्चन का क्रम क्रममें
 होनेवाली ज्ञान दर्शनान्तिक पदार्थोंमें विरग्न अत्यग्र
 है उसे सम्प्रदायि कहत है। अतः मन्त्रार्जि गुण
 दु गोंमें मध्यम्यमात्र करनेका मन्त्रार्जि कहत है। या
 मैं जाता हूँ, दृष्टा है अपन करनेके अन्तर्य गुण दु गों
 का भोगनेवाला मध्य अथवा ॥ १ ॥ अथ आ गृहादि पदा-
 र्थोंका मेरेसे कोई मन्त्र नहीं है अतः अथक प्रसादकी शुद्ध
 आत्मस्वरूप में लज्जित करनेको साधनाओंकी रक्षाओं
 भी सम्प्रदायि कहत है ॥११॥ ॥१२॥ ॥१३॥ ॥१४॥

तदतन्मूलहतो सात्त्विकः प्रसादकम् ।

यद्वाद्य देशसत्त्वाद्य तत्त्वैक्यमकम् ॥ १५ ॥

अर्थ—सम्प्रदायि प्रसादन व सम्प्रदायि जो जो
 उपरके श्लोकोंमें शेष शक्ति का मूल कारण बताया है।
 उनके महाराजाधिराज सात्त्विकको व अनशन मन्त्र
 मर्दर्य आदि गृहादि मन्त्रना चाहिये ।

५१॥३- सो र शक्तिमें जैसे रत्नत्रय अतर्ग्व कागण है
वर्षा उत्तम क्षर समसुगमा काल, प्रज्वल्यमाना रागमह
नन, उपशम गात्रि उप व य कागण है ।

अथ गणना तीर्थ, मौल्ये दी म्ये च शक्ति ।

अथानि, अथानित्य, रागद्वेषनिर्निमित्तम् ॥ १६ ॥

अथ-अथ प्रकार तर्क विवेक माथ आत्मेस्वरूपकी
पहचान । १६ । आनेकर सुखमें व दुःखमें यथाशक्ति आमासी
न य ही रागद्वेष रहित चिन्तन करना चाहिये । अर्थात्
अथ मामग्राहं मिलने पर राग नहीं करना चाहिये और
प्रतिष्ठ मयागममें द्वेष नहीं करना चाहिये । क्योंकि ये मय
दृष्ट अनिष्ट पैदार्थ आत्माकी कुट्ट भी हानि नहीं कर सकते ।
इसी मय केवल शरीरसे रहता है ऐसा विचार रखना
चाहिये ॥ १६ ॥

कषायं शिञ्जित चेतस्तत्र नमामगाहने ।

नीलीरसतैश्चर रागो, दुराधेयो हि कौटुम्भ ॥ १७ ॥

अर्थ-जैसे नीले कपड़ेपर केशरका रंग नहीं चढ़
सकता, वैसे ही क्रोधादि कषायोंसे रंजायमान हुए मनुष्य
का चित्त, अमूर्त अमली स्वरूपको नहीं पहचान सकता ।

भावार्थ-अमूर्त यथार्थ स्वरूपको जाननेका यत्न
करनेसे भी पहले हृदयसे क्रोधादि कषायोंको दूर करना

चाहिये तभी रम्तुआ वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकेंगे। जैसे अग्निमें जली हुई भूमिमें अकुर नहीं उगता, जैसे ही कपायसे दग्ध हृदयमें धर्माकुर नहीं आता। इस दृष्टान्तको भी हृदयगम करके प्रत्येकको निरंतर कपायोंको दूर करनेके लिए पूर्ण प्रयत्न करते रहना चाहिये जिससे कि वे ममारमागरमें हुनी अपनी आत्माका उद्धार कर सकें।

ततस्तत्र दोषनिर्मुक्त्य निमोहो भव सरित् ।

उदासीनतरमाश्रित्य तच्चर्चितापरो भव ॥ १८ ॥

अर्थ—आचार्य व्यग्रहारी जीउसे कहते हैं कि हे भाई ! जब रागद्वेष के बिना दूर स्थिते आत्महित नहीं हो सकता तब तुमको रागद्वेष दूर करनेके लिए शरीरात्मिक पर पदाओंका मोह त्यागकर और मगार शरीर व भोगोंसे उदामीन भाव धारण करके तच्च विचारमें तन्मय रहना चाहिये ॥ १८ ॥

हयोपादयतत्तत्स्व, स्थितिं विनाय हयत ।

निरालम्बो भगवन्ममादुपये माप्रलम्बन ॥ १९ ॥

अर्थ—हेय (त्यागने योग्य) व उपादेय (ग्रहण करने योग्य) तत्त्वका स्वरूप जानकर परस्व जो हेय तत्त्व, उससे निरालम्बी होकर उपादेयस्वरूपका आलंबन करना चाहिये।

भार्यार्थ—शुभाशुभभागोंको भला माननेरूप पर्याय बुद्धि तथा मिथ्यात्व कथायादि, आश्रय व बधतत्त्व, हेय तत्त्व हैं और अपना शुद्धजीवतत्त्व उपादय है ऐसा जानकर हेयसे निरालसी होकर शुद्धात्माका ही आलम्बन करने चाहिये ।

अथ १२ ऐति तस्तुन्व, तस्तुरूपेण भावय ।

उपनामानोत्तरपर्यन्ते, शिप्रमाप्नुहि ॥ २० ॥

अर्थ—अपनी आत्मा पर पदावली असली स्वरूपका बार बार चिन्तन करना चाहिय और समस्त समारी पदार्थोंका इच्छाका त्याग करके उपेक्षा भावना (रागद्वेषके त्यागशी भावना) को बढ़ाते बढ़ाते मोक्षपद प्राप्त करना चाहिये ॥ २० ॥

मोक्षेऽपि यस्यनाकाक्षा, न मोक्षमधिगच्छति ।

इत्युक्तत्वाद्विज्ञा वेपी, काचा न कापि योनयेत् ॥ २१ ॥

अर्थ—जब किसी मानुष महात्मा पुस्तके हृदयसे मोक्षकी भी इच्छा निरुल जाती है तभी उसको मुक्ति प्राप्त होती है । इस मित्रा ॥ वाक्यक उपर ध्यान दते हुए आत्महितके इच्छुक जीवोंको सभी पदार्थोंकी इच्छाका त्याग करना चाहिये ।

भावार्थ—किमी भी पदार्थकी प्राप्ति प्रयत्न करने से होती है, इच्छामात्रसे नहीं होती। यहाँ तक कि मोक्षकी इच्छा करनेसे मोक्ष भी प्राप्त नहीं होता, किन्तु इच्छा करने से मोक्ष प्राप्तिमें उलटी बाधा उपस्थित होती है। इसलिए आत्माको हित चाहने वाले पुत्रोंको इच्छा मर्यादा त्याग्य समझना चाहिये ॥ २१ ॥

माजपि च स्वात्मनिष्ठत्वात्मुलभा यदि निन्त्यते ।

आत्माधीने सुखे तात, यत्न किं न करिष्यमि ॥ २२ ॥

अर्थ—यदि कोई यह कह कि इच्छा करना तो अपने आधीन होनेसे सुलभ है किन्तु फल प्राप्ति अपने आधीन न होनेसे कठिन है इसलिए इच्छा किमीभी वस्तुकी की जा सकती है। ऐसा कहने वालेको आचार्य करुणापूर्वक कहते हैं कि ह भाई ! जसे इच्छा करना आत्माधीन होने से सुलभ है वैसेही परमानन्दमय सुखका पाना भी तो आत्माक ही आधीन है। इसलिये तुम उसकी प्राप्ति का प्रयत्न ही क्यों नहीं करते, निसम्मे कि समारक भागड़ोंसे छूटकर हमेशाक लिये निराकुलित हो जाओ ॥ २२ ॥

स्व पर विद्धि तत्रापि, व्यामोह छिन्धि सन्त्विमम् ।

अनाकुल स्ववेद्ये, स्वप्ने तिष्ठ केवले ॥ २३ ॥

अर्थ—आचार्य कहते हैं कि मुक्ति प्राप्त करना भी अपने

ही गोपान समझकर स्व और परको जानना चाहिये तथा
 रात्रि पण्योक्ति मोहना न करना चाहिये और आहुता
 र्गति स्थानुभोग्य केवल अपने निज स्वरूपमें ही स्थिर
 होता चाहिये ॥ २३ ॥

स्व स्व स्वन स्थित स्वर्म्म स्वस्मात्स्वस्याग्निशरम् ।
 स्वस्मिन् घात्वा लभेत्स्वोत्थमानदममृत पदम् ॥ २४ ॥

अर्थ—इस श्लोकमें आचार्य आत्मा में ही माता काक
 मृदु करत हुए कहते हैं कि व्यवहारी जीवों को अपनी ही
 आत्मा में अपने ही आत्महितके लिये अपने ही द्वारा
 अपने आप ही अपना ध्यान करना चाहिये और अपनी
 ही आत्मासे उत्पन्न हुए परमानन्दमय अग्निशर पद को
 प्राप्त करना चाहिये ॥ २४ ॥

इति स्वतत्त्व परिभाष्य ग्राह्यम्,
 य एतदाप्नोति शृणोति चादरार् ।
 करोति तस्मै परमार्थमम्पदम्,
 स्वरूपमयोधनपचर्त्तिगति ॥ २५ ॥

अर्थ—श्री अरुलङ्क महाचार्य उपमहार करते हुए
 ग्रन्थ में माहात्म्य वर्णन करते हैं कि जो पुरुष पचीम श्लोका
 में कह हुए इस स्वरूपमयोधन ग्रन्थ को आदरसे पढ़े सुने

और हमके मासों द्वारा कहे हुए आत्म तत्त्वका शरणा-
मनन करेंगे उनको यह ग्रन्थ परमार्थकी सम्पत्ति अर्थात्
मोक्षपद प्राप्त करावेगा ।

— इति संपूर्ण ॐ

नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ३ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ४ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ५ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ६ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ७ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ८ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ९ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १० ॥

। मेरा महान मनेही जो
तमगाम । सीता सुमति
तो कल मिलनको चाह ।
ग०॥ २ ॥ मे विगद्दिन
ल गिन सीन ॥ मे-
रुट दमे पदमे नरु-
ग्यार । इच्छा-
अमृति दलेन कर ।
० ॥ ६ ॥ सुमन सुद-
दोर ॥ मे-० ॥ ३ ॥
चेते'दग्यो पिपको उनहार । तिन मन भरन दारो वार
॥ मे-० ॥ ८ ॥ होहुं मगा मे दग्गनपाउ । चो'दगियामे

१००. १०० ममकृत्त मय और परको जानना चाहिये तथा
नाम पताओं को मोहको नष्ट करना चाहिये और आकुलता
हटि साधुभक्तों केवल अपने निज स्वरूपमें ही स्थिर
नैत च।हेने ॥ २३ ॥

१०१ मय स्वतन्त्र स्थित स्वस्म स्वरूपात्स्वस्वाग्निनश्यम् ।

१०२ ध्यात्वा तमेत्सोत्पद्यमानदममृत पदम् ॥ २४ ॥

—३—इस श्लोकमें आचार्य आत्मामें ही माता कारक
।३ स्वतन्त्र हुए कहते हैं कि व्यग्रहारी जीमोको अपनी ही
आत्मामें अपने ही आत्महितके लिये अपने ही द्वारा
अपने आप ही अपना ध्यान करना चाहिये और अपनी
ही आत्मासे उत्पन्न हुए परमानन्दमय अग्निनश्यर पदको
प्राप्त करना चाहिये ॥ २४ ॥

इति स्वतन्त्र परिभाष्य साट्मगम्,

य एतदाख्याति भृशोति चादरात् ।

करोति तस्मै परमार्थमम्पदम्,

स्वरूपमोवनपचिञ्चति ॥ २५ ॥

अथ—श्री अमलङ्क मठाचार्य उपमहार करत हुए
ग्रन्थमा माहात्म्य वर्णन करते हैं कि जो पुष्प पद्मीम श्लोको
म कह हुए इस स्वरूपमोवन ग्रन्थको आदरसे पढ़ेंगे सुनेंगे

मैं मरीति । पिय ब्योढागिया म पगतीनि ॥ मेरा० ॥ २५ ॥
 जहाँ पिय माधक तहाँ मैं मिद्व । जहाँ पिय ठाकुर तहाँ मैं
 सिद्ध ॥ मेरा० ॥ २६ ॥ जहाँ पिय राजा तहाँ मैं नीति ।
 जहाँ पिय जोद्धा तहाँ मैं जीति ॥ मेरा० ॥ २७ ॥ पिय
 गुणप्राहक म गुणयति । पिय बहुनायक मैं बहुमोति
 ॥ मेरा० ॥ २८ ॥ जहाँ पिय तहाँ म पियके मग । ज्यो-
 तशि हरिमैं ज्योति अमग ॥ मेरा० ॥ २९ ॥ पिय सुमिरन
 पियसो गुणगान । यह परमारथपनिदान ॥ मेरा० ॥ ३० ॥
 रहइ व्यग्रद्वार अनारनिनाथ । चेतन सुमति मटी इकठार
 ॥ मेरा० ॥ ३१ ॥

ॐ इति चेतनमुमति गीत ॐ

ॐ प्रश्नोत्तर दोहा ॐ

ॐ प० अनारसीनामनी ॐ

प्रश्न—कौन वस्तु वपु माहि है, कहीं आरै रहौ जाय ।

ज्ञानप्रकाश कहा लखै, कौन ठौर ठहराय ॥ १ ॥

उत्तर—चिदानन्द उषुमाहि है, अममहि आरै जाय ।

ज्ञान प्रकट आपा लखै, आपमाहि ठहराय ॥ २ ॥

प्रश्न—जाको खोनन जगतजन, कर कर जानामेप ।

ताहि घतानहु, है रहा जाको नाम अलेप ॥ ३ ॥

पूरु सनतग मेरा० ॥ ९ ॥ पियको मिलों अपनपो खोय ।
 गगन तन पाणी ज्यों होय ॥ मेरा० ॥ १० ॥ मैं जग
 ० ॥ ११ ॥ रा होर । पियके पटतर रूप न श्रोर ॥ मेरा०
 ॥ १२ ॥ पिय जगपायक पिय जगमार । पियकी महिमा
 नाम प्रता ॥ मेरा० ॥ १३ ॥ पिय सुमिरत मन दुख
 ० ॥ १४ ॥ भोरनिरख ज्या चोर पलाहि ॥ मेरा० ॥ १५ ॥
 पियकी गुनगाद । गजगजन ज्यों के हरिनाद
 ॥ मेरा० ॥ १६ ॥ मानइ भरम ररत पियध्यान । फटइ
 ॥ १७ ॥ उगत मान ॥ मेरा० ॥ १८ ॥ दोष दुरह
 ॥ १९ ॥ पिय श्रोर । नाग डरइ ज्यों धोलत मोर ॥ मेरा०
 ॥ २० ॥ वमा सदा मैं पियके गोंड । पियतज और कहाँ
 मैं जाड ॥ मेरा० ॥ २१ ॥ जो पिय जाति जाति मम सोड ।
 जातहि चात मिले मन कोड ॥ मेरा० ॥ २२ ॥ पिय मोरे
 घट, म पियमाहि । जलतरंग ज्यों डिरिधा नाहि ॥ मेरा०
 ॥ २३ ॥ पिय मो करता मैं करतृति । पिय ज्ञानी मैं
 ज्ञानविभूति ॥ मेरा० ॥ २४ ॥ पियमुखमागर मैं मुखमोर ।
 पिय शिवमन्दिर मैं गिरनीर ॥ मेरा० ॥ २५ ॥ पिय ब्रह्मा
 मैं सरम्भति नाम । पिय माधव मो कमला नाम ॥ मेरा०
 ॥ २६ ॥ पिय शम्भु मैं दधि भगानि । पिय जिनर म
 रुतलानि ॥ मेरा० ॥ २७ ॥ पिय भोगी मैं भुक्तिविशेष
 पिय ओमी मैं मुद्रा भष ॥ मेरा० ॥ २८ ॥ पिय मो रसिया

पुनि भिक्खिणी डढी पच परमार चार
 नरक नियँच देव, पुनि पुनि मचरगो ॥
 बनारसीदास अर नरमर उर्म भूमि,
 गठि भेद झीन्हां मोचमारगमें प धरगो ।
 चेतरे चतुर नर अजहूँ तू क्यों न चेत ?
 इम अग्रतार आयो एते घाट उतरथो ॥ ३० ॥

निमित्तउपादानके दोहे ।

(प० बगारसीनासजी)

गुरुउपदेश निमित्त गिन, उपादानरत्नहीन ।
 क्यों नर दूजे पात्र गिन, चलवेसो आधीन ॥ १ ॥
 हो जाने था एक ही, उपादानमाँ कान ।
 यकै महार्द पान गिन, पानीमाहि जहाज ॥ २ ॥

दोनो दोहोंका उच्चार ।

ज्ञान नन मिरिया खग्न, दोऊ गिरमगधार ।
 उपादान निहवे जहाँ, तहँ निमित्त ब्याँहार ॥ ३ ॥
 उपादान निज गुणजहाँ, तहँ निमित्त पर होय ।
 भेद नान परवान मिधि, गिरला नृक्ष कोय ॥ ४ ॥
 उपादान बल जहँ नहीं, नहि निमित्तको टाव ।
 एक चक्रमाँ रख चलै, रगिकी यहै स्वभाव ॥ ५ ॥

उत्तर-ग शोधत कहु और मो, वह तो और न होय ।

तह अलग निरमेष मुनि खोननहाग मोय ॥ ४ ॥

१-४-उपन निमै थिर रहै, यह अग्निनाशी नाम ।

देवी तुम सारी भला, मोहि बतावहु ठाम ॥ ५ ॥

द्वन्द्व-उपन निमै रूप जड, वह चिद्रूप असड ।

जाम जुगति जगम लमै, बसै पियड ब्रह्मड ॥ ६ ॥

प्रश्न-शब्द अगोचर रस्तु है, कछु कहौ अनुमान ।

जैसी गुरु आगम कहौ, तैसी कहौ मुजान ॥ ७ ॥

उत्तर-शब्द अगोचर रहत है, शब्दमाहिं पुनि मोय ।

स्यात्माद गेली अगम, मिरला नून कोय ॥ ८ ॥

प्रश्न-यह अरूप हू रूपम, दुरिकै कियो दुराय ।

जैमें पावक पाठमै, प्रगटे होत लसाव ॥ ९ ॥

उत्तर-हुतो प्रगट फिर गुप्तमय, यह तो ऐमो नाहिं ।

है अनादि त्यो गानिमै कचन पाहनमाहि ॥ १० ॥

ॐ इति प्रश्नोत्तर मोहा ॐ

ज्ञान बायनी ।

(प० बनारसीदासजी) धनाचरी ।

श्रुथो न निगाद कोउ काल पाय डाँकि आयो,
प्रत्येक शरीर पच धावरमैं ते 'धरयो' ।

पुनि त्रिकलिंगी डटी पच परफार चार,
 नरक तिरपंच देख, पुनि पुनि सचरणो ॥
 घनारसीदास अर नरभर कर्म भूमि,
 गठि भेट कीन्हो मोचमारगमें पै घरथो ।
 चेतरे चतुर नर अचहूँ तु क्यों न चेत ?
 हम अस्ताग आयो एते घाट उतरथो ॥ ३० ॥

निमित्तउपादानके दोहे ।

(५० नारसीदासजी)

शुरुउपडेग निमित्त गिन, उपादानरलहीन ।
 ज्यों नर दुजे पाय गिन, चलवेसो याधीन ॥ १ ॥
 हौ जाने था एक ही, उपादानमां काज ।
 एकै महाई पौन गिन, पानीमाहि जहाज ॥ २ ॥

दोनों दोहोका उत्तर ।

ज्ञान नन किरियावरन, दोरु शिरमगधार ।
 उपादान निहच जहाँ, नहँ निमित्त व्योहार ॥ ३ ॥
 उपादान निज गुणजहाँ, तहँ निमित्त पर होय ।
 भेद ज्ञान परवान गिधि, विरला दूझे सोय ॥ ४ ॥
 उपादान बल जहँ तहँ, नहिं निमित्तसो दाव ।
 एकै ज्ञानमौ रय चन, रगिसो यहै मयमाय ॥ ५ ॥

उत्तर-१०१ धत कष्ट और को, वह तो और न होय ।

२४ अलेख भिरमैय मुनि खोजनद्वारा मोय ॥ ४ ॥

१-२-उपन विनमै विर 'रहे, वह अग्निनाशी नाम ।

गो नुम 'मारी' भला, मोहि बतावहु ठाम ॥ ५ ॥

उत्तर-उपन विनमै रूप जेह, वह चिद्रूप अखण्ड ।

जग जुगति जगम लमै, यमै पिण्ड ब्रह्मण्ड ॥ ६ ॥

३-४-शब्द अगोचर अस्तु है, कष्ट कहीं अनुमान ।

जमी गुरु आगम कही, तमी कहौ मुजान ॥ ७ ॥

उत्तर-शब्द अगोचर कहत है, शब्दमाहि पुनि मोय ।

स्वादभाट शेनी अगम, विरला बूझै कोय ॥ ८ ॥

मन्त्र-यह अरूप हू रूपम, दुरिकै कियो दुरार ।

जमै पावक पाठमै, प्रगटे होत लग्यार ॥ ९ ॥

उत्तर-हुतो प्रगट फिर गुप्तमय, यह तो ऐमो नाहि ।

है अनादि ज्यो गानिमै, कचन पाहनमाहि ॥ १० ॥

॥ इति प्रश्नोत्तर गीता ॥

ज्ञान याचनी ।

(पं. ज्ञानासीतामना) धनाक्षरी ।

भूल्यो तू निगोद कोउ काल पाय डाँकि आयो,
प्रयेर शरीर पच थावरमै तें धरयो ।

पुनि गिकलिंदी इटी पच परकार चार,
 नगर तिर्यंच देव, पुनि पुनि सचरयो ॥
 चनारसीदास अब नगभय धर्म भूमि,
 गठि भेद कीन्हों मोक्षमारगमें पै धर्यो ।
 चेतन चतुर नर अजहूँ तु क्यों न चेत ?
 हम अवतार आयो एते घाट उतरयो ॥ ३० ॥

‘निमित्त’ उपादान के दोहे ।

(५० चनारसीदामजी)

गुरुउपदेश निमित्त गिन, उपादानगलहीन ।
 क्यों नर दूने पाय गिन, चलवेसो याधीन ॥ १ ॥
 हो जाने था एक ही, उपादानमो काज ।
 एक सहार्द पौन गिन, पानीमाहि जहाज ॥ २ ॥

दोनों दोहोंका उत्तर ।

ज्ञान नैन किरिया चरन, दोऊ गिरमगधार ।
 उपादान निहचे जहाँ, नहि निमित्त - व्योहार ॥ ३ ॥
 उपादान निज गुण जहाँ, तहँ निमित्त पर होय ।
 भेद ज्ञान परवान गिधि, गिरला बूझी कीय ॥ ४ ॥
 उपादान बल जहँ तहाँ, नहि निमित्तको दार ।
 एक चक्रमौ रथ चलै, गगरी यही म्यमाय ॥ ५ ॥

संज्ञे तस्तु जगदाय जहँ, तहँ निमित्त है कौन ।

ज्यो नटान पराहमें, तिर सहज निन पौन ॥ ६ ॥

उपादान विधि निम्नचन, है निमित्त उपदेस ।

रस पु जसे दर्शम, करै सुतमे भेम ॥ ७ ॥

ॐ इति निमित्त उपादाने नाह ॐ

ॐ उपादान निमित्तकी चिट्ठी ॐ

(प० जगदीशदासना)

प्रथम ही कोई पृच्छत है कि निमित्त कहा उपादान कहा ? ताको व्योमी—निमित्त तो मद्योगरूप कारण, उपादान तस्तुही सहज शक्ति । ताको व्योरी—एक द्रव्याधिक निमित्त उपादान, एक पथायाधिक निमित्त उपादान, ताको व्योरी—द्रव्याधिक निमित्त उपादान गुणभेदकल्पना । पथायाधिक निमित्त उपादान पञ्जोग—रूपना । ताकी चौमगी, प्रथम ही गुणभेद कल्पनाही चौमगीको विस्तार कहा मो कर्म,—ऐस्य—मुनौ—जीवद्रव्य ताके अनन्तगुण, मद्य गुण जगदाय स्थायीन मदाकाल । तामें दोष गुण प्रधान मुख्य बापे, तापर चौमगीको विचार एक तो नीचो ज्ञानगुण दूसरो जीवको चारित्रगुण ।

॥ ८ ॥ ए दोनों गुण शुद्धरूप भाव जानने । अशुद्धरूप भी

ज्ञानने यथायोग्य स्थानरू मानने ताको व्योरो-इन दुहूँकी गति न्यारी न्यागी, शक्ति न्यारी न्यारी, जाति न्यारी न्यारी, सत्ता न्यारी न्यारी त को व्योरो,—ज्ञानगुणको तो ज्ञान अज्ञानरूप गति, स्वपरप्रकाशक शक्ति, ज्ञानरूप तथा मिथ्या स्वरूप जाति, द्रव्यप्रमाण मत्ता, परंतु एक विशेष इतनो जु ज्ञानरूप जातिको नाश नाहीं, मिथ्यास्वरूप जातिको नाश, सम्पदजनन उत्पत्ति पर्यंत, यह तो ज्ञान गुणको निर्णय भयो । अब चारित्र गुणको व्योरो कहैं हैं,—सकलेम विशुद्धरूप गति, धिग्ता अधिरता शक्ति, मदी तीत्ररूप जाति, द्रव्यप्रमाण मत्ता । परंतु एक विशेष जु मदताकी स्थिति चतुर्दशम गुणस्थानपर्यंत । तीत्रताकी स्थिति, पंचमगुणस्थानरूप पर्यंत । यह तो दुहुँको गुण भेद न्यारी न्यारी कियो । अब इनकी व्यवस्था न ज्ञान चारित्रके आधीन न चारित्र ज्ञानके आधीन । दोऊ अमहाय रूप यह तो मर्यादा यध ।

अ १ चौ भगीको विचार ज्ञानगुन निमित्त
चारित्रगुण उपादानरूप ताको व्योरो-

एक तो अशुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान, दूसरो अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान, तीसरो शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान, चौथो शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान । ताको व्योरो-

१०० ॥ दडकरि एउ समयकी अस्थायी द्रव्यकी लनी,
 ननु ॥ मिथ्यात्व सम्यक्त्वकी बात नाहीं चलावनी ।
 काहू ॥ जीवकी अस्थायी भाति होतु हैं जु जानरूप
 शान्तिरूप चारित्र, काहू ममे अनानरूप ज्ञान विशुद्ध
 चारित्र काहू ममे जानरूप ज्ञान सकलेशरूप चारित्र,
 काहू ममे अनानरूप ज्ञान सकलेश चारित्र, जा ममे
 शान्तिरूप गति नानकी, सकलेशरूप गति चारित्रकी
 शान्तिरूप निमित्त उपादान ठोऊ अशुद्ध । काहू ममे अजान
 रूप ज्ञान विशुद्ध रूप चारित्र ताममे अशुद्ध निमित्त शुद्ध
 उपादान । काहू ममे जानरूप ज्ञान सकलेशरूप चारित्र
 ताममे शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान । काहू ममे जानरूप
 ज्ञान विशुद्धरूप चारित्र ताममे शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान
 या भाति अन्य ॥ दशा जीवकी मदाफल अनादिरूप,
 तानी व्योरी-जानरूप ज्ञानकी शुद्धता कहिए विशुद्धरूप
 चारित्रकी शुद्धता कहिए । अनानरूप ज्ञानकी अशुद्धता
 कहिए सकलेश रूप चारित्रकी अशुद्धता कहिय । अथ तानी
 विचार सुनो—मिथ्यात्व अस्थायिमे काहू ममे जीवकी
 ज्ञान गुण जागरूप हैं तर कहा जानतु है ? ऐसी जानतु
 है—कि लक्ष्मी पुत्र कलत्र इत्यादिक मौना न्यारे हैं प्रत्यक्ष
 प्रमाण । हौ मरुगो ए रहा ही रहेंगे सो जानतु है ।
 अथवा ए जाहिगे, हौ रहेंगे, कोई, काल इन्हस्यों मोहि

एक दिन विशेष है ऐसे
 मो तो शुद्धता कहिए ।
 शुद्धता, इन वस्तुओं का
 श्रवणमेव दिना होट ना
 काम निर्जग है बारी उड
 रूप है महलरूप ताका
 मिथ्यात्व अवस्थाविषे का
 नाडु चारित्रावरण कर्म म
 काह मर्म चाग्रि गुण म
 है । या मानिकमि मिथ्य
 ज्ञान है और विगुद्धतान्त्र
 जा मर्म अज्ञानरूप ज्ञान है
 यत्र है तामें विशेष इनती न अन्य नि
 मिथ्यात्व अवस्थाविषे केवल इत्य क्यो ।
 जर्म-काह पुण्यकी नको धोडो गेगै बहुत
 ही कहिए । परंतु यत्र निजग विना जी काह अवस्था-
 विषे नाहो । दशान्त ऐमी-जु विगुद्धताकी निजरा न होती
 तो एमेन्टी जीव निमोट अवस्थास्थो ब्रह्मदागगणि कौनके
 पल आरतो ? उहा तो ज्ञान गुण अज्ञानरूप महलरूप है अथु
 द्रुप है तातें ज्ञानगुणमोती पल नाहीं । विगुद्धरूप चारित्रके
 चलरि जीव व्यक्धार राशि बहुत है । और द्रुपविषे

गन्ता होतु है तारि निर्जरा होतु है । राही
मर्या प्रज्ञान शुद्धता जाननी । अर और भी विस्तार गुनो-

३३ यनी जानरी अर विगुद्धता चारित्र दोऊ मोक्ष
पार्थिवारी है तात दोऊपे विशुद्धता माननी । परतु
३४ यनी शु गमित शुद्धता प्रगट शुद्धता नाहीं । इन
३५ गुणकी गर्भित शुद्धता जगनाई ग्रथिमेद होय नाहीं
३६ गुण नोषमार्ग न मर । परतु उग्रताको करहि अग्रश्य
३७ दोऊ गुणकी गर्भित शुद्धता जग ग्रथिमेद
३८ तर इन दुईकी गिरा फटै तय दोऊ गुन धाराप्रवाह-
रूप मोक्षमार्गकी चलहि । ज्ञानगुनकी शुद्धताकरि ज्ञानगुण
निर्मल होहि । चारित्र गुणकी शुद्धताकरि चारित्र गुण
निर्मल होइ । यह वेगल ज्ञानको अर, यह जथाग्यात
चारित्रको अर ।

इहा कोऊउटमना कहतु है—रि तुम कह्यो जु ज्ञानको
जाणपणो अर चारित्रकी विशुद्धता दुहस्यो निर्जरा है सु
ज्ञानके जाणपणो मो निर्जरा यह हम मानी । चारित्रकी
विशुद्धताको निर्जरा कैमै ? यह हम नाहीं समझी—तारी
समाधान,—

सुनि भैया ! विशुद्धता विरताम्प परिणाममा कहिये-
मो विरता जथाग्यातको अर है तात विशुद्धतामे शुद्धता

निमित्त अशुद्ध और उपादान शुद्ध । तीमरो वक्ता ज्ञानी श्रोता अनानी मो निमित्त शुद्ध उपादान अशुद्ध । चौथी-यक्ता ज्ञानी श्रोता भी ज्ञानी मो तो निमित्त भी शुद्ध २ उपादान भी शुद्ध । यह पर्यायार्थिक ही चौमगी साधी ।

❀ इति निमित्तग्यान शुद्धाशुद्धरूपविचार वचनिका ❀

❀ इष्टोपदेश ❀

(श्री पूज्यपादगामी विरचित)

मंगलाचरण —

यस्य सय सभावाप्तिरभावे कृत्स्नरमण ।

तस्मै मज्ञानरूपाय नमोऽस्तु परमात्मने ॥ १ ॥

अर्थ—मपूर्ण कमौक्य अभाव हो जाने पर जिन्हें स्वयं ही सभावाप्ति प्राप्ति हो गई है उस सम्पन्नानरूप परमात्मा के लिये नमस्कार होयों ॥ १ ॥

योग्योपादानयोगेन दृष्टे स्वर्णता मता ।

द्रव्यान्निस्त्रादिमपत्तायात्मनोज्ज्यात्मता मता ॥ २ ॥

अर्थ—योग्य (कार्यक 'उत्पादन करनेमें' ममर्थ) उपादान कारणके मयोगसे जैसे पापाण विशेष (निममें 'मुनर्ण

तु त्वं चि चतुर्दशम गुणस्वानरूप्यन्त मोक्षमार्गं कथ्य
तां "धौरो—मम्यरूप्य ज्ञानधारा विशुद्धरूप चाग्निप्रधार
दाडभाष माचमार्गो चला सु ज्ञानमो, ज्ञानकी शुद्धता
क्रियामा क्रियाका शुद्धता। जो विशुद्धतामें शुद्धता है तो जय
ग्यातम्पदोतहै। जो विशुद्धता में ता न होती तो ज्ञान गुण
शुद्ध होतो क्रिया अशुद्ध रहती, केवली रिपे, मो धौतो नह
गर्म शुद्धता रही ताकरि विशुद्धता भई। इहा कोई कहैग
14 ज्ञानको शुद्धताकरि क्रिया शुद्ध भई सो, यों नाहीं
कोउ गुण काहू गुणके, सारे नहीं, मर अमहायरूप है
गौर भा सुनि जो, क्रियापद्वनि मर्या अशुद्ध होता
अशुद्धताही एही शाक्त नाहीं जु मोक्षमार्गो चल ता
विशुद्धतामें जयाग्यातको अश है नात नह अश क्रम क्र
पुग्य भयो। ए भट्टया उटक्नागरे—तै विशुद्धताम शुद्ध
मानो रि नाहीं? जो तो मे मानी तो, बहुत गौर रुदिने
कार्य नाहीं। जो तै नाहीं मानी तो तेरी द्रव्य गाने भा
की परनयो है हम कहा करि है जो मानी तो स्यातामि
यो तो द्रव्याधिस्त्री चौमगी पृथक् भई।

निमित्त उपादान शुद्ध अशुद्धरूप विचार—

अर पयायाधिस्त्री चौमगी मुनौ गक तो उक्ता अ
नी, श्रोता भी अज्ञानी, सो तो निमित्त भी अशुद्ध उ
दान भा अशुद्ध। दूसरो, उक्ता अज्ञानी श्रोता ज्ञानी

निमित्त' अशुद्धे शरीर' उपादान शुद्ध । तीमरो रक्ता ज्ञानी
श्रोता यवानी भी निर्मित्त शुद्ध उपादान अशुद्ध । चौथी-
वक्ता ज्ञानी श्रोता भी' ज्ञानी सो तो निर्मित्त भी शुद्ध २
उपादान भी' शुद्ध । यह पयायाविंशती चौमगी मागी ।

ॐ इति निमित्तउपादान शुद्धाशुद्धरूपनिवार यचनिष्ठा ॐ

६५ इष्टोपदेश ॥

(श्री पूज्यपादग्यामा गिरचिः)

मंगलाचरण —

यस्य स्वय स्वभावाप्तिरभाव कृत्स्नस्मरण ।

तस्म सत्तानरूपाय नमोऽस्तु परमात्मने ॥ १ ॥

अर्थ—मपूर्ण स्मोक अभाव हो जाने पर निन्दे स्वय
ही स्वभावाप्ति प्राप्ति हो गई है उस सम्यग्ज्ञानरूप परमात्मा
क लिये नमस्कार होयो ॥ १ ॥

योग्योपादानयोगेन दृष्टः स्वर्णता मता ।

द्रव्यादिस्वादिमपत्तात्मानोऽन्यात्मता' मता ॥ २ ॥

अर्थ—योग्य (कार्यक उत्पादन करनेमें समर्थ) उपा-
दान कारणके मयोगसे जैसे पापाण विशेष (जिनमें सुवर्ण-

मनस्वी योग्यता पाई जाती है। स्वर्ण बन जाता
 १ उत्तम द्रव्य चेतान्तरूप मामग्रीकी प्राप्ति हो
 २ गीत (ममारी आत्मा) भी चैतन्यम्यरूप आत्मा
 ३ जाता है। अधान् ममारी प्राणी जीवात्मासे परमात्मा
 ४ जाता है ॥ २ ॥

विशेष-उपादान=(उप+प्रादान) उपरा अर्थ ममीप
 है और प्रादान का अर्थ ग्रहण होना है। जिस पदार्थक
 ममीपमस कायका ग्रहण हो वह उपादान है। अर्थात्
 यस्तुही निजकी शक्ति। और उम समय जो परपदार्थक
 अनुकूल उपस्थिति हो सो निमित्त है।

पर त्रत पद दैव नात्रतेर्वत नारक।

छायातपस्थयोर्मेढ प्रतिपालयतोर्महान् ॥ ३ ॥

अर्थ-त्रताक द्वाग दयपद प्राप्त करना अच्छा है,
 किन्तु अत्रतोंक द्वाग नरूपद प्राप्त करना अच्छा नहीं है।
 छाया और धूपमें बठने गालोंमें जसे महान् अन्तर पाया
 जाता है ठीक वैसे ही त्रत और अत्रतके आचरण करने
 गालोंमें महान् अन्तर है।

विशेष-अशुभभावोंकी अपचा शुभ भाव करना
 अच्छा है, परतु शुद्धभावकी दृष्टिमें दोनों ही हय हैं।

यत्र भावे शिर दत्ते सौ क्रियददूर्ध्वतिनी ।

यो नयत्याशु गच्छति क्रोशार्थे किं न मीदति ॥ ४ ॥

अर्थ—जो आत्मपरिणाम मोक्ष प्रदान करता है उस मोक्ष देनेमें समर्थ आत्मपरिणामके लिए स्वर्ग कितनी दूर है ? देखो, जो अपने भारसे दो कोस तक शीघ्रताक साथ लेजा सकता है तो क्या वह अपने भारसे आधा कोस ले जाते हुए स्थिर होगा ? नहीं । अर्थात् जिससे महान फल की प्राप्ति हो सकती है उससे अल्पफल का प्राप्त हो जाना तो स्वाभाविक ही है ।

इषीकज्जमनात्तक दीर्घकालीपल्लितं ।

नाक नाकीक्या मीरय नाऊ नासौक्यमिव ॥५॥

अर्थ—स्वर्गमें निवास करनेवाले देवोंका स्वर्गोप सुख मर्यादीण हर्ष देने वाला आतक रहित और दीर्घ (मागरी पम) काल तक बना रहने वाला होता है । अधिक क्या बहे, स्वर्गमें निवास करनेवाले देवोंको सुख स्वर्गोपमी देवोंक समान ही हुआ करता है । अतः उस सुखकी उपमा किसी दूसरेकी नहीं दी जा सकती है, वह सुख अनन्त—

नि- मोक्षमुख चालनेसे क्या लाभ ? उत्तर ।

शास्त्राभ्यासवैतत्सुखं दुःखं च ददिता ।

नञ्च घृतेनपत्येते भोगा रोगा इनापदि ॥ ६ ॥

अर्थ-समाधि दहधारियोंका यह मुख और दुःख मात्र तात्पर्य ही हैं। क्योंकि आपत्तिके समयमें ये भोग रोगोंके मग्न आकुलता देने वाले होते हैं।

सत्तारो जीव इमं सुखदुःखको वासनाजन्यं ही
क्यों नहीं मानते ? उत्तर ।

मोहेन सपृतं ज्ञानं समाप्तं लभते न हि ।

मत्तं पुमान्यदार्थानां यथा मदनकोद्वै ॥ ७ ॥

अर्थ-मोहसे ढका हुआ ज्ञान पदार्थोंके वास्तविक स्वरूपको धँसे ही नहीं जान पाता है जैसे मद पैदा करने वाले कोदो धानके खानेसे मतवाला आदमी पदार्थोंको ठीक रूपसे नहीं जान पाता है।

मूढ प्राणी वस्तुस्वरूप कैसे लब्धता है ? उत्तर ।

उपगृहं धनं दारां पुत्रा मित्राणि शत्रून् ।

मर्मथान्यस्यमाराणि मूढ इवानि प्रपद्यते ॥ ८ ॥

अर्थ-शरीर, घर, धन, स्त्री, पुत्र, मित्र और शत्रु आदि

ममी हरक प्रकारसे आत्मस्वभावसे भिन्न स्वभाववाले ही हैं परंतु मूढ़ (मोहो) जीव इन्हें आत्मा व आत्माके मानता है।

वाह्य पदार्थोंका संयोग कैसा है? उत्तर।

दिग्दशेभ्य स्वगा एत्य मयसति नगे नगे।

स्वस्वकार्यप्रशङ्गाति, देशे दिक्षु प्रणे प्रणे ॥ ९ ॥

अर्थ—भिन्न^१ दिशाओं व देशोंसे उड़ उड़कर आते हुए पक्षिगण वृक्षोपर (गनके समथ) प्रसेरा करत हैं और (गहरा होने पर) अपने^२ कार्यक प्रशसे, भिन्न भिन्न दिशाओं व दशामें उड़ जाते हैं।

निर्गेष—ठीक पक्षिगणके समान ही हमारी जीवाकी दशा है। अपने^३ कर्माक प्रश भिन्न^४ गंतियोंसे आएर अपनी आयुपर्यंत उनका संयोग हो जाता है और अंतमें अपने^५ कर्मानुसार भिन्न^६ स्थानोंमें चले जाते हैं फिर इनमें आत्मीय शुद्धि करनेसे क्या लाभ?

निगधक कथ हरे, जनाय परिदुष्यति।

व्यगुल पातयन् पद्भ्यां स्वयदण्डेन पोत्यते ॥ १० ॥

अर्थ—स्वयं निगधना करनेवाला प्राणी (वर्तमानमें) अपनेको मारनेवालेके प्रति क्यों क्रुपित होता है? अर। जो

१५३। 'ऊडा' प्रचुरा आदिके ममेटनेके कामम आने वाले
 १५४। परसे गिरता है वह स्वयं दटेके द्वारा गिरा दिया
 १५५। अथात् अपकारका फल अपकार ही है कि
 १५६। एकर दुषित होनेसे क्या लाभ ?

राग द्वेष करनेसे क्या हानि होती है ? उत्तर ।

रागद्वेषद्वयीदीर्घनेत्रारुपणकर्मणा ।

अत्रानामुचि जीव समागन्धो अमत्यसौ ॥ ११ ॥

अर्थ-अत्रानामुचि यह 'ममोरी जीव रागद्वेषरूपी दो
 लम्बी 'होरियोरी' गोचातानीसे मँसाररूपी समुद्रमें चिरकाल
 नरु अमण करता रहता है । अर्थात् रागद्वेषको छोड़े तब
 ममारसे छुटकारा नहीं मिल सकता ।

विषद्वेषदाने पदिकेगतिराहयते ।

यामत्तामद्गत्यन्या प्रचुरा विषद पुन ॥ १२ ॥

अर्थ-ममाररूपी पैरसे चलाये जानेवाले दु पदरूप
 घटीयत्रमें अतक लम्बी मरीखी एक विपत्ति भुगतक
 तय की जाती है ततक उसी ममय दूसरी २ बहुतम
 विपत्तियों मामने आ उपस्थित हो जाती है अथ
 ममार दु पारा मगुद है ।

गुणैर्गुणैर्लज्जते ।

अथैतन्मन्त्रं पठेत् ॥३॥

अथैतन्मन्त्रं पठेत् ॥ अथैतन्मन्त्रं पठेत् ॥ अथैतन्मन्त्रं पठेत् ॥
उमकं नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य
उमी प्रदत्तं नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य
वचनां नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य
नष्ट हो जायेंगे । अथैतन्मन्त्रं पठेत् ॥ अथैतन्मन्त्रं पठेत् ॥
सुतां नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य

विदुषोऽपि नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य

॥३४॥

अथैतन्मन्त्रं पठेत् ॥ अथैतन्मन्त्रं पठेत् ॥ अथैतन्मन्त्रं पठेत् ॥
हमे व्याजं नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य
ममानं नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य
आनेनानां नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य नमस्कृत्य

अथैतन्मन्त्रं पठेत् ॥ अथैतन्मन्त्रं पठेत् ॥ अथैतन्मन्त्रं पठेत् ॥

॥३५॥

अथैतन्मन्त्रं पठेत् ॥ अथैतन्मन्त्रं पठेत् ॥ अथैतन्मन्त्रं पठेत् ॥

पान्नादह (पान्नादह) वदनेन वदनेन वदनेन वदनेन वदनेन वदनेन

११११—जिनके चालने वाले धनियों को अपने जीवन से
११११ प्यारा है ।

११११—जो चाहता है कि नितना काल बीत जायेगा
११११—यानकी आमदनी बढ़ जायगी । परन्तु साथ ही
११११ नहीं करता कि 'नितना काल बीत जायगा
११११ ही मेरी आयु घट जायगी । धनवृद्धि ही यह श्रद्धा
उसे जीवन-विनाश की ओर तनिक भी लक्ष्य नहीं होने
ती । फलतः धनियों को प्राणायाम अथवा धन अधिक
प्यारा है ।

त्यागाय श्रेयसे वित्तमयिच मचिनोति य ।

स्वशरीरं न पकेन स्नास्यामीति विलपति ॥ १६ ॥

अर्थ—जो निर्धन पुण्यप्राप्तिके लिये दान करनेके
निमित्त से धन कमाता या जोड़ता है वह "ग्नान कर
लूगा" ऐसे विचारसे अपने शरीरको कीचड़में लिप्त
करता है ।

आरभे तापकान्प्राप्तायत्प्रतिपादयान् ।

अतः सुदुस्त्ययान् कामान् सेवते सुखी ॥ १७ ॥

अर्थ—आरम्भ मतपके कारण और प्राप्त होनेपर
अवसिक्त करनेवाले तथा अन्तमें उड़ी कठिनाइयों व प्रयत्नों

मे भी नहीं छोड़े जा सकनेवाले भोगोपभोगोंकी वीन निदान् (ज्ञानी) आत्मकिक माथ सेगन करेगा ?

विशेष—“भोग और उपभोगके लिये घन मात्रन है” ऐसा जो विचार करते हैं उन्हें साधन करनेके हतु ऊपर भोगोपभोगोंका यथार्थ स्वरूप दर्शाया है ।

शरीरकी सेवामें रत रहनेवालोंको शरीरका
यथार्थ स्वरूप दर्शति है —

भरति प्राप्य यत्नगमशुचीनि शुचीन्यपि ।

म कायं मततापायस्तदर्थं प्रार्थनां वृथा ॥ १८ ॥

अर्थ—निम शरीरके मरधकी प्राप्त होकर पनित्र भी यदार्थ अपनित्र हो जान है एन वही शरीर हमेशा अयायों (उपद्रवों तथा पिनागों) करके महित है अत उमके लिये भोग और उपभोगोंका चाहना वृथा है ।

यज्जीरस्थोपकाराय तद्देहस्यापकारकः ।

यद्देहस्थोपकाराय तज्जीरस्थोपकारकम् ॥ १९ ॥

अर्थ—नो (माधन) जीर (आत्मा) का उपकार करनेवाले हैं वे (उन्हीं साधनों-दाग) शरीरका अपकार (बुरा) करनेवाले होत हैं । नो वस्तुएँ शरीर

१०१. हे वही मनुष्य आत्मा का ग्रहित करनेवाली होती
 १०२. अनादि के द्वारा आत्मा का लेशमात्र भी उपकार
 १०३. अतः, उमरा उपकार तो मात्र धर्मानुष्ठान
 १०४

इति तामसि दिव्य इति पिण्डादुत्पत्तिम् ।

मानसं तदुभे लभ्ये अनादिपता विवेकिन ॥ २० ॥

अर्थ—ध्यानद्वारा दिव्य चिन्तामणि भी मिल सकती है
 और सलीके दुग्ध भी मिल सकते हैं । जब कि ध्यानद्वारा
 दोनों ही मिल सकते हैं तब विवेकी (ज्ञानी) लोग किम
 और आन्तरि बुद्धि करेंगे ? अर्थात् इमलोक मन्त्री सुखाभिलाषा
 छोड़कर आत्मस्वरूप प्राप्त करने लिये ही आत्मा का ध्यान
 करना चाहिये ।

आत्मा का स्वरूप —

अमरमृतमनुत्पत्तस्तनुमात्रो निरत्यय

अत्यतमौख्यमानात्मा लोकालोकविलोकिन ॥ २१ ॥

अर्थ—आत्मा लोकालोक को देखने जाननेवाला, अनन्तसुख
 स्वभाववाला, शरीरग्रमाण, नित्य एव स्वसवेदन द्वारा तथा
 योगिजनों द्वारा अच्छी तरह अनुभवमें आया हुआ है ।

। 'आत्मध्यान करनेका उपाय:—

नयस्य वरुणग्राममहाश्रित्वन चेतस ।

आत्मानमात्मवान् ध्यायदात्मनैवात्मनि स्थित ॥२२॥

अर्थ—इन्द्रियमूहको नयमद्वारा वशमें करके तथा मनकी एकाग्रताद्वारा आत्माथा पुण्य आत्मामें ही स्थित आत्माकी आत्माके द्वारा (स्वसबदन-ज्ञानदाग) ध्याये ।

आत्माकी उपामनासे लाभ —

अत्रानोपास्तिरज्ञान ज्ञान क्षानिममाथय ।

ददाति यत्तु यम्यास्ति सुप्रगिदमिद वच ॥ २३ ॥

अर्थ—ज्ञानरहित शरीरदिस्की सेवा तथा मिथ्याज्ञानी सुगुरु आदिक की सेवाअज्ञानकी दती है और ज्ञानम्वभार आत्मा सेवा तथा आत्मज्ञानसपक्ष सुगुरुओंकी सेवा ज्ञान (आत्मबोधस्थ) को देती है । “जिसके पाम जो कुछ होता है वह उही उमीको दता है” यह बात लाकमें सुप्र मिद है ।

स्यात्मध्यानका फल —

परीपहार्यविज्ञानादात्मस्य निगेधिनी ।

जायतेऽध्यात्मयोगेन कर्मणामाशु निर्जरा ॥ २४ ॥

१३. अग्रे आत्मध्यानद्वारा लीन हो जाने के कारण
मनस्य अन्तर परापहादिका की बाधा का तनिक भी
नहीं रहे। वे सर्वोक्त आगमनरूप आत्मरहो रोक देने-
वाले में से धर्मविजिता होती है।

१४. कृताहमिति मयधः स्याद्दृष्टोर्द्वयोः ।

अतः ध्येयं यदात्मन मयधः कीदृशस्तदा ॥ २५ ॥

अर्थ—“मैं चटार्हता बनानेवाला हूँ” इस प्रकार का
मनस्य पृथक्पृथक् दो पदार्थोंमें लुप्त करता है। जहाँ ध्यान,
तब तब ध्याता आत्मा ही है वहाँ मयध कैसा ?

वध्यते मुच्यते जीव मममो निर्मम कृपात् ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन निर्ममः प्रविचित्रयेत् ॥ २६ ॥

अर्थ—मोहो जीव वधता है और निर्मोहो जीव मुक्त
होता है। अतः हर एक प्रयत्नसे निर्ममता का ही विशेषरूपसे
विवरण करे।

निर्मोही होनेका उपाय -

एकोऽह निर्मम शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचर ।

बाह्या मयोगजा मायामत्त सर्वेऽपि सर्वथा ॥ २७ ॥

अर्थ—मैं एक, मोहरहित, शुद्ध, ज्ञानी तथा योगीन्द्रोक्त
द्वारा जानने योग्य हूँ। सयोगजन्य सभी मात मुझसे
सर्वथा भिन्न है।

‘मोहोलीकी भावना’—

दु खमदोहभागित्य संयोगादिह दृढिना ।

त्यजाम्येन तत मय मनोनास्कायर्मभि ॥ २८ ॥

अर्थ—इस समारम में देहादिकरु मयबसे देहधारियाको दु खममूह भोगना पडता है अत मन, वचन, कायद्वारा इस ममस्त सबधको छोडता हूँ ।

न मे मृत्यु कुतो भीतिर्न मे व्याधि कुतो व्यथा ।

नाह बालो न पुद्गोऽह न युस्तानि पुद्गल ॥ २९ ॥

अर्थ—मेरी मृत्यु नहीं होती तब मुझे मय किमका ? मुझे व्याधि नहीं होती तब पीडा कैसे ? न मैं बालक हूँ, न बुदा हूँ और न जमान हूँ, ये मय दशाएँ पुद्गलमें ही पाई जाती हैं ।

भुक्तोऽभिता मुहुर्मोहान्मया मर्येऽपि पुद्गला ।

उच्छिष्टेष्विह तेष्वथ मम त्रिस्त्य का स्पृहा ॥ ३० ॥

अर्थ—मोहद्वारा मैंने ममस्त ही पुद्गलोंको चारचार भोगकर छोड़ दिया, जूठनके ममान अब उन पदार्थोंमें मुझ जानीसी क्या चाहना हो सकती है ? अर्थात् उनमें मेरी चाहना नहीं हो सकती ।

२१. कमलिताग्निं जीरो जीरद्वितम्पृह ।

२२. गन्तव्यमस्वे स्यात् सर्वं यो न गच्छति ॥ ३१

२३. अर्थ-कर्मका दिन चाहते हैं और जीम, जीम
हैं। सो ठीक ही है अपने २ प्रभावके करने
२४. (त) स्यादमी नहीं चाहता ?

अपेक्षितमुत्सृज्य स्वोपकारणे भव ।

उपहृतं परस्यानो दृश्यमानस्य लोभत ॥ ३०

अर्थ-पर (दहादिक) का उपकार करना छोड़
गटना (आत्माका) उपकार करनेमें तत्पर हो जाओ
गहिम दृष्टियोंके द्वारा दिखाई देते हुए दहादिकोंका उपकार
करते हुए तुम अज्ञ हो रह हो। जिस प्रकार ममारी लोग अ
उपकार करनेमें लगे रहते हैं उसी प्रकार तुम भी अ
उपकार (स्वाधीन शुद्ध बनानेरूप आत्मोपकार) कर
तत्पर हो जाओ ।

३. भेदविज्ञानका काम - १

१. गुरूपदशादभ्यासात्सचित्ते स्वपरांतर ।

ज्ञानाति य म जातानि भोक्षमौरय निरतम् ॥ ३३

अर्थ-जो गुरुके उपदेशसे और उस उपदेशके अभ्यास
ज्ञानके द्वारा अपने और परके अतर्क (स्वात्माके

दहादिकसे भिन्न) जानता दखता है वह सद्य मोक्षमुक्तको अनुमान करता रहता है ।

अस्मिन् मद (दा) भिलापित्वादभोष्ट्वापन्नत्वत ।

स्य हित (त) प्रयोक्तृत्वादात्मेन गुरुरात्मन ॥३४॥

अर्थ—स्य आत्मकल्याणका अभिलाषी होनेसे, चाह हुए हितके उपायोंको जतलाने वाला होनेसे और आत्महितम प्रवृत्ति करानेवाला होनेसे यह आत्मा स्य ही आत्माका गुरु है ।

नाज्ञो रित्त्वमायाति रिज्ञो नाद्वैत्वमृच्छति ।

निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेर्धमास्तिकायम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—जिम जीव क अन्दर तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेकी निजी योग्यता नहीं है ऐमा जीव (अयोग्य अमन्य आदिर जीव) तत्त्वज्ञानको (धर्माचार्यादिकाके सहस्रा उपदशके मिलनेसे भी) नहीं प्राप्त कर सकता है, इसी तरह तत्त्वज्ञानी जीव अन्तस्त्वको प्राप्त नहीं कर सकता । अन्य (मावन मामग्री) सभी केवल निमित्तमात्र है । जैसे गतिरूप कार्योंमें धमास्तिकाय मात्र उदा मोन कारण है । अर्थात् कार्यकउत्पादनादिमें द्रव्यकी निजी योग्यता ही मादात माघर होती है, अवशिष्ट सभी मामग्री मात्र निमित्त होती है ।

यथा तज्जगत्तु एकात तत्त्वसंस्थित ।

तत्त्वसंस्थितमिषोमे योगी तत्त्व निनामन ॥ ३६ ॥

अर्थ—नहीं उत्पन्न हो रह है रागादि विक्षेप विरूप
-त्वे त्रिषु तथा (देय उपादेय) तत्त्वमे (गुरु उपा
-गत) जिनकी बुद्धि-स्थिर हो गई है अथान्ता आत्म
-रूपों स्थित है ऐसा योगी साधनी। पूर्वक एकात्म
म्यात्में अपने आत्मस्वरूपका अभ्यास करे।

यथा यथा समायाति सपिचौ तत्त्वमुत्तमम् ।

तथा तथा न रोचते विषया सुलभा अपि ॥ ३७ ॥

अर्थ—ज्यों ज्यों (योगीको) स्वानुभयरूप सवेदनमें
उत्तम तत्त्वरूप विशुद्ध आत्माका अनुभवन होता जाता
होयों त्यों उम योगी को सुलभतासे प्राप्त होनेवाले भी
(रमणीक इन्द्रिय) विषय रुचिपर नहीं लगते ।

यथा यथा न रोचते विषया सुलभा अपि ।

तथा तथा समायाति सपिचौ तत्त्वमुत्तमम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—ज्यों ज्यों आत्मानिमे प्राप्त होनेवाले भी (रमणी
इन्द्रिय) विषय भोगोंक प्रति रुचिहीन होती जाती है। त्यों त्यों
निजात्मानुभयरूप सवेदनमें उत्तम तत्त्वरूप विशुद्ध आ
का अनुभव बुद्धिको प्राप्त होता रहता है ।

निशामयति नि शेषमिन्द्रजालोपमं जगन् ।

स्पृहयत्प्राप्तलाभाय गन्थान्प्रयानुनयते ॥ ३९ ॥

अर्थ—(निजात्मानुभवनरूप संवेदनमें आनन्द लेने वाला योगी) ममस्व ममारो इन्द्रजालक समान देखता है, प्राप्तमस्वरूपको प्राप्तिके लिये अभिलाषा करता है और अपनी आत्मारो छोड़कर किसी अन्य विषयमें चित्तपरिणतिक प्राप्त हो जानेपर (हा । यह मैंने स्तिता आत्मा का अन्ति कर डाला, इत्यादिरूप) पश्चात्ताप करता है ।

इच्छन्त्यसातमयाम निर्जन जनितादर ।

निजकार्यशार्त्तिकचिदुक्त्या विस्मयति द्रुतम् ॥ ४० ॥

अर्थ—निर्जनताको चाहनेवाला योगी एकान्तमयी चाहता है और अपने कार्यमें बगसे कुछ कहकर भी उसे उमी घण भूल जाता है ।

नृपुत्रपि हि न नृते गच्छन्पि न गच्छति ।

स्थिरीकृतात्मन्यस्तु पश्यन्पि न पश्यति ॥ ४१ ॥

अर्थ—अपने आत्मस्वरूपमें स्थित योगी जौनते (धमा-
दिरसा व्याख्याने मृते) दृष्ट भी नहीं बालता, चलत
दृष्ट भी नहीं चलता और देखते दृष्ट भी नहीं दम्बता है ।
अथान् आत्मस्वरूपमें स्थित योगीकी आत्मस्वरूपको छोड़

इस गौर मयी क्रियाएँ अनामकित्वर्चन हैं अतः नहीं होने के समान हैं ।

स्मिद शीघ्र कस्य तस्मात्स्वेत्यभिप्रेक्ष्य ।

स्वप्नमपि तर्पति योगी योगपरायणः ॥ ४२ ॥

अर्थ—आत्मस्वरूपमें ममरमीमात्रों प्राप्त हुआ योगी यह क्या है ? क्या है ? स्मिद है ? क्यों है ? कहाँ है ? इत्यादि विस्मयोंको न करता हुआ अपने शरीर तरंगों भी नहीं जानता है ।

यो यत्र निरामनाम्ने न तत्र कुन्ते रतिम् ।

यो यत्र रमते तस्मान्न्यत्र न न गच्छति ॥ ४३ ॥

अर्थ—जो जहाँ निराम करने लग जाता है वह वहाँ रमने लग जाता है और जो जहाँ रमने लग जाता है वह वहाँसे दूसरी जगह नहीं जाता है ।

प्रतिपक्ष—उपर सामान्य नीति बतलाई है जो ममी पर ममानरूपसे लागू होती है। उमलिये समझो कि निनात्मरत योगीको आत्मार्थ लौ लग जानसे जब अननुभूत और अपूर्व आनन्दमा अनुभव प्राप्त होने लगता है तब वह उस अपूर्व आनन्दमा समावृत्त होकर अन्यत्र नहीं जाता है ।

अगच्छस्तद्विशेषाणामनभिज्ञाय जायते ।

अत्रातवद्विशेषस्तु वदयते न विमुच्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—स्वात्मतत्त्वमें स्थिर हुआ योगी स्वात्मासे भिन्न शरीरादिकारी सुन्दरता असुन्दरता आदि विशेषोंसे अनभिज्ञ हो जाता है और अब उनके विशेषोंसे नहीं जानता तब उनमें रागद्वेष पैदा न होनेके कारण वह रक्षकों प्राप्त नहीं होता परन्तु कर्मोंसे छूटना है

पर परमन्तो दुःखमा ममात्मा तत् मुग्न ।

अत एव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमा ॥ ४५ ॥

अर्थ—पर ही है अतः (उसे आत्मा या आत्माके मान लेनेसे) उससे दुःख होता है और आत्मा आत्मा ही है अतः उससे मुक्त होता है । इमीलिये महात्माओंने आत्माके स्वरूपमें स्थिर होनेके लिये ही अप्रमत्त हो उद्यम किया है ।

परब्रह्ममें अनुराग करनेका फलः—

अभिधान् पुद्गलद्रव्यं योऽभिनदति तस्य तत् ।

न जातु जतो मामोप्य चतुर्गतिषु मुच्यति ॥ ४६ ॥

अर्थ—जो अब्रह्मानी और पुद्गलद्रव्यका स्वागत करता है अर्थात् अनुराग करता है तब वह पुद्गलद्रव्य उस

जीवता मात्र चारों गतियों में कभी भी नहीं छोड़ता है ।

आत्मनिष्ठ रहनेका फल —

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहि स्थिते ।

नाशन परमानन्द कश्चिदागेन योगिन ॥ ४७ ॥

अर्थ—आत्मस्वरूपमें स्थित रहनेवाले तथा प्रवृत्ति निवृत्ति लक्षण व्यवहारसे बाह्य दूर स्थित रहनेवाले योगी पुरुषमें आत्मयोगद्वारा उचनतीत परमानन्द उत्पन्न होता है ।

परमानन्दप्राप्तिका फल —

आनन्दो निदहत्युद्ध कर्मजनमनागत ।

न चामौ सिध्यते योगी रहितुं श्रेष्ठचेतनः ॥ ४८ ॥

अर्थ—जिम प्रकार अग्नि ईंधनको जला डालती उसी प्रकार आत्मजन्य परमानन्द कर्मसन्ततिको जला डालता है और वह परमानन्दप्राप्त योगी (आनन्दमें मगहनेके कारण) बाहिरि दुःखों अनुभवसे रहित हो जाता है फलतः मोदको प्राप्त मोदको प्राप्त नहीं होता है ।

अविद्यामिदुर ज्योति पर ब्रानमय महत् ।

तत्प्रष्टव्य तदेष्टव्य तद्रष्टव्य मुमुक्षुभिः ॥ ४९ ॥

अर्थ—अज्ञानको नष्ट करनेवाली महान् उत्कृष्ट ब्रानमयी ज्योति है । सो मोक्षाप्तियोंको उसीके विषयमें पढ़ने

चाहिये, उमीची अभिलाषा करनी चाहिये और उसे ही अनुभवमें लाना चाहिये ।

तत्त्वका मार —

जीरोऽन्य पुद्गलश्चान्य इत्यमौ तत्त्वमग्रह ।

यत्पुद्गलस्य त्वमिदं त्वमिदं त्वमिदं त्वमिदं ॥५०॥

अर्थ—जीरो पृथक् है और पुद्गल पृथक् है, यम इतना ही तत्त्वके ब्यवस्था सार है । इसके मियाय जो कुछ भी कहा जाता है वह मय इमों का ही विस्तार है ।

इष्टोपदेशमिति सम्यगधीत्य धीमान्

मानापमानममता स्वमतादित्य ।

मुक्ताग्रहो विनिरसन्मज्जने बने वा ।

मुक्तिश्रिय नानुपमापुपयाति मन्त्र ॥५१॥

अर्थ—इम प्रकार “इष्टोपदेश” (मोक्षमुक्त अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने का उपाय) को मन्त्र कहते हैं । यन चिन्तन कर, हिताहितकी परीक्षा करने के बाद ही प्राणी, आत्मज्ञानसे मान अपमानमें गर्वद्वेषों का विस्तार कर छोड़ दिया है । यही मोक्ष है । मेरेपनका हठाग्रह निम्नने ऐसा होकर ही मोक्ष प्राप्त होता है ।

ॐ इति ॥

६ परमानन्द स्तोत्र ६०

भाषानुवाद सहित ।

परमानन्दमयुक्त, निर्मिहार निरामयम् ।

ध्यानहीन न पश्यन्ति, निजदेहे व्यग्रस्थितम् ॥ १ ॥

अर्थ—परमानन्द युक्त, मिहारहित, रोगोंसे मुक्त और
(निश्चयनयसे) अपने शरीर में ही विराजमान परमात्मा
को ध्यानहीन पुरुष नहीं देखते हैं ।

अनन्तमुत्तमपद्म, ज्ञानामृतपयोधरम् ।

अनन्तवीर्यमपन्न, दर्शन परमात्मन ॥ २ ॥

अर्थ—अनन्तगुणसे परिपूर्ण, ज्ञानरूपी अमृतसे भरे
ममृद्रुम समान और अनन्तबल युक्त परमात्माके स्वरूप
ही अलोकन करना चाहिये ।

निर्मिहार निरागव सर्वमगमिरहितम् ।

परमानन्दमम्पन्न, शुद्धचैतन्यलक्षणम् ॥ ३ ॥

अर्थ—मिहारोंसे रहित, बाधाओंसे मुक्त, सम्पूर्ण प
'ग्रहोंमें शुद्ध और परमानन्द मिश्रित शुद्ध (कलत्रानन्द)
चैतन्य ही (परमात्माका) लक्षण जानना चाहिये ।

उत्तमा स्वात्मास्ता स्थान्मोहचिता च मध्यमा ।

अधमा कामचिता स्यात्, परचिताऽधमाऽधमा ॥ ४ ॥

अर्थ—अपनी आत्माक (उद्धारक) चिन्ता करना उत्तम चिन्ता है, श्रमरागमंश (तुम्हारे जीवाक भले करनेकी) चिन्ता करना मध्यम चिन्ता है, काम भोगकी चिन्ता करना अधम चिन्ता है और दूसरोंके (अहित करनेका) विचार करना अधमसे भी अधम चिन्ता है ।

निश्चिन्तममृत्युत्पन्नं ज्ञानमेव मुखागमम् ।

विवेकमज्जुलि कृत्वा, तत्परिचयं तपश्चिन्त ॥ ५ ॥

अर्थ—संश्लेषविश्लेषोंको नाश करनेसे ममृत्पन्न जो ज्ञानरूपी मुखागम उमको तपस्वी महात्मा ज्ञानरूपी अजुलिसे पीते हैं ।

मत्मानन्दमयं जीव यो जानाति, स पण्डितः ।

स सेवते निजात्मानं, परमानन्दकारणम् ॥ ६ ॥

अर्थ—जो पुरुष सदा ही परमानन्दविशिष्ट आत्माको जानता है वही (गान्धर्गमें) पण्डित है और वही पुरुष परमानन्दकी कारणभूत अपनी आत्माकी सेवा करता है ।

नलिन्या च यथा नीरं, मित्रं तिष्ठति मयिदा ।

अपमात्मा स्वभावेन, दृढं तिष्ठति निर्मलम् ॥ ७ ॥

अर्थ—जैसे कमलपत्रके ऊपर पानीकी बूद कमलमे सदा ही मित्र रहती है, उसी प्रकार यह निर्मल आत्मा

शरीरके भीतर रहकर भी स्वभावकी अपनी शरीरसे सदा
भिन्न ही रहता है । शरीरों के मांसे शरीरके भीतर रहकर
भी शरीरजन्य रागादि मत्तासे मत्ता अनिश्वर रहता है ।

अथ मेनेलमृक्त भावमभिप्रेक्षितम् ।

मेदस्तरहित मिद्वि, निद्रायेन चिदात्मन ॥ ८ ॥

अर्थ—हम ज्ञानय आत्माका स्वरूप निश्चयकरक
जानाशरणादिष्व द्रव्यरूपसे रहित, गगद्वेषादि भावमत्तासे
रहित और औदारिकादि शरीररूप नोरुपसे पृथक् जानो ।

आनन्द ब्रह्मणोरूप, निजदह ध्यवस्थितम् ।

ध्यानहीना न पश्यन्ति, जात्यन्धा इव भास्वरम् ॥ ९ ॥

अर्थ—जैसे जन्माघ पुरुष मूर्खों नहीं जानता है जैसे
ही शरीरके भीतर स्थित परमात्माके आनन्दमय स्वरूपको
ध्यानहीन पुरुष नहीं जान पाते हैं ।

तद्विद्यान क्रियत भव्यमनो येन विलीयते ।

तरलण दृश्यते शुद्ध चिन्मत्स्वरूपलक्षणम् ॥ १० ॥

अर्थ—जिस ध्यानके द्वारा यह चंचल मन स्थिर होकर
परमानन्द स्वरूपमें विलीन (मग्न) हो जाता है वही ध्यान
(मोक्षके इन्धुक्त) भव्य जीव करते हैं तथा उभी मग्नय
चैतन्यमत्स्वरूपमात्र शुद्ध परमात्माका साक्षात् दर्शन
होता है ।

ये ध्यानशीला मुनयः प्रधानाः, स्ते दुःखहीना नियमाद्भवन्ति ।
सम्प्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्त्वम्, प्रजन्ति मोक्षं घण्टाभङ्गेन ॥ ११ ॥

अर्थ—उत्तम ध्यान करने वाला जो मुनि हैं वे 'नियम' से सभी दुःखासे छूट जाते हैं तथा शीघ्र ही परमात्मपद को प्राप्त करके (और रात में अयोग करने लगे होकर) घण्टा मात्र में ही मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं ॥ ११ ॥

आनन्दरूप परमात्मतत्त्व, समस्त भवत्पर्विकल्पमुक्त ।
स्वभावलीना नियमन्ति नित्यं, जानाति योगी स्वयमेव
तत्त्वम् ॥ १२ ॥

अर्थ—निज स्वभाव में लीन हुए मुनि ही परमात्मा के समस्त भवत्पर्विकल्पों से रहित परमानन्दमय स्वरूप में निरंतर तन्मय रहते हैं । और इस प्रकार के योगी महात्मा ही परमात्म स्वरूप को स्वयं जानते हैं ॥ १२ ॥

परमात्माका स्वरूप ।

चिदानन्दमय शुद्ध निराकार निरामय ।

अनन्तमुपसम्पन्न मर्मगगनविजितम् ॥ १३ ॥

लोभमागप्रमादोऽयं निश्चये न हि मशयः ।

व्यवहारे तन्मात्रं कथितं परमेष्ठिनः ॥ १४ ॥

अर्थ—श्री मर्मज्ञद्वारे परमात्माका स्वरूप चिदानन्दमय,

पुद्ध, स्वप्नसादि शास्त्राग्ने रहित, अनेक प्रसारके रोगोंसे
वाथा शरीर अन्नगुण प्रशिष्ट व मर्म पश्चिग्रह रहित प्रता
य है । निश्चयनयसे आत्माका आकार लोभाशाशके
प्राप्त प्रमत्तयातप्रदशी तथा व्यग्रहारनयसे प्राप्त छोट व
१८ जगत्क गमा, प्रताया है ॥ १३ । १४ ॥

यस्याय अश्वने शुद्ध तच्छण गतविभ्रम ।

सम्यक्चित्त स्थिरीभूता, निर्दिश्यममाविना ॥ १५ ॥

शरीर—इस प्रकार 'उपर कह' हुए परमात्माक शुद्ध
स्वरूपसे योगीपुरुष जिस समय निर्दिश्यममे, विक्रान्त
जान लता है, उसी समय उस योगीका चित्त आकुलता-
रहित स्थिर होता है और अज्ञान का नाश हो जाता है ॥ १५ ॥

म एव परमं ब्रह्म, म एव जिनपुङ्गव ।

म एव परमं तत्त्व, स एव परमो गुरु ॥ १६ ॥

म एव परमं ज्योतिः, म एव परमं तप ।

म एव परमं ध्यान, म एव परमात्मन ॥ १७ ॥

म एव सर्वकल्याण, म एव सुखभार्जन ।

म एव शुद्धचिद्रूप, म एव परमं शिव ॥ १८ ॥

म एव परमानन्द, म एव सुखदायक ।

म एव परचैतन्य, स एव गुणमागर् ॥ १९ ॥

अर्थ—ब्रह्म परमध्यानी योगी मुनि ही परमब्रह्म, कर्मों से जीतनेसे जिन, शुद्धरूप हो जानेसे परम आत्मतत्त्व, जगतमात्रक हिनका उपदणक हो जानेसे परमगुरु, ममस्त पदार्थोंक प्रमाण करनेवाले वानसे युक्त हो जानेसे परम-ज्योति, ध्यान ध्याताक अभिरूप हो जानेसे शुद्धध्यानरूप परमध्यान, व परम तपस्वरूप परमात्माके वयार्थ स्वरूपमय हो जाता है । वही परमध्यानी मुनिही सर्व प्रकर रके कृत्या गासे युक्त, परमसुखका पात्र, शुद्ध चिद्रूप, परम शिव पहलाता है और वही परमानन्दमय, सर्व सुखदायक, परम चतन्य आदि अनन्त गुणाका समुद्र हो जाता है ॥ १६ ॥ १७ । १८ । १९ ॥

परमाल्हात्मव्यक्त, गगद्वेपरिर्जितम् ।

अर्हन्त ब्रह्मस्ये तु, धो जानाति स पण्डित ॥ २० ॥

अर्थ—परम आह्वात्युक्त, गगद्वेपरहित अरहन्तब्रह्म जो ज्ञानी पुरुष अपने ब्रह्मरूपी मन्दिरमें निगजमान बसता व जानता है, उस्तुत वही पुरुष पण्डित है ॥ २० ॥

आकाररहित शुद्ध, स्वरूपव्यवस्थितम् ।

निद्रमष्टगुणोपत, निर्विकार निरञ्जनम् ॥ २१ ॥

अर्थ—आकरहित, शुद्ध, निर स्वरूपमें प्रगजमान, निरारहित, कर्ममलसे अन्य और नाशिय सम्यग्दर्शनादि

यस्य गुणान् यद्विद गिटपग्मेष्टिषोके स्वरूपका चिन्तयन्
हरिः ॥ २१ ॥

तमद्य निजात्मान, प्रमाणाय महीयसे ।

मत्तानदचनन्ध, यो जानाति स पण्डित ॥२२॥

अर्थ—मिट्टीपरमेष्ठीक समान परमज्योतिस्वरूप कर
तजानादि गुणोंकी प्राप्ति के लिये जो पुरुष अपनी आत्मा को
परमात्मप, चेतन्य चमत्कारयुक्त जानता है, उही वास्त-
वमें पांडित है ॥ २२ ॥

पापाणेषु यथाहम, दुग्धमध्ये यथा घृतम् ।

तिलमध्ये यथा तल, दहमध्ये तथा शिर ॥ २३ ॥

काटमध्ये यथा वह्नि, शक्तिरूपेण तिष्ठति ।

अपमात्मा शरीरेषु, यो जानाति स पण्डित ॥२४॥

अर्थ—जिम प्रकार सुर्ण-पापाणमें सोना, दूधमें घी
'और तिलोंमें तेल रहता है उसी प्रकार शरीरमें शिररूप
आत्मा विराजमान है । जैसे काष्ठके भीतर आग शक्तिरूप
से रहती है उसी प्रकार शरीरके भीतर यह शुद्ध आत्मा
विराजमान है । इस प्रकार जो समझता है उही वास्तवमें
पण्डित है ॥ २३ ॥ २४ ॥

❀ पंडितप्रवर टोडरमलजीकी रहस्यपूर्ण चिट्ठी ❀

॥ श्री ॥

मिद्व श्री सुन्तान नग्र महाशुभस्थान गिरै माधमीं भाई अनेक उपमा योग्य अध्यात्मगम रोचक भाई श्री तानचन्दजी, गंगाधरजी, श्रीपालजी, मिद्वारथदामनी अन्य मर माधमीं योग्य लिखत टोडरमल्लके श्री प्रमुख गिनयज्ञान अवधारना । यहाँ जिया मम्मर आनन्द है, तुम्हारे गिदानद धनके अनुमत्से महजानन्दकी वृद्धि चाहिए ।

अपरञ्च पत्र १ तुम्हारे भाईजी श्रीरामसिंहजी भुगानीदामजीको आया था तिमके ममार जहाना बादनै और माधमियोंने लिया था । मो भाईजी ऐसे प्रश्न तुम मारिपै ही लिखे । अगर वर्तमान कालमें अध्यात्मके समिर बहुत थोड़े हैं । धन्य हैं जे स्वात्मानुमरकी राता भी करे हैं, मो ही कहा है —

श्लोक—वनिताप्रीतचित्तन तस्य धार्तापि हि श्रुता ।
स निष्ठये त द्रव्यो, भावनिर्गन्धभाजन ॥

अर्थ—निहि जीव चित्तकर तत्त्वकी बात भी सुनी, मो जीव विशेषकर भव्य है । अन्यमालसिप मोक्षका पात्र है ।
मो भाईजी तुम प्रश्न लिखे तिमकर मेरी वृत्ति प्रजगत्

रुद्राणि हि मा नानता । और अध्यात्म आगमरा
रुद्राणि न पर तो जीव २ दर्श रंग । मिलाव रभी होगा
न होगा । अ निम्नतर मरुपानुभवमें रहना । श्रीरम्तु ।

॥ १ ॥ स्वानुभवप्रकाशितै प्रत्यक्षपरात्तादिरु प्रश्ननिरो
उत्तर बुद्धिप्रनुसार लिखिये है ।

तदों प्रथम ही म्रानुभवरा मरु जानने निमित्त
लिखे है ।

जीवपदार्थ अनादित मि रोंदही है मो आपापरके
यथाथरूप विपगत श्रद्धानका नाम मि शत्र है । पदुग
जिम कात रिपो जायके दशा मोहके उपगम, छरोप
गमते आपापरका यथार्थ श्रद्धानरूप तत्पार्थ श्रद्धान होय,
तत्र जीव सम्पत्की होय है ॥ यात आपापरका श्रद्धानरूप
शुद्धात्म श्रद्धानरूप निदयमम्यक्त गर्भित है । पदुरि नो
आपापरका श्रद्धान नहीं है । अर निमतरिप कह जे दय,
गुरु, वर्म तिनही दू-माने है, अ पमतरिप रह दयादिक
वा तत्पदि तिनको नहीं माने है तो ऐसे केवल व्ययहार
मम्यक्तारि मम्यक्ती नाम पाय नहीं । तात म्यपर भेदवि-
ज्ञानको लिख जो तत्पार्थश्रद्धान होय मो मम्यक्त जानना ।

पदुरि ऐसे मम्यक्ती होते मते जो ज्ञान पनेन्दी, छटा
मनके द्वार, क्षयोपशमरूप विव्यात्मदशामें कुमति, कुश्रुति-

रूप होय रहा था मोई ज्ञान अथ मति श्रुतिरूप सम्यग्ज्ञान भया । सम्यक्की जेता बहुत चाने सो जानना सर्व सम्यक्ता नरूप है ।

जो कदाचित् घटपटादिक पदार्थनह अथार्थ भी जानें तो यह आपसजनि उदयकी अज्ञानभाव है सो दोषोपशम्भ प्रसूत ज्ञान है सो तौ मर सम्यग्ज्ञान हा है । जेत जानन रिप रिपगीतम्भ पदाधनसी न माय है । सो यह सम्यग्ज्ञान केवलज्ञानका प्रश है । जैसे थोडासा मयगल मिल्य भये बहुत प्रकाश प्रसूत है सो सर्व प्रकाशका प्रश है ।

जो ज्ञान मतिश्रुतिरूप प्रवर्त है सो हा ज्ञान बरिता उरिता केवलज्ञानरूप होय सम्यग्ज्ञानकी अपवा जति एक है । अतुरि इम सम्यक्कीरु परिणामरिप मविकल्प निविकल्प रूप होय दो प्रकार प्रवते तहाँ जो रिपव कपापात्रिप का पृना, दान गान्ध्यामादिरूप प्रवर्त है सो मविकल्प रूप जानना ।

यहाँ प्रश्न—

जो शुभाशुभरूप सम्यक्ता अस्तिन्त्र कैम पाहुत ?

नाका सम । ज्ञान—जैसे कोई शुभास्त मातृक कार्य रिप प्रवर्त है, उम कार्यसो अपना भी कह है हरिपात्रकी भी पार है, तिम ११ ॥ ५९१ ॥ है, तहाँ अपना और

माहू का जगईक नार्त निवार है परतु अतरग श्रद्धान ऐमा
है कि यह सग सारज नाहीं,। ऐमा कार्यकर्ता गुमास्ता
माहूना है ।

सो माहूके बनक चुगय अपना मानें तो गुमास्ता
ही कहिए । तैमे कमेजनित शुभाशुभरूप कार्यकी
रूप तत्परूप परगम है । तथापि अतरग ऐसा श्रद्धान है
है यह कार्य मरा नाहीं । जो गरीराश्रित वृत्त सयमकी
ग अपना पानें तो मिथ्यापटि होय सो ऐसे मन्त्रिस्वर
परगम होय ।

अब सबिक-पहीके द्वारकर निर्मिरूप परिणाम
ज्ञानका विज्ञान कहिए है —

सो सम्यक्ती उदाचित् स्वरूप ध्यान करनेकी उद्यमी
होय है तहाँ प्रथम भेदविज्ञान स्वरूपस्वरूपका करे नोकर्म,
द्रव्यरुम, भावरुम रहित चतुर्थाचतुर्चम-कारमात्र अपना
स्वरूप जान, पीछे परमा भी विचार छूट जाय, केवल
स्वात्माविचार ही रहै है । तहा अनेकप्रकार निजस्वरूपविषे
अद्वयद्विधर है । चिन्तानन्द ही, शुद्ध हैं, मिद्ध हैं, इत्यादिक
विचार होते मत सहज ही आनन्दतरंग उठ है, रोमाच
होय है, ता पीछे ऐमा विचार तो छूट जाय, केवल चिन्मात्र
स्वरूप सामने लागे । तहा सर्व परिणाम उम रूपविषे एसाग्र ।

होय प्रसन्न । दर्शन ध्यानादिक्रम या नय प्रमाणादिक्रमों भी विचार मिलय जाय ।

चेतन्य स्वरूप जो मयिस्वरूप तारुणि निश्चय जिया था तिमही रिपे व्याप्यव्यापकरूप होय ऐसे प्रसन्न जहाँ ध्याता व्यापयनो दूर भयो मो ऐमो दण्डास नाम निर्विकल्प थेनु भर है । मो पढे नयचरित्रिपे ऐसे ही कहा है -

गाथा ।

नचाणि सण काले समय बुझेदि जुतमो गणणो ।
प्राणासमिरा मच्चक्षुषो अण्णयो जम्हा ॥ १ ॥

अर्थ-तत्परस अलोकनस जो काल ता रिपे समय जो है शुद्धात्मा तारो जुका जो नय प्रमाण तारुणि पहिले जान । पीछे आगधनममय जो अनुभवासल, तिहिविषय नय प्रमाण नाही है । जान प्रत्यक्ष अनुभव है । जैसे रत्नकी गरीदरिपे अनेकविकल्प कर है, प्रत्यक्ष तारो पहिरिय तब विकल्प नाहीं, पहिरनेस सुख ही है । ऐसे मयिस्वरूपके द्वार निर्विकल्प अनुभव होय है ।

बहुरि निर्विकल्प अनुभवरिपे नो ज्ञान परेन्द्रो, छद्वा मनके द्वार प्रसन्न था मो ज्ञान सय तर्कमो मिमर्त्सर केवल स्वरूप मन्मुख भया । जात वह ज्ञान नयोपशमरूप है सो एक ज्ञानरिपे एक ज्ञेयहीमो जानी, मो ज्ञान स्वरूप

माननेकी प्रवर्था, तब अन्यका जानना महज ही रह गया ।
 वही ऐसा दशा भई जो बाह्य विकार होय तो भी स्वरूप
 व्यापक रहतु सपर नार्हा, ऐसे मतिज्ञान भी स्वरूप सन्मुख
 भया । चहुरि नयादिके निगार मिटते श्रुतज्ञान भी स्वरूप
 सन्मुख भया । ऐसा वर्णन समयमारही टीका आत्मरया
 तिरिपै किया है तथा आत्मा असलोकनात्तिक रिपै है, इस
 ही रास्ते निरिस्वरूप अनुभवरही अतीन्द्रिय रहिए है, जात
 इन्द्रियाँ वर्म तो यह है जो फल, रस, गन्ध वर्णभौ
 जान मो यहा नार्हा । अर मनका धर्म यह है जो अनेक
 निरूप्य करे मो भी नाहों, ताँत जब जो ज्ञान इन्द्री मनके
 द्वार प्रवत्त था मो ही ज्ञान अनुभवरिपै प्रवत्त है तथापि
 ज्ञानको अतीन्द्रिय कहिये । चहुरि इस स्थानुभवरही मन
 द्वार भया भी कहिये जात इस अनुभवरिपै मतिज्ञान श्रुति-
 ज्ञान ही है, और कोई ज्ञान नहीं ।

मतिश्रुत इन्द्री मनक असलम्ब रिना होय नार्हा सो
 इन्द्री मनका तो आधार ही है जात इन्द्रियका निषय मूर्तीक
 पदार्थ ही है । चहुरि यहा मतिज्ञान है जात मनका निषय
 मूर्तीक अमूर्तीक पदार्थ है, मो यहा मन सम्बन्धी परिणाम
 स्वरूपरिपै एकाग्र होय अन्य चि ताका निरोध कर है
 ताँत यार्ही मन द्वार रहिए ।

“एसाप्रवृत्तानिरोधो ध्यानम्” ऐसा ध्यानका भी लक्षण है, ऐसा अनुमदशास्त्रिणें समझें हैं। तथा नाट्यके कवित्तन्त्रिणें स्वीकार करते हैं—

दोहा ।

चस्तु विचारन भावसं, मन पात्रै विश्राम ।

गन्धर्वादिन रुच्य ऊपजै, अनुभव याकौ नाम ॥

ऐसे मन बिना जुदा परिणाम स्वरूपविषय प्रवर्त्ता नहीं नाँतें स्मानुभव ही मनजनित भी कहिए। सो अनेन्द्री कहने में अरु मनजनित रहनेमें कुछ विरोध नहीं, मित्रा भेद है।

पहुरि तुम लिखो “जो आत्मा अनेन्द्रिय है” सो अनेन्द्रि : ही कर ग्रहा जाय सो मन अमूर्तिरूप भी ग्रहण करें हैं, जाँतें मतिश्रुत ज्ञानका विषय सर्व द्रव्य रहै हैं।
उक्त च तत्त्वार्थसूत्रे—

“मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येऽवमर्पयायेषु ।”

पहुरि तुमने “प्रत्यक्ष परोक्षका प्रश्न लिखो” सो भाईजी, प्रत्यक्ष परोक्षक तो भेद हैं नहीं। चौथ गुणस्थान सिद्धममान क्षायक मय्यक्त हो जाय है, ताँतें मय्यक्त तो कवल यथार्थ श्रद्धानरूप ही है, सो शुभाशुभ कार्यरत्ता भी रहै हैं ताँतें तुमने जो लिखा था कि “मय्यक्त प्रत्यक्ष हैं व्यवहार मय्यक्त परोक्ष हैं” सो ऐसा नहीं है, मय्यक्तके

तो ताँ भेद है—तहाँ उपशम सम्यक्त अरु जायक सम्यक्त तो निमित्त है, जाँत मिथ्यात्वरु उद्वेगकरि रहित है, अरु क्षयापशम सम्यक्तममल है। बहुरि इस सम्यक्तरिष प्रत्यक्ष परोक्ष भेद तो नाहीं है।

आयत्तसम्यक्तरु शुभाशुभरूप प्रवर्तता या आनुभव-
रूप प्रवर्तता सम्यक्तगुण तो सामान्यही है ताँत सम्यक्तरु
तो प्रत्यक्ष परोक्ष भेद न मानना। बहुरि प्रमाणके प्रत्यक्ष
परोक्ष भेद है सो प्रमाण सम्यग्ज्ञान है ताँत मतिमान श्रुत-
ज्ञान तो परोक्ष प्रमाण हैं। अग्रहि मन पर्यय केवलज्ञान
प्रत्यक्ष प्रमाण है। “आद्य परोक्ष प्रत्यक्षम यत्” ऐसा
श्रुति कहा है तथा तर्कशास्त्ररिष ऐसा लक्षण प्रत्यक्ष परो-
क्षका कहा है—

“स्पष्टप्रतिभामात्मक प्रत्यक्षमस्पष्ट परोक्ष।”

जो ज्ञान अपने विषयको निर्मलतारूप नीके जानै सो
प्रत्यक्ष अरु स्पष्ट नीके न जानै सो परोक्ष, सो मतिमान
श्रुतज्ञानका विषय तो घना परंतु एक ही ज्ञेयको सम्पूर्ण न
जान सके ताँत परोक्ष है। और अग्रहि मन पर्ययके विषय
दोरे हैं, तथापि अपने विषयको स्पष्ट नीके जानै ताँत एक
दश प्रत्यक्ष है, अरु कबल मर्म ज्ञेयको आप स्पष्ट जानै
ताँत मर्म प्रत्यक्ष है।

बहुवि प्रत्यक्षके दोय भेद है—एक परमार्थप्रत्यक्ष व्यवहारप्रत्यक्ष है । मो अवधि मन पर्यय केवल तो स्पष्ट प्रतिभामरूप है ही ताँत पारमार्थिक है । बहुवि नेत्रादिरुतै बरणाधिकता जानिए है । ताँत इनको मान्यवहारिक प्रत्यक्ष कहिए परंतु जो एक स्मृत्ये मित्र अनेक वर्ण है त नेत्रकर नीके ग्रह जाय है ताँत याही मान्यवहारिक प्रत्यक्ष कहिए ।

बहुवि पगेनप्रमाणके पाच भेद हैं—१ स्मृति, २ प्रत्यक्षमित्रान, ३ तर्क, ४ अनुमान, ५ आगम ।

तहा जो पूर्ण गन्तु जानीरौ याद हरि जानना मो स्मृति रहिये ।

दृष्टान्तरि वस्तु निश्चय सीनिये मो प्रत्यक्षमित्रान कहिए ।

हतुकर विचारने लिया जो ज्ञान सो तर्क कहिए ।

हतुतै भाव गन्तुहा जो ज्ञान मो अनुमान रहिए ।

आगमत जो ज्ञान होय मो आगम कहिए ।

ऐसे प्रत्यक्ष पगेन प्रमाणके भेद स्त्रिय हैं सोई स्थानु भय दशम जो आत्माही जानिए सो श्रुतज्ञानरि जानिए है । श्रुतज्ञान है मो मतिज्ञानपूर्वक ही है । मो मतिज्ञान श्रुतज्ञान परोक्ष कहतात यहा आत्माही जानना प्रत्यक्ष नाही ।

अथ मनःपययका त्रिपय रूपी वदार्थ ही है
 १. १५११ उच्यते है नाहो तात अनुभवमिप अयधि
 २. ८१ रनरुगि आमाका जान्ना नाही । बहुति यदा
 ३. १५११ स्थाष्ट गोक जान १, नात पागमाधिक प्रत्यक्षपना
 ४. १५११ गा । बहुति जन नेगादिक जानिण है तात एव
 ५. १५११ निये भी आत्माके अमरस्यात प्रदशान्ति न
 ६. १५११ है तात माव्ययदागिक प्रत्यक्षपणे भी सम्भर नाही ।
 ७. १५११ आगम अनुमानादिक परोक्षज्ञानरुगि आत्माका
 अनुभव होय है । जैनागममिप जैमा आत्माका स्वरूप कहा
 है तात तैमा जान उम मिप परिणामाकी मप्र कर है तात
 आगम परोक्ष प्रमाण रहिण, अथवा म आत्मा ही हैं तात
 मुक्तमिप ज्ञान है । जहा जहा ज्ञान तहा तहा आमा है
 जैसे मिद्धादिक है । बहुति जहा आत्मा नाहो तहा ज्ञान भी
 नाही, जैसे-मृत्क रनेगदिक है ऐसे अनुमानरुगि वस्तुका
 निश्चयकर उम मिप परिणाम मप्र कर है, तात अनुमान
 परोक्षप्रमाण कहिए । अथवा आगम अनुमानादिकर जो
 वस्तु जाननेम आया निमहीको याद रखर उम मिप परि
 णाम मप्र करे है तात स्मृति कहिए, ऐसे इत्यादिक प्रकार
 म्मानुभवमिप परोक्षप्रमाण कर ही आत्माका जानना होय
 है, पाठ जो स्वरूप जाना निमही मिप परिणाम मप्रहो
 नाका कछू विशेष जानपना होता नाही । बहुति यहा प्रश्न—

जो सविकल्प निर्विकल्पविषय जाननेका विशेष नहीं तो अधिक आनन्द कैसे होय है ?

ताका समाधान—सर्वस्व दशाविषय ज्ञान अनेक स्वेवर्ग जाननरूप प्रवर्तता त निर्विकल्प दशाविषय केवल आत्मा हा का जानना है, एक तो यह विशेष है दूसरा यह विशेष जो परिणाम नाना विस्वरूपविषय परिणाम था मो केवल स्वरूप ही सी तत्वात्मरूप होय प्रवर्तता, दूसरा यह विशेष मया । ऐसे विशेष होत कोइ उचनतीत ऐसा अपूर्व आनन्द होय है जो विषयसेवनविषय उमके अगती भी जान नाहीं, तांत उम आनन्दसी अतेन्द्रिय कहिये । बहुरि यहा प्रश्न —

जो अनुभवविषय भी आत्मा परोक्ष ही है तौ ग्रन्थनविषय अनुभवक प्रत्यक्ष कैसे कहिये ?

ऊपरसी गायारिष ही कहा है । “पचतो अणुहरो जम्हा” ताका समाधान—अनुभवविषय आत्मा तौ परोक्ष ही है, कष्ट आत्माके प्रदेण आकार तौ भासते नाहीं परन्तु जो स्वरूपविषय परिणाम मय होते स्थानुभव भया, मो यह स्थानुभव प्रत्यक्ष है । स्थानुभवका स्वाद कष्ट आगम अनुमानादिक परोक्ष प्रमाणादिक कर न जानें हैं । आपही अनुभवके रस स्वादकौ वेदें है । जैसे कोर्ट आधा पुस्त्य मिथ्रीसी आस्वाद है, तहा मिथ्रीके आस्वादिक तो परोक्ष

है मो वह स्वाद प्रत्यक्ष

पाँ होय तिमहीं भी प्रत्यक्ष

इ हमने स्पष्टविषया ध्यान

ना, मो प्रत्यक्ष दया नाहा,

{ यथार्थ देगौ ताँत प्रत्यक्ष

हमा प्रत्यक्षकी नाई यथार्थ

१।४ रि आत्मा हा भी प्रत्यक्ष

१५ १० १० १० १० १० १० १० १० १०

प्रमाण शास्त्रनमो विरोध न

१६ १० १० १० १० १० १० १० १० १०

ना १० १० १० १० १० १० १० १० १० १०

ताका १० १० १० १० १० १० १० १० १० १०

मालके अन्तर्गत होय १० और उपरके गुणठाने शीघ्र १०

होय है । बहुवि प्रश्न —

जो अनुभव तो निर्विकल्प है तूहा उपरके

और नीचेके गुणस्थाननिक भेद कहा ?

ताका उत्तर—परिणामनकी मप्रताविषे विशेष है जैसे

दोय पुरुष नात्र जे ठ अर दोही का परिणाम नात्र विषे

है तन्ना एकर नो मप्रता विशेष है अर एकरै स्तोरु है

वैस जानना । बहुवि प्रश्न —

जो निर्विकल्प अनुभवरूपिणें कोई विकल्प नहीं तो शुक्लध्यानका प्रथम भेद पृथक्त्ववितर्क बीचार कहा तथा पृथक्त्ववितर्क बीचार नाना प्रकार श्रुत अर बीचार, अर्थ, व्यञ्जन, योग, सक्रियता ऐसे रूपों कहा ?

विमला उत्तर —रथन दोय प्रकार है—एक स्मृलरूप है, एक सूक्ष्मरूप है । जैसे स्मृलतारुणि तो छुट ही गुण स्थाने सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य त्रत कहा, अर सूक्ष्मतारुन नरुम ताई मैधून मना बढी तेसे यहा अनुभवरूपिणें निर्विकल्पता स्मृलरूप कहिये है । बहुरि सूक्ष्मतारुणि पृथक्त्ववितर्क बीचारदिक भेद वा दशमा ताई कपायादि कहैं हैं । सो अर आपके जाननेमें वा अन्यक जाननेमें आवे ऐसा भावका कथन स्मृल जानना अर जो आपभी न जानैं केवली भगवान ही जानैं मो ऐसे भावना कथन सूक्ष्म जानना अर चरणानुयोगादिकरूपिणें स्मृल रथनकी मुख्यता है अर चरणानुयोगादिकरूपिणें सूक्ष्म कथनकी मुख्यता है ऐसा भेद और भी ठिकाने जानना । ऐसे निर्विकल्प अनुभवरुपा स्वरूप जानना ।

बहुरि भाद जी, तुम तीन दृष्टात लिखे वा दृष्टातविषे प्रश्न लिखा मो दृष्टात मर्गांग मिलना नहीं सो दृष्टात हैं

[illegible]

॥ति ॐ जस केरली सर्वज्ञेयकौ प्रत्यक्ष
न न चोद्वेवाला भी आत्माकौ प्रत्यक्ष
॥ १५ ॥ योगा ?

सा भाईनी, प्रत्यक्षताही अपेक्षा एह जाति नही
 मध्यगानही अपेक्षा एक जानि है। चौथे गलेक मतिश्रुत
 रूप मध्यगान है। तेरहे केवलरूप मध्यगान है। चहुरि
 एहदश मपदेशका ती अन्तर इतना ही है जो मतिश्रुत
 वाला अमृतिक वस्तुको अप्रत्यक्ष अमृतिर वस्तुसौ भी प्रत्यक्ष
 वा अप्रत्यक्ष किंचित अनुक्रमसौ जाने है। अर मर्यादा सर्वसौ
 केवलवान युगपत् जाने है यह परोक्ष जानै यह अप्रत्यक्ष
 जाने, इतना ही विशेष है अर मर्यादा एह ही जाति
 कहिए तो जसे कपली युगपत् अप्रत्यक्ष अप्रयोननरूप

निर्विकल्परूप ज्ञेयकों जानें तेसे ए भी जाने मोतों है नाहीं,
तात प्रत्यक्ष परोक्ष विशेष जानना ।

उक्तच अष्टमहस्तीमध्ये—श्लोक —

स्याद्वाद केवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने ।

मेदमात्तादमात्ताच साक्षरन्तुतमो भवेत् ॥

यारा अर्थ—म्याद्वाद् जो श्रुतज्ञान मर केवलज्ञान दोय
सर्व तत्त्वनके प्रकाशनहार है, विशेष इतना—केवलज्ञान
प्रत्यक्ष है, श्रुतज्ञान परोक्ष है । बहुरि वन्तु है मो और
नाहीं । बहुरि तुम लिख्या —

निश्चय सम्यक्तका स्वरूप ग्रर व्यवहार

सम्यक्तका स्वरूप

मो सत्य है, परतु इतना जानना, सम्यक्तीरु व्यवहार
सम्यक्त्तिरिपे निश्चय सम्यक्त गर्मित है मदेव गमनरूप है ।
बहुरि लिगी —

कोई साधर्मी कहै हैं आत्माकों प्रत्यक्ष जानें तौ
कर्मवर्गणाकों क्यों न जानें ?

मोर्ट रहा है । आत्माभा प्रत्यक्ष तौ केवली ही जानें
तौ कर्मवर्गणाओं अविज्ञान भी जान है । बहुरि तुम लिखा —

द्वितीयांश प्रथमांशकी ज्यौ आत्माके प्रदेश

धर खुले कहौ ?

१. अतः पदजननी गपचा नहीं, यह दृष्टांत गुणकी
 २. गपचा गपचा गपचा अनुमतिपै प्रत्यक्षादिके
 ३. उमन तिनका उत्तर मेरी बुद्धि अनुमार
 ४. उमन तिनगानीनै अपनी परस्परतिमै मिलाय
 ५. अथ कतनाई लिखिये । जो बात जानिण सो
 ६. म आष नहि । मिन फछु कहिये मो मो मिलना
 ७. तनाशन नात भला यह है चतन्यस्वरूपके उद्यमका अनु-
 ८. भव रहना घटना । मो उत्तमान कालियै अध्यात्म तत्त्व
 ९. ता आत्मा छ ।

निम ममयसार प्रथमी अमृतचन्द्र आचार्यद्वारा टीका
 मन्त्रतयि है अर आगमकी चचा गोमटमारियै है । तथा
 और भी अन्यविष है, सो जानी है, मो सर्व लिखनेमें आवे
 नाहि । तांत तुम अध्यात्म आगम ग्रन्थका अभ्यास रचना
 अर स्वमुस्मायि मग रहना अर तुम कोई विशेष ग्रन्थ
 जान होवे तो मुझकी लिख भोजना । माग्योके तो परस्पर
 चचा ही चाहिए, अर मेरी तो इतनी बुद्धि है नाहीं ।
 परतु तुम माग्यो माग्यो परस्पर विचार है, सो अब

कहा तरु लिखिये ? जेत मिलना नहीं तेत पर तौ शीघ्र
ही लिया करौ ।

मिति फागुन बढौ ५ विक्रम म० १८११ ।

ढोडरमल

ॐ श्री ग्यानुभर दर्पण ॐ

गहा ।

निर्मल ध्यान लगायके, रमरुलर जलाय ।

भये मिद्ध परमात्मा, बन्टौ मन बन्न काय ॥ १ ॥

चार घातिया घाति त्रिधि, लिरे अनन्त चतुष्ट ।

तिन जिनरको प्रणमिके, करा काव्य रुद्धु सुष्ट ॥ २ ॥

भर दुगसे डर मोच हित, निज मग्योध निमित्त ।

भरिनन हत् रचतडां, ढोहा हटकर चित्त ॥ ३ ॥

जीर फाल ममार घे, कह अनाद अनन्त ।

गहि मिथ्या श्रद्धान निय, अमे न सुग लहत ॥ ४ ॥

जो चउ गति दुगसे टर, तो तन सन पर भार ।

कर शुद्धात्म चिन्तन, गिर मुख गही उपात्र ॥ ५ ॥

त्रिधि आत्मा जानके, तन बहिरात्म भार ।

अन्तरात्मा होय कर, परमात्मको ध्याव ॥ ६ ॥

मिथ्यादर्शन गण फमे, अहकार ममकार ।

जिनवर कह, सो अमि है ममार ॥ ७ ॥

निज ज्ञान अनुमात्र, पर तन ध्याय आप ।

१८ ॥ जीवतो पाश करे त्रय ताप ॥ ८ ॥

न ॥ ॥ नित्य नित्य शिव, मित्र मित्र बुद्ध मन्त ।

९ ॥ ॥ तम निज, भाषे एम अनन्त ॥ ९ ॥

१० ॥ ॥ पा रूढ़, मो जाने निजम्प ।

११ ॥ ॥ तम निज रूढ़, कर अमण भगम्प ॥ १० ॥

१२ ॥ ॥ पुद्गलमयी, सो जड है परजान ।

१३ ॥ ॥ एता आप तु, चेतन निज पहचान ॥ ११ ॥

१४ ॥ ॥ आपने रूपको, जाने सो शिव होय ।

१५ ॥ ॥ न भवती रत्नना, करे अमे जग मोय ॥ १२ ॥

१६ ॥ ॥ नन इच्छा शुचि तप करे, लगे आप गुण आप ।

१७ ॥ ॥ निश्चय पावे परमपद, फिर न तप भवताप ॥ १३ ॥

१८ ॥ ॥ तव विभाव प्रमाद हो, शिव स्वभावसे जान ।

१९ ॥ ॥ बन्ध मोक्ष पर्याप्तसे, जगण और न यान ॥ १४ ॥

२० ॥ ॥ आत्मको जाने नहीं, कर पुण्य वम पुण्य ।

२१ ॥ ॥ तदपि अमे समागमे, शिवगुण वमी न होय ॥ १५ ॥

२२ ॥ ॥ निजदर्शन वम एको, मोक्षहेतु तू जान ।

२३ ॥ ॥ ह योगी । नहि और को, निश्चयसे पहिचान ॥ १६ ॥

२४ ॥ ॥ गुणस्थान वा मार्गणा, रूढ़त दृष्टि व्यग्रहार ।

२५ ॥ ॥ निश्चय आत्म ज्ञान ही, परनेष्टी पद नार ॥ १७ ॥

गेह कार्य यद्यपि कर, तदपि स्वानुभवा दृष्ट ।
 स्वार्थे मदा निनेश पद, होय मुक्त प्रत्यक्ष ॥ १८ ॥
 जिन सुमगें निन चित्तो, जिन ध्याओ मनशुद्ध ।
 लहो परमपद क्षणरमे, छाकुरक प्रतिशुद्ध ॥ १९ ॥
 जिनपर अरु शुद्धात्मम, किंचित् भेद न जान ।
 मोक्ष अर्थ ह योगिजन, निश्चयसे यह मान ॥ २० ॥
 जो जिन मो आतम लखो, निश्चय भेद न रच ।
 यही मार मिद्वान्तका, छोडो मर प्रपच ॥ २१ ॥
 जो परमात्म मो हि मैं, मैं जो वहि परमात्म ।
 ऐमा जान जु योगिनन, ररिये वृद्ध न विकल्प ॥ २२ ॥
 अगणित शुद्ध प्रदशयुत, लोकाकाश प्रमाण ।
 मो शुद्धात्म अनुभवा, गीघ लहो निर्वाण ॥ २३ ॥
 निश्चय लोकप्रमाण है, तनु प्रमाण व्यग्रहार ।
 ऐसे आतम अनुभव, सो पारि मरपार ॥ २४ ॥
 चौगमी लग योनि में, अम्यो जु काल अनत ।
 मम्यस्पर्शनके बिना, यह जानो निर्भ्रान्त ॥ २५ ॥
 शुद्ध मचेतन शुद्ध जिन, केवलज्ञान स्वभाव ।
 यह आतम जानों मदा, जो चाहो गिरलाभ ॥ २६ ॥
 जब तक आतमज्ञान ना, मिव्या क्रिया कलाप ।
 भटको तीनों लोकमें, गिरमुख लहो न थाप ॥ २७ ॥

गगनद्वय गङ्गा नमः, निज में कर निवास ।
 निनरु मोक्षित ५२ यह परम गति तु जाय ॥ ४८ ॥
 श्याम दन्त रत्न ना गले, डङ्कशा न गलन्त ।
 गुणग मन्त्र मन्त्र यत्, यामे भर भटन्त ॥ ४९ ॥
 ५० गन ११११ में रम, त्यो हो आनम लीन ।
 नमः शिरो मन्त्रानि नर, क्यों मर भ्रमे न ॥ ५० ॥
 नमः शिरो नमः नमः, जानो मलिन गरीर ।
 नर गुणतम भावना, शीघ्र लहो भयतीर ॥ ५१ ॥
 नमः शिरो ध्याना फले, ररे न आतम ज्ञान ।
 नमः कारण जगतीय न, पात्र नहि निराण ॥ ५२ ॥
 शान्ति पदे भी मूर्ति है, जो निजतन्त्र अजान ।
 नमः शिरो न जीव भी, पात्र नहि निराण ॥ ५३ ॥
 मन इन्द्रोसे दूर हो, क्या बहु पृथ्वी बात ।
 रागप्रमाण तु तनत ही, महज स्वरूप उत्पाद ॥ ५४ ॥
 जीव पुद्गल दोउ मित्र है मित्र सफल व्यवहार ।
 तन पुद्गल ग्रह जीव तो, शीघ्र लह भयपार ॥ ५५ ॥
 जो ना जाने जीव क्या, जो न कहै है जीव ।
 मो नास्ति मर ० भ्रम, निनरु कहत मदीय ॥ ५६ ॥
 रत्न दीप रवि दूध दधि, घृत पत्थर अरु हम ।
 रजत स्कटि अरु अग्नि नर, उदाहरण जिय एम ॥ ५७ ॥

दहादिक को पर गिने, जैसे शून्य अराश ।
 तो पावे परब्रह्म भट, कवल करे प्रकाश ॥ ५८ ॥
 जैसे शुद्ध अराश है, त्यो ही शुचि है जीव ।
 जड जानो आराशरी, चेतन्य लक्षण जीव ॥ ५९ ॥
 ध्यान द्वार अतर लग्न, दह रहित जो जीव ।
 गर्मजनक जन्म न बरे, पिये न जननी क्षीर ॥ ६० ॥
 ज्ञानमयी चेतन्य तन, पुद्गल नन नड नान ।
 मिथ्या भोह जु दूरकर, तन भी मम नहि मान ॥ ६१ ॥
 आप आप अनुभव करे, को फल सो न लहत ।
 प्रगटत केवलज्ञान अरु, शाश्वत सुख मिलमत ॥ ६२ ॥
 जो पर भागहि त्यागकर, यातम भात लखत ।
 केवल ज्ञान सरूप हो, भय २ ना भट्यन्त ॥ ६३ ॥
 धन्य अहो ! भगवत युध, जिन स्थाने पर भार ।
 लोकोलोक प्रकाश कर, जाने निमल स्वभावर ॥ ६४ ॥
 अनागार सागार जो, वाम करें निज रूप ।
 शीघ्र मुक्ति सुख पावही, यो भाषत जिन भूष ॥ ६५ ॥
 विरला जानि तत्त्वको, गिला तत्त्व सुमन्त ।
 विरला ध्यात तत्त्वको, गिरला अद्यान्त ॥ ६६ ॥
 पुत्रादिक न कुटुम्ब मम, निषय भोग दुख गान ।
 जानीजन ह्म चितकर, शीघ्र करत भयहान ॥ ६७ ॥

इह ॥ १२३ ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ।
 ॥ १२४ ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ॥ ६८ ॥
 ॥ १२५ ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ।
 ॥ १२६ ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ॥ ६९ ॥
 ॥ १२७ ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ।
 ॥ १२८ ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ॥ ७० ॥
 ॥ १२९ ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ।
 ॥ १३० ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ॥ ७१ ॥
 ॥ १३१ ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ।
 ॥ १३२ ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ॥ ७२ ॥
 ॥ १३३ ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ।
 ॥ १३४ ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ॥ ७३ ॥
 ॥ १३५ ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ।
 ॥ १३६ ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ॥ ७४ ॥
 ॥ १३७ ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ।
 ॥ १३८ ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ॥ ७५ ॥
 ॥ १३९ ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ।
 ॥ १४० ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ॥ ७६ ॥
 ॥ १४१ ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ।
 ॥ १४२ ॥ गिरि मी गद्दी शरण टाता ॥ ७७ ॥

तीन रहित त्रयगुण मान्य स्यात्तम करे निग्राम । -
 सो पाव सुख माप्सता, जिनपर कहत प्रकाश ॥ ७२ ॥
 कपाय मना चार दिन, अनन्त चतुष्ट महित ।
 ह जिव ! निजरूप जान यह, होगा परम परित्र ॥ ७३ ॥
 सग रहित दश महित गण, लक्षण दश गुण युक्त ।
 मो ही निश्चय आत्मा यो रहते जिनभूष ॥ ७४ ॥
 आत्म दर्शन ज्ञानमय, आत्म चारित्रवान । -
 आत्म मयम शील तप, आत्म प्रत्याग्यान ॥ ७५ ॥
 जो जाने निज आत्मसो, पर त्यागे निर्भाल । -
 सो ही है मन्याम कर, भाषे जिन बड़ माय ॥ ७६ ॥
 सम्पददर्शन है यही, आत्म विमल यद्दान । -
 फिर ० क्याव आत्मा, मो शुचि चारित्रवान ॥ ७७ ॥
 रत्नत्रय पुन जीव जो, उत्तम तीर्थ पतिव ।
 हे योगी ! शिखतु य, अन्य न तत्र न भव ॥ ७८ ॥
 जह चेतन तहा मक्ल गुण, कगनि जिन मान ।
 इमसे निश्चय योगिजन, शुद्धात्मा जान ॥ ७९ ॥
 एकाकी इन्द्रिय रहित, सो पाव त्रय शुद्ध ।
 निज आत्मा को जानरु, शीघ्र त्यागित मुक्त ॥ ८० ॥
 बन्ध मोक्ष की पक्ष से, निश्चय राव कर्म ।
 महज रमे निज रूपमें, तो पाव शिख गर्म ॥ ८१ ॥

मन्थरि चीन्हा दर्शति रोमन न होय ।
 पद्मदल लज्जा वा । न मन्थरु दोष न सोय ॥ ८८ ॥
 नव - मय चो मने, त्याम मरु व्यग्रहार ।
 मन्थर ति रोय वो शाघ्र लहे भयपार ॥ ८९ ॥
 न मन्थर गुह्या निलय, मन्थरु वद्वान ।
 र - मन्थर नभन प्रिये, पूर्व निर्जरा ठान ॥ ९० ॥
 न मन्थरु गभान नुव, मो हि त्रिलोकप्रधान ।
 पाद देवागार भट, माशत मौरय निधान ॥ ९१ ॥
 न मन्थर तिष्ठ । हो कमल, तेसे मन्थरु वान ।
 लिप्त न होय कर्म मल, स्नातम दृढ श्रद्धान ॥ ९२ ॥
 जो ममता रमलीन हो, फिर फिर करत अभ्यास ।
 अखिल कर्म मो चप करे, शीघ्र कर गिरगास ॥ ९३ ॥
 पुरुषारथ परित्र अति, दखे आतमेराम ।
 निर्मल तेनामय थरु । अनंत गुणगणधाम ॥ ९४ ॥
 अशुचि देहसे भिन्न 'निज, शुद्ध लरी चिद्रूप ।
 मो 'ज्ञाता' सय शाश्वता, पावै सुखे अनूप ॥ ९५ ॥
 स्व पर रूप जानै न जो, नही तनै पर भाव ।
 मफल शास्त्र न जाने तदपि, मिटै न भव भटकाव ॥ ९६ ॥
 छोड़ कल्पना जाल सय, परमममाधी लीन ।
 वेद निम आनंदको, शिरसुख कहते धीर ॥ ९७ ॥

जो पिंडम्व पदस्य अह, रूपस्य रूपातीत ।
 जिन मापित ये ध्यानचतु, ध्यागो शुचिकर मात ॥ ९८ ॥
 मर जीर हैं ज्ञानमय जने समता पार ।
 मो मामाधिक जिन रक्षा, प्रगट कर भवपार ॥ ९९ ॥
 रागद्वेष जो त्यागकर, धार समता भार ।
 मामाधिक चारित्र मो, तीरथपति दशार ॥ १०० ॥
 हिमादिक तज निच रमे, आत्मस्थिति पर मोड ।
 त्रेदोपस्थापन चग्नि है शिरपथ फारु लोय ॥ १०१ ॥
 मिथ्या-गान्धिक पहिरण, मय्यन्दजन शुद्ध ।
 मो परिहारनिशुद्धि है, शीघ्र लगे शिरमिद्धि ॥ १०२ ॥
 सूक्ष्म लोभके नाशक, जो सूक्ष्म परिणाम ।
 जीर सूक्ष्म चारित्र है, यह जो माम्बत सुखधाम ॥ १०३ ॥
 आत्मा मो अहंत है निश्चय मिद्ध जु मो हि ।
 आचारज उभय अरु, निश्चय मारू मा हि ॥ १०४ ॥
 (मो शिर शरर पिण्डु अरु, रुड बुद्ध निन मो हि ।
 प्रक्षा ईश्वर आदि सो, मिद्ध अनत मि मोहि ॥ १०५ ॥
 एमे लक्षण युक्त जा, परम पिडेही देर ।
 तनरामी डम जीरमें, अरु उममें नहि फेर ॥ १०६ ॥
 जो भीमे जो भीमते, जो हागे भगवान ।
 वे निज आत्मदर्शसे यह जानों निभ्रान्त ॥ १०७ ॥

मयभित ता शम्भस पागीन्दु मुनिगज ।

एद्विज गता रय निव नम्योवन राज ॥ १०८ ॥

‘निव गता रयगोव तमि, भाषा टोहा कीन ।

तामपि वा रगान न लमि निम आशय पीन ॥”

“ १ । १ । १०० ससाधित हिता पद्यामुता सम्पूर्णम् ॐ
त १ २३ ३० गुलाबच नी जैन)

—२— श्री मामाधिकपाठ सस्कृत —❀—

भाषापुरा मदिन ।

मिद्वरमुपगो भस्त्र्या, मिद्वान् प्रणमत मदा ।

मिद्वकापा गिर प्राप्ता, मिद्विद्वदतु नोऽव्ययाम् ॥१॥

अथ—श्री मिद्वपरमेष्ठो व जगतसिद्ध सभी पदार्थोंक
कहन वाले जैन आगमसे अथवा आगमक मूलकता श्री
अरहत भगवान्‌से भक्तिपूर्ण नमस्कार करके तथा निन्हींन
मगार द गता नष्ट करना रूप कार्य मिद्व कर लिया है
ऐसे जीवनमुक्त अरहन्तव व मोक्षप्राप्त मिद्वपरमेष्ठो हमसे
भी आग्रहकर मिद्वि प्राप्त कराये ।

नमोऽस्तु धौतपापस्य मिद्वेभ्य ऋषिममदि ।

मामायिक प्रयत्नेऽह, मयममणसुदनम् ॥ २ ॥

अर्थ—ममस्त कर्मबलद्वसे नष्ट कर देनेवाले श्री मिद्व
परमेष्ठोसे नमस्कार हो । महर्षि पुस्तकों रहने योग्य परिः

स्थानमें स्थित होकर समस्त दुष्टको नाश करनेवाली मामा
यिकको मैं प्रारम्भ करता हूँ अधान् उमरा प्रमथण करता हूँ ।

साम्य मे सर्वभूतेषु नैव मम न केनचित् ।

आशा सर्वा परित्यज्य ममाधिमहमाश्रये ॥ ३ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण जीवमात्रमें मेरा समताभाव है । किसी
भी जीवक प्रति मेरा प्रभाव नहीं है और समस्त आशा
ओं (मातागुरु इन्द्रियों) को छोड़कर मैं आत्मध्यानमें
नत्लीन होता हूँ ॥ ३ ॥

रागद्वेषात्ममत्तादा हा मया वे विगमिता ।

क्षमतु जतरस्ते मे, नैम्य क्षमाम्यह पुन ॥ ४ ॥

अर्थ—मैंने रागद्वेष व मोहमग्न निज जीवोंका घात
किया है वे मुझे क्षमा करें । मुझे अपनी इस दुर्बुद्धिका
बड़ा रोद है । निज जीवोंसे मेरे प्रति कुछ अपराध पन
गया हो उन्हें मैं सरल हृदयसे क्षमा करता हूँ ॥ ४ ॥

मनमा वपुषा वाचा, कृतकारितसम्मतै ।

रत्नत्रयभय दोष, गर्हं निदामि वर्जये ॥ ५ ॥

अर्थ—मन वचन कायसे व कृत कारित अनुमोद
ना द्वारा जो मैंने अपने रत्नत्रयमें दोष लगाया है उसकी
मैं गर्हणा करता हूँ, निन्दा करता हूँ और उस दोषका परि
त्याग करता हूँ ॥ ५ ॥

तस्मात् सायं ताम्रस्य महत्तुना ।

१।५।५ रुद्राक्ष ॥ ५ ॥ रुद्राक्षमि विष्णुद्वित ॥ ६ ॥

[illegible]

२. १ द्वय नय गौर, प्रहृषा सुस्पदीनता ।

—यु न्ननामि त्रिधा मर्ममरतिं रतिमेव च ॥ ७ ॥

अ४—राग द्वेय, भय, शोच हर्ष, उत्सुक्ता, दीनता,
रति, अग्नि आदि सभी दोषोहो म मन बचन कायपूर्णक
त्यागता हूँ ॥ ७ ॥

जीवने मरणे लाभेऽलाभे योगे विपर्यय ।

नवाग्री सुखे दू रे मरदा सपता मम ॥ ८ ॥

अर्थ—जीवन मरणमें, लाभ अलाभमें, सयोग त्रियो
गमें, शत्रु मित्रमें व सुख दुःखमें मेरा सदा ही समता भाव
धना रह ॥ ८ ॥

आत्मन मे मदा ज्ञाने, दर्शने चरणे तथा ।

प्रत्याग्यान समात्मेर, तथा मवरयोगयो ॥ ९ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, व सम्यक्

त्यागमें और कर्मोंके रोकने व ध्यान आदि करने में मेरे एक आत्मा ही शरण है । ९ ॥

एते मे शाश्वतआत्मा, ज्ञानदर्शनलक्षणा ।

शेषा बहिर्भूता भावा, सर्वे मयोगलक्षणा ॥ १० ॥

अर्थ—ज्ञानदर्शनस्वरूप, एक और नित्य ऐसी आत्मा ही वस्तुतः मेरी निधि है । बाकी सभी क्रोधादि परिणाम व स्त्री पुत्रादि बाह्य पदार्थ कर्मोंके मयोगसे होनेवाले हैं उनसे मेरा कोई मगध नहीं है ॥ १० ॥

मयोगमूला जीवेन, प्राप्ता दुःखपरम्परा ।

तस्मात्समयोगमगध, त्रिधा मयं त्यजाम्यहम् ॥ ११ ॥

अर्थ—जीवद्वारा अनादिकालसे प्राप्त दुःखपरम्परा मयोगानन्त्य ही है । अतः अब मैं मन वचन कायधर्म सभी मयोगमगधोंको त्यागता हूँ ॥ ११ ॥

एव सामायािकात्मभ्यर्क, सामायिरुमरुडितम् ।

वर्तते मुक्तिमानिन्या, प्रसीभूतायते नम ॥ १२ ॥

अर्थ—इस प्रकार सामायिक 'पाठमें कही हुई रीतिके अनुसार' निम्नके परम अरुडित सामायिक पाई जाती है तथा जो मुक्तिरूपी स्त्रीके वशीभूत हो गये हैं अर्थात् जिनको मुक्ति प्राप्त हो गई है उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १२ ॥

ॐ इति श्रीसामायिरुपाठ सप्तमः समाप्तः ॐ

त्यागमें और कर्मोंक रोक्ने उ ध्यान आदि करने में मेरा एक आत्मा ही शरण है । ९ ॥

एकी मे शाश्वत-आत्मा, ज्ञानदर्शनलक्षणा ।

दोषा रहिर्भया भावा मयं सयोगलक्षणा ॥ १० ॥

अर्थ—ज्ञानदर्शनस्वरूप, एक और नित्य ऐसा आत्मा ही वस्तुतः मेरा निधि है । बाकी सभी क्रोधादि परिणाम व स्त्री पुत्रादि बाह्य पदार्थ कर्मोंके सयोगसे होनेवाले हैं उनसे मेरा कोई मगध नहीं है ॥ १० ॥

मयोगमूला जीरेन, प्राप्ता दु उपरम्परा ।

तस्मात्सयोगमगध, त्रिधा मयं त्यजाम्यहम् ॥ ११ ॥

अर्थ—जीवद्वारा अनादिकालसे प्राप्त दुःखपरम्परा सयोगजन्य ही है । अतः अग मैं मन वचन सार्वभौम मेमी मयोगमगधको त्यागता हूँ ॥ ११ ॥

एव मामाधिकारमभ्यर्क्ष, सामाधिकारप्रतिष्ठा ।

वर्तत मुक्तिमानिन्या, वशीभूताय नमः ॥ १२ ॥

अर्थ—इस प्रकार सामायिक पाठ्ये कड़ी हुई रीतिके अनुसार जिनके परम अखण्डित सामायिक पाई जाती है तथा जो मुक्तिरूपी श्रीकृष्ण वशीभूत हो गए हैं अर्थात् जिन को मुक्ति प्राप्त हो गई है उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १२ ॥

१. गूढ भाषा : ❀—

१. गगन करे हम नेमको ।
 २. पुण्ड्रिजनोंसे प्रेमको ॥
 ३. जो दुःख ग्राह ग्रहीत है ।
 ४. जो प्रमत्त विपरीत है ॥ १ ॥
 ५. शक्ति ऐसी, दीजिये मुझमें प्रभो ।
 ६. स्नानसे, करते मिलग हैं हे विभो ॥
 ७. शक्तिशाली, हैं मिली मम अगसे ।
 ८. उमरग गगन उम भौति, करनेके लिए मनुजगसे ॥ २ ॥
 ९. मेरे चिन्मै, ममता सदा मरपूर हो ।
 १०. सम्पूर्ण ममताकी कुमति, मेरे हृदयसे दूर हो ॥
 ११. मनमें मनमें दुःखमें, सुखमें नहीं कुछ-मेद हो ।
 १२. अरि मित्रमें भिन्नने निष्ठुइने, मैं न द्वेष न खेद हो ॥ ३ ॥
 १३. अतिशय घनी तम-राजिकी, दीपक हटाते हैं यथा ।
 १४. दोनों कमल पद आपने, अज्ञान-तम हरते तथा ॥
 १५. प्रतिबिम्बमम स्थिररूप, वे, मेरे हृदयमें लीन हों ।
 १६. मुनिनाथ ! कीलित तुल्य वे, उरपर मद्रा आसीन हों ॥ ४ ॥
 १७. यदि एक इन्द्रिय आदि देही, घूमते फिरते मही ।
 १८. चित्तव ! मेरी भूलसे, पाड़ित हुए होयें कहीं ॥

दुकड़े हुए हो, मिल गये हों, चाँट साध हो कभी ।
 तो नाथ ! वे दुष्टाचरण, मेरे बने भूटे सभी ॥ ५ ॥
 मनुष्योक्तिसे सन्मार्गसे, प्रतिकूल पथ मैंने लिया ।
 पचेन्द्रियों चारों कपायों म म्यमन मने दिया ॥
 हम हेतु शुद्ध चरित्रका जो, लोप मुझसे हो गया ।
 दुष्कर्म वह मिथ्यात्मको, हो प्राप्त प्रभु ! ऊपर दया ॥ ६ ॥
 चारों कपायोंसे, उचन, मन, ज्ञापसे जो पाप हैं—
 मुझसे हुआ ह नाथ ! वह, कारण हुआ भय-ताप है ॥
 अर मागता हूँ मैं उसे, आलोचना निन्दादिसे ।
 ज्यों मकल निषण्णो वैद्यसर, हूँ मारता भद्रादि से ॥ ७ ॥
 निन्देन ! शुद्ध चरित्रका मुझसे अतिक्रम जो हुआ ।
 अनान और प्रमादसे, व्रतका व्यतिक्रम जो हुआ ॥
 अतिचार और अनाचरण, जो जो हुए मुझमें प्रभो !
 सनकी मलिनता मेटनेकी, प्रतिक्रम करता विभो ॥ ८ ॥
 मनकी विमलता नष्ट होने, को अतिक्रम है कहा ।
 जी गीलचर्योंके मिलघन, को व्यतिक्रम है कहा ॥
 ह नाथ ! निषयोमें लपटन, को कहा अतिचार है ।
 आमक्त अतिशय विषय में, रहना महाज्जाचार है ॥ ९ ॥
 यदि अर्थ, मात्रा, वाक्यमें, पदमें पड़ी भ्रुति हो कहीं ।
 तो भूलसे ही वह हुई, मैंने उसे जाना नहीं ॥

१३ ॥ १३ ॥ उमंगो सुरत रर दीनिए ।

१४ ॥ १४ ॥ ज्ञानसो भर दीनिए ॥ १० ॥

१५ ॥ १५ ॥ मैं रर रहा हँ इमल्लिए ।

१६ ॥ १६ ॥ मा, वरदान देनेक लिए ॥

आधि मुझमें, 'चोरिका' मचार हो ।

१७ ॥ १७ ॥ निजमोरखरी, भयपार हो ॥ ११ ॥

१८ ॥ १८ ॥ कृन्द निमरो स्मरण करते हैं मदा ।

१९ ॥ १९ ॥ नीर अपरपति, भी स्नान करते हैं मदा ।

२० ॥ २० ॥ पैद पुराण निमरो, सदा हैं गा रह ॥

२१ ॥ २१ ॥ श्री दन राम, मेरे हृदयमें आ रह ॥ १२ ॥

जो ग्रन्थ रहित मुगोष दर्शन, और सौर्य स्वरूप है ।

जो मय निहारोसे रहित ज्ञिमसे अलग भयरूप है ॥

मिलता बिना न समाधि जो, परमात्म निमरा नाम है ।

दवेश यह उर आ बसे, मेरा गुला इक्षाम है ॥ १३ ॥

जो रीट दता है जगतके, दुष्ट निमित्त जालको ।

जो दस लेता है जगतकी, भीतरी भी चालको ॥

योगी जिसे हैं दस सस्ते, अन्तरात्मा जो स्वयम् ।

दवेश यह मेर हृदय पुरका निगसी हो स्वयम् ॥ १४ ॥

कैवल्यके मन्मार्गको, दिगला रहा है जो हमें ।

जो जननके या मरणके, पडता न दुष्ट मन्दोह में ॥

अशरीर हो त्रैलोक्यदशा दूर है कुम्भरसे ।
 देवेण यह आगर लगे, मेरे हृदयके अरसे ॥ १५ ॥
 अपना लिसा है निगिल तनु बागी निरहने हो जिसे ।
 रागादि दोषव्यूह भी, हृ तरु नहीं मरता जिसे ॥
 जो नानमय है, नित्य है मर्मन्द्रियासे होन है ।
 निनडेव दवेणर रही मेरे हृदयमें लीन है ॥ १६ ॥
 ममारही नर उन्तुआमें, ज्ञान जिसरा व्याप्त है ।
 जो कर्म उधन हीन, बुद्ध, विद्युद्ध, सिद्धि प्राप्त है ॥
 जो ध्यान करनेसे मिटा, डेता मरुल कुम्भिकारको ।
 देवण यह गोमित कर, मर हृदय आगार को ॥ १७ ॥
 तम सय जसे सूर्य मिश्रणों, को न लू मरता कही ।
 उम भाँति कर्म बलर दोषा कर जिसे छूता नहीं ॥
 जो है निरञ्जन वम्बपेठा, नित्य भी है एक है ।
 उम आप्त प्रभुकी शरणमें हू, प्राप्त, जोकि अनर है ॥ १८ ॥
 यह दिगमनायक लोकका, जिसमें कमी रहना नहीं ।
 त्रैलोक्य मामरु ज्ञान रपि, पर है बहों गढ़ता नहीं ॥
 जो देव स्यान्मामें मदा, स्थिररूपतासे प्राप्त है ।
 मैं हूँ उमीकी शरणमें, जो देवण है आप्त है ॥ १९ ॥
 अत्रलोम्ने पर ज्ञानमें, निमरु मरुन ममार ही-
 है स्पष्ट दीखता, एरसे, है दूमरा मिलर नहीं ॥

ना शुद्ध शिव है, जान भी है, नित्यता से प्राप्त है ।
 उसका पागलता प्राप्त है, जो दयार है प्राप्त है ॥ २०
 अन्तरात्मा के अन्तरात्मा, लपटये रहती नहीं ।
 उसे जान, पन्थ मासो, गढ़ने दिया निमने नहीं ॥
 ना मर नाद, निपात, चिंता, सी न निमरी व्याप्त है
 उन्नीस शम्भु हैं गिरा जो दयार है, प्राप्त है ॥ २१
 । ना शुभाभन घागरा, या भूमि का बनता नहीं ।
 न । जिता से ही शुभाभन, मानती दुधता नहीं ॥
 । अन्तरात्मागीर्द्विषो, रत्नपटवचाता हैं नहीं ।
 शुभाभन मुश जनक लिए, है आत्मा निर्मल घरी ॥ २२
 । मर ! आभन, लोकरुणा, मधरी मगति तथा ।
 य मर समाविष्ट न साधन, रास्तविष्ट म है प्रथा ॥
 मधुर्य राहर वासना से, इसलिए तु छोड़ द ।
 अन्तरात्मा नू हररही, होकर निरत रति जोड़ द ॥ २३
 जो चाहती है वस्तुये वे है नहीं मेरी कही ।
 उम मोति हो मरना नहीं, उन्नीस कभी म भी नहीं ।
 या ममम् बाह्यादम्भगरी, छोड़ निश्चित रूपमे ।
 हे भद्र ! ही जा मस्थ तू, यत्र जायगा मरूपमे ॥
 निज से निनामा मधुर्य ही, मधुर्यमलोत्तन करे ।
 नू दर्शन प्रानमय है, शुद्ध है परे ॥

एसाग्र जिमका चित्त है, तू मत्त डमको मानना ।
 चाहें कहीं भी हो, गमाधि प्राप्त उमको जानना ॥ २५ ॥
 मेरी अक्ली आत्मा, परिवर्तनोंस हीन है ।
 अतिशय विनिमल है मदा, मद्ज्ञान में ही लीन है ॥
 जो अन्य सब हैं मस्तुयें, वे उपरी ही हैं सभी ।
 निज कर्मसे उत्पन्न हैं, अग्निनाशिता क्यों हो कभी ॥ २६ ॥
 है एकता जग देहके भी, साथमें जिसकी नहा ।
 पुत्रादिकोंक साथ उमका, ऐक्य फिर क्यों हो कहीं ॥
 लव अग भरसे मनुजक, चमड़ा अलग हो जायगा ।
 तो रंगटोंका छिद्रगण, कैमे नहीं सो जायगा ॥ २७ ॥
 ससाररूपी गहन में है जीव बहु दुख भोगता ।
 वह पाहरी सब मस्तुओंक, माध कर सयोगता ॥
 यदि मुक्तिकी है चाह तो, फिर जोयगण ! मुन लीजिये ।
 मनसे वचनसे कायसे, उसको अलग कर दीजिए ॥ २८ ॥
 देही । विकल्पित जालकी, तू दूरकर दे शीघ्र ही ।
 ससार वन में ढालनेका, मुख्य कारण है यही ॥
 तू सर्वदा मचसे अलग, निज आत्माको देखना ।
 परमात्माके तत्त्वमें, तू लीन निजको लेखना ॥ २९ ॥
 पहले समयमें आत्माने, कर्म है जैसे किए ।
 वैसे शुभाशुभ फल यहाँ पर, सांप्रतिक नसने लिए ॥

जो निज तच्छहि जाने नाहि नमु विगना नाहि आत्म माहि ।
 मो तन चेतन भिन्न पिदान, ऊर न मऊ मोहित अज्ञान ॥२॥
 निजपर भेट लखे नहि जोय, आत्मलाम तामो नहि होय ।
 ता रिन निज प्रशेय प्रहृष्ट प्रापनि स्वप्नमाहि यनि ॥३॥
 तातें गिर अभिनापी जे, आनम निजय प्रथम रुहे ।
 जो पर पद १ रूप विरूप रचित रितगुण महित अनय ॥४॥
 मोहे विनि आत्मलाम, मय मृतावि निज गुणवान ।
 सहिरात्म अतर आत्मा, परमातर जानो अनुपमा ॥५॥
 जाही दहादि पर माठ, आत्मबुद्धि भ्रम निव उाह ।
 मो जानो सहिरात्म ऊर मोहनाड नाव भरपर द
 परमात्मते होय उदाम आप २ में रुचि है चात ।
 मो अतर आत्म वृत्त रहे जे भय तम हर निजगुण लहे ॥७॥
 निर्मल निरुल गुद निपन, मरे रूप रचित चैतन्य ।
 शुद्धात्म परमात्म मोय ज्ञानमूर्ति भापे शुनिलाय ॥८॥

प्रश्न—

लखे देहादिस्ते, भिन्न, शुद्ध अतीन्द्रिय चैतन्यचित ।
 आत्मतत्त्व अपूरन ताम, कय रूपाज्ञान अस्याम ॥९॥

उत्तर—

तनके सहिरात्मता मित्र, 'अतरोत्तमा' होय सुचित
 दयावहु परमात्म अति शुद्ध, अर्घ्य शुद्ध गुद अभिष्ट

तन केन्द्रिय जान एव, बहिरात्म शठ रहित प्रियेक ।
 नाता नाता पदार्थ जान, दहादित्तें निज चित चिन ॥११॥
 प्रातम तत्त्व विमृष्ट तयन्त, फरख प्रिय चल परिणतिरत ।
 नार त अज्ञाता नार तनको आतम लख सदीय ॥१२॥
 गुणक शब्द नाक पणाय, नामस्मरके उदय लहाय ।
 फ गुण न पशु नारकी, जने मूढ अविद्या यकी ॥१३॥
 स्वयं निज-म चित्त, जो मापो जिनवर निकलक ।
 ताहि जान अवातीत, सदा अमूरत देव पुनीत ॥१४॥
 तत्त्व चेतन निच तनम जेम, माने मठ आपो फर प्रेम ।
 ताहा दंग पराई दह, पर आतम मानें भ्रम गेह ॥१५॥
 इन निज तनमें निज निय जान, पर तनमें पर जीव पिछान ।
 याही बुद्धि ठगौ समार, जड़में चेतन तत्त्व निहार ॥१६॥
 ताहितें निज भिन्न अत्यंत पर सुत दारादिक बहु भत ।
 मानत मूढ तिनहि आपने, मोह ज्वर व्याकुल मति घने ॥१७॥
 चेतन और अचेतन द्रव्य तिन मानोके अपने सर्व ।
 भिन्नगन उपजनादि पर रूप, निज ही क जानें भ्रम रूप ॥१८॥
 यह अज्ञान निपम ग्रह क्रूर, लगो अनादि जीवके भूर ।
 जात दहादिकको मूढ, आप रूप जानें अतिरूढ़ ॥१९॥
 जो तनर्म आतम बुधि अध, सो ही रचै देह सबध ।
 चिदगुणमें आतम बुधि जोय, करत सो भिन्न देहते सोय ॥२०॥
 तनमें अह बुद्धि ही जने, पशु घनादि विरह्य सु घने ।

निनको लख अपने सउ जीव, आप ठगान मरुल महीर ॥२१॥
 आतम भाव दहमें जोय, म्विति मयवृक्ष पवक मोय ।
 तात घागंहु अंतर इष्ट, तज इन्द्रिय रज माहिज दिष्ट ॥२२॥
 तातै इन्द्रिय रज निज त्याग, म रिषियनम जानो राग ।
 मो म इनहोके परमग, जानों नहि निज रूप अमग ॥२३॥
 तन बाहिज दग विषय अनिष्ट अतरा मा होय मुद्रिष्ट ।
 यो ही योग कर परमात्म, परम जोग निर्मल गुण गग ॥२४॥
 जो कस्तुरूप दयवे योग, नो मा ते पर निन उपयोग ।
 ज्ञानरूप दीमत नहि नैन, तो रामोंमें भाग्यों नन ॥२५॥
 जो मैं परमी गिवा लेउ, या म परको शिवा दउँ ।
 मो है यह भ्रम बुद्ध अमार, मैं तो म्वय बुद्धि अमिहार ॥२६॥
 जो निन चिदगुण ही को ग्रहे, निजत भिन्न न परगुण रहें ।
 मो मैं विज्ञानी अमिस्वर, म्वमयत्र ररतर अनल्प ॥२७॥
 नो सौफलको मर्ष पछान, करे क्रिया भ्रम सोय अजान ।
 तस मेरी परम क्रिया दहादिस्में निन भ्रमविश ॥२८॥
 ज्यों मांफलमें अहि बुधिनये, अमनिन क्रिया मरुल तरलमे ।
 त्यो देहादिस् माही अय, अर बुद्धि विनशी मम मरै ॥२९॥
 लिंग पुरुष नारी पुन क्लीय, एर दोय गहु यजनन जीय ।
 जातैं मैं अशच गुन-वाम, ज्ञाता निजकर निजमें राम ॥३०॥
 मैं मोयो पाके विनज्ञान, जग्यो ततचण जाहि पिछान ।
 मो स्वरूप मम अर्चातीन, म्वमयत्र चैतन्य पुनत ॥३१॥

परम प्रीति निज तब रगा, जाहि मिलिनि हीतवसाल ।
 १३ परम प्रीति निज धार, तात अरि प्रिय काऊ न मोर ॥३॥
 मा १३ ॥ १३ ॥ न चोय, मा ननमम अरि प्रिय नहि होय
 नि ॥ ३३ ॥ १३ ॥ मम मनी, मो भी शनु मित्र मो नही ॥३॥
 १४ ॥ न न प्रसा न मर, नानामित्र सा भानत अरि ।

१५ ॥ न न प्रसा, नानो हम निय चिह्न चिह्न ॥३॥
 १६ ॥ न न प्रसा चोय, उषोति स्वरूप मनात सौय ।
 १७ ॥ न न तात निज धाम, अरतो रों अच्युत निज राम ॥३॥
 १८ ॥ न न मना तनक मोर, गन्तर दगते दगरे धीर ।
 १९ ॥ न न रूपना जाल मिश्रुद, परमात्म ज्ञानी अमिद ॥३॥
 २० ॥ न न मोक्ष य दाइ तप, है भ्रम अभ्रम कारण तप ।
 २१ ॥ न न जान पर मगति दाप, भद्र ज्ञाते उरज मोक्ष ॥३॥
 २२ ॥ न न अलौकिक नानी तना, अरु न रूप जातु मना ।
 २३ ॥ न नानी जिहि पावे दम, तँ नाना माव शिर गर्म ॥३॥
 २४ ॥ न न भव नम भवत अत्यत, म पूर्य दुग्ग लक्षो अनत ।
 २५ ॥ न न निपरमो भेट मित्रा पावे निन यह निद्रय जान ॥३॥
 २६ ॥ न न नान प्रदीपक मार, लोकालोक प्रकाशन हार ।
 २७ ॥ न न रूप जगामी जा दीर, दूरे भर वर्दमर्म हीन ॥३॥
 २८ ॥ निनमें निज सर आपमरूप, अनुभव करिये मदा अनुर ।
 २९ ॥ तातेनिन जे जानन हन, परमै विरुत गयाय ममेत ॥३॥
 ३० ॥ गो दी म मै मो नी शुद्ध उम अभ्यामत मग सुनुद ।

कर गिर्य वामना ताम, पावे आप आपमें राम ॥४२
 करत अनानी जहँ जहँ प्रात, मो मो आपद वाम मसीत ।
 जा पद ते पुनि यह दर प्रात, निजानद मन्त्रि मा आय ॥४३
 इडिय बपल चित्तसो गर, होय प्रमत्त अनुमती लार ।
 ततक्षण मममेय चिद्रूप, भासै मो परमहि स्वरूप ॥४४
 जो मिद्वान्तम मैं हूँ मोय, जो म मो परमेस्वर होय ।
 मो सो पर न उष्मन जोग, पर कर मैं न उपासन योग ॥४५
 ररण विषय हरिमुखतयेंच निजसो निजकर निम्न भ्रम पंच ।
 मैं तनजमें थिर भयो अटल चिन्तानदमय निष असल ॥४६
 या प्रकार तनतें जो भिन्न, लख न भ्रम नि चेतन चिह्न ।
 मो अति तीव्र मोटिनपरर तो भी ननु विविचन भक्त ॥४७
 जो आरा पर मद विमान सुभाषान आनन्ति रान ।
 देहिजानत कलेशनते मोय, तपमें खेद गिन नहि होय ॥४८
 रागादिक कनकसो गोय, जासो चित्त अति निर्मल होय ।
 मो ही लखै आपसो आप अन्य हेतु है नाहि रुढापि ॥४९
 तत्परूप निरिस्वरचित्त, महित गिर्य अतत्पर सुचित्त ।
 तात तत्परिद्विके अर्थ, निरिस्वरचित्त रुद्र ममये ॥५०
 जो निज चित्त आनन ममेत, मो नाहि निज अनुमति हत ।
 मो ही जान रामनालीन, लखे परमपद आप गरीन ॥५१
 जो मन होय मोदमें मग्न, चंचल रागादिभक्त भग्न ।
 नो मुनि मो मन निजमें थाप, ततक्षण हनें राग मताप ॥५२

मृग्य - १ - २ - ३ - ४ - ५ - ६ - ७ - ८ - ९ - १० - ११ - १२ - १३ - १४ - १५ - १६ - १७ - १८ - १९ - २० - २१ - २२ - २३ - २४ - २५ - २६ - २७ - २८ - २९ - ३० - ३१ - ३२ - ३३ - ३४ - ३५ - ३६ - ३७ - ३८ - ३९ - ४० - ४१ - ४२ - ४३ - ४४ - ४५ - ४६ - ४७ - ४८ - ४९ - ५० - ५१ - ५२ - ५३ - ५४ - ५५ - ५६ - ५७ - ५८ - ५९ - ६० - ६१ - ६२ - ६३ - ६४ - ६५ - ६६ - ६७ - ६८ - ६९ - ७० - ७१ - ७२ - ७३ - ७४ - ७५ - ७६ - ७७ - ७८ - ७९ - ८० - ८१ - ८२ - ८३ - ८४ - ८५ - ८६ - ८७ - ८८ - ८९ - ९० - ९१ - ९२ - ९३ - ९४ - ९५ - ९६ - ९७ - ९८ - ९९ - १००

ताने भिन्न सुबुद्धिते होय ।
कर रागासवति मय भग्न ॥५३
दश, मो मुचान ही त छय होय ।
न कर न छीन ॥५४
भी, प्राप्ती चह अज्ञानी पनी ।
दशा, चाहत प्रगट आपम रमा ॥५५
निचरो बाध निचर्युते मूढ ।
बुधि घार, जनी करहि येष रिघ छार ॥५६
ताहि अनान माने आत्मीक ।
प्रति मात अनज रूप, लिंग मा रचित चित्रप ॥५७
स जानो पुन टीक, निर्णय रियो तरय आर्मार ।
प्रनाति भ्रमकारण पाय, प्रतिह क जु सलित हो जाय ॥५८
तो गिराय मा चेतनो नाहि, चतन नहि आय द्रुग महि ।
ताने विफल अन्य रागाणि, ध्याऊँ मे स्वरूप आल्हादि ॥५९
यजन ग्रहण गाहिज मठ कर, ज्ञानी अन्तरते अनुसर ।
न्यजन ग्रहण रहितर दाय, शुद्धात्म न कर रुद्धु मोय ॥६०
रचन कायते न्याग जान, मनसे कर आत्म का ध्यान ।
यवन दहसे फारज और, कर नहीं पुनि मनसे दीर ॥६१
अज्ञानी जनको समार, भांमे मुख प्रतीत भडार ।
निनहि रुद्धो सुख रुडा विश्वास, भांमे निन पायो निन वाम ॥६२
जे बवेर बिने अन्य विचार जानी करै न छिन मन मार ।

जो विवेक रह्यु बारज कर, सो तब तनते वि आडर ॥६३॥
 अक्षयिषय मय जो मूर्तीर, सो स्वरूपते पर यह सीर ।
 निजानंद निर्भय चैत य, जोतिमड मम रूप न अन्य । ६४
 अन्तर दुर राखि सुख ति न योगाभ्यास उद्यमी जन ।
 इनते उट्टी तिनही चाल, निच पायो नि योग गाल ॥६५॥
 सो जाने मोड उचरे, मोड सुने ध्यान तमु वर ।
 तातें होय भ्रम तम नाश पाये आप प्रापमें राम । ६६
 विषयमें रह्यु नाहीं मोय चाल गहित चीखे डार ।
 तो पुनि प्रीति पर तिन माहि, प्रचानी उर समता नाहि ॥६७॥
 भाग्यो भी यिन भाग्यो जम, मग्य तत्र न जाने कैम ।
 तातें पर समझान कान, उग्रम धृथा हमारे मान ॥६८॥
 जो उपद्रव नहीं म मोय सो स्वरूप पर ग्राह्य न होय ।
 तात पर मयोध्या तनो, आग्रह दृष्टा समागे मनो ॥६९॥
 यज्ञानी अन्तर द्वय विना, परम तुष्ट होत निगतिना ।
 गहित राग भ्रम जानी जीव, तुष्ट यावमें आप गरीव ॥७०॥
 यावत मन उच तनमें वाग, आत्मबुद्धि तावत ममार ।
 इनते भेज्ज्ञान जर कर तब ही समागण्य तर ॥७१॥
 जीवन रक्त पुट मुच जोय बस्य होत जिमि पुष्प न होय ।
 त्यों जीणादि होत उपरूप, नहि पुन आत्मचिदगुन भूप ॥७२॥
 चल भी अचल तुल्य मामत जाके ज्ञान माहि अत्यन्त ।
 ज्ञान योग चालत विन मोय, निषपद पाये निश्रयहोय ॥७३॥

उत्तर : -

१ त्वत्तत्सं रूप निज ज्ञान ।

જાન્ય: ૧૪,

पाला नर अभाग न होय ॥७४॥

पृ. नं. ३

इतन बहू स्फुर गनित मरतनु ।

नाम

१० नान त व न आगम गृह ॥७५

1984-85

॥ जादो यिति प्रख्यातमगम ।

11

५. १।। आत्म ध्यान नहि जाय ॥७६

44.

१५५. चारण शीर्ष लघु गुरु पून ।

24 5

१४ याद, नमस्त न आतम झा १५ लाप ॥७७

41

न तस्य मनसि चित्तं तद् मनश्च न तद्।

२१७४

॥ १७ ॥

नमः

१४ मादर पीच, निज २ गज होय जन टीच ।

- 44 -

॥ अथस्या निष, निन निगम निज हा म दिरं ॥७९

दह मा

हि जो आत्म आन, तन मततिमो कारण जान ।

જો ચિત્ર

गुणमनिज पुध सोय, तन मतति नाशन मलधोय ॥८०॥

निज क

हर निजमें रथनर, निज ही निजमें शि। सुत भर।

नाते ३

प्राप्य आपना होय, रिपु गुरु, अन्य नहा पुन कोय ॥८१॥

જાન

आपने न्यायी साय, तनते भिन्न स्तर रिदगाय ।

तत्र प

નેમરુ દોય ત્યાગે યગ, જસે રમ્મ ધિનાયન રગ ॥૮૨

अन्त

रम । ननरूप निहार पुन गरीरमे याह विचार ।

तिन

कं भद ज्ञानमेंमग्र, चिगैगो निच नश्चय निज लग्न ॥८३

अन

ने निश्चय लगे निजतत्त्व प्रथम लखें त जगके मत।

ताते जर शातामृत चखे, लोष्ट भमान भासै तर सरे ॥८४
 तनते भिन्नहि आतमराम जो पै सुनत कहत रसु जाम ।
 तो पै तन ममत्व नहि तजे, यात भेदबान नहि भजे । ८५
 तनसे भि न जान निजरूप, ऐसे अनुभर करहु अनूप ।
 जैसे फेहू स्वप्नमाहि तनमें निजमात उपजे नाहि ॥८६
 किया शुभाशुभ दोई अध, कारण पुण्य पाप विधि बध ।
 तिनारा निजपरणात । अर हन, ताते योगी क्रिया सुचेत ॥८७
 प्रथम अमयम त्यागहु दुद्ध सयम चरण होय तब शुद्ध ।
 फिर स्वरूपको पाय अल्प, त्यागे सयम चरण विस्तर ॥८८
 जातलिग मुनि श्रारुद्ध, दहागिन वगत भ्रम इह ।
 तनु मतत भर ताते मुनी द्रव्यलिगमें ममता धुने ॥८९
 पगुल अध कर आरुद्ध, मनयन ताहि लखै । जाममूढ ।
 त्यों मठ आतमके भोग, अगमाहि जाने उपयोग ॥९०
 पगुल नेत्र अरु के माहि, लगे भेद जाती जिमि नाहि ।
 त्यों ज्ञानी तनमें निज नात, जाने नाहि भिन्न पंचान ॥९१
 मत्तोन्मत्त अस्थायीच, भूले निज स्वरूप जिमि चनी ।
 त्यों ज्ञानी कहू भूले नाहि आपा मल्ल अस्थायीमाहि ॥९२
 बहिगतम जन मोक्ष न लहै, जो पै जगै पाठ श्रुत कहै ।
 ज्ञानी सुम तथा उन्मत्त, शिव पावे जाने जो तत्व ॥९३
 आप आपकी सिद्धस्वरूप, आराधै हुन मिद्ध अनूप ।
 वाती ज्यों दीपकरा पाय, अपहि दीपरूप हो जायें ॥९४

आप आप ही को आराधि, होय परम आत्म निर्मात्र
 धितत चान आपसी जेम, अग्रिमरूप होय यह नम
 गेसे वरन अगोचररूप जो अनुभवे परम गुण रूप
 पारे अरन मिदपद सोय, जह न फेर मलिन नहि होय
 जो यह आत्म आपा माहि, चाह तान मात्र पर नहि
 तो तिन जतन परम पद धनी, गानी हीय निपत हम मनी
 रानेमें निज मरनो बुधा मान मुह भरमते यथा
 रथो जाग्रत निज माने नाश, निश्चय आप परम गुण गय
 आगतान अगोचर वी, मूरत बिन रहना न प्र
 निरापेक्षय जाय गुजान, तिममें रर निच मो गुनवान
 आगाम ता ही शिव नाह लहे, जो तनमे आत्म वृधि य
 आगाम अतन वृधि जान सो अत शुन्य लहे शिव राम
 भरापीत मृग राशद विरक्त, जो न होय स्वरूपान्त
 जो वृत्ति आतड गुस्तरूप, आप अनुभवे चेतन भूप
 जो अन्तर्मा रागते छात्र दृश कर मो नश जाय निदा
 वृत्ति भेद भाव नश्य होय, तातम न स्वरूप निच लोय

गीताचन्द्र ।

आत्मिक ज्ञान परमार्थ अप्रमत्ताने
 आत्मिक लोभादि आप उपाधि
 प्रमत्त आप मूर्खता लगने योग्य
 आप आप निजमर निज । ५

यह ध्यय माधारण कहो, धर्म शुक्ल सुध्यानकों ।
 तिन शुद्ध स्वामि विशेष जानो दग्न मूर बखानक' ॥
 अधिकार शुद्धोपयोगरूप विचार यह निज हित मनो ।
 कहु भागचद विचारक अनुमार जानाएय तना ॥१८४॥

ॐ इति ॥

श्रीमद्राजचन्द्रकृत श्रीआत्मनिष्ठिगात्र के
 कतिपय पद ।

(श्री रुद्रगुरुसरणाय नमः)

जै स्वरूप समज्या विना, पाम्या दुख अन्त ।
 समजाव्यु' ते पद नमु, श्रीमद्गुरु भगवत ॥ १ ॥
 वर्त्तमान आ कालमा, मोक्षमाग बहु लोप ।
 विचारना आत्मार्थिने', भार्गो अत्र अगोष्प' ॥ २ ॥
 कोई क्रियाजड थइ रक्षा', शुष्कज्ञानमा कोई ।
 माने मार्ग मोक्षनो', करुणा उपजे जोई' ॥ ३ ॥
 बाध क्रियामा राचता, अतर्मड न काई' ।
 ज्ञानमार्ग निपेधता, तेह क्रियाजड आहि' ॥ ४ ॥

१ समभाषा । २ इम यत्प्रमाणकालमें । ३ आत्मार्थी जीवोंके
 विचारने के लिये । ४ स्पष्टरूपमें । ५ है । ६ मोक्षमा । ७ देख
 ४२ । ८ कोई । ९ वे । १० यहाँ ।

- ३ - १३ भावे प्राणीमाहि ।
 ४१ ॥ १४ ॥ ते आदि ॥ ५ ॥
 १४ ॥ १५ ॥ ते मह आतमज्ञान ।
 १ ॥ १६ ॥ प्राणितगा विद्वान् ॥ ६ ॥
 १ ॥ १७ ॥ प्रज्जमा, आय न तेने पान ।
 १ ॥ १८ ॥ गाममा, तो भूने विजमान ॥ ७ ॥
 १ ॥ १९ ॥ योग्य छे, तहो नमननु तेह ।
 १ ॥ २० ॥ न प्राचर, आत्मार्थी जन एह ॥ ८ ॥
 १ ॥ २१ ॥ नमस्तु नमस्तु, त्यागी दर निजपथ ।
 १ ॥ २२ ॥ गमे न परमार्थी विजपदनो ले लख ॥ ९ ॥
 १ ॥ २३ ॥ अमनान गमदर्शिता, विचर उदयप्रयोग ।
 १ ॥ २४ ॥ अप्रय प्राणा परमभुत सद्गुणतः योग्य ॥ १० ॥
 १ ॥ २५ ॥ प्रवृत्त नमस्तु सम नही, परोक्ष विन उपकार ।
 १ ॥ २६ ॥ एतो लख वपा विना, उगे न आत्मविचार ॥ ११ ॥
 १ ॥ २७ ॥ सद्गुणा उपदेशपण समजाय न-विनम्प ।
 १ ॥ २८ ॥ समजापण उपकार जो-? समज्ये विरस्वरूप ॥ १२ ॥
 १ ॥ २९ ॥ आमादि अस्ति मना, जेह-निरुपय शास्त्र ।
 १ ॥ ३० ॥ प्रत्यक्ष सद्गुणयोग नही, त्या आवार मुपाय ॥ १३ ॥
 १ ॥ ३१ ॥ मोहने आश्रये ३, वे ४ प्राणिके ५ होवा ।
 ६ उसे ७ जहो ८ जो ९ तहो १० जे ११ पाता हे,
 १ ॥ ३२ ॥ उपदेशके विना १४ क्या १५ ।

अथवा मद्गुरुए' कहा, जे अगगाहन मान ।
 त त नित्य निचारवा, करी मतानर न्याज ॥ १४ ॥
 रोके जीव स्वच्छद तो, पाम अमश्य मोक्ष ।
 पाप्मा एम अनत छे, भाग्यु जिन निदास । १५ ॥
 प्रत्यक्ष 'मद्गुरुयोगधी, स्वच्छ' त रोसाय ।
 अन्य उपाय क्या वही, प्राप्ते उमणा गाय ॥ १६ ॥
 स्वच्छद मत आग्रह तनी उक्त मद्गुरुनक्ष ।
 समन्वित तेने भारियु, कारण गणी प्रत्यक्ष । १७ ॥
 मानादिक शत्रु महा, निजछद न मराय ।
 जाता मद्गुरुशरणमा, अतर प्रयासे जाय ॥ १८ ॥
 होय मतार्थी तहन, गाय न आत्ममलन ।
 तेह मतार्थिलक्षणो, अहाँ कहा निपन ॥ १९ ॥
 बाह्य त्याग पण' ज्ञान नहीं, त माने गुरु मत्प ।
 अथवा निजकुलप्रमना, त गुरुमा ज ममत्प ॥ २० ॥
 जे जिनदहप्रमाणने, समप्रमग्णादि मिद्धि ।
 वर्णन ममजे जिननु, रोभी रह निजबुद्धि ॥ २१ ॥
 प्रत्यक्ष मद्गुरुयोगमा, वर्ते दृष्टि विमुग्धे ।
 अमद्गुरुने दृढ करे निजमानाये मुग्ध ॥ २२ ॥

(मद्गुरुने) २ करन परे भो । ३ दृष्टि नही । ४ गिनकर
 समझावे । ५ अर्थना चतुराईसु चलनेमे नीचा नही होते ।

१ समजे श्रुतज्ञान ।
 २ गारह मुक्तिनिदान ॥ २३ ॥
 ३ शत्रु प्रत अभिमान ।
 ४ नरा लौकिक मान ॥ २४ ॥
 ५ मात्र शब्दनी माय ।
 ६ भावभरहित धार ॥ २५ ॥
 ७ मात्र नदशा न काह ।
 ८ पद - त पडे भव माहि ॥ २६ ॥
 ९ मा निनमानादि काज ।
 १० परमावने, अनग्रधिकारिमा ज ॥ २७ ॥
 ११ इषाय उपज्ञातता, नहीं अतवराम्य ।
 १२ मलपशु न मध्यस्थता ए मतार्थी दुर्भाग्य ॥ २८ ॥
 १३ लक्ष्य कथा मतार्थीना, मतार्थ जाग काज ।
 १४ हवे कहें आमतार्थीना, आत्म अर्थ सुखमाज ॥ २९ ॥
 १५ आत्मज्ञान त्या मुनिपगु, ते साचा गुरु होय ।
 १६ बासी कुलगुरु कल्याणा आत्मार्थी नहीं जोय ॥ ३० ॥
 १७ प्रत्यक्ष मन्गुरुप्राप्तिनो, गये परम उपकार ।
 १८ त्रये योग एकत्वर्थी वर्त आज्ञाधार ॥ ३१ ॥

१ इव जाता है । २ अनधिकार (ज्ञान प्रवेश होने योग्य नहीं) जीवोंमें गिना जाता है । ३ दूर करनेके लिये । ४ अथ । समझता है । ५ मन, बचन और कृत्याकी एकतासे ।

१. एक होय तस्य जालमा, परमारथनो पथ ।
 प्रेर ते परमार्थने, ते व्यवहार समन ॥ ३० ॥
 एम त्रिगारी अतरे, शोधे मद्गुरुयोग ।
 काम एक आनाथनु, राजो नहि मनगोग ॥ ३१ ॥
 कषायनी उपशातता माय मोक्ष अभिनाथ ।
 भये तेद्रे प्राणी दया त्या आमाय निगाम ॥ ३२ ॥
 दशा न एसी ज्वालासुग, जोर ताह नहि जोय ।
 मोक्षमार्ग पामे तडी, मट न अनराग ॥ ३३ ॥
 आवे ज्या एसी दशा मद्गुरुग मुदाय ।
 ते पोये सुत्रिगारणा, त्या प्रगट सुपटाय ॥ ३४ ॥
 ज्या प्रगटे सुत्रिगारणा, त्या प्रगट निनजान ।
 जे ज्ञाने छय मोह यत्, पामे पट निगाम ॥ ३५ ॥
 उपजे ते सुत्रिगारणा, मोनमाय ममताय ।
 गुरुशिष्यसनादर्या, भाग्य पदपद आदि ॥ ३६ ॥

पदपदनामकधन—

- आत्माडे, ते नित्य छे छे कती निजरर्म ।
 छे भोक्ता, वली मोक्ष छे, मोक्ष उपाय सुरर्म ॥ ३७ ॥
 पटस्थानक मक्षेपमा पटदर्शन पण तह ।

१ मान्य रथना चाहिए । २ सत्तारसे वैराग्य । ३ ऐसी ।
 ४ जवतक । ५ गुरु शिष्यके सवादरूपमें ।

समजायाँ परमात्मे, कला जानिए एह ॥ ४० ॥

१ जका शिष्य उवाच—

नहीं^१ -टि ॥ गायतो, नहीं जणातु रूप ।

नीनो पण प्रजुना नहीं, तेवी न जीवस्वरूप ॥ ४१ ॥

नहीं^२ दह ज गामा, अथवा इन्द्रिय प्राण ।

मिथ्या ज्ञेयो^३ मानतो, नहीं जडु एवाण^४ ॥ ४२ ॥

पता जा आनमा होय तो, जणाय ते नहीं केम^५ ।

जगाय जो ते होय तो, घटपट आदि जेम^६ ॥ ४३ ॥

माट छे नहीं आनमा, मिथ्या मोक्षउपाय ।

ए अतर न ज्ञातना, ममचारो सदुपाय ॥ ४४ ॥

सग गान सद्गुरु उवाच—

सद्गुरु नमावान करते ६ कि आत्मास अस्तित्व है —

भास्यो दहाध्यामयी, आत्मा दहममान ।

पण ते वन्ने^७ भिन्न छे, प्रगटलक्षणे भान ॥ ४५ ॥

भास्यो दहाध्यामयी, आत्मा दहममान ।

पण ते वन्न भिन्न छे जेम अमि ने म्यान ॥ ४६ ॥

जे दृष्टा छे दृष्टिनो, ज जाणो छे रूप ।

असाध्य अनुभव जे रहे, ते छे जीवस्वरूप ॥ ४७ ॥

१. १ समझनेके लिये । २. नहीं । ३. मित्र । ४. मित्र चित्र
दिखाइ नहीं देता । ५. यह मालूम क्यों नहीं होती ? ६. जैसे ।
७. अतः । ८. दोनों ।

छे इन्द्रिय प्रत्येकने, निज निज विषयनु ज्ञा ।
 पाँच इन्द्रिना विषयनु, पण आत्माने भाण ॥४८॥
 देह न जाये तेहने, जाये न इन्द्रिय प्राण ।
 आ'मानी सत्ताउटे', तेह प्रगटे जाण ॥ ४९ ॥
 सर्व अस्थाने १-पे, न्यारो सदा जणाय ।
 प्रगटरूप चतस्यमय, ए एघाणे मदाय ॥ ५० ॥
 घट पट आद जाण तु, तेथी तेने मान ।
 जाणनार' ते मान नहीं, रहियेकतु जान ॥ ५१ ॥
 परमबुद्धि रूप देहमा २-जुल दह मति अल्प ।
 देह हाय जा आतमा, घट न आम विरुल्य ॥ ५२ ॥
 जड चेतनो भिन्न छे, रुन्न प्रगट ररभाय ।
 एक पणु पाम नहीं, उणे' फल द्वय भाय ॥ ५३ ॥
 आ मानी शरा कर, आत्मा पात' थाप ।
 शराना' ३-रना' ते, अतरज एह अमाप' ॥ ५४ ॥

० अङ्का-विषय उभाच—

शिर्य कहता है कि आ मा जत्य नही है —

आ माना अस्तित्वना, आप कहा प्रसार ।

मम तेनो थाय छे, अतर ज्ये विचार ॥ ५५ ॥

१ सत्तामे दा । २ जानन वाला । ३ तानो । ४ स्वय ।
 ५ शराना । ६ करने वाला । ७ अमाम । ८ अतरगमे विचार
 करने

२७। अथा साधन्या, आत्मा नहीं अग्निनाश ।
 २८। अग्रा उपज देहप्रियोमे नाश ॥ ५६ ॥
 २९। अमुं सगुह्यं ते श्रणे चणे पलटाय ।
 ३०। अमर्या पणु नरी ग्रामान्तरं जहाय ॥ ५७ ॥

सम. शास्त्र-सङ्गुह्य उगाय—

अग्रा १७। ३०। ३१। ३२। ३३। ३४। ३५। ३६। ३७। ३८। ३९। ४०। ४१। ४२। ४३। ४४। ४५। ४६। ४७। ४८। ४९। ५०। ५१। ५२। ५३। ५४। ५५। ५६। ५७। ५८। ५९। ६०। ६१। ६२। ६३। ६४। ६५। ६६। ६७। ६८। ६९। ७०। ७१। ७२। ७३। ७४। ७५। ७६। ७७। ७८। ७९। ८०। ८१। ८२। ८३। ८४। ८५। ८६। ८७। ८८। ८९। ९०। ९१। ९२। ९३। ९४। ९५। ९६। ९७। ९८। ९९। १००।

२७। मात सगमं लं यती चटुष्पी दृश्य ।
 २८। चवनना उत्पत्तिः १५, जोना अनुभवः १॥ ५८ ॥
 २९। जना अनुभवः १५, उ पन लयनं १॥ ५९ ॥
 ३०। ते तगा च । विना, थाय न केमे भा ॥ ५९ ॥
 ३१। ज मगो डा १० तत अनुभव दृश्य ।
 ३२। उग्ने नहीं मगोमी, आत्मा नि २ प्रत्यक्ष ॥ ६० ॥
 ३३। जटया चवन उपन, चतन्वी जड थाय ।
 ३४। एग अनुभव जोईन, स्यार उदी न थाय ॥ ६१ ॥
 ३५। काइ मगोमी नहीं, जनी 'उ'पत्ति थाय ।
 ३६। नाश न तेनी 'कोईमा', तेथी नित्य सदाय ॥ ६२ ॥
 ३७। ब्रा.मादि तरतम्यता, मपादिस्त्री माय ।

१ दूरी । २ देहके सयोगसे । ३ उत्पत्ति और नाश ।
 ४ विनके । ५ आधान । ६ विसरे । ७ नाशका । ८ किसीके
 भी । ९ विनीतो । १० कर्म भा । ११ विसर्ग । १२ उमका ।
 १३ किसीके साथ ।

पूर्णजन्म सम्कार ते, जीव नित्यता न्याय ॥ ६३ ॥

आत्मा द्रव्ये नित्य छे पयागे पलटाय ।

बालादि यय ग्रण्यु, नान एरने थाय ॥ ६४ ॥

अथवा ज्ञान क्षणिकु, जे जाणा उदना ।

य नारो ते क्षणिक नहीं, क अमुम निधार ॥ ६५ ॥

क्यारे कोर्ट वस्तुनो, कस्त होय न गश ।

चेतन पामे नाग ता, केमा^१ भल तपाम^२ ॥ ६६ ॥

३ शङ्का-शिष्य उवाच —

शिष्य पढ़ता है कि आत्मा कर्मका कृता नहीं है —

कर्ता जीव न कर्मनो, कम ज रता कर्म ।

अथवा महज स्वभाव का, कर्म जीवनो कर्म ॥ ६७ ॥

आत्मा सदा अमरने, रेरे प्रकृति यय ।

अथवा ईश्वर प्रेरणा, तेथी जीव अरब ॥ ६८ ॥

माटे मोक्ष उपायनो, कोर्ट न हतु जणाय ।

कर्मतणु रक्षापणु, का नहीं का नहीं जाय ॥ ६९ ॥

ममा गान-सद्गुरु उवाच —

सद्गुरु समाधान करने हैं कि आत्मा कर्मका रक्षा किस तरह है—

होय न चेतन प्रेरणा, कोणा ग्रहे तो कर्म ?

जडस्वभाव नहीं प्रेरणा, जुग्री विचारी कर्म ॥ ७० ॥

१ जानने वाला । २ मक्का । ३ किसम, किस प्रकारके ।

४ खोल कर । ५ जड और चेतन दोनोंके कर्मों विचार करके देखो ।

जो ताता करतु गयी, यता नयी तो कर्म ।
 तबो तत्ता पम्पार तदा, तमजननी जीवधर्म ॥७१॥
 जाल तो आता तो, मामत तने न कम ?
 अमर द पम्पावता पत्र निचभाने तेम ॥ ७२ ॥
 पत्ता इन्द्रागो नहीं, इन्द्रा शुद्ध स्वभाव ।
 अमरा गेम् ३ त गण्य, ईश्वर दोषप्रभाव ॥ ७३ ॥
 राग को निजमानमा कृता आप स्वभाव ।
 रते नहा निजमानमा, कर्ता कर्मप्रभाव ॥ ७४ ॥

१ जङ्गा-शिष्य उवाच —

जीव कर्मकर्ता कहे पण भोक्ता नहीं मौर ।
 शु समने जड कर्मरू फनपरिणामी होय ? ॥७५॥
 फनदाता ईश्वर गण्ये, भोक्तापणु मघाय ।
 एम रह ईश्वरतणु ^१, ईश्वरपणु ^२ ज जाय ॥७६॥
 ईश्वर मिद वया गिना, जगन् नियम नहीं होय ।
 पछी शुभाशुभ कर्मना, भोग्यस्थान नहीं कोय ॥७७॥

समा शान-मदगुरु उवाच —

सद्गुरु समाधात करते ह कि जीव अपने किये हुए कर्मको
 भोगता है —

मात्रकर्म निजस्वयना, माटे चेतनरूप ।

जीवगीर्षनी स्वरूपा, ग्रहण करे जडभूष ॥ ७८ ॥

१ फल देनेका शक्ति । २ स्वभाव । ३ इन्द्र । ४ अपनी भ्रातृसेही ।

मेर सुधा' समझे नहीं, जीव साय फल थाय ।
 एम शुभाशुभ कर्मनु, मोक्तापणु जणाय ॥ ७९ ॥
 एरु राग्ने एरु नूप, ए आदि जे भेद ।
 कारण विनान कार्य ते, ए ज शुभाशुभ वेद्य ॥ ८० ॥
 फलदाता ईश्वरतर्णा, एमा नवी जम्बर ।
 कर्म स्वभावे परिणमे, आय भोगथी दूर ॥ ८१ ॥
 ते ते भाग्य विशेषना, स्थानरुद्रव्य स्वभाय ।
 गहन घात छे शिष्य आ, कदी मनेप माय ॥ ८२ ॥

उद्धा—शिष्य उवाच —

शिष्य कहता है कि जावको इस कमम मोक्ष नहीं है —
 कर्त्ता मोक्ता जीव हो, एण तेनो नहीं मोक्ष ।
 वीत्यो काल अनत परा, घर्त्तमान छे दोष ॥ ८३ ॥
 शुभ करे फल भोगव, देयानि गति माय ।
 अशुभ करे नरकादि फल, कर्मरहित न क्याय^१ ॥ ८४ ॥
 जेम शुभाशुभ कर्मपद, जाणथा मफला प्रमाण ।
 तेम निवृत्ति मफलता, माटे मोक्ष गुनाण ॥ ८५ ॥
 वीत्यो काल अनत ते, कर्म शुभाशुभ भाव ।
 तेह शुभाशुभ छेदता, उपजे मोक्ष सुमार ॥ ८६ ॥
 दहादि मयोगनो, आत्यंतिक त्रियोग ।
 मिद्ध मोक्ष शाश्वतपदे, निज अनत मुख भोग ॥ ८७ ॥

६८८ गिण्य उवाच —

शिवः कृत्वा नृणां मोक्षाय उवाच तर्हि हे —

नेत्र उवाच साक्षपद, नहि अविरोध उपाय ।
 यमो मल अन्या, जायी ज्ञेया जाय ? ॥८८॥
 दया । त त म दया, रहे उपाय अनेक ।
 तम । त त कया ? ने न छह निवेक ॥८९॥
 ने त म ज्ञेया उ मले न मोक्ष उपाय ।
 गमाणि ताप्याणि, शो उपकार ज थाय ॥९०॥
 पाच उत्तमा ययु, समाप्त मर्मा ।
 समजु मोक्ष उपायतो, उदय उदय सद्भाग(ग्य) ॥९१॥

समाप्त सद्गुरु उवाच —

सद्गुरु समाप्त करते हैं कि मोक्षका उपाय है —
 पाचे उत्तमी यद, आत्मा विषे प्रतीत । —
 थाये माक्षोपायनी, मदज प्रतीत ए रीन ॥ ९२ ॥
 कर्मभार अज्ञान छे मोक्ष ताव निजगर्भ ।
 अघकार अज्ञान सम, नाशे ज्ञानप्रकाश ॥ ९३ ॥
 जे जे कारण बधना, तेह बधनो पथ ।
 ते कारण छेदक दया, मोक्षपथ भयव्रत ॥ ९४ ॥

१ कैमे । २. मीनमा । ३ प्राप्त होना है । ४ जानने से भी ।
 ५ हो सनता है । ६ जो पाच उत्तर कहे हैं । ७ इसी तरह ।
 ८ आत्मस्वरूपमें स्थित होना ।

राग द्वेष अज्ञान ॥, मुख्य र्मनी ग्रय ।

‘थाय निवृत्ति जेहथी’, ते ज मोक्षनो पथ ॥ ९५ ॥

आत्मा सत् चैतन्यमय, मर्माभामरहित ।

जेथी कैल पामिधे, मोक्षपथ ते रीत ॥ ९६ ॥

कर्म अनन प्रकारना, तमा मुख्य आठ ।

तेमा मुख्य मोहिनीय, हणाय ते रुट्टु पाठ ॥ ९७ ॥

कर्म मोहिनीय भेद धे, दर्शन चारित नाम ।

हथे नोन पीतरागता, अचरु उपाय आम ॥ ९८ ॥

कर्मरथ क्रोधादिथी, हणे चमादिक तेह ।

प्रत्यक्ष अनुभव मर्मने, एमा शो मन्दह^१ ॥ ९९ ॥

छोडी मत र्गन तणो, आग्रह तेम रिस्वप ।

कथो मार्ग आ साधरो, जन्म तेहना अत्प ॥ १०० ॥

पट्टपदना पट्टप्रदन ते, पट्टया करी रिचार ।

ते, पदनी मर्मागता, मोक्षमार्ग निरधार ॥ १०१ ॥

कपायनी उपशातता, मात्र मोक्ष अभिलाष ।

भये गे^२ अतर दशा, ते कहिये निजाम ॥ १०२ ॥

ते जिन्नागु जीवने, थाय मद्गुरुयोव ।

तो पाम समकीर्तने, वर्ते अतर्गोध ॥ १०३ ॥

१ निममे । २ ने । ३ तो हममें फिर क्या मन्द करता ?

४ साधन करेगा । ५ ममारके भोगोंके प्रति उदासीनता ।

६ तो वह समकितकों या जाता है ।

मत्त दग्धुन एतत् तन्ना, त्रैलोक्यं मद्गुरुलुच ।
 तत् शुद्धं जगत्तत् तन्मे मद्दत्तं न पच ॥८०८॥
 स्ते निम्नस्थानां तन्मत्तं तत्तत् प्रतीत ।
 तत् तन्निम्नस्थानां, परमायै ममसीत ॥८०९॥
 तन्मात्तं मात्तित् तत्, टाले मिव्यामाम ।
 उक्तं भाव्यं चाग्निनो वीनगागपद वास ॥८१०॥
 दत्तं तन्निम्नस्थानां अत्तत् त्रैलोक्यं ज्ञान ।
 ज्ञानं तन्निम्नस्थानं तत्, दत्तं छत्ता निर्माण ॥८१०॥
 तत्तत् तन्निम्नस्थानं, ज्ञानं पत्तं, ज्ञानं तत्तत् शमाय ।
 तन्निम्नस्थानं तन्निम्नस्थानं, तन्निम्नस्थानं दत्तं धाय ॥८१०॥
 दत्तं देहात्तन्निम्नस्थानं तन्निम्नस्थानं, तन्निम्नस्थानं तन्निम्नस्थानं ।
 तन्निम्नस्थानं तन्निम्नस्थानं, तन्निम्नस्थानं तन्निम्नस्थानं ॥८१०९॥
 तन्निम्नस्थानं तन्निम्नस्थानं तन्निम्नस्थानं तन्निम्नस्थानं ।
 तन्निम्नस्थानं तन्निम्नस्थानं तन्निम्नस्थानं तन्निम्नस्थानं ॥८११॥

१ प्रमादित् होता है । २ स्वभाव समाधि रूप चारित्र्य ।

३ देहके विद्यमान रहनेपर भा (अर्हत दशारूप मोक्ष) ४ ज्ञान प्राप्त होने पर तुरन्त ही शांत हो जाता है । ५ दत्त में आत्मबुद्धि ।

६ यदा । ७ तन्मी । ८ अधिष्ठितना कहे १९ पायेगा ।

निश्चय सर्वे ज्ञानीनां, आधी अत्र शमाय' ।

धरी मौनता एव कही, मरजममावि भाय ॥११८॥

शिष्य यो प्रीज प्राप्ति कथन —

अर्थ सद्गुरु आत्मज्ञानी प्राप्तिके मूलसारणना वर्णन करते हैं—

सद्गुरुना उपदशयी, आव्यु' अपूर्ण भान ।

निजपद निज माही लह्ये, दूर' अज्ञान ॥११३॥

भास्यु निजस्वरूप ते, शुद्ध चेतनारूप ।

अजर अमर अपिनागी ने, देहानीत स्वरूप ॥११४॥

कर्त्ता भोक्ता कर्मनो, विभाज वर्त्त' ज्याय' ।

शुक्ति वही निजभाजमा, धयो अकर्त्ता त्याय' ॥११५॥

अथवा निजपरिणाम ते शुद्ध चेतनारूप ।

कर्त्ता भोक्ता तेहनो, निर्विश्लेष्यरूप ॥११६॥

मोक्ष कह्यो निजशुद्धता, ते पामे ते पथ ।

ममजाज्यो सक्षेपमा, सरल मार्ग निर्ग्रन्थ ॥११७॥

अहो ! अहो ! श्रीमद्गुरु, करुणामितु अपार ।

आ पामरपर प्रभु कयो, अहो ! अहो ! उपहार ॥११८॥

शु प्रभु चरणरुने धरू' । आत्मागी सौ हीन' ।

ते तो प्रभुण आपियो, नतु' चरणाधीन ॥११९॥

१११ इसीमें आकर समा जाता है । २ हुआ । ३ दूर हो गया ।

४ जहाँ । ५ तहाँ । ६ मैं प्रभुके चरणारुने ममज्ञ क्या रखूँ ?

७ वे सब आमागी अपक्षासे वा मूल्यहीन ही हैं ।

नयभाज मुदनाज ५० पस्तानता, अदतधोवन आदि
परम गामरु ना कृत्वा गम, नय के अगे शृङ्गार नहीं,
द्रव्यगत नयममय तर्ज ३ गद्व जो । अपूर्व० ॥ ९ ॥

गुरु निश्चय रत्न मनार्जिता, मान अमाने वरें ते ज
स्वन ३ ७, जावनरु मग्गे नहीं न्युनाधिकता, भव मोक्ष
पग मुद्र 'त' पम ता नो । अपूर्व० ॥ १० ॥

एकरी भिरता रत्नी स्मथानमा, बली पर्यतमा राध
मिद मरुग जो, गहोरा आमन, ने मनमा नहीं लोभता,
परम मित्रनो चाणे पाम्या योग जो । अपूर्व० ॥ ११ ॥

बोर तपःपामा पण मनने ताप नहीं, मरम अने
नहीं मनने प्रमनभाज जो, रजःग के अद्वि नमानक
दरना, मर मान्या पुद्गल एरु सभाज जो । अपूर्व० ॥ १२ ॥

एम पगनय करीने चारितमोहनो, आनु त्या ज्या
ररण गपूर्व भाज जो, रणी सपकतणी बरीने आरुदता,
अनन्यचितन अतिशय शुद्ध सभाज जो । अपूर्व० ॥ १३ ॥

मोह स्वयभूरमण समुद्र तगी करी स्थिति त्या ज्या
हीणमोह गुणस्थान जो, अत समय त्या पूर्णस्वरूप वीतराग
४३, प्रगटावु निज कैवलज्ञान निधान जो । अपूर्व० ॥ १४ ॥

(शरीरका । २ ससार । ३ से । ४ प्राप्त हुआ । ५ आदिष्ट
६ देवांती । ७ इस तरह । ८ करके । ९ वहाँ । १० जहाँ ।
११ आरुद होकर । १२ स्वयभूरमणरूपी मोहसमुद्रको पार करके

चार कर्म घनघाती ते व्यवच्छेद ज्या, मरणा' मीज
तणो आ-यातक नाश जो, सर्वभाज ज्ञाना दृष्टा मह शुद्धता,
कृतकृत्य प्रभु वीर्य अनन्त प्रकाश जो । अपूर्व० ॥ १५ ॥

वेदनीयाद चार कर्म वचे जहा, घली मीदरीभूत^१ आकृति
मात्र जो, ते देहायुष^२ आधीन जेनी^३ स्थिति छे^४, आयुष्
पूर्ण, मर्त्ये^५ दैहिकणत्र जो । अपूर्व० ॥ १६ ॥

मन, वचन, काया ने कर्मनी मर्णा, छुटे जहाँ सरल
पुद्गल समध जो, एतु^६ अयोगि गुणज्ञानक त्या वर्चतु^७,
महाभाग्य सुगदायक पूर्ण अग्रध जो । अपूर्व० ॥ १७ ॥

एक परमाणु मात्रनी मले न स्पर्शना, पूर्ण दलकहित
अडोलस्वरूप जो, शुद्ध निरनन चतन्यमूर्ति अनन्यमय,
अगुरुलघु, अमूर्त सङ्गपदरूप जो । अपूर्व० ॥ १८ ॥

पूर्व प्रयोगादि कारणना योग्यी, उर्ध्वगमन मिद्वालय
प्राप्त सुस्थित जो, सादि अन्त अनन्त ममाधि सुसमा,
अनन्तरशन, ज्ञान अनन्त सहित जो । अपूर्व० ॥ १९ ॥

जे पद श्रीमर्त्ये^८ टीटु^९ ज्ञानमा, कही शक्या नहीं पस
ते श्रीभगवान जो; तेह^{१०} स्वरूपने अन्य राणी तेशु^{११} कहे ?
अनुभयगोचर मात्र रह्युं ते ज्ञान जो । अपूर्व० ॥ २० ॥

१ ससारके । २ जली हुई रस्सीकी आकृतिके समान ।
३ देहकी आयुके । ४ निमकी । ५ है । ६ नाश हो जाता है ।
७ ऐसा । ८ है । ९ समाधिसुप्तमें । १० नीचा । ११ उप्त । १२ क्यो ।

अस्मान्नाम यस्मान्नाम, अदतवोरन आदि
परम प्राप्त ना देव, नम क अमे गृह्णार नहीं,
द्रव्यभार लयमय निर १ । १० जो । अपूर्ण० ॥ ९ ॥

गुरु निरुद्ध १० समदर्शिता, मात अमाने वर्ते ते ज
समाप्त १०, जायतक मरग नहा पुनाधिस्ता, भय मोक्ष
पग लुद्ध १० नमना चो । अपूर्ण० ॥ १० ॥

एकान्ति निरुद्धो जला स्मशानमा, धली पर्वतमा वाध
मि १० योग जो, प्रदो १ आसन, ने मनमा नहीं चोभता,
परम मित्रनो पाणे पाण्या योग जो । अपूर्ण० ॥ ११ ॥

धार नय १०, मा पग मनने ताप १०, मरम अने
नहा मनने प्रयत्ननाथ जो, रजस्थ के अद्वि वैमानक
दरना, मने मान्या पुद्गल १० स्वभाप जो । अपूर्ण० ॥ १२ ॥

एम पराजय रीने चारितमोक्षनो, आतु त्या ज्या
वरण अपूर्ण भार चो, श्रेणी क्षपस्तणी वरीने आरुदता,
अनन्यचितन अतिशय शुद्ध स्वभाप जो । अपूर्ण० ॥ १३ ॥

मोह मयभूरमण समुद्र तरी वरी स्थिति त्या ज्या
क्षीणमोह गुणस्थान जो, अत समय न्या पूर्णस्वरूप धीतराग
थड, प्रगटावु निज केवलान निधान जो । अपूर्ण० ॥ १४ ॥

(शरीरका । २ समार । ३ से । ४ प्राप्त हुआ । ५ स्त्रादिष्ट
६ देवाकी । ७ इस तरह । ८ करके । ९ वहाँ । १० जहाँ ।
११ आरुद होकर । १२ मयभूरमणरूपा मोक्षसमुद्रको पार करके

चार कर्म धनघाती ते व्यवच्छेद ज्या, मरणा' बीज-
तणो आयातक नाश जो, सर्वभाव ज्ञाता दृष्टा मह शुद्धता,
कृतकृत्य प्रभु वीर्य अनन्त प्रकाश जो । अपूर्व० ॥ १५ ॥

वेदनीया॥६ चार कर्म वशें जहा, पत्नी सींदरीवत्' आकृति
मात्र जो, ते देहायुष्' आवीन जेनी' स्थिति छे', आयुष्
पूर्ण, मटिये' देहिकणत्र जो । अपूर्व० ॥ १६ ॥

मन, वचन, काया ने कर्मनी रगणा, छूटे जहाँ सरल
पुद्गल सगंध जो, एतु' अयोगि गुणस्थानक त्या वर्त्तु',
महाभाग्य सुगदायक पूर्ण अवध जो । अपूर्व० ॥ १७ ॥

एक परमाणु मात्रनी मले न स्पर्शता, पूर्ण क्लृप्तकहित
अद्वैतस्वरूप जो, शुद्ध निरन्तर चतन्यमूर्ति अनन्यमय,
अगुस्त्यु, अमूर्त महजपदरूप जो । अपूर्व० ॥ १८ ॥

पूर्व प्रयोगादि कारणना योग्यी, उर्ध्वगमन मिद्वालय
प्राप्त सुखित जो, मादि अनन्त अनन्त ममाधि सुखमा',
अनन्तदशन, ज्ञान अनन्त सहित जो । अपूर्व० ॥ १९ ॥

ज पद श्रीमर्छे टीकृ ज्ञानमा, कही शक्या नहीं पण
ते श्रीमगमान जो, तेह' मरूपते अन्य राखी तेशु' कह ?
अनुभवागोचर मात्र रह्युं ते ज्ञान जो । अपूर्व० ॥ २० ॥

१ मसारके । २ जली हुई रस्तीकी आकृतिके समान ।
३ देहकी आयुके । ४ निम्नकी । ५ है । ६ नाशहो जाता है ।
७ ऐसा । ८ है । ९ समाधिमुखमें । १० दीक्षा । ११ उस । १२ कर्मा ।

एह पावनप्राप्ति तु तब ज्ञान में, 'गन्तारगर' ने ।
मनोविराज जा, या परा तन्मात्र रानचन्द्र मनने
प्रख्यापण धातु १ । १ स्वरूप जो । अर्थात् ० ॥ २

१ उत्तर २

परमपुण्य आचार्याके अयाममय पद्योंका स

भी कृदकृदाचार्य समग्रसारमें कहे हैं —
अहमिहमे, गलु मुद्रो, दमगुणागुमदयो सग ह्य
गति अत्य मन्त्र विचित्र प्रणय परमाणुमिच, वि
अर्थ—म परा अरला हूँ, निश्चयसे शुद्ध हूँ,
मानमई हूँ, मन्त्र प्ररूपी हूँ तथा अन्य एक परमाणु
भी मेरा नहीं है ।

परमहम्मिय अठिदो जो कृणदि तब उद च धारय
त सव्य बालनर बालनर विात सव्यहृणु ॥ ३

अर्थ—परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आ मामें स्थित न
जो तप और तपको धारण करता है उस मनको श्री
देवने बालनप (अज्ञानतप) और बालनर (अज्ञान
कहा है । क्योंकि ज्ञान बिना इन दोनोंसे कर्मों
होता है ।

१ शक्ति बिना । २ इस समय । ३ प्रभुकी आ
४. होवूँ । ५ उस ।

ववहारभामिदेण दु परदव्य मम मणति निदिदया ।

नाणंतिणिण्डयेण दु खय इह परमाणुमिचमम किंचि ॥३॥

अर्थ—जिन्होंने यथार्थ तत्त्वको नहीं जाना है वे पुण्य व्यवहारके रहे हुए उननोंको लेकर कहते हैं कि परद्रव्य मेरा है और जो निश्चयकर यथार्थ तत्त्वको जाना है वे कहते हैं कि परमाणुमात्र भी कुछ मेरा नहीं है ।

अणदप्रियेण अणदप्रियस्म शो कीरद गुणविघादो ।

तस्मा द्द्रव्यदव्या उप्पज्जते महावेण ॥ ४ ॥

अर्थ—अन्य द्रव्यसे-अन्य द्रव्यके गुणका विघात नहीं किया जा सकता । अतः यह मिथ्यान्त है कि ममी द्रव्य अपने अपने स्वभावसे उपजते हैं ।

विदिदमधुदयणाणि पोमाला परिणमति बहुगाणि ।

ताणि सुखिण्ण रुमदि त्मद्विय अह पुणो मण्णिदो ॥५॥

अर्थ—निंदा व म्नुतिके वचनरूप बहुत प्रकारके पुद्गल परिणमन करते हैं । उनको सुनकर आत्मी जीव यह समझता है कि वे वचन मुझे कह गए जेमा ज्ञान क्रोध करता है तथा खुश होता है ।

पोमालदव्य सदुत्तह परिणद तम्म जदिगुणो अणणो ।

तस्मा य तुम मण्णिदो किंचिणि किं रुमसे अबुहो ॥६॥

अर्थ—पुद्गलद्रव्य शब्दरूप परिणमन होता है यदि

॥ १ ॥ एतत्पुस्तकं श्रीगुरुदेवस्य आज्ञानुसारं लिखितं ॥ ॥ २ ॥

EV 57 84

परमपूज्य प्राचार्यकें अथा ममय पद्योका सकलन

श्री ऋग्वेदाय नमः समाप्तम् ॥

अदमिहः । ग लु रुद्रो दसुण्यगमटसो गवा स्त्री ।
गुवि प्रत्य मञ्जु । इति अथ पश्चात्तुमिह वि ॥१॥

अर्थ—म एफ फफला ह, निश्चयमे शुद्ध हैं, दर्शन
 ग्रानिमड ह, मरा अरुपा ह तरा अन्य एरु परमाणु मा
 भी मेरा नडा है ।

परमद्वन्द्वमय प्रविष्टौ जौ कुण्ठादि तत्र उद च धारयति ।

त सच्य वालतन वालनद् निनि मन्त्रह्यु ॥ ७ ॥

अर्थ-परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्मामें स्थित न होकर जो तप और त्रयसे धारण करता है उस तपसे श्रीमर्षज्ञ देवने बालतप (अज्ञानतप) और बालत्रय (अज्ञानत्रय) कहा है । क्योंकि ज्ञान बिना इन दोनोंसे कर्मों का बंध होता है ।

१ शक्ति विना । २ इस समय । ३ प्रभु की आज्ञासे ।
४ होयूँ । ५ उस ।

वन्दारभासिदेण दु परदव्व मम मण्णि निन्दिधा ।

चारुति सिन्दयेण दु राय इह परमाणुमिच्चमम किंचि ॥३॥

अर्थ—जिन्होंने यथार्थ तत्त्वों को नष्ट जाना है व पुरुष
व्यवहारके कहे हुए वस्तुओंको लेकर कहते हैं कि परद्रव्य
मेरा है और जो निश्चयकर यथार्थ तत्त्वों को जाना है व कहते
हैं कि परमाणुमात्र भी कुछ मेरा नष्ट है ।

अण्णदणियेण अण्णदणियस्म सो वारं पुण्णिगो ।

तद्वा दु सन्नदवा उप्पज्जते मदावेण ॥४॥

अर्थ—अन्य द्रव्यसे अन्य द्रव्य पुण्यका विधात
नहीं किया जा सकता । अतः यह सिद्धान्त है कि सभी
द्रव्य अपने अपने स्वभावसे उत्पत्ति लेते हैं ।

णिदिदमधुदयराणि पोम्माणा पीयसाव वहुमाणि ।

ताणि सुखिउण रुमदि तुमदिय अह पुरो मण्णिदो ॥५॥

अर्थ—निद्रा व स्तुतिक वस्तुओंका प्रसारण प्रसारके पुद्गल
परिणामन करते हैं । उनको सुखा, सुखों, जीव यह
ममभक्ता है कि व वचन सुझे वस्तुओं का ज्ञान क्रोध
करता है तथा गुण होता है ।

पोम्माणदव्व सदुत्तह पण्णिणं व ५ अणुणो अण्णो ।

तद्वा ए तुम मण्णिदो निन्दिदि हि एव अणुहो ॥६॥

अर्थ—पुद्गलद्रव्य गच्छते वस्तुओं का ज्ञान होता है यदि

अतो कुण्डि सहाव तत्थ गढा पोग्गला सभावेहि ।

गच्छति कम्पमार अण्णोण्णागाहमग्गाढा ॥ ३ ॥

अर्थ—आत्माके अपने ही रागादि परिणाम होते हैं उनका निमित्त पाकर कर्म पुद्गल अपने स्वभावसे ही आकर कर्मरूप होकर आत्माके प्रदेशोंमें एक जेराग्गाह मचघरूप होकर ठहर जाते हैं, जीव उनको बाधता नहीं है ।

सुहदुक्खजाणणा ण हिट्ठपाग्यम्म च अहिदमीत्थ ।

जस्म ण विज्झटि णिच्च त ममणा विति अज्जीव ॥ ४ ॥

अर्थ—जिसमें सदा ही सुख व दुःखका ज्ञान, हितमें प्रवृत्ति व अहितसे भय नहीं पाया जाता है उसीको मुनि पौने अजीव कहा है ।

अरहतसिद्धसाहुसु भत्ती धम्मम्मि जा य खलु चेद्वा ।

अणुगमण पि गुरुण पमत्थरागोत्ति बुच्चति ॥ ५ ॥

अर्थ—प्रशस्त या शुभराग (पुण्य) उसको कहते हैं जहाँ अरहत, सिद्ध व मातृकी मक्ति हो, धर्म माधनका उद्यम हो व गुरुओंकी आज्ञानुसार वर्तन हो ।

जोगणिमिच्च गहण जोगो मणवयणकायमभूदो ।

भाणिमित्तो बघो भावो रदिरागदोममोदजुदो ॥ ६ ॥

अर्थ—योगके निमित्तसे कर्मवर्गणाओंका ग्रहण होता है, वह योग मन, वचन, फायके द्वारा होता है । अशुद्ध

शीया अंत्या देहा, दिया य मंगो य क्स्म इह होति ।

परलोकं मृण्णिता, जदि यि दट्चंति ते सुट्ठ ॥ ३ ॥

अर्थ—परलोकसे जाते हुए जीवके माय सौ, पुत्र, मित्र, धन, देहादिक परिग्रह कोई नहीं जाते हैं, यद्यपि इसने उनके साथ बहुत प्रीति करी है तो भी वे निरर्थक हैं, साथ नहीं रहते ।

होऊणा अरी यि पुणो, मित्त उवकारकरणा होइ ।

पुत्तो यि खखेण अरी, जायटि अन्वारकरणेण ॥ ४ ॥

तम्हा य कोई क्स्मइ, मयणो य जणो व अत्थि, ममारे ।

कज्ज पडि हुत्ति, जगे, शीया य अरी व जीराण ॥ ५ ॥

अर्थ—पैरी भी हो, परन्तु यदि उससे उपकार करो, तो मित्र हो जाता है । अपना पुत्र भी अपकार किये जाने पर क्षणमें अपना शत्रु हो जाता है । अतः इस सुमारमें कोई किसीका मित्र व शत्रु नहीं है । स्वार्थके वश ही संसारमें मित्र व शत्रु होते हैं ।

वयर रदखेसु जहा, गोसीम चट्ठण च गधसु ।

वेरुलिय व मणीण, तह भाण होइ खययस्स ॥ ६ ॥

अर्थ—जैसे रत्नोंमें हीरा प्रधान है, सुगंध द्रव्योंमें गोसीर चंदन प्रधान है, मणियोंमें वैदूर्यमणि प्रधान है उसी प्रकार माधुके सर्व व्रत व तपोमें आत्मध्यान प्रधान है ।

८१०

८ नलवाहणद्धयो राया ।

८

८ओ होइ जह राया ॥ ७ ॥

८ अयसे बलवान राहनपर चढ़ा
८ कता है उमी प्रकार कपायरूपी
८ राहयो राहनपर चढ़ा आत्मध्यान

८ ॥ ८ ॥

८ ॥ ८, मुहम्म चकम् तुरुह जह मूल ।

८ ॥ ८, नाणचरणरीरियतजाण ॥ ८ ॥

८ ॥ ८-८ नगरकी शोभा द्वारसे है, मुहम्मकी शोभा
८ ८ ८ धुलकी स्थिरता मूलसे है उसी प्रकार ज्ञान,
८ ८ ८ तब और धीर्यकी शोभा सम्यग्दर्शनसे है ।

सम्मत्तस्स य लभो, तेलोस्सस्स य हवेज्ज जो लभो ।

सम्मदमणलभो, य सु तलोककलभादो ॥ ९ ॥

लद्धूण य तेलोकक, परिवडदि परिमिडेण कालेण ।

लद्धूण य सम्मत्त, अकण्ठयमोक्ख लहदि मोक्खं ॥ १० ॥

अर्थ—एक तरफ सम्यग्दर्शनका लाभ होता हो दूसरी
तरफ तीन लोकका राज्य मिलता हो तो तीन लोकके
लाभसे सम्यग्दर्शनका लाभ श्रेष्ठ है । तीन लोकका राज्य
पा करके भी नियतकाल पीछे वहाँस पतन होगा । और
यदि सम्यग्दर्शनका लाभ हो जायेगा तो अविनाशी मोक्षक
सुखको पाएगा ।

कोहि ढह्निज्ज जह्म च, दण णरो दारग च बहुमोल्ले ।
 णासेइ मणुस्मभय, पुग्गिओ तह विमयलोभेण ॥ ११ ॥

अर्थ—जैसे कोई मानव गहमून्य चदनक वृत्तको लकड़ी या ईंधनके लिये जला डाले तैसे ही अनानी पुरुष इन्द्रिय रिषयोंके लोभसे इस मनुष्य भरको नाश कर देता है ।

गतूग णदणवण, अमिय छडिय विम जहा पियड ।
 माणुममवे वि छडिय, धम्म भोगेऽमिलमडि तहा ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे कोई पुरुष नदनरनमें जाकर अमृतको छोड़ विष पीवे तैसे ही अनानी इस मनुष्य भरमें धर्मको छोड़ कर भोगोंकी अभिलाषा करता है ।

छट्ठमदममहुवादसेहिं अण्णाणिस्म जा मोधी ।
 तत्तो गहुगुणदरिया, होज्ज हु जिमिदस्मणाणिस्म ॥ १३ ॥

अर्थ—शास्त्रज्ञानके मनन बिना जो अज्ञानीको घेला, तैला, चूला आदि उपवामक करनेसे शुद्धता होती है उससे बहुतगुणी शुद्धता सम्यग्ज्ञानीको आत्मज्ञानको मनन करत हुए जीमते रहनेपर भी होती है ।

अकरोविणी कहा सा, विज्जाचग्ग उयदिस्सदेजत्थ ।
 सममयपरममयगढा, कहा हु विस्सेविणी णाम ॥ १४ ॥
 सवेयणी पुण कहा, णाणचग्गित्तविरियड्हिगढा ।
 णिन्वेयणी पुण कहा, मरीरभोगे भउघेण ॥ १५ ॥

प्रमाण तैत्तिरीय १-१ आश्वेपिर्णा

१. अथ चतस्रः दृष्टा करिनेर्गर्ला

२. अथ ते सोमस्त मासी पोषः य एसात

३. अनशनी हो । ३ अथेजिनीरुधा नो

४. नद भीरम प्रम यत्नेर्गर्ला य धर्मानुराग

५. १५ ॥ १॥ ५ निर्देहिनी जो ममार, शरीर भोगोंसे

६. १५ ॥ १॥ ५ निर्देहिनी हो ।

७. तत्तारा होति ह, मन्त्रासुर्मालता परिजता ।

८. अथ च मर्गर, ठाविदो अष्पा य मयमे ॥ १६ ॥

९. अथि इडियाणि य, ममाग्निर्वागा य फागिया हाति ।

१०. अथारुहिद्वीग्यन्, आग्निर्वागा य योडिष्ठा ॥ १७ ॥

अर्थ—अनशन, उनादर आदि बाहरी तपक माधन करनेसे सुखिया रहनेका स्वाभाव दूर होता है । शरीरमें कृपता होती है । ममार, दह भोगोंसे पराग्यभाव आत्मामें होता है । पोंगों इन्द्रियों उग्रम होती है । ममाधि योगा म्यामकी मिद्धि होती है । अपने आत्मरत्न प्रकाश होता है । जीवन को तप्यारु छेद होता है ।

११. अथि अणूदो अष्प, आयामादो अणूण्य रातिव ।

१२. अह तह जाया महल्ल, या उपमहिमामम अतिव ॥ १८ ॥

१३. अह पयणमु मेरु, उन्नाओ होड मन्त्रलोयम्मि ।

१४. तह जायसु उच्चाय, सीलमु उदसु य अदिसा ॥ १९ ॥

अर्थ—जैसे परमाणुसे कोई छोटा नहीं है और आकाशसे कोई बड़ा नहीं है उसी प्रकार अहिमात्र समान महान् वस्तु नहीं है। जैसे लोखण मरमे ऊँचा मेरु पर्यंत है उसी प्रकार सर्व जीलोंम व सर्व जनामे अहिमात्रत ऊँचा है।

मध्यगन्धविमुक्तो, मीदीभूतो पमणचित्तो यः ।

न पाण्ड पीडमुह, न चक्रमुहो नि त लहटि ॥ २० ॥

गगनियामतएहा, इगिद्वियमितिति चक्रमुहिसुह ।

निस्मगनिच्युमुह—, स्म कह अग्रत अणुतभाग पि ॥ २१ ॥

अर्थ—जो महा मा मने परिग्रह रहित है, शातचित्त है व प्रमत्तचित्त है, उसको जो सुख और प्रम प्राप्त होता है वह चक्रवर्ती भी नहीं पा सकता है। चक्रवर्तीको सुख रागमहित रुष्णामहित व बहुत शृद्धतामहित है तथा वृत्ति रहित है जयहि अमग महामाओंको जो स्वाधीन आत्मीक मुख है उसका अनन्तर्ग भाग भी मुख चक्रीको नहीं है।

इदियस्मापनसगो, उहुस्सुदो नि चरण न उज्जमदि ।

पसगी व छिएणपसगो, न उप्पटदि इच्छमाणो वि॥ २२ ॥

अर्थ—यदि बहुत शास्त्रोंका ज्ञान भी है परंतु पांच इन्द्रियोंके निषेधोंके और कर्मापेक्षोंके आधीन है तो वह सम्यक्चारित्रका उद्यम नहीं कर सकता है। जैसे परमरहित पक्षी इच्छा करते हुए भी उड़ नहीं सकता है।

॥ ॥

॥

॥

॥ जलमिद्विषकसायसम्मिस्म ।

॥ इति जल मकराकटि ॥ २३ ॥

॥ २४ ॥ कषायोंसे मिला हुआ बहुत
॥ गारा है । जैसे मिश्री मिलाकर
॥ इसके मिलनेसे नष्ट हो जाता है ।

॥ २५ ॥ समाधि शतकमें कहते हैं -

॥ २६ ॥ जिया जाता पुत्रभाषादिकल्पना ।

॥ २७ ॥ जगत्ताभिर्मन्यते हा । हत जगत् ॥ १ ॥

॥ २८ ॥ भ्रम में आत्मबुद्धि करनेसे ही पुत्र, स्त्री आदि
॥ न जाताई हो जाती है । हा । अज्ञानी जगत् उन्हीं
॥ पुत्रादिसे अपना माता हुआ नष्ट हो रहा है ।

येना मताऽनुभूयेऽहमात्मनवात्मनात्मनि ।

मोऽहं न तन्न मा नामो नको न द्वौ न बापहु ॥ २ ॥

अर्थ—जिम स्वरूपसे मैं अपनेम अपनेद्वारा अपनेको
अपने समान ही अनुभव करता हूँ, वही मैं हूँ । न मैं पुरुष
हूँ, न स्त्री हूँ, न नष्ट हो सकूँ, न मैं एक हूँ, न दो हूँ और
न मैं बहुवचन हूँ ।

धीयन्तेऽत्रैव रागाद्यास्त्यतो मा प्रपश्यत ।

योधात्मानं ततः कश्चिन्न मे शत्रुर्न च प्रिय ॥ ३ ॥

अर्थ—जम मैं वस्तुतः अपने ज्ञान स्वरूपसे अनुभव

करता हूँ तब मेरे रागादिभाव मय नाश हो जाते हैं ।

अतः इमं समारम्भे न कोई मेरा शत्रु है, न कोई मित्र है ।

‘य’ परात्मा म एवाह योऽह म परमस्तत ।

अहमेव मयोपास्यो नान्य कश्चिदिति स्थिति ॥४॥

अर्थ—जो परमात्मा है वही मैं हूँ । जो मैं हूँ वही परमात्मा है अतः मैं ही अपने द्वारा उपासना करने योग्य हूँ, अन्य कोई नहीं ।

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोल यन्मनोऽनलम् ।

म पश्य यात्मनस्तत्तत् नेतरो जन ॥५॥

अर्थ—रागद्वेष, मोहादिकी लहरोंसे जिमका अन्त करणरूपी जल चंचल नहीं हुआ है, वही साधक आत्म तत्त्वका माझान्कार करता है । अन्य लोग उस तत्त्वको नहीं जानते हैं ।

यत्पश्यामीन्द्रियैस्तन्मे नास्ति यन्नियतेन्द्रिय ।

अन्त पश्यामि सानन्द तदस्तु ज्योतिरुत्तमम् ॥ ६ ॥

अर्थ—मैं जो कुछ इन्द्रियोंसे देखता हूँ वह मेरा नहीं है । जब मैं इन्द्रियोंको रोककर अपने भीतर देखता हूँ तो वहाँ परमानन्दमई उत्तम ज्ञानज्योतिरु पाता हूँ । यही मैं हूँ ।

व्यवहारे सुषुप्तो य स जागर्त्यात्मगोचर ।

जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे ॥७॥

जो जो भी जगत् व्यवहारमें मोता है वही
जगत् का भाग है। परन्तु जो इस लोक व्यव
हार में जगत् के मननमें मोता रहता है।

जो जो भी जगत् का भाग परी भवति तादृश ।

जो जो भी जगत् का भाग भिना भवति तादृशी ॥ ८ ॥

जो जो भी जगत् का भाग भिना भवति तादृशी ॥ ८ ॥
जो जो भी जगत् का भाग भिना भवति तादृशी ॥ ८ ॥
जो जो भी जगत् का भाग भिना भवति तादृशी ॥ ८ ॥
जो जो भी जगत् का भाग भिना भवति तादृशी ॥ ८ ॥
जो जो भी जगत् का भाग भिना भवति तादृशी ॥ ८ ॥
जो जो भी जगत् का भाग भिना भवति तादृशी ॥ ८ ॥
जो जो भी जगत् का भाग भिना भवति तादृशी ॥ ८ ॥
जो जो भी जगत् का भाग भिना भवति तादृशी ॥ ८ ॥
जो जो भी जगत् का भाग भिना भवति तादृशी ॥ ८ ॥
जो जो भी जगत् का भाग भिना भवति तादृशी ॥ ८ ॥

उपासनात्मानमयात्मा जायत परमोऽथवा ।

मयित्वाऽऽत्मानमार्मय जायतेऽप्रियया तरु ॥ ९ ॥

अर्थ-अथवा यह आत्मा अपने ही आत्मा की आरा
धना करके परमात्मा हो जाता है। ऐसे पृथ स्वय लब्धकर
आप ही अग्निरूप हो जात है।

आत्मज्ञानापर कार्य न बुद्धौ वारयेचिरम् ।

बुद्धौ कार्यवशात्किञ्चिद्वाक्याभ्यामतत्पर ॥ १० ॥

अर्थ-आत्मज्ञानक अतिरिक्त और कार्यको बुद्धिमें
चिरकाल तक धारण न करे। यदि प्रयोजनयुक्त कुछ दूसरा
काम करना भी पड़े तो वचन और वाक्यसे अतत्पर होता
हुआ कर डाले, मनको उसमें आमत्त न करे ॥

श्री मुष्णभद्राचार्य आत्मानुशासनमे उच्यते है—

शमवीधवृत्ततपसा पापाणस्थय गौरय पु म ।

पूज्य महामणेरिय तदेव सम्यक्त्वमयुक्तम् ॥१॥

अर्थ—शांत भाव, ज्ञान, चारित्र्य, तप इन सनका मूल्य सम्यक्त्वे के बिना ककड पस्थरक समान है । परंतु यदि ये सव्यगदर्शन सहित हों तो इनका मूल्य महामणिके समान अपार है ।

शास्त्रांगनौ मणिवद्भव्यो निशुद्धो भाति निर्युत ।

अङ्गारवत् खलो दीप्तो मली वा मस्म या भवेत् ॥२॥

अर्थ—जैसे रत्न अग्निमें पड़कर निशुद्ध हो जाता है व गोमता है वैसे रुचिमान भज्यजीव शान्तिमें रक्षण करता हुआ निशुद्ध होकर मुक्त हो जाता है । परंतु जैसे अङ्गार अग्निमें पड़कर कोयला हो जाता है या राग हो जाता है वैसे दुष्ट पुरुष शास्त्रको पढ़ता हुआ भी रागी, ड्रेपी होकर कर्मोंसे मैला हो जाता है ।

अधीत्य सकलं श्रुतं त्रिरमुपास्य घोर तपो ।

यदीच्छसि फलं तयोरिह हि लाभपृजादिकम् ॥ -

छिनत्ति मुतपस्तरो प्रसवमेव शून्याशयः ।

कथं समुपलप्स्यसे मुरममम्य पक्कं फलम् ॥ ३ ॥

अर्थ—मैं शास्त्रोंको पढ़कर तथा दीर्घ कालतक घोर

श्री अमितिगति आचार्य तत्त्वभावनामं कहते हैं—

विश्रोपापविधिर्नोपि न निजो दहोपि यत्रान्मनो,
भारा पुत्रकलत्रमिश्रतनयानामानतातादय ।

तत्र स्य निजकर्मपूर्ववशात् केपा भवन्ति स्फुट,
विज्ञायेति मनीषिणा निजमतिः कार्या मदात्मस्थिता ॥१॥

अर्थ—अनेक प्रकारके उपायोंसे बढ़ाने पर भी यह देह
भी जहाँ इस आत्माकी नहीं हो सकती तो पुत्र, स्त्री, मित्र,
पुत्री, जमाई, बंधु आदि जो अपने२ पूर्वकर्मके वश आए हैं
य जायेंगे, अपने कैसे हो सकने हैं ? ऐसा जानकर बुद्धिमा
नकी अपनी बुद्धि मदा ही आत्माके हितमें करनी योग्य है ।

माता मे मम गेहिनी मम गृह मे वाधरा मज्जजा ।
तातो मे मम मपदो मम सुख मे सज्जना मे जना ।
इत्थ योरममत्तताममवशव्यस्तावबोधस्थिति ,
गर्माधानविधानत स्वहितत प्राणी मनीस्यस्यते ॥२॥

अर्थ—मेरी माता है, मेरी स्त्री है, मेरा घर है, मेरे बंधु
हैं, मेरा पुत्र है, मेरा माई है, मेरी सम्पदा है, मेरा सुख है,
मेरे सज्जन हैं, मेरे नौकर हैं, इस तरह घोर ममताके वशसे
तत्त्वज्ञानमें ठहरनेको अममय होकर परम भुख देनेवाला
आत्महितसे यह प्राणी दूर भ्रिमक्ता चला जाता है ।

न वैद्या न पुत्रा न विप्रा न शय्या, न काता न माता

न भूत्या न भूषा । यमा नमिन्नचित्तु, सति शक्ता, विवि
त्येति शयै निन कायेमा ॥

अर्थ-निम शगर्भ मासे जुदा होते हुए न तो
यद्य वचा सक्त है, न पु प्राणि, न इन्द्र, न स्त्री, न
माना, न नौर, न गाना त्या जानकर आर्य पुरुषों से
आत्माक हितको बर्न न शरीरके मोहमें आत्म
हितको न भूना चा-

विविन्नैषायै ॥ १ ॥ मान, स्वकीयो न देह मम
यत्र यानि ॥ २ ॥ वा ॥ ॥ पित्तानि तत्र, प्रबुद्धयेति
कृत्यो न कुत्रापि मोठ ।

अर्थ-नाना उपायान् न । पालते रहते भी जहाँ यह
अपना देह माव नदा ना नगा तब बाहरी पदार्थ किम
तरह हमार हो सक्ता है? आ जानकर किसी भी पर पना
र्थमें मोह करना उचित नही ।

वित्रियमग्रहकन्मपमग्निना । नवतःकुटुबकहतवे । ॥

अनुभक्त्यसुख पुराणा नरक्याममुपत्य सुदुस्महम् ॥ ५ ॥

अर्थ-श्राणी, शरीर न सुदुम्भके लिख नाना प्रकारक
पापोंको आवता है परन्तु उनका फल उस अकस्तेको ही
नरकमें जाकर अमहनीय दुःख भोगना पडता है ।
यो राहगर्थ तपमि यतते राहयमापयतेऽमौ ।

अथवा मार्थ लभ म लभते मत्मात्मानमेव ॥

न प्राप्यते कचन कलमा कोट्यं गोपमाणे-

पिज्ञायेत्थ कुशलमनय दुर्गते स्वार्थमेव ॥ ६ ॥

अर्थ-जो बाहरी इन्द्रिय भोगाके लिये तप करता है वह बाहरी ही पदार्थोंको प्राप्त करता है। जो आत्मपदकी प्राप्तिके लिये तप करता है वह भीष पवित्र आत्माको ही पाता है। कोट्योंके बोनेसे कभी भी चारल नहीं प्राप्त हो सकते, ऐसा जानकर प्रतीक बुद्धिवालोंको आत्माके हितमें ही उद्यम करना योग्य है।

चक्री चक्रमपाशरोति तपसे यत्तत्र चित्र मताम्,

सूरीणा यदनश्यरीमनुपमा दत्ते तप मपदम् ।

तच्चित्र परम यदत्र निषय गृह्णाति हित्वा तपो,

दत्तेऽमौ यदनेकदुःखमवरे भीमे भवाम्भोनिधौ ॥७॥

अर्थ-चक्रवर्ती तप करनेके लिये सुशान चक्रका त्याग कर दते हैं इसमें सत्पुरुषोंको कोई आश्चर्य नहीं होता है क्योंकि वह तप धीर साधुओंको अविनाशी अनुपम मोक्षकी मण्डपाको देता है। किंतु परम आश्चर्यकी बात तो यह है कि जो कोई तपको छोड़कर इन्द्रिय-निषयको ग्रहण कर लेता है, वह इस महाभयानक समासमुद्रम पड़कर अनेक दुःखोंमें अपनेको पटक देता है।

श्री गौरी - १०१
माताजी - १०२
मो पा
अ
रमण ५३
अने १३

॥ चारमें करते हैं —
॥ जो अप्पाणि वसेइ ।
जिणकर एम मणेइ ॥६४॥
उ हो, जो कोई आत्मस्वरूपमें
मुख प्राप्त करेगा ऐमा जिनेन्द्र

॥ १०१, १०२, १०३ होते हैं ।

वि० वि० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ विरला गिसुणहिं तत्तु ।
विरला गिसुणहिं तत्तु । नय विरला धारहिं तत्तु ॥६६॥
॥ १०३ ॥ — ने हा पण्डित आत्मतत्त्वको जानते हैं, विरले
हा योगी तत्त्वको सुनते हैं, विरले जीव ही तत्त्वको ध्याते
हैं और विरले ही तत्त्वको धारण करके स्थानुमयी होते हैं ।

मनामें कोई अपना नहीं है ।

इदं कथितं शरित्वं वि जीवह सरणु ए होंति ।

अमरणु जागिणि मुणि धमला अप्पा अप्प मुणाति ॥६८॥

अर्थ—इन्द्र, धरणेन्द्र ३ चक्रवर्ता कोई भी ससारी कोई
भी ससारी प्राणियों रक्त नहीं हो सकते । उच्चम मुनि
अशरण जानकर अपने आत्मा द्वारा आत्माका अनुभव
करते हैं ।

जीव सदा अकेला है ।

इदं उपलब्धं मरडं कु वि दुट्ट सुट्ट भुजडं इव ।

एरयहँ जाड नि इक् जिउ तह गिण्णराणहँ इक्कु ॥६९॥

अर्थ—जीव अनेना ही जन्मता है, अनेला ही मरता है, अनेला ही दुःख और सुख भोगता है, अनेला ही नरक में जाता है तथा अनेला ही जीव निर्वाण में प्राप्त होता है।

—निर्मोही होकर आत्मा का ध्यान कर।

एक्कुलउ जड जाटमिहि तो परमाय चएहि ।

अप्पा भायहि राणमउ लट्टु मिय मुक्कय लहेहि ॥७०॥

अर्थ—यदि तू अनेला ही जायगा तो रागद्वेष मोहादि परमाओं को त्याग दे। ज्ञानमय आत्मा का ध्यान कर तो जीव ही मोक्ष का सुख पाएगा।

भावनिर्ग्रन्थ ही मोक्षमार्ग है।

जइया मणु णिग्गधु निय तइया तुहुं णिग्गधु ।

जइया तुहुं णिग्गधु जिय तो लभट मियपधु ॥ ७१ ॥

अर्थ—ह जीव! जब तेरा मन निर्ग्रन्थ है तब तू मोक्षा निर्ग्रन्थ है। ह जीव! जब तू निर्ग्रन्थ है तो तूने मोक्ष मार्ग पा लिया।

श्री अमृतचन्द्राचार्य नन्दार्थसारमे कहते हैं —

कस्याऽपत्य पिता कस्य कस्याम्या कस्य गेहिनी ।

एक एव भगम्भोधौ जीवो भ्रमन्ति दुस्तरे ॥ १ ॥

अर्थ—किमका पुत्र, किमका पिता, किमकी माता,

१७ स्वयं अकेना ही इम दुस्तर मसार

१८ जीनो अपुरन्यदचेतनम् ।

१९ न न्यन्ते नानात्वमनयोर्जना ॥ २ ॥

—चेतनम्पुन जीनो अन्य है और अचेतन (जड़

२० अन्य है । जड़ है । कि तो भी समारी प्राणी

२१ में नहीं समझते हैं ।

२२ अन्तिपक्षार्पितमतेस्तच्च समुत्पश्यतो

न वद्रव्यगत स्वरास्ति किमपि द्रव्यान्तर जातुचित् ।

२३ तान मेयमवेति यत्तु तदयं शुद्धस्वभावोदय ।

किं द्रव्यान्तरं तु बनामूलधियस्तच्छास्त्रवन्ते जना । ३ ॥

अर्थ—शुद्ध द्रव्य की दृष्टिसे तबका यह स्वरूप है कि

२४ पर द्रव्यके भीतर दूसरा द्रव्य कदापि भी नहीं भलता

है । ज्ञान जो पदार्थों को जानता है वह ज्ञानके शुद्ध स्वभा

वका प्रकाश है, फिर क्या मूढ़ जन परद्रव्यके साथ राग

मान करते हुए आकृन्तव्याकुल होकर अपने स्वरूपसे अष्ट

होते हैं ?

श्री अमितिगनि आचार्य सामायिकपाठमें

कहते हैं —

न सति बाह्या मम केचनार्था, भगामि तेषां न कदाचनाहम् ।

इत्यादि निश्चित्य निमुच्य गच्छन् स्थ मदात्वं मय भद्र मुक्त्यै ॥ १ ॥

अर्थ—आत्मासे भिन्न वास्तव पदार्थ मेर नहीं हैं न मैं उनका क्यापि होता हूँ, ऐसा निश्चय करके सभी पाप पदार्थोंसे ममत्वबुद्धि त्यागकर, हे भद्र ! मदा तू अपने स्वरूपमें स्थिर हो निमग्न हो कि मुक्तिका लाभ हो ।

एव मदा शाश्वतिसौ ममा मा, निनिर्मल साधिगम्यमाय ।
बहिर्भवा मन्व्यपरं ममन्ता, न शाश्वता कर्ममया ध्यासीया ॥२॥

अर्थ—मेरा आ मा मदा ही एव, अविनाशी एवं निर्मल ज्ञान स्वभावी है, अन्य सभी गमादि भाव, जो अपने २ कर्मोंके उदयसे भङ्ग हैं, मेर आत्मस्वरूपसे भिन्न हैं एव नश्यत हैं ।

यस्यास्ति नैक्य वपुषापि मादौ, तस्यास्ति हि पुत्रकलत्रमित्र ।
पृथक्कृतं चर्मणि रोमरूपा, कुतो हि तिष्ठति शरीरमप्ये ॥३॥

अर्थ—नित आत्माका शरीरके भी साथ एकरूपता नहीं है तो फिर पुत्र, स्त्री, मित्र आदिके साथ कैसे ममत्व हो सकता है ? यदि शरीरका ऊपरका चमड़ा पृथक् कर लिया जाये तो फिर उसमें रोमोंके छिड़ रमे पाण आ सकते हैं ? अथात् नहीं ।

मयोगतो दु गमनेऽमेद, यतोऽनुते जन्मरने शरीरी ।
तत्तस्त्रियामौ परिवर्त्तनीयो, यियामुना निर्मुक्तिमात्मनीनाम् ॥४॥

अर्थ—इस शरीरके मयोगसे ही यह शरीरधारी, ममारूपी बनम, अनेक दुर्लभो भोगता है । अतः जो

श २

२५। है उसे मन, वचन, कायसे

ड ५

। त्याग कर दना चाहिये ।

॥ १ ॥ ग्यारहातारनिपातहेतुम् ।

॥ २ ॥ निलीयसे त्व परमात्मतत्त्व ॥ ५ ॥

। नमैं भ्रमण करानेके कारणभूत

। त्वासे दूर करके और सबसे भिन्न

॥ अनुभव करते हुए तू अपने ही परमात्म

॥ ६ ॥

॥ समन्त भद्राचार्य रत्नकरणध्वजका चारमे
कहे हैं—

मादृतिविरापहरण दर्शनलाभावाप्तमज्ञान ।

रागद्वेषनिवृत्त्य चरण प्रतिपद्यत साधु ॥ १ ॥

अर्थ—भिन्नाकार्त्तर्षा अधकारके मिटजा नेसे और
सम्पद्दर्शन तथा सम्पत्ज्ञानके लाभ हो जानेपर मुनि राग
द्वेषको दूर करनेके लिय चारित्र्यको पालते हैं ।

हिमानृतचौयेभ्यो मग्नसेना परिग्रहाभ्या च ।

पापप्रणालिनाभ्यो विरति सचम्य चारित्रम् ॥ २ ॥

अर्थ—हिमा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन
पाँच पाप कर्मके शानेही मोरियोंसे विरक्त होना—त्याग
रहना सम्पत्ज्ञानीका चारित्र्य कहलाता है ।

श्रीदेवसेनाचार्य तत्त्वमामे

ज अविष्य तच्च त मार मोक्षद

त णाउण विमुद्ध भायइ दोऊ

अर्थ-जो निर्विकल्प आनन्द है उसी का कारण है। उसीसे बन्धन और मोक्ष का
उसी निर्मल तत्त्वका ध्यान कर ।

रायहोसादीहि य डहुलिअइ पंड

मो खियतच्च पिच्छइ णा दृ

सरसलिले थिरभूए दीसइ रि

मणसलिले थिरभूए दीसइ अ

अर्थ-जिसका मन बलवान् होता है वह चंचल नहीं होता है उससे विषय का प्रभाव नहीं हो सकता। जब सरोवरका पानी नीचे गिरा दे तब वन के भीतर पड़ा हुआ रत्न जैसा प्रकाश फैलता है उसी प्रकार निर्मल मनवाला चंचल है वह आनन्द का साक्षात्कार हो जाता है।

परदण्ड देहाई अणु अणु अणु अणु

परसमपरदो तब अणु अणु विविध

अर्थ-शरीर आणु आणु है अणु अणु

उपर पदार्थों में रत
जो जगत् है और न। तत्काल कर्मोंसे बधता है।

अथ मयमेव गलियमाहृष्य ।

गलति सिम्सेगर्पादिणि ॥ ५ ॥

अथ मयमेव राणाकी सेना प्रभावित
है जो प्रसार मोह राणाके नाश
का ना कर्म नाश हो जाते हैं।

मन मुनि नरयातुशामनमे कर्तते हैं-

५ । चक्षिणा नश्य यच्च मग्ने दिशंकमा ।

चक्षुषाणि न तच्छुष्य सुरस्य परमात्मना ॥ ६ ॥

अथ-ना गुण यहापर चक्षुर्नियारो है व स्वर्गम
का जो ह वह परमात्माक सुखकी तुलनाम अगमात्र भी
नहीं है।

ममकारका लक्षण

जन्मदनात्मिवेषु मृतनुप्रसृतेषु कर्मजनितेषु ।

आत्मायाभिनिर्गता मम हारो मम यथा दह ॥ ७ ॥

अथ-ना या मासे मदा भिन्न है ऐसे कर्मजनित अपने
शरीर आत्मा (श्री, पुत्र, मकान आदि) पदार्थोंम आत्मीय
भावना हो जाना जो ममकार (ममत्व बुद्धि) है। जैसे
अपने शरीरम, जो कि आत्माग प्रवृत्त है, 'यह मेरा है,'
ऐसा बुद्धि होना।

अहंकारका लक्षण ।

ये कर्मकृता भावा परमार्थनयेन चात्मनो मित्रा ।
तत्रात्माभिनिवेशोऽहंकारोऽहं यथा नृपति ॥ ३ ॥

अर्थ—कर्मोंद्वारा किये गये विभाव परिणामोंमें, निश्चयनयसे जो आत्मासे भिन्न हैं, अपनेपनकी भावना करना सो अहंकार बुद्धि है । जैसे, “म राजा हूँ” ।

मोक्षका मार्ग ।

यो मध्यस्थ पश्यति जानात्पारमानमात्मनात्मन्यात्मा ।
द्वारागमचरणरूपरस निश्चयान्मुक्तिइतिरिति निनोक्ति ॥४॥

अर्थ—“जो आत्मा आत्माक द्वारा आत्माको आत्मामध्य अमलोकन करती है परिज्ञान करती है, आचरण करती है और मध्यस्थ हो जाती है ऐसी सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्र्यस्वरूप आत्मा ही निश्चयसे मोक्षका मार्ग है ।” ऐसा निनेन्द्रदेवका कथन है ।

पट्कारकमयी आत्माका ही नाम ध्यान है ।

मात्मान् स्वात्मनि स्वन ध्यायत्स्वस्मे मृतो यत ।

पट्कारकमयस्नस्माद्व्यानमात्मेन निश्चयात् ॥ ५ ॥

अर्थ—निश्चयनयकी अपेक्षा इस आत्माक द्वारा आत्मा के लिये-अपनी ही आत्मासे अपनी आत्मामें आत्माका

१३ का उपाय ।

१. धृति च मन प्रभु ।

२. ते तस्मिन् जितेन्द्रिय ॥ ६ ॥

धृति और निवृत्तिमें मन ही
 , १ वशमें करना चाहिये । मन पर
 , २ आत्मा जितेन्द्रिय सहज ही हो

३. अरज्जुन्या नित्यमुत्पद्यति ।

४. जितानोऽप्यस्यते धर्तुमिन्द्रियवाजिन ॥ ७ ॥

अर्थ—मनजितेता प्राणीके द्वारा नित्यही कुमार्गकी
 आर मुड़ने वाला इन्द्रियरूपी घोड़े, ज्ञान और वैराग्यरूपी
 लगावके द्वारा वशमें मिये जा सकते हैं । अर्थात् मनके
 जीतने वाला पुरुष ही ज्ञान व वैराग्यकी महायत्नासे इन्द्रि
 योंको अपने वशमें कर सकता है ।

मनकी वशमें करनेका उपाय ।

५. संचितयन्त्रनुषेधा स्वाध्याये नित्यमुद्यत ।

६. जयत्येव मन मातुरिन्द्रियार्थपराडमुख ॥ ८ ॥

अर्थ—स्पर्शनादि इन्द्रियोंके विषयोंसे उदासीन हुआ

माधु, अनुप्रेक्षाओंका चितवन करता हुआ व नित्य ही स्वाध्यायमें तत्पर होता हुआ, मनको अग्रग ही गणमें कर लाता है ।

स्वाध्यायः परमस्तारज्जप पचनमश्नुते ।

पठन वा निनेन्द्रोक्तशास्त्रम्यैश्वर्येनमा ॥ ९ ॥

अर्थ—एकाग्र मनसे पञ्च गुणोंका मंत्रका जप करना सबसे बड़ा स्वाध्याय है । अथवा जिन-द्रव्यके द्वारा उपदिष्ट शास्त्रोंका पढ़ना मो भो परम स्वाध्याय कहलाता है ।

स्वाध्यायाद्विधानमध्यास्ता ध्यानाऽस्वाध्यायमामनेत् ।

ध्यानस्वाध्यायमपस्या परमात्मा प्रकाशते ॥ १० ॥

अर्थ—स्वाध्यायकी सयाप्त कर लेनेपर ध्यान करना चाहिये और ध्यान करनेसे भी ऊँच जानेपर स्वाध्याय करनेमें लग जाना चाहिये । ध्यान और स्वाध्याय करते रहनेसे ही रर्ममलरहित शुद्ध आत्मा (परमात्मा) प्रकाशित होने लगता है ।

स्वसवेदनका स्वरूप ।

वेद्यत्त वेदकत्त च यत्स्वम्य स्वेन योगिनः ।

तत्स्वसवेदन प्राहुरात्मनोऽनुमन दशम् ॥ ११ ॥

अर्थ—योगियोंको जो स्वयंके द्वारा, जो स्वयंका वेद्यत्त्व व वेदकत्त्व होता है वही स्वसवेदन कहलाता है । उमीको आत्मा अनुमन या दर्शन कहते हैं ।

15. 2.

$$T_4 \quad t_4$$

सद्भाष्यं च यथास्थितिम् ।

भेसायतु पश्यतु ॥ १२ ॥

५११ परका यथार्थ स्वरूप जान

१. एको अकार्यकारी समझदारी

ॐ नमः शिवाय ।

रागत्यात्मानमात्मवित् ।

नानाधि स्फटिको यथा ॥१३॥

५. तत्त्वतः नव भागसे जिस स्वरूपका ध्यान

१ उक्त शक्ति उभी तरह तन्मय हो जाता है। जैसे

717 & साय जिम ग्रहारेके रगकी उपाधि होती

सन्मय तो जानी है ।

॥ कुलभट्टाचार्य सारसमुच्चयमें कहते हैं—

ग्या मा ग्रीन तु यत्सौग्य तत्सौर्य वणिक्त युव ।

परार्थीन तु यत्सौख्यं द गमेन न तत्सुख ॥ १ ॥

अर्थ-यात्माधीन जो सत्य है उसीमें आनियेने सत्य ।

रहा है। पगधीन जो मर रहा है वह दया ही है, यह सुख

नहीं है ।

यमाभृत मया पथ इ सातङ्कनिनाशनम् ।

यस्मिन् पीत पर गौरय जीवाना जायते सदा ॥ २ ॥

अर्थ- दृ सरूपी गेगको नाश गर्नेवाले धर्मरूपी अम्

तथा पान सदा ही करना चाहिये । जिसके पीनेसे जीवों को सदा ही उत्तमसुख की प्राप्ति होती है ।

धर्म एव सदा गता जीवाना दुःखममृतात् ।

तस्मात्कुरुत भो यत्नं यत्रानन्तसुखप्रदे ॥ ३ ॥

यत्रया न कृतो धर्मं मदा मोक्षसुखमह ।

प्रमथमनमा येन तेन दुःखी भवति ॥ ४ ॥

अर्थ—जीवों को धर्म ही सदा दुःख सङ्घटोंसे रक्षा कर-
नेवाला है । अतः अनन्तसुख देनेवाले धर्ममें प्रयत्न करना
चाहिये । तूने प्रमथित मन होकर अथवा मोक्षसुख को देने
वाले धर्मका माधन नहीं किया, इसीसे तू दुःखी हो रहा है ।

नो समाजायते मौर्य मोक्षमाधनमुत्तमम् ।

मगाच्च जायते दुःखममारस्य निरन्धनम् ॥ ५ ॥

अर्थ—मोक्षका कारणभूत उत्तमसुख परिग्रह की ममतासे
उत्पन्न नहीं होता है । क्योंकि परिग्रहसे तो ममारके कार-
णभूत दुःख ही प्राप्ति होती है ।

ज्ञानदर्शनमम्पन्न आत्मा चको ध्रुवो मम ।

शेषा भागाश्च मे बाह्या सर्वे मयोगलक्षणा ॥ ६ ॥

मयोगमूलजीवेन प्राप्ता दुःखपरम्परा ।

तस्मात्सयोगसबध त्रिभिधेन परित्यजेत् ॥ ७ ॥

अर्थ—मेरा आत्मा ज्ञानदर्शनमभावसे पूर्ण है, एक है,

अग्निनाशी है -
कर्मक लपेटे
बाराह -
गहन -

हम भार मेरे स्वभावासे बाहर
और कर्मक मयोगसे जीव
इस मयोग मन्धको मन,

ज्ञाननीरुण चारुणा ।

॥ गो जन्मान्तरेऽपि ॥ ८ ॥

। तसे नित्य ही आत्मा को स्नान
कर - - - - - जन्म जन्मके पाप धुल जाते हैं ।

। - - - - - ज्ञेय ज्ञानन गिायन च ।

मा पुण्यपराधस्य पश्चात्तापो भविष्यति ॥ ९ ॥

अथ-ह भव्यजीव ! नित्य हो आत्माके शुद्ध स्वम्परी
भायना जानके मा १ नित्यपूर्णक करो, नहीं तो मरनेपर
बहुत पश्चात्ताप होगा कि कुछ न कर सके । यानो मरणका
ममय निश्चित नहीं है इससे आत्मज्ञानकी भायना मढ़ा
रानी योग्य है ।

नृजमन फल मार यन्तेज्ज्ञानसेयनम् ।

अनिगृहीतभीर्यस्य मयमस्य च धारणम् ॥ १० ॥

अर्थ-मानव ज मका मार फल यही है जो सम्यग्ज्ञा
नकी भायना की जावे और अपनी शक्ति को न छिपाकर
मयमको धारण किया जावे ।

ज्ञान नाम महारत्न यन्न प्राप्त कदाचन ।

ममारे भ्रमता भीमे नानादुःखनिघाषिनि ॥ ११ ॥

अधुना तपस्या प्राप्त सम्पददर्शनसंयुतम् ।

प्रमाद मा पुन कार्षीन्निपयाम्बादलालम् ॥ १२ ॥

अर्थ—आन्मज्ञान महारत्न है उसको अथतरु कमी भी तूने इस अनेक दुःखोंसे मरे हुए भयानक मसारने भ्रमते हुए नहीं पाया । उम महारत्नको आज तूने सम्पददर्शन महित प्राप्त कर लिया है तब आत्मज्ञानका अनुभव कर, विषयोंके स्वादकी लालसामें पड़कर प्रमादी मत बन ।

शुद्धे तपमि मढीयं ज्ञान कर्मपरिचये ।

उपयोगिघन पात्रे यस्य याति न पडित ॥ १३ ॥

अर्थ—वही पडित है जिसका आत्माका वीर्य शुद्ध तपमें उर्च होता है, जो ज्ञानको कर्मोंके क्षयमें लगाता है तथा जिसका घन योग्य पात्राके काम आता है ।

नियत प्रशम याति कामदाह सुदारुण ।

ज्ञानोपयोगसामर्घ्याद्विष मत्रपदैर्यथा ॥ १४ ॥

अर्थ—भयानक भी कामका दाह आत्म-यान व स्वा-ध्यायमें ज्ञानोपयोगके बलसे नियममें शांत हो जाता है । जैसे मत्रके पदोंसे सर्पका विष उतर जाता है ।

सत्येन शुद्धयते वाणी मनो ज्ञानेन शुद्धयति ।

गुरुश्रवणा काय शुद्धिरेव मनातन ॥ १५ ॥

तस्मात्कुरुत मर्द्वच्च निनामार्गता मदा ।

ये मत्प्रदितो याति स्पर्शाल्प सुदुर्धम् ॥ २१ ॥

अर्थ—सामंभार चित्तको दूषित करनेवाला है, संद्रष्टिक नाशक है, सम्पक्चारित्रको नष्ट करनेवाला है, अनर्थोंकी परम्परा बढ़ानेवाला है, दोषोंकी खान है, गुणोंका नाशक है, पापका खास चयु है, बेडो० आपत्तियोंकी तुलानेवाला है अतः सदा जनवर्मगत होकर सम्पक्चारित्रका पालन करो जिससे अति कठिन कामकी शन्य चूर्ण चूर्ण हो जावे ।

सम्पत्तौ विस्मिता नत्र विपत्तौ नत्र दुःखिता ।

महता लक्षण द्योतन्न तु द्रव्यममागम ॥ २२ ॥

अर्थ—महान् पुरुषोंका यह लक्षण है कि सम्पत्ति होने पर आश्चर्य न माने और विपत्ति पड़नपर दुःखी न हों, केवल लक्ष्मीका होना ही महापुरुषका लक्षण नहीं है ।

श्री शुभचन्द्र आचार्य जानार्णवमे कहते हैं—

यत्सुख बीतरागस्य मुने प्रशमपूर्णम् ।

न तस्यानन्तमार्गोऽपि प्राप्यते त्रिशेथरं ॥ १ ॥

अर्थ—बीतराग मुनिको शांतभाव पूर्वक जो आत्मसुख प्राप्त होता है उसका अनन्त भाग भी सुख इन्द्रोंको नहीं मिलता है ।

य स्वमेव समादत्ते नादत्ते यः स ततोऽपरम् ।

निरिकल्प स विज्ञानी स्वसवेद्योऽस्मि केवलम् ॥ ६ ॥

अर्थ—ज्ञानी अपनेको ही ग्रहण करता है अपनेसे भिन्न परको नहीं ग्रहण करता है । ऐसा मैं आत्मा हूँ, उसमें कोई विकल्प नहीं है, ज्ञानमय है, केवल एक अकेला है और वह स्वानुभवात्म्य ही है ।

आत्मन्येवात्मनात्माय स्वयमेवानुभूयत ।

अतोऽन्यत्रैव मा ज्ञातुं प्रयासः कार्यनिष्फलः ॥ ७ ॥

अर्थ—यह आत्मा आत्माके द्वारा आत्मामें ही स्वयं सेव अनुभव किया जाता है अतः इस छोड़कर अन्य स्थान-में आत्माके जाननेका जो खेद है सो निष्फल है ।

म एवाह स एवाहमित्यभ्यस्यन्ननागतम् ।

चार्मनो दृढयत्नेन प्राप्नोत्यात्मन्यभिव्यक्तिम् ॥ ८ ॥

अर्थ—मैं परमात्मा हूँ, वही मैं परमात्मा हूँ, इस प्रकार निरंतर अभ्यास करता हुआ पुरुष हम वामनाको दृढ़ करता हुआ आत्मामें स्थिरनाको पाता है । आत्म स्थान जग उठता है ।

अतुलमुखनिधानं सर्वकल्याणबीजं,

जननबलधिपोत भव्यमचरन्पात्रम् ।

दुरिततरुहठार पुण्यतीर्थप्रधानं,

पितृजितप्रियं दर्शनाख्यं सुधाम्बुम् ॥ ९ ॥

गान कहते हैं कि ह भय जीवो !
 गानसो पीओ, यह अनुपम अतीन्द्रिय
 १७ ५०१ है, मर कल्याणमा पीज है,
 गानसो निरे जहान है, इसको धारण
 गान पात्र भव्य जीव ही है, यह पापरूपी
 गान कृता है, पत्रि तीर्थोंमें यही प्रधान है
 न गाना नि पात्ररूपी शत्रुको जीतनेवाला है
 म गानासो सब प्रथमसे ही धारण करना चाहिये

शाम्पन्नि जन्तव ब्रूरा भद्वीरा परस्परम् ।

अपि स्वार्थ प्रवृत्तस्य मने साम्प्रप्रसारत ॥ १० ॥

अर्थ—आत्मध्यान मलगलीन श्री मुनिमहागुरुक सम
 तामात्रक प्रभावमें उनके पाप परस्पर पैर करनेवाले प्र
 जाव भी जात हो जाते हैं ।

अगम्य यन्मृगादस्य दुर्मघ यद्रवेरपि ।

तददुर्गोधोद्धत ध्यान्त ज्ञानमेव प्रकीर्तितम् ॥ ११ ॥

अर्थ—निम दुर्गायके अधरारको चद्रमा नहीं
 समता, शूर्य नहीं भेद मरुता उम अज्ञानाधरारको - स
 ग्ज्ञान नष्ट कर देता है ऐसा कहा गया है ।

दुरिततिमिरहम मोक्षलक्ष्मीमरोज,

मदनभुजगमप्रचित्तातङ्गमिह ।

व्यमनयनसमीर विग्रतत्त्वकटोप,

त्रिपणशरजाल ज्ञानमाराध्य त्व ॥ १० ॥

अर्थ—हे भव्यजीव ! मम्यज्ञानकी आराधना रगो । यह सग्यज्ञान, पापरूपी अधःशरके नष्ट करनेका शूर्यममान है, मोघनन्धीके निशामके लिये कमलममान है, कामसर्पके पीननेको मग्नममान है, मनरूपी हाथीके वश करनेको सिंहममान है, आपदारूपी मेघको उड़ानेके लिये पवनममान है, ममस्त तत्त्वोंको प्रकाश करनेके लिये दीपकममान है, तथा पोंगोंइन्द्रियोंके त्रिपणोंको पकड़नेके लिये जालममान है ।

शरीर शीर्यते नाशा गलत्यापुर्न पापवी ।

मोह स्फुरित नात्मार्य पश्य धृत शरीरिणाम् ॥ ११ ॥

अर्थ—दरखो ! इन जीवोंकी प्रवृत्ति कर्मों आश्चर्यकारक है । व, शरीर तो प्रतिष्ठा छोड़ता जाता है और आशा नहीं छोड़ती है, किंतु बढ़ती जाती है । तथा आयुर्वल तो घटता जाता है और पापकायोंमें बुद्धि बढ़ती जाती है । मोह तो नित्य स्फुरावमान होता है और यह प्राणी अपने हित वा कल्याण मार्गमें नहीं लगता है । मो यह कैसा अज्ञानका माहात्म्य है ?

पिरम मिम सगान्मुञ्च मुञ्च प्रपच,

निमृज निमृज मोह निद्धि निद्धि स्ततत्त्वम् ।

इति श्री गुरुभ्यो नमः पश्य पश्य स्वरूप,

॥ १४ ॥

श्री गुरुभ्यो नमः । श्री गुरुभ्यो नमः उपदेश करते हैं कि हे आत्म-
 शरीर । तू तो विरक्त हो, जगतके प्रपंच
 (१) छोड़ छोड़, जगतके मोहको दूर कर दूर
 कर । तू तो समझ समझ, चारित्रिका अभ्यास कर
 कर । तू तो आत्मस्वरूपका देख देख तथा मोक्षके
 लक्ष्य को धार धार कर । अर्थात् इस प्रकार
 जो श्री गुरुभ्यो नमः से आचार्य महाराजने अत्यंत प्रेरणा की है,
 दशोक्त नामक महाराज ने दे दिया है । सो बारबार हितके
 लिये प्रस्तावित है ।

गता जन्मोत्पत्त्या शिवायागाविपर्यय ।

इति श्रम्यकममालोच्य यद्विदित तत्समाचर ॥ १५ ॥

अर्थ—मो प्राणी । देखो, समारके पदायोंकी आशा
 मसारणी कर्ममें फँसानेवाली है, जबकि आशाका त्याग
 मोक्षका देनेवाला है । इन दोनों बातोंका मूल प्रकार
 विचार कर, निमग्न अपना हित समझे उसी प्रकार
 आचरण कर ।

श्रीज्ञानभूषण महारक्तचन्द्रज्ञान तरंगिणीमें कहते हैं—

म कोऽपि परमानन्दश्चिद्रूपध्यानतो भवेत् ।

॥ १ ॥ तदशोऽपि न जायेत त्रिगुणत्वापिनामपि ॥ २ ॥

अर्थ—शुद्ध चेतन्य स्वरूपके ध्यानसे कोई ऐसा ही महज परमानन्द प्राप्त होता है उसका अग भी इन्द्रादिकी प्राप्त नहीं होता ।

ये याना याति यास्यति योगिन शिखमपठ ।

ममोमाध्वैर चिद्रूप शुद्धमानदमंदिर ॥ २ ॥

अर्थ—जो योगी मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्त कर चुके, कर रहे हैं और करेंगे उसमें शुद्ध चिद्रूपका ध्यान ही प्रधान कारण है, वही परमानन्दका वास है ।

मर्मेषामपि कार्याणां शुद्धचिद्रूपचिंतन ।

सुखमाध्व निनाग्नीनत्मादीदामुत्र सौख्यकृत् ॥ ३ ॥

अर्थ—मम ही भावोंमें शुद्ध चिद्रूपका चिंतन सुख-माध्व है क्योंकि यह अपने ही आधीन है और इसके द्वारा इस लोक तथा परलोकमें सुखकी प्राप्ति होती है ।

निषयानुभवे दुःख व्याकुलत्वात् मता भवेत् ।

निराकुलत्वात् शुद्धचिद्रूपानुभवे सुख ॥ ४ ॥

अर्थ—निषयोंके भोगनेमें प्राणियोंकी दुःख ही होता है क्योंकि वहाँ व्याकुलता है । किंतु शुद्ध चिद्रूपके अनुभवमें सुख ही प्राप्त होता है क्योंकि वहाँ निराकुलता है ।

चिद्रूपे केवले शुद्धे नित्यानन्दमये सदा ।

स्ने निष्ठति तदा स्वस्थ कथ्यते परमार्थतः ॥ ५ ॥

अथ ॥ १०८ ॥ नित्य महजानदमई शुद्ध चिद्रूप
सुख ॥ १०८ ॥ १०८ ॥ उन्मै जो सदा ठहरता है वही,
१०८ ॥ १०८ ॥ १०८ ॥ है।

१०८ ॥ १०८ ॥ विभाजो हि चिदात्मनि ।

१०८ ॥ १०८ ॥ विना नास्ति सत्सुख ॥ ६ ॥

१०८ ॥ १०८ ॥ रंजायमान परिणाभको विभाज कहते

१०८ ॥ १०८ ॥ रहित शुद्ध चिद्रूपमें भाव हो तो
१०८ ॥ १०८ ॥ १०८ ॥ १०८ ॥ १०८ ॥ १०८ ॥ १०८ ॥ १०८ ॥ १०८ ॥
सुख प्राप्त नहीं हो सक्ता ।

१०८ ॥ १०८ ॥ सगतिमगस्य त्यागे चेन्मे पर सुख ।

१०८ ॥ १०८ ॥ तत् सगतिमगस्य भवेत् किं न ततोऽधिक ॥ ७ ॥

अर्थ—राहण स्त्री, पुत्रादिनी सगतिके त्यागनेसे ही
जय महजसुख होता है तो अतरगमें सर्व रागादि न वि-
स्थाक त्यागसे और भी अधिक सुख क्या नहीं प्राप्त होगा ?

१०८ ॥ १०८ ॥ पदन् नारान् मया भुक्त मयिकल्प सुख तत ।

१०८ ॥ १०८ ॥ तन्नापूर्वं निर्विकल्पे सुमेऽस्तीति ततो मम ॥ ८ ॥

अर्थ—मैंने बहुत नार, निरल्पमय, सामारिक सुखको
भोगा है, वह कोई अपूर्व नहीं है । इसलिये उस सुखकी
तन्ना छोड़कर अब मेरी इच्छा निर्विकल्प सहज सुख
पानेकी है ।

कयाति। कार्याणि शुभाशुमानि, क याति मगाधिद-
वित्स्वरूपाः । क याति रागादय एव शुद्धचिद्रूपकोऽह
स्मरणे न विभ. ॥ ९ ॥

अर्थ—मैं शुद्ध चैतन्य स्वरूप हूँ ऐसा धमण करते ही
न जाने कहाँ शुभ व अशुभ कार्य चले जाते हैं, न जाने
कहाँ चेतन व अचेतन परिग्रह चल जाते हैं तथा न जाने
कहाँ रागादि मिला जाते हैं ।

नाह किंचिन्न मे किंचिद् शुद्धचिद्रूपर विना ।

तन्मादन्यत्र मे चिन्ता वृथा तत्र लय भवे ॥ १० ॥

अर्थ—शुद्ध चिद्रूपको छोड़कर मैं और कुछ हूँ न
उद्य और मेरा है । अतः दूसरेकी चिन्ता करना बृथा है, ऐसा
जानकर मैं एक शुद्ध चिद्रूपमें ही लय होता हूँ ।

शुद्धचिद्रूपमदधानान्यत्कार्यं हि मोहज ।

तन्माद् यस्ततो दुःख मोह एव ततो रिपुः ॥ ११ ॥

अर्थ—शुद्ध चिद्रूपके ध्यानक मिराय चितने कार्य हैं
वे सब मोहसे होते हैं । उस मोहसे र्मरय होता है, यधमे
दुःख होता है, इससे जीरफा वैगी मोह ही है ।

रत्नयादिना चिद्रूपोपलब्धिर्न जायते ।

यद्यदिस्तपस पुत्री पितुर्दृष्टिरलाहकात् ॥ १२ ॥

अर्थ—जिस तरह तपके बिना शुद्धि नहीं होती, पिताके ।

१. बिना धृष्टि नहीं होती उमी
२. बिना रसायक नहीं होता है।

॥ १० ॥ ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ १३ ॥

१. 'मम' मरा है उसे चिन्तनसे बंध होता है तथा
२. 'मम' नष्ट है उसे चिन्तनसे मुक्ति होती है 'मम'
३. 'मम' नष्ट है और 'न मम' इन तीन अक्षरोंसे

अतान् गणस्थितान् सर्वान् सम जानाति पश्यति ।

॥ अरुणो गुणी योज्मौ शुद्धचिद्रूप उच्यते ॥ १४ ॥

अर्थात्-जो सर्व पदार्थोंको, जेसा उनका स्वरूप है उसी
 भासे, एक ही साथ देखता है व जानता है तथा जो निरा-
 कुल है और गुणोंका भण्डार है उसे शुद्ध चिंतन्य प्रभु
 परमात्मा कहते हैं ।

दुर्लभोऽत्र जगन्मध्ये चिद्रूपरुचिमारक् ।

ततोऽपि दुर्लभं शास्त्रं चिद्रूपप्रतिपादकं ॥ १५ ॥

ततोऽपि दुर्लभो लोको गुरुस्तद्वर्षदेशकः ।

वतोऽपि दुलभ भेदज्ञान चित्तमास्थिर्यथा ॥१६॥

अर्थ-इम लोभमे शुद्ध चैतन्यक स्वरूपही रचि रखने वाला मानव दुर्लभ है, उससे भी दुर्लभ चैतन्य स्वरूपके

वतानेवाले शास्त्रका मिलना है। उससे भी दुर्लभ उसके उपदेशक गुरुका लाभ होना है। वह भी मिल जाय तो भी चिन्तामणि रत्नके समान भेदविज्ञानका प्राप्त होना दुर्लभ है। यदि कटाचित् भेदविज्ञान हो जाये तो आत्मक व्याणमें प्रमाद न करना चाहिये।

ज्ञेयाप्रलोचनं ज्ञानसिद्धानां भविता भवेत् ।

आद्यानां निर्विकल्पस्तु परेषां भविरूपक ॥१७॥

अर्थ—जानने, योग्य, पदार्थोंका देखना व जानना सिद्ध और ममारी दोनोंके होता है। सिद्धोंक वह ज्ञानदर्शन निर्विकल्प है, निराकुल स्वाभाविक समभावरूप है जसमें समारी जीवोंके ज्ञानदर्शन भविकल्प है, आवृत्ततामहित है।

मपूज्यानां स्तुतिभुतियजनपट्कर्मोपश्रयकानां,

वृत्तादीनां दृढतरधरणसत्त्वपस्तीर्थयात्रा ।

मगादीनां त्यजनमजननक्रोधमानादिकानां—

भार्तृक्तं वरतरकृपया सर्वमेतद्विशुद्धय ॥१८॥

अर्थ—परमपूज्य देव, शास्त्रकी स्तुति, वन्दना और पूजन करना, सामायिक प्रतिक्रमण आदि छह प्रकारके आश्रयकोंका आचरण करना, सम्यक्चारित्रका दृढ रूपसे धारण करना, उत्तम तप और तीर्थयात्रा करना, प्रायश्चित्त आभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहोंका त्याग करना, और

प्राणाको उत्पन्न न होने देना,
 मृत्यु को उत्पन्न न होने देना अथवा कृपा करके आत्मा की
 हत्या न करने देना, ये सब बातें हैं। अर्थात् जो अपने
 प्राणा को उत्पन्न करके प्रमिलाया है वे उपर्युक्त बातों को
 जान-बूझकर अपनी आत्मा को शुद्ध बनायें।

२१५ अनदि गुणे रमोपदेशाश्च न मे कहते हैं —

मोहोन्निष्टेति मोहतममो भेद समुत्पद्यते ।

मोहोन्निष्टेति मोहतममो भेद समुत्पद्यते ॥

यस्यैव स्मृतिमात्रतोपि मग्नानन्तरं दहातरे ।

द्वयं तिष्ठति शृङ्गता सरममादन्यत्र किं धारति ॥१४६॥

अर्थात्—नव मोहरूपी अत्र नष्ट हो जाता है तभी
 ज्ञानज्योति उदीयमान होती है और आनन्ददशा व कृतक
 त्यता मदमा ही अन्तःकरणम मलकती है। जिसकी स्मृति
 मात्रमे ही आत्मा परमात्मा हो जाता है वह आत्मा देव
 शरीरके भीतर ही है। उसको तु शीघ्र ही खोज, बाहर
 और वहाँ दौड़ता है ?

मिन्नोऽहं पुरुषो बहिर्मलकृताच्चात्रानाविस्त्वपौघत ।

शब्दादथ मिदकमूर्तिरमल शात सदानन्दमाह ॥

इत्यास्या स्थिरचेतमो दृढतर साम्प्रादनारमिण ।

समाराधं भयमस्ति किं यदि तदप्यन्यत्र क प्रत्यय ॥१४८॥

अर्थ—मैं यहिर्मलकृत शरीर ३ नानाविकल्पममूहसे भिन्न हूँ और शब्दादिसे भी भिन्न हूँ । मैं एक चेतन्यमात्र मूर्ति, निर्मल, शांत और मदानदधारी हूँ । यदि शांत, आरमरहित और स्थिरचेताके ऐसी इदं श्रद्धा है तब उसको समार से क्या भय ? और क्या अन्यत्र आस्था ?

सतताम्यस्तभोगानामप्यसत्सुखमात्मजम् ।

अप्यर्पुर्न मदित्यास्था चित्ते यस्य स तत्त्वमित् ॥१५०॥

अर्थ—सदैव अभ्यासमें आए हुए इन्द्रियभोगोंका सुख असत्य है, किंतु आत्मजन्य सुख ही अपूर्ण सुख है ऐसी जिनके चित्तमें श्रद्धा है वही तत्त्वज्ञानी है ।

॥ एकमेव हि चैतन्य शुद्धनिश्चयतोऽप्यवा ।

कोऽनकाशो विमलपाना तत्राग्नयैकैरस्तुनि ॥१५॥

अर्थ—शुद्ध निश्चयनयसे एक चैतन्य ही मोक्षिनार्ग है । एक, अखंड वस्तु आत्मामें विकल्प उठानेको अरकाश ही कहाँ ?

साम्य निश्शेषशास्त्राणां सारमाहुर्निपथित ।

साम्य कर्ममहादावदाहे दागानलायते ॥ ६८ ॥

अर्थ—समताभाव ही सर्व शास्त्रोंका सार है ऐसा सिद्धान्तोंने कहा है । समताभाव ही कर्मरूपी महादृष्टके जलानेकी दागानलके समान है ।

अभ्यस्यतान्तरं किमु लोकमक्षया, मोहं कृशी कुरुन
तव वक्ष्या कश्चन । एतद्द्वयं यदि न किं बहुभिर्नियोगं,
वक्ष्ये ॥ किं किमपि प्रतुस्त्वपोमि ॥५०॥

अर्थ—ह मुन । अपने भीतर शुद्ध ज्ञानानंद स्वरूप का
सम्पन्न हो, लोगों को रिझाने से क्या लाभ ? मोह भाव को
पक्ष से शरीर को दृष्ट करने से क्या लाभ ? यदि मोह ही
हमारे आत्माभूषण का अग्रिम, ये दो बातें न हो तो
क्या भी नियम, व्रत, मयमसे र रण्यकलेशरूप भारी
तपसे क्या लाभ ?

श्रीपद्मनदि मुनि एतद्वचसस्तस्मिन् कृतं है—

केवलज्ञानदरमोरवस्वमात्र तत्पर मह ।

तत्र ज्ञानं न किं ज्ञातं दृष्टं दृष्टं श्रुते श्रुतम् ॥ १ ॥

अर्थ—यह आत्मा अनंतवान, अनंतदेशन अनन्तमुख,
और अनंतरीर्यवारी है । उसमें ज्ञान 'लेने पर क्या नहीं
जाना उसको देखा लेने पर क्या नहीं देखा और उसका
आश्रय लेने पर क्या नहीं आश्रय किया ?

साम्यं भद्रोद्योगनिर्माणं शेषदानन्दमन्दिरम् ।

साम्यं शुद्धात्मगौरुपं द्वारं मोक्षैकमग्रज ॥ २ ॥

अर्थ—समतामात्र ही मध्यमज्ञान का निमाता है समता
मात्र ही शाश्वत आनन्द का मन्दिर है, समतामात्र ही शुद्धा
त्मस्वरूप है, समतामात्र ही मोक्षमहल का एकमात्र द्वार है ।

नित्यानन्दमय शुद्ध चिम्बरूप मनातनम् ।

पश्यत्यात्मनि परं ज्योतिरद्वितीयमनव्ययम् ॥ ३ ॥

अर्थ—म नित्यानन्दमय, शुद्ध, चित्स्वरूप, सनातन, परमज्योति, अनुपम व अप्रिनाशी हूँ, ऐसे ज्ञानी आत्मा मैं अपनेको लखता है ।

मयोगेन सदा यात मत्तस्तत्परम् ।

तत्परित्यागयोगेन मुक्तोज्झमिति मे मति ॥ ४ ॥

अर्थ—जो जो उस्तु या अगस्था परके मयोगसे आई है वह मय मुझसे भिन्न है । उस मयको त्याग कर देनेसे मैं मुक्त हो हूँ, ऐसी मेरी बुद्धि है । ऐसा ज्ञानी जीव विचारता है ।

क्रोधादिकर्मयोगऽपि निरिकार परमम् ।

विशारकारिभिर्मोघैर्न विकारि नमो मयेत् ॥ ५ ॥

अर्थ—क्रोधादि कर्मोंक मयोग होनेपर भी वह उत्कृष्ट आत्मज्योति विकारी नहीं होती है । जैसेविहार करनेवाले मोघोंसे आराध विकारी नहीं होता है । यथार्थत ऐसा आत्माका स्वरूप है ।

किं मे रुग्ण्यत ब्रूयौ शुभाशुभनिशाचरौ ।

रागद्वेषपरित्यागमोहमन्त्रेण कीलितौ ॥ ६ ॥

अर्थ—मम्यगृष्टि विचारता है कि मैंने रागद्वेषके त्याग-

एव साम्यभावे मदात्मने शुभे न अशुभे कर्मस्वी दुष्ट
गात्रादौ शीलं दिशते तत्र ये विचारे भोगं क्वा विगाड
ज्वरं यतते ?

श्री १२-अनन्दि मुनि घम्भरमायण मे कहते हैं—

शु १२-अमाणायां आदममुन्यचिप विषयातीत ।

अत्राणि च मुह प्रणोयम ज च मिद्वान् ॥१९०॥

अ-आमास ममुपच, विषयातीत, अविनाशी, अ-
पुपय पुप चैवा मिद्वभगवानको ह वमा मनुष्योंकी भी
है ।

श्री १३-अमृतचन्द्राचार्य पुष्पार्थमिद्वपुषायमे कहते हैं—
यनागेन मुष्टिस्तेनागेनास्य यधन नास्ति ।

यनागेन तु रागस्तेनागेनास्य यधन भवति ॥ १ ॥

श्री १४-नितने अश सम्पर्दर्शन होता है उतने अशसे
बध नहीं होता है । परतु उमीके माथ जितना अश रागमा
होता है उमी रागरु अशसे बध होता है ।

योगात्प्रदशमघ स्थितिर्बन्धो भवति य क्वायान्तु ।

दर्शनरोचचारित्र न योगरूप क्वायरूपं च ॥ २ ॥

अ-योगोंसे प्रदशमघ और प्रकृतिबध होता है, क्वा-
योंसे स्थितिबंध व अनुमागमघ होता है । सम्पर्दर्शन ज्ञान
चाग्रि न योगरूप है, न क्वायरूप है । अतः, रत्नत्रय
बधका कारण नहीं है ।

१ निश्चयमिदं भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थम् ।

भूतार्थगोचरिमुखं प्राप्य भवोऽपि मत्तार ॥ ३ ॥

अर्थ—निश्चयनय यह है जो मृत्युार्थ मूल पदार्थको कहें। व्यवहारनय यह है जो अमृत्युार्थ पदार्थको कहें। प्रायः सभी ही संमारी प्राणी मृत्युार्थ वस्तुके ज्ञानसे विमुख हो रहे हैं।

२ व्यवहारनिश्चयो यः प्रपुष्य तत्त्वेन भवति मध्यस्थः ।

॥ प्राप्नोति दशनाया न तत्र फलमग्निरुल्लिख्य ॥ ४ ॥

अर्थ—जो व्यवहारनय और निश्चयनय दोनोंको जान-कर, मध्यस्थ हो जाता है वही शिष्य जिनवाणीके उपदेशका पूर्ण फल पाता है।

३ चाग्निं भवति यत्तु ममस्तस्माद्व्यपहरिष्यात् ।

मन्त्रलक्ष्म्याग्निमुक्तं विशदमुदामीनमात्मरूपं तत् ॥ ५ ॥

अर्थ—मर्न पापमवधी मत, नृत्न, नायत्री प्रवृत्तिका त्याग व्यवहारमम्यक्ष्म्याग्नि है और मर्न केषाओंसे रहित, वीतरागमत्त, निर्मल आत्माके स्वरूपका अनुभव निश्चय मम्यक्ष्म्याग्नि है, वह आत्मरूप ही है।

अप्रादुर्भाव गल्लु रागादीना भवत्यहिंसेति ।

तेषामवोत्पत्तिर्हिसेति जिनागमस्य संक्षेपे । ६ ॥

अर्थ—अपन पारलामोम रागादि भावोंका प्रगट न

होने दगा ही अहिंसा है और उन्हाका प्रगट होना सो ही हिंसा है । यह जिनागमका सार है ।

श्री पद्मनदि मुनि मद्भोगचन्द्रोदयमें कहते हैं—

तत्त्वमा एतावमव निश्चित योऽन्यदेशनिहित समीक्षते ।

यस्तु मुष्टियि मृत प्रयत्नत कानने मृगयते न मूढधीः ॥ १ ॥

अर्थ—आत्मतत्त्व निश्चयसे आत्मामें ही है । जो कोई उस तत्त्वको अन्य स्थानमें खोजना है वह ऐसा मूढ़ है जो अपनी मुष्टीमें बरी यस्तुको वनमें ढढता है ।

मणिशुद्धपरमात्मभाषना सनिशुद्धपदकारण भवेत् ।

सेनरेतरकृते सुवर्णतो लोहतश्च निकृती तदाश्रिते ॥ २ ॥

अर्थ—शुद्ध परमात्माकी भाषना शुद्ध पदका कारण है । अशुद्ध आत्माकी भाषना अशुद्ध पदका कारण है । जैसे सुवर्णसे सुवर्णके पात्र बनते हैं और लोहेसे लोहेके पात्र बनते हैं ।

श्रीपद्मनदि मुनि उपामक सरकारमें कहते हैं—

धीरनीग्वदेवत्र स्थितयोर्देहदेहिनी ।

मेदो यदि ततोऽन्येषु क्लृप्तादिषु वा कषा ॥ १ ॥

अर्थ—दूध और पानीके समान एक घेयमें स्थित शरीर और आत्मामें ही जब मेद है तब अन्य दूध आदि की तो क्या ही क्या है ? वे तो जुदे हैं ही ।

कर्मवधकलितोप्यवधनो द्वेपरागमलिनोऽपि निर्मल ।

दहमानपि च दहवर्जितश्चिमेतदखिल चिदात्मन ॥२॥

अर्थ—यह आत्मा कर्मवध सहित होनेपर भी कर्मवधसे रहित है, रागद्वेषसे मलीन होनेपर भी निर्मल है, देहमान होनेपर भी दह रहित है । आत्मा का सर्व माहात्म्य ही आश्चर्यकारी है ।

व्याधिनाह्नमभिभूयते पर तद्गतोऽपि न पुनश्चिदात्मक ।

उच्छिन्नेन गृहमेव दह्यते बाह्येना न गगन तदाश्रितम् ॥३॥

अर्थ—नीलोंसे शरीरको पीछा होता है परंतु उस शरीरमें व्याप्त चैतन्य प्रभुको पीछा नहीं होती है । जैसे अग्निकी ज्वालासे घर जलता है परंतु घरके भीतरका आकाश नहीं जलता है । अर्थात् आत्मा आकाशके समान निर्लेप तथा अमूर्तीक है, जल नहीं मरता ।

बोधरूपमखिलत्पाधिभिर्जित किमपि यत्तदत्र न ।

नान्यदल्पमपि तत्त्वमीदृश मोक्षहेतुरिति योगनिश्चय ॥४॥

अर्थ—सर्व रागादि उपाधियोंसे रहित जो कोई एक ज्ञानस्वरूप है सो ही हमारा है । अन्य कुछ भी परमाणु मात्र भी हमारा नहीं है । मोक्षका कारण यही एक तत्त्व है, यही योगियोंका निश्चित मत है ।

आत्मबोधशुचिनीर्यमद्भुत, स्नानमप्रकृतोत्तम बुधा ।

यन्न यात्यपरतीर्थकोटिमि, चालयत्यपि मलतदन्तरम् ॥५॥

अथ—प्राप्तवान् हा एक पवित्र श्रद्धालु, तीर्थ है।
इसी ता मयी नदाम नानीचन उत्तम स्नान करो। जो
श्रद्धालु कमल करोडा नन्याक स्नानसे नहा नाग
है। त है, उस य लोग वो दना है।

अथ—गुरुपास्ति म्याध्याय मयमनप ।।

गान चेति गृहस्थाना पट् कर्माणि द्विने ।। ६ ।।

अर्ग—देवपूजा, गुरुभक्ति, म्याध्याय, मयमनप और
दा ये गृहस्थोंके नित्य प्रतिदिन करनेके पेट कर्म हैं।

श्रीपद्मनदि मुनि मिद्रस्तुतिर्देवहेते है —

य मिद्वे परमात्मनि, गतिताग्न मृतीशिल,

ज्ञानी निचया म ण्य सञ्जज्ञानामग्रणी ।

तर्कपाशग्यादिशास्त्रमन्ति किं तत्र शून्यगतो,

ययोग विदधाति पद्मपिपय तद्वत्सामाख्या । १ ।।

अथ—जो विस्तीर्ण ज्ञानासार श्री मिद्र परमात्मानो
जानता है वही मय बुद्धिमानाम गिरोमयि है। यदि मिद्र
परमात्माक ज्ञानसे शून्य है तो तर्क, व्याकरण आदि शास्त्रोंको
जाननेसे क्या प्रयोजन? याए तो उमे ही कहते हैं, जो
निशानीको बेव मरु, अन्यथा क्या है। अथात् आत्मज्ञान
ही यथाज्ञान है, उसके बिना अनेक विद्याआका ज्ञान
भी आत्मविकारी नहीं है।

श्री पद्मनदिमुनि निश्चयपचाशत्मे कुरुते ॥ —

व्याधिस्तुदति शरीरं न माममृतं विशुद्धगोधमयम् ।

'अग्निर्दहति कुटीरं न कुटीरामक्तमावाशम् ॥ ११ ॥'

अथ—रोग शरीरको पीड़ा करता है, न कि अमूर्तों के शुद्ध ज्ञानमयी मेरी आत्माको । उसे अग्नि कुटीको जलाती है परन्तु कुटीर भीतरके आश्रितोंको नहीं ।

“नयात्मनो विकास कौ गादि रितु कर्मसमेवात् ।

स्फटिर्मणेरिव रक्तव्यमाश्रितात्पुष्पतो रक्ताशु ॥ २ ॥

अर्थ—निश्चयसे क्रोध आदि आत्मिक व्यापारिक
विचार नहीं है, परतु कर्मके मयधस है। 'जैसे स्फटिक
मणि स्वयं लाल नहीं है परतु लालपुष्पके मयधसे लाल
दीखती है।' आत्मा तो स्फटिक मणिके समान स्वच्छ है।

“ कुर्यान् रमं विरल्प किं धम तेनातिशुद्धम् ”

सुखमयोगजविकृतेर्न निहारी दर्पणो ॥३॥

अर्थ—कर्मोंके द्वारा विस्मय होकर मैंने अपने
रूप मुझे उमसे क्या ? यथार्थ मैं इन जगत्के इन
विकारी नहीं होता हूँ । जैसे विस्मय होकर मैंने
दर्पणमें दिखनेपर भी दर्पण स्वयं नहीं है ।

आस्ता महिरुपधिचयस्तनुवन्दस्त्रिभुजः

परमहृतत्वान्मत्तं कुतो विदुर्नृणां हि ।

अर्थ—तमामनसे उत्पन्न बाहरी उपाधिही बात तो न रह। शरीर, वचन और मनके विस्मयोंका समूह यों प्रकट हो जाता है। क्याहि में तो परम विद्युद्ध हैं, मेरा शरीर किसे हो सकता है ?

कर्म वा तत्कार्यं सुखमसुखं वा तदेव परमेव ।

अग्निश्च विषादो मोही विदधाति खलु नान्य ॥ ५ ॥

अर्थ—कर्म मिथ्य है और उसके कार्य सुख व दुःख भी मिथ्य हैं। उसमें मोही जीव हर्ष विषाद करता है, शरीरों का जीव नहीं।

अर्थ—अष्टांगगामी मूलाचार द्वादशानुमेक्षामें कहते हैं—

जह धातु धम्मतो सुज्झदि सो अग्निपा दु सतत्तो ।

तवन्त तद्वा विमुज्झदि जीगे कम्महिं कण्य व ॥ १ ॥

अर्थ—जैसे मुख्य धातु अग्निस घीके जानेपर मल रहित सुवर्णमें परिणत हो जाती है वैसे ही यह जीव आत्मामें तपतन्त्र तपके द्वारा कर्ममलसे छूटकर शुद्ध हो जाता है।

आणपरमारुदजुदो सीलवग्ममाधिसज्जमु जलिदो ।

दहइ तगो मवचीय तण्णट्ठादी जहा अग्नी ॥ २ ॥

अर्थ—जैसे अग्नि तृण व काष्ठको जला देती है ऐसे ही आत्मध्यानरूपी तपकी अग्नि उत्तम आत्मज्ञानरूपी पव-

नके द्वारा बढ़ती हुई तथा शील समाधि और सयमके द्वारा जलती हुई ससारके बीजभूत कर्मोंको जला देती है ।

श्रीवट्टकेरस्वामी मूलाचारधृष्टप्रत्याख्यानमें कहते हैं—

सम्म मे सञ्जभूदेसु वर मज्झ ण केणवि ।

आमा वोसारचाण समाहिं पविज्जए ॥ १ ॥

अर्थ—मैं सर्व प्राणियोंपर समभाव रखता हूँ, मेरा किसीसे वैरभाव नहीं है, मैं सब आशाओंको त्यागकर आत्माकी समाधिको धारण करता हूँ ।

खमामि सब्बजीराण सब्बे जीवा खमतु मे ।

मिची मे सब्बभूदेसु वर मज्झ ण केणवि ॥ २ ॥

अर्थ—मैं सब जीवोंपर समभाव लाता हूँ । सर्व प्राणी भी मुझपर सम करो । मेरा सर्व जीव मात्रसे मेरी भाव है, मेरा वैरभाव किसीसे भी नहीं है ।

ममत्ति परिवज्जामि शिम्ममत्तिमुगट्ठिदो ।

आलवण च मे आदा अग्गसेमाइ वोमरे ॥ ३ ॥

अर्थ—मैं ममताको त्यागता हूँ, निर्ममत्त्व भावसे तिष्ठता हूँ, मैं मात्र एक आत्माका ही अवलम्बन लेता हूँ और सब आलम्बनों को त्यागता हूँ ।

इंदियकसायदोसा शिग्धिप्पति तवणाणत्रिणएहिं ।

रज्जुहिं ति हु उप्पहगामी जहा तुरया ॥ ४ ॥

अर्थ—से कमार्गमें जानागले घोट लगाससे रोक
निय जात है उसी प्रकार तप, ज्ञान और नियमके द्वारा
ईश्वर व रक्षाके तार नष्ट कर दिये जाते हैं ।

नरा नरात्ममिलं प्रियमुहप्रियं यमिदंभूदं ।
नरात्मनो यत्तु उग्रं यत्तु सद्यदुस्मात् ॥ ४ ॥

११- ननवासीका पड़न, पाठन, मनन एक ऐसी
गोली जो शत्रुप्रियके मुगसे वैराग्य उत्पन्न करने
वाली है । अतः द्वय सुखरपी शमतको पिलान वाली है,
जो मगस व रोगादिसे उत्पन्न होनेगले मर दुखोंको
मग बनायासी है ।

श्री यद्वेत्तवामी मूलाधार समर्थसार अधिकारमें
कहते हैं —

सम्मत्तादो गाण शाणादो मच्चभावउपलब्धौ ।
उपलब्धपयत्थो पुणं सेयासेय प्रियाणादि ॥ १ ॥
सेयासेयनिदण्ण उद्धदुस्सीलं सीलं होदि ।
सीलफलेणभुदय तच्चो पुणं लेहदि प्रियाण ॥ २ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शनसे मम्यगान होता है । सम्यग्ज्ञानसे
सर्व पदार्थ का यथार्थ ज्ञान होता है । जिसको पदार्थोंका
यथाथ ज्ञान है वह हितकर व अहितकर भावोंको ठीक
जानता है । जो श्रेय व कुश्रेयको पहचानता है व कुश्रेयको

रको 'छोड़' देता है, शीलमान हो जाता है । शीलके फलसे सपूर्ण चारित्र को पाता है । पूर्णचारित्रको पाकर निर्वाणको प्राप्त कर लेता है ।

सज्जाय कुञ्चतो पचदियमपुटो तिगुत्तो य ।

एवदि य एयग्गमणो विणण्ण समाहिथो भिम्बू ॥ ३ ॥

१ ॥ अर्थ—शास्त्र व्याख्या करनेवाले के स्वाध्याय करते हुए पाँचों इंद्रिय धर्मा में होती हैं, मन, उचन, राग व्याध्यायमें रत हो जात हैं, ध्यानमें एकाग्रता होती है, विनय गुणसे युक्त होता है । स्वाध्याय परमोपकारी है ।

गारमविबल्लि य तणे मभंतरगाहिरे कुमलदिट्ठ ।

ण त्रिअत्थि ण त्रिय होददि मज्झायमम तपोरम्म ॥ ४ ॥

अर्थ—तीर्थस्नानों द्वारा प्रतिपादित गहरी, भीतरी बारह प्रकार तपमें स्वाध्याय तपके समान कोई तप नहीं है न होवेगा । अतः स्वाध्याय मन्त्र करना योग्य है ।

वोसल्लि भिक्खुदे त्रिणड वणुसुद जो चरित्तमपुण्णो ।

जो पुण चरित्तदीणो किं नम्म सुदण बहुण्ण ॥ ५ ॥

अर्थ—श्रुत्य शास्त्र हो या बहु शास्त्र हो जो चारित्रसे पूर्ण है वही समारम्भ जीतता है । जो चारित्र रहित है उसके बहुत शास्त्रों के जाननेसे क्या लाभ है ? मरत्य मन्त्र सुखका माधन आत्मानुभव है ।

श्रीगुरुदेवस्वामी ज्ञानागर अनगरभावनामें
कहते हैं,—

१. अस्मत्तु भुजति मुरी पाणधाम्यणिमिच ।

२. अस्मिन् धम्म पि चरति मोक्खदु ॥ १ ॥

३. गाड़ीके पहिनेमें तेल देकर रक्षा की जाती

४. प्राणेशी रक्षार्थ मोजन करते हैं, प्राणोंकी

५. रक्षा करते हैं, धर्मको मोक्षरु अर्थ आचरण

के हैं

श्रीगुरुदेवस्वामी मूलाचार पचाचार अधिकारमें
कहते हैं —

१. अस्मिन् सुदमधीद जदि त्रि प्रमादेय होदि त्रिस्तरिद ।

२. तमुगहादि परमत्र फलखाण च आयहदि ॥ १ ॥

अर्थ—जो विनयपूर्वक शास्त्रोंको पढ़ा हो और प्रमादसे
कालांतरमें भूल भी जावे तो भी परमार्थमें शीघ्र ही याद
हो जाता है तथा विनयमहित शास्त्र पढ़नेका फल केवल
ज्ञान होता है ।

३. आण सिक्खदि आण गुणेदि आण परस्म उरदिसदि ।

४. आणेण कुणदि आण आणविणीदो इवदि एमो ॥ २ ॥

अर्थ—जो ज्ञानी होकर दूसरोंको सिखाता है, ज्ञानका
पुन पुन मनन करता रहता है, ज्ञानमें दूसरोंको धर्मोपदेश

करता है तथा ज्ञानपूर्ण चार्ित्र पालता है वही सम्मग्नता नकी विनय करता है ।

श्रीकृन्दकुन्दाचार्य मोक्षपाहुड़में करने हैं—

जो मुक्तो व्यवहारे मो जोई जगण सज्जमि ।

जो जगदि बगहार मो मुक्तो अप्पखो कज्जे ॥ १ ॥

अर्थ—जो योगी जगतक व्यवहारमें मोता है वही अपने आत्माक कार्यमें जागता है और जो लोक व्यवहारमें जागता है वह अपने आत्माक कार्यमें मोता है ।

चरण हवइ मधम्मो धम्मो सो हवइ अप्पममभावो ।

मो रागरोमरहिओ जीवस्स अणणपरिणामो ॥ २ ॥

अर्थ—चारित्र आत्माका धर्म है । धर्म है वही आत्माका सममान है । और सममान उसे कहते हैं जो रागद्वेषरहित आत्माका अपना अनन्य परिणाम है ।

परदव्यादो दुग्गइ सद्व्यादो हु मग्गई होई ।

इय याऊण सद्व्वे कुणह रई निरय इयरम्मि ॥ ३ ॥

अर्थ—पर द्रव्यमें रति करनेसे दुर्गति होती है किंतु स्वद्रव्यमें रति करनेसे सुगति होती है ऐसा जानकर पर द्रव्यसे विरक्त होकर स्वद्रव्यमें प्रेम करो ।

उगगतवेणणणी ज कम्म खउदि भवहि चहुएहि ।

त याणी तिहि मुक्तो खवेइ अतोमुहत्तेण ॥ ४ ॥

अथ मिथ्याता । तैर तप करके निन कर्मोंको बहुत जन्मोम दाय करत है । कर्मोंको आत्मत्वानी सम्पद्यति मन बना दायको रक्त कर ध्यानके द्वारा एक अतमु-
रतमें क्षय कर गलता ।

सुहजोगग दुभार पण्ड । कुराड रगदो साह ।

मो दैतु हु अण्णगी राणी एत्तो हु निररीओ ॥५॥

अथ-गुन पटा जोक मयोग होनेपर जो कोई माधु रागमायसे पर पटा म प्रीतिभाज करता है वह अनीनी है । जो सम्पत्तानी है वह शुभ मयोग होने पर भी राग नहीं करत है, मध्माय रखते है ।

तरहिय ज गाया शायगिजुसो तरो रि अरुपत्यो ।

तम्हा शिखतवेण मनुत्तो लरड शिखाण ॥ ६ ॥

अथ-तपस्वित्त जो ज्ञान है और सम्पत्तान रहित जो तप है सो दोना हा मोचमाधनमें अकार्यकारी है अत नो ज्ञानमहित तपे है उममे ही निर्वाण प्राप्त होता है ।

८ श्रीकुन्दकुन्दाचार्य दर्शनपाहुटमें कहते हैं-

दमणभट्टा भट्टा दमणभट्टम् शिथि शिखाण ।

सिज्जति चग्गियभट्टा दमणभट्टा शि मिज्जति ॥ १ ॥

अर्थ-जो सम्पत्तर्जनमे अष्ट हैं वे ही अष्ट हैं । क्योंकि सम्पद्दर्शनसे अष्ट जीवसो कभी भी निर्वाणसा लाम नहीं

हो सकता है। जो चाग्रिसे अष्ट हैं परंतु मध्यक्त्रसे अष्ट नहीं हैं वे पुन ठीक चाग्रि पालन में द्वि हो मरेंगे परंतु जो मध्यमार्गसे अष्ट हैं ३ कभी भी द्वि न प्राप्त करेंगे।

जीरादिसदृश्य मम्मत्त जिगरेहि पण्णत्त ।

घनहारा शिच्छयदो अप्पोख डउडे सम्मत्त ॥ ७ ॥

अर्थ—व्यवहारनयसे जीरादि तपोभा श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है परंतु निज्यनयसे आत्मरति ही सम्यग्दर्शन है।

श्रीकुन्दकुन्दाचार्य भागपाहुंडमें कहते हैं -

बाहिरमगचाओ गिरिमरिदरिक्कट आगोमो ।

मयलो शाण्णज्जयणो खिरत्थओ भागरहिथाण ॥ १ ॥

अर्थ—निज महात्माओंक भागोंमें शुद्धात्माका अनुभव नहीं है उनका बाह्य परिग्रहका त्याग, पर्वत, गुहा, नदीतट, कदग आदि स्थानोंमें तप करना तथा मय ध्यान व आगमना पढ़ना निर्वय है।

भाग्यसुद्धिणिमित्त बाहिरमवस्म कीरण चाओ ।

बाहिरचाओ गिहलो अवमत्तमवज्जुत्तस्म ॥ २ ॥

अर्थ—बाहरी परिग्रह का त्याग भागोंकी शुद्धताके निमित्त किया जाता है। यदि भीतर परिणामोंमें कषाय है या ममत्त्व है तो बाहरी त्याग निष्फल है।

अथ शान्तिः । द्वादशानुप्रेक्षामे कर्तते है—

एतत्तु तरेदि पार विमयणि मचेण तित्तलोहेण ।

एतत्तु तरेदि पार विमयणि मचेण तित्तलोहेण ॥ १ ॥

०, २० प्राणी विषयोंके लिये तीव्र लोभी होकर

॥ १ ॥ हा हा वागता है, वही जीव नारकी व तिर्यच

॥ २ ॥ हा उम पापकर्मका फल भोगता है ।

एतत्तु तरेदि पार विमयणि मचेण तित्तलोहेण ।

शुद्धवत्तुपादयमेव चित्तं मन्त्रदा ॥ २ ॥

दध-वस्तुतः म एक अकेला हूँ मेरा कुछ भी नहीं
दे, म शुद्ध हूँ, ज्ञान-दर्शन लक्षणागता हूँ तथा शुद्ध भावकी
एकतासे ही अनुभव करने योग्य हूँ, ऐसा ज्ञानी मन्त्र
पितृभन करता है ।

जाइजरमरणगेमभयदो रक्खेदि अप्पणो अप्पा ।

तम्हा आदा सरणा बगेदयसत्तम्मवदिरिणो ॥ ३ ॥

अर्थ-जन्म, जरा, मरण, रोग व भयसे आत्मा ही
अपनी रक्षा आप कर सकता है । अतः बन्ध, उदय,
सत्त्वरूप कर्मोंसे मुक्त शुद्ध आत्मा ही अपना रक्षक है ।

समारहेदमारणयण सुहवणमिदि जिणुदिट्ठ ।

निण्णेवादिसु पजा सुहमायत्ति य हवे चेट्ठा ॥ ४ ॥

अर्थ-जिन वचनोंसे ससारके छेदका साधन बताया जावे

वे शुभ वचन हैं ऐसा जिनेन्द्रने कहा है। श्री जिनेन्द्रदेवकी पूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, सामायिक, मयम तथा दान आदिमें चेष्टा व उद्यम सो शुभ काम है।

श्रीकुन्दकुन्दाचार्य प्रवचनसारमें कहते हैं—

चारिस्त गलु धम्मो, धम्मो जो सो समोचि सिद्धिहो ।

मोहक्खोहग्निहीणो, परिणामो अप्पणो हि समो ॥१॥

अर्थ—निश्चयसे चारित्र्य धर्म है। जो धर्म है वह सम भावरूप है ऐसा (शास्त्रोंमें) कहा है मोहक्षोभरहित जो आत्माका स्वभाव है सो ही समभाव है।

रत्तो वधदि ऋम्म मुच्चदि कम्महिं रागरहिदप्पा ।

एसो वधसमामो जीवाण जाण रिच्छपदो ॥ २ ॥

अर्थ—रागी जीव कर्मोंमें बाधता है और रागरहित (वीतरागी) जीव कर्मोंसे छूटता है। यह जीवोंके वध तत्त्वका सचेष्टस्वरूप निश्चयनयस जानो। अर्थात् रागद्वेष समागके कारण हैं और वीतरागभाव मोक्षका कारण है।

णाह होमि परेसि ण मे परे सन्ति शाणमहमेको ।

इदि जो भायदि भाणे सो अप्पाण हवदि भादा ॥३॥

अर्थ—न मैं किन्हीं पर पदार्थोंका हूँ न पर पदार्थ मेरे हैं। मैं एक अकेला ज्ञानमय हूँ। इस प्रकार जो ध्याता ध्यानमें ध्याता है वही आत्माका ध्यानी है

परमात्म्याय ॥ गच्छा दहादियेसु जस्म पुणो ।
 ननु नहि न । नहि न सद्वि मन्नागमवगति ॥ ४ ॥

तदा ननु दह आदि पर पदार्थोंमें पर
 म शास्त्रों जानता हुआ भी सिद्धि

नहीं पाये, विष्णु न अप्पाया ।
 २१ ॥ अप्पा गामा न अप्पा वा ॥ ५ ॥

न । ॥ आत्परूप कहा गया है । आ माको
 प्रोक्त नहीं नेना रहता है अतः ज्ञानगुण
 और आत्मा ज्ञानस्वरूप है, तो भी गुण
 प्रपञ्चासे नामादि भेदोंमें ज्ञान अन्य है
 परतु पदार्थ भेद नहीं है । जहाँ आत्मा है
 वहाँ तब मात्र व्यापक है ।

शास्त्री ज्ञानमहानो अथाख्योयामा हि साक्षात्सु ।
 स्यात्ति न चमृता, ख्योयणोयणोसु विद्वति ॥ ६ ॥

अर्थ—माना आत्मा तब स्वरूपों रखन वाला है
 तथा भव पदार्थों में ज्ञानाद्वारा ज्ञेयम्प है जानने योग्य
 है । यह ज्ञानी ज्ञेयोंको इसी तरह जानते हैं निम्न तरह और
 रूपी पदार्थों को जानती हैं । अर्थात् और पदार्थोंमें नहीं
 जाना पदार्थ अस्मिन् नहीं प्रवर्ण करते हैं उसी तरह केवल-

ज्ञानीको ज्ञान, ज्ञेय पदार्थोंमें नहीं जाता और ज्ञेय पदार्थ, ज्ञानमें आकर प्रवेज नहीं कर जाते हैं। आत्मा अपने स्थान पर है, पदार्थ अपने स्थानपर रहते हैं। ज्ञेयज्ञायक सबसे आत्माका शुद्ध नाग मर्म ज्ञेयोंको जान लेता है।

‘प्राचार्यकल्प’ पट्टिनप्रवर आज्ञाधरजी धर्माभूतमें कहते हैं —

यनि और आचरका लक्षण ।

सुहृद्गोघो गलद् वृत्तमोहो निषयनि स्पृह ।

हिमादिरित नास्वर्गा धर्ति, स्वाच्छात्रमोज्ज्वल ॥ १ ॥

अर्थ—जो सुहृद्गोघो पुष्प चारित्रमोहनीय, कर्मके क्षयोपशम होनेपर निषयोस निस्पृह होता हुआ, हिमादिक पौत्र पापाका सर्वदण्ड त्याग करता है वह मुनि कहलाता है तथा, जो एकदण्ड त्याग करता है वह आचर कहलाता है।

सागार धर्मको धारण करनेके योग्य आचरके १४

‘आचरशत’ गुण ।

न्यायोपात्तवनी यजन गुणगुम्न् मद्भीमिर्गं भज-

धन्योन्यानुगुणं तदर्हगृहिणीस्वोनालयो हीमयः ।

युक्ताहारनिहारः आर्यममिति श्राव कृतज्ञो वशी,

शृणुन धर्ममिवि दयालुरधभी सागारधर्म चरेत् ॥ २० ॥

१४ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

अर्थ-१ न्यायसेवनरुमाना-स्यामिद्रोह, मित्र
द्रोह, विरयामपात, ठगना, चोरी करना आदि धन कमा
नेके निमित्त उपायासे गृहित वन कमानेका उपायभूत
अपने २ वरु अनुकूल जो सदाचार है उसको न्याय
कहते हैं और उस न्यायक द्वारा उपार्जन किये गये धनको
न्यायोपाचित वन कहत हैं। धार्मिक मननेमें न्याय्य आनी-
विज्ञान करना प्रमान गुण है।

२ गुणकी, गुणोंकी और गुणगुणोंकी
पूजा करना—अपना तथा परमा उपकार करनेवाले
गुणावा, इन गुणासे युक्त व्यक्तियोंके बहुमान, प्रशंसा
और नाना प्रकारसे उनकी सहायता आदि करनेके द्वारा
आदर, प्रशंसा आदि करना गुणपूजा कहलाती है। माता,
पिता और आचार्यकी त्रिभाल उदना सेवा करना गुरुपूजा
कहलाती है तथा सम्पन्नता, ज्ञान, मयमादिक गुणोंसे
शोभायमान पूज्य गुरुओंकी वैयात्रा करना, उनकी हाथ
जोड़ना, उनके सामने आनेपर आसनसे उठना आदि
उपचार विनयके द्वारा उनकी विनय करना गुणगुरुपूजा
कहलाती है। इस प्रकार गुण, गुरु तथा गुणयुक्त गुरुओंकी
पूजन करना, उपासना करना अपनेमें गुणा विकाशके लिये
माधक गुण है।

३ सद्गी—दुमरेकी श्रुती निंदा और कठोरता आदि

वचनोंके दोषोंसे रहित प्रशस्त तथा उत्कृष्ट वचन बोलना ।

४ परस्परमें अविरोधभावसे त्रिवर्गको सेवन करना—धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थोंमें त्रिवर्ग कहते हैं । इनमेंसे कामका कारण अर्थ है अर्थका कारण धर्म है और जो जीवोंको समारके दुःखोंसे छुड़ाकर उत्तम सुख देवे उसे धर्म कहते हैं । बुद्धि, धर्म और जमीनको अर्थोत्पादक होनेसे अर्थ कहते हैं । अथवा जिसके द्वारा ऐहिक कार्योंकी सिद्धि होती है उसको अर्थ कहते हैं । तथा पञ्चेन्द्रियोंके विषयोंको काम कहते हैं इनमें स्पर्शन व रसना इन्द्रियके विषयको भोग और श्रेष्ठ इन्द्रियोंके विषयको काम कहते हैं । धर्मक बिना अर्थकी और अर्थके बिना कामकी प्राप्ति नहीं हो सकती । अतः प्रत्येक गृहस्थको परस्परमें अविरोध भावसे ही धर्म, अर्थ, और काम इन तीनों पुरुषार्थोंका सेवन करना चाहिये ।

५. योग्य स्त्री, स्थान तथा आलय—त्रिवर्गके सेवन करनेमें बाह्यकारणभूत कुलीनता आदि गुणोंसे युक्त योग्य स्त्री, धर्म तथा अर्थोपार्जनप्रधान स्थान और योग्य मकान होना चाहिये ।

६. लज्जाशील होना । ७. योग्य शास्त्रविहित आहार तथा विहार करनेवाला । ८. आर्घ्यपुरुषोंकी

महानि करने वाला । ९ हि । अहित विचार करने वाला ।
१० दुम्हरे द्वारा अपने ऊपर जिये गये उपकारों को
चानने व मानना । ११ उन्निशोको वशमें करने
गना । १२ धमकी बातों को सुननेवाला । १३ दुखी
पाशियापर दया करनेवाला और १४ पापोंसे डरनेवाला ।

इस प्रकार उपर्युक्त चौदह गुणोंक द्वारा युक्त पुरुष-
को पागामधमको गारण करनेक योग्य माना गया है ।

आत्मकोका सम्पूर्ण धर्म ।

सम्पत्तमममलममलान्यगुणगुणान्नात्रानि मर्यान्ते ।
मल्लेखना च निधिना पूर्ण सागारवमाज्यम् ॥ ३ ॥

अर्थ-शफादिक दोषासे रहित सम्पद्जन, निरनिचार
अणुत्रत, गुणत्रत तथा गिनात्रत और मर्या ममयमें निरि-
पूर्वक सल्लेखना करना, इस प्रकार यह आत्मका सम्पूर्ण
धर्म है ।

मन्त्रपातसे जानि ।

यदेकमिन्दो प्रचरन्ति जीवा-

ये चेतु गिलोमीमपि पूरयन्ति ।

यद्विक्रवाञ्चेमममु च लोका-

यस्यन्ति तस्मै शमवश्यमपद्येत् ॥ ४ ॥

अर्थ-यदि, मद्यकी एक चेतु जीव फैले तो वे जीव

तीनों लोगोंको भी पूरा कर दत्त है, और जिन मद्यके द्वारा मूर्च्छित हुए पुरुष इमलोन्को तथा परलोन्को भी निगाह देते हैं उस मद्यको अपने कन्वाणको चाहनेवाला पुरुष अनरप ही छोड़े ।

माम खातेसे गति ।

हिंस स्वयम्भूतस्यापि स्थातन् वा स्पृशन्पलम् ।

पक्वापक्वा हि तन्पेक्ष्यो निगोटीयमुत सदा ॥ ५ ॥

अर्थ—अपने आप मर हुए जीवोंके भी मांसको खाने वाला अथवा छूनेवाला पुरुष हिंसक होता है क्योंकि पके अथवा कच्चे दोनों ही प्रकारके मांसके छोटे २ डुकड़ेखुड सदैव अन्तर्निगोटिया जीवोंको उत्पन्न करनेवाले होते हैं ।

मधु (शहद) के दोष

मधुरुद्मातघातोत्य मधुशुच्यपि पिन्दुशः ।

यादन् बध्नात्यघ सप्त ग्रामदादाहसोऽविरम् ॥ ६ ॥

अर्थ—मधुको खरनेवाले प्राणियाँ, ममूहक नाशसे उत्पन्न होनेवाली, और अपवित्र केवल एक वृद्ध भी मधुको खानेवाला पुरुष मात्र ग्रामोंके जलानेके पापसे अधिक पापको पावता है ।

मरुग्रन (मरनीत) के दोष ।

मधुग्रमरनीत च मुञ्चेत्तत्रापि भृगिः ।

दिमुहता परं शशत्ममजन्त्यगिराशय ॥ ७ ॥

अर्थ—वार्मिक पुरुष मधुही तरह मकलनको भी छोड़े, क्योंकि मकलनम भी दो सुहृदके बादमें निरंतर बहुतसे पादियोंके समूह उत्पन्न होते रहते हैं ।

पच उदुम्बर फल के दोष

विम्वलोदुम्बरल्पच वटफलगुफलान्यदन ।

हन्त्यार्द्राणि गतान् शुष्का एवपि स्व रागयोगतः ॥८॥

अर्थ—गीले अथवा सूके भी पीपर, ऊमर, पाकर वड़ तथा ण्डूमर इन पाँच उदुम्बर आदि फलोंको खानेवाला पुरुष तम जीवोंको और रागके सबधसे अपनी आत्माको भी नष्ट करता है ।

आवकके अष्ट मूलगुण

मधोदुम्बरपञ्चकामिपमधुत्पागा कृपा प्राणिनां ।

नक्त भुक्तिमिष्ट कराम्पविनुतिस्तोय सुखसृतम् ॥

एतेऽष्टौ प्रगुणा गुणा गणधरैरागारिणा कीर्तिता ।

एकेनाप्यमुना विना यदि भवेद् भूतो न गेहाश्रयी ॥ ९ ॥

अर्थ—मद्य, पाँच उदुम्बर, माँस और मधुका त्याग, जीवोंपर दया, रात्रिमोजनत्याग, आप्तस्तुति, और छानकर पानी पीना ये आवकोंके आठ मूलगुण गणधरोंने बताये हैं । ये सभी गुण आवकमें रहना चाहिये । इनमेंसे यदि एक भी गुण न हो तो वह आवक नहीं हो सकता ।

पूजामें द्रव्य चढ़ानेका लौकिक फल

वार्धारा रत्नस शमाय पदयो सम्यक्प्रयुक्ताहृत ।

सद्गन्धस्तनुमौरमाय विभवाच्छेदाय सन्त्यक्षता ॥

यद्गुः स्रग्दिप्रिञ्जत्तने चरुभास्याम्याय दीपस्त्विये ।

धूपो विस्मृद्गुत्सनाय फलमिष्टार्वाय चार्वाय स. ॥१०॥

अर्थ—पूजन करनेवालेको श्री अर्हन् भगवानके दोनों चरणकमलोंमें विधिपूर्वक चढ़ाई गई जलकी धारासे पापोंकी शान्ति, उत्तम चन्दनसे शरीरकी सुगन्धि, अक्षतम विभूति निरंतर बने रहनेकी, पुष्पसे रचर्वाय मन्दारवृक्षकी पुष्पमालाकी, नवेद्यस लक्ष्मीक स्वाधीपनेकी, दीपसे कान्तिकी, धूपसे उत्कृष्ट सौभाग्यकी, फलसे मनोवाञ्छित फलकी और अर्घ्यमें ससारमें विशेष मान तथा प्रतिष्ठाकी प्राप्ति होती है ।

पूजाका लोकोत्तर फल

चैत्पादौ न्यस्य शुद्धे निरुपरमनिरौपम्यतत्तद्गुणौघ

श्रद्धानात्मोऽयमर्हन्निति जिनमनवैस्तद्विधोपाधिमिद्वै ।

नोराघैश्चारुकाव्यम्फुरदनगुणगुणायामरज्यन्मनोभि-

र्मन्त्रोऽर्चन् दृग्विशुद्धिं प्ररलयतु यया कल्पसे तत्पदाया ॥११॥

भावार्थ—भक्तिपूर्वक पूजन करनेसे दर्शनविशुद्धिकी प्राप्ति और उसका प्रतापसे कालान्तरमें तीर्थकर पदवीकी प्राप्ति होती है ।

श्रुतपूजक परमार्थीन जिनपूजक ही हैं

य यजन्ते श्रुत मन्त्रया ज्ञे यजन्तऽग्निमा जिनम् ।

न विश्विदन्तराष्ट्र-राष्ट्रादि श्रुतदेवयो ॥ १२ ॥

अर्थ—तो पुरुष भक्तिपूर्ण गाग्रही पूजा करते हैं वे पुरुष परमार्थीसीतसे जिन्द्रभगवान्भी पूजा करते हैं क्योंकि दर्शन, शास्त्र और परमात्मामें कुछ भी अन्तर नहीं है ऐसा कहते हैं। अर्थात् भक्तिभासे निनवाणीसी पूजाका आदरभाव रखना ही मयी निनपूजा है। कारण, आप्तपर नेष्टीने परमार्थसे जिन और जिनवाणीमें अन्तर नहीं पताया है।

ज्ञान और तप पूज्य हैं

ज्ञानमर्च्य तपोऽङ्गत्वात्तपोऽर्च्यं तत्परत्नत ।

द्वयमर्च्यं शिवाङ्गत्वात्तद्वन्तोऽङ्गा यथागुणाम् ॥ १३ ॥

अर्थ—अनगनादिक तपोका कारण होनेसे ज्ञान पूज्य है, तप ज्ञानके मादाम्यका वगानेवाला होनेसे पूज्य है तथा मोक्षके कारण होनेसे दोनों पूज्य हैं और, अपने गुणोंके अनुमार ज्ञानसे युक्त, तपसे युक्त तथा ज्ञान और तप दोनोंसे युक्त पुरुष भी उत्तरीचर, अधिक पूज्य हैं।

--- ब्राह्मं मुहूर्त उत्थाय—पुनश्चापमस्कृतिः ।

कोऽहं को मम धर्म किं त्रतचेति परामृशेत् ॥ १४ ॥

— अर्थ—ब्राह्म मुहूर्तमें उठ करके पढ़ा है पंच नमस्कार
मनो निगने एमा थावरु, मे कौन हूँ, मेरा कौनसा धर्म
है, और मेरा क्या मत है इस प्रकारमें चिन्तन करे।

श्रीमदिरजीमें निषिद्ध क्रम

मध्ये चिनगृह हाम विलाम रु, रुथा रुलिम् ।

निद्रा निष्ठुतमाहार चतुविधमपि त्यजेत् ॥ १५ ॥

— अर्थ—श्रावक मदिर्जीम हँमीको, चित्तको बलुपित
करनेवाली भृगारकी, चेष्टाएँ काम क्रोधको बढ़ानेवाली
क्याएँ, फलहकी, निद्राको, बूकना आदि और चारों प्रका-
रके आहारको न करे।

आत्महितकारी पुटकर पद्य

— प्रथमका लक्षण —

रागादिषु च दोषेषु तितृत्तिनिरर्हणम् ।

त प्राहु प्रथम प्राज्ञा समन्तात्प्रभूषणम् ॥ १ ॥

अर्थ—तत्त्वज्ञानी पुरुष रागद्वेषादिक दोषोंमें तिर के नहीं
जानेको प्रथम कहते हैं और यह प्रथमसूत्र प्रतीका
भूषण है।

— द्वितीयका लक्षण —

शरीरमानमा गन्तुवेदनाप्रमयाद्भ्यात् ।

स्वप्नेन्द्रजालसंस्थाद्वीति स्वप्ने उच्यते ॥ २ ॥

अर्थ-शारीरिक रोगादिरूप व्याधियों, मानसिक चिं-
ताएँ तथा अधिरो और आगतुक आकस्मिक दुःखोंको उपन्न
करनेवाले तथा स्वप्न और इन्द्रजालके समान अस्थिर ससारसे
लग्न होनेको समझ कहते हैं ।

अनुकम्पाका लक्षण

सत्पे सर्वत्र चित्तस्य दयार्द्रतया दयालव ।

धर्मस्य परम गूल मनुकम्पा प्रचक्षते ॥ ३ ॥

अर्थ-सम्पूर्ण प्राणियोंपर चित्तवासी दयार्द्रताको दयालु
गुण (श्रीगुरु) अनुकम्पा कहते हैं और यह अनुकम्पा
ही धर्मका मुख्य कारण है ।

आस्तिक्यका लक्षण

आप्ते श्रुते व्रते तत्त्वे चित्तमास्तिक्यमयुतम् ।

आस्तिक्यमास्तिक्यैरुक्त युक्त युक्तिगरेण वा ॥ ४ ॥

अर्थ-सर्वज्ञ, शास्त्र, ऋषि, और सात तत्त्वोंमें अस्तित्व
बुद्धि रखनेको आस्तिक्य पुष्ट अथवा युक्तिधर परीक्षाप्रधा
नी पुरुष आस्तिक्य कहते हैं ।

अन्यायोपार्जित धनकी दशा

अन्यायोपार्जितं वि दशमत्तर्पाणि तिष्ठति ।

प्राप्ते त्वेकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति ॥ ५ ॥

अर्थ-अन्यायसे उपार्जन किया गया धन अधिकसे

अधिक दश वर्ष तक ही ठहरना है। ग्यारहवें वर्षमें वह सब मूलसहित ही नष्ट हो जाता है।

निंदा करनेका फल

परपरिभवपरिवादा-दात्मोत्सर्पाच्च वक्ष्यते कर्म ।

नीचैर्गोत्र प्रतिभयमनेरुभयकोटिदुर्मोचम् ॥ ६ ॥

अर्थ—दूसरेका तिरस्कार तथा उसकी निंदा करनेसे और अपनी प्रशंसा करनेसे प्रत्येक भयमें नीचगोत्रकर्मका वध होता है। नीचगोत्रकर्मका वध श्रोत्र भयोंमें भी छूटना पड़ा ही काठिन है।

अविरोध भावसे त्रिवर्ग पालन न करनेका फल ।

यस्य त्रिवर्गशून्यानि दिनान्यापान्ति यान्ति च ।

स लोहकारमस्त्रेण श्वमश्वपि न जीवति ॥ ७ ॥

अर्थ—परस्परमें अविरोध भावसे धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थोंक सेवन न्ये बिना ही जिनके दिन आते तथा जाते रहते हैं वह पुरुष लुहारकी धोंकनीक समान आसों लेता हुआ भी मरे हुएके समान है।

सत्संगका फल ।

यदि सत्सगनिरतो मयिष्यसि मयिष्यसि ।

अथ सन्ज्ञानगोप्तीसु पतिष्यसि पतिष्यसि ॥ ८ ॥

अर्थ—यदि तू सज्जन पुरुषोंकी सगतिमें लीन रहोगे

तो यद्यपि नी उच्चम ज्ञानकी गोष्ठीमें पढ़कर उच्चम, ज्ञानको प्राप्त होगा ।

आत्मचरित्रका निरीक्षण

प्रत्येक प्रत्यक्ष ज्ञान नरश्चरितमात्मन ।

१०० पशुमिस्तुल्य इत्यु सत्पुरुषमिति ॥ ९ ॥

अ १-प्रत्यक्ष ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान अपने द्वारा किये गये कार्यो का ज्ञान चाहिये और फिर निवार करना चाहिये कि ज्ञान मन कोनसे कार्य तो पशुओंक समान किये हैं तथा ज्ञान काय ज्ञान पुरुषोंक समान किये हैं ।

कृतज्ञता और कृतज्ञताका फल

निधित्तुरेन तन्निहानमध्य कृतज्ञताया समुपदि पारम् ।

गुणैरुपेतोऽयिरित्ते कृतज्ञा नमस्तमुदेनेयते हि लोऽम् ॥ १० ॥

अर्थ-निधित्तुरेन अपने अपने अपने परिवार और सम्मान लोगोंको अपने ज्ञान करना चाहते हो तो सर्वज्ञता कृतज्ञता । क्योंकि सम्पूर्ण गुणोंमें युक्त श्री गुरुदेव सम्मान लोगोंको पीडित कर देता है ।

दया धारण करनेमें प्रवृत्ति युक्तिका निर्देश

प्राणा यथाऽऽत्मनोऽमीष्टा भूतानामपि ते तथा ।

आमीपम्वेन भूताना दया कुर्वीत मानव ॥ ११ ॥

अर्थ—जिस प्रकार तुमको अपने प्राण प्रिय है, उन्हीं प्रकार सम्पूर्ण जीवों को भी अपने प्राण प्रिय है। इसलिये मनुष्यों को अपने गमान की सम्पूर्ण प्राणियों पर दया करना चाहिये।

दुमरों के प्रति उत्तम व्यवहार करो

श्रुपता धर्ममर्षस्व श्रुता स्वाराग्यनाम् ।

आत्मन प्रतिदलानि परेषा न समाचरत ॥ १२ ॥

अर्थ—धर्मक सामको सुनो तथा सुन करके उसपर विचार करो, क्योंकि सम्पूर्ण धर्मों का मार यही है कि जो कार्य अपने प्रतिकूल है उन कार्यों का दुमरों के प्रति मत करो अर्थात् दुमरों के द्वारा किये गये जिन कार्यों में तुमको दुःख होता है उन कार्यों का तुम दुमरों के प्रति भी मत करो।

पाँच उदुम्बरफलों के टाप । ।

अइत्यथोदुम्बरप्लव न्यग्रोशादिकल्पपि ।

प्रत्यक्षा ग्राह्ये सूला सन्मार्थागमगोचरा ॥ १३ ॥

समस्तजीवव्यपधातवृत्तिभिर्न गीरैरस्ति मेम मेमानता ।

अनतजीवव्यपरोपशोणामुदुम्बराहारतिलोलचेतमाम् ॥ १३ ॥

अर्थ—इन पाँच उदुम्बरों में भी स्थूल प्राणी तो प्रत्यक्ष दीखते हैं। तथा शरीरानुसार सूक्ष्म जीव भी पाये जाते हैं। पाँच उदुम्बरों के खाने की जिनके चित्त में लोलुपता है वे

अनन्त जीवोंके सब करनेवाले हैं अतः उनकी सख्यात जीमोंके मारकर आजीविका करनेवाले धीवरोंके साथ भी समानता नहीं है ।

जिन धर्मके उपदेश सुननेके पात्र ।

अष्टाविंशदुस्तरदुरितान्तनान्यमूनि परिरज्य ।

जिन धर्मदण्डाया भरति पात्राणि शुद्धयि ॥ १४ ॥

अर्थ—अनिष्ट, दुस्तर और पापोंके घर जो सप्तव्य-
सा है उसको ओढ़कर और अष्ट मूलगुण धारणकर शुद्ध
हूँ मैं शुद्धि जिनकी ऐसे गृहस्थ जिनधर्मके उपदेश सुनने
के पात्र हैं ।

आयक का धर्म ।

दान पूजा निज शीनगुणसम्पत्तिभिः ।

आवश्या मतो धर्म ससारारण्यपायक ॥ १५ ॥

आराध्यते जिनेन्द्रा गुप्त्य च निजविधार्मिके प्रीतिरुच्चैः ।

पात्रेभ्यो दानमापन्निहतननकृते तच्च कारुण्यशुद्धया ॥

तत्त्वाम्याम स्वर्गीयत्रातिरमल दर्शनं यत्र पूज्य ।

तद्दीप्यते पुमानामितरदिह पुनर्दुःखं मोहपाश ॥ १६ ॥

अर्थ—पात्रदान निजपूजा, शील पालना और चार
प्रकारका उपवास करना यह समारका भस्म करनेवाला
आयका का धर्म है । जिस गृहास्थ्यामें जिनेन्द्रकीपूजा,
गुरुकी विनय, धार्मिकोंसे गाढ़ी प्रीति, पात्रदान, करुणा

बुद्धि, विषद्वयस्नाही सहायता, निर्मज मय्यदर्शनकी पूजा, तत्त्वान्याम और अग्ने त्रतोमें अनुराग पाया जाता है वही विवेकियोंकी सच्चा गृहस्थाश्रम है और जहाँ यह बातें नहीं हैं तो केवल दुःखद मोहका जाल है, गृहस्थाश्रम नहीं।

—❀— समयसारकलश —❀—

(श्री अमृतचन्द्राचार्य)

एरमेव हि तत्सगद्य विषदामपद पदम् ।

अपदान्येव भामन्ते पदान्यन्गानि यत्पुर ॥ ७७ ॥

अर्थ—विषदाओंसे रहित एक आत्माके शुद्ध पदका ही स्वाद लेना चाहिये । जिसके सामने और सब पद अपोम्य प्रतिमामित होते हैं ।

॥ एव मुस्त्या नयपक्षपात स्वरूपगुप्ता निवमन्ति नित्य । निरु
लज्जानन्वुतशान्तचित्तास्त एव साक्षादमृत विपति ॥ ७४-३ ॥

अर्थ—जो कोई नयपक्षपात छोड़कर सदैव आत्मस्वरूपमें रत रहते हैं वे ही निरुल्लसममूहकी मुक्तिद्वारा शान्त चित्त होते हुए साक्षात् आ मायन का पान करते हैं ।

स्वागताच्छ्रद्ध ।

सर्वतः स्वरमनिर्मरमान चेतये स्वयमह स्वमिहैरम् ।

नास्ति नास्तिममकथनमोह शुद्धचिद्धनमहोनिधिरस्मि ॥ ३०

अर्थ—यह मोह मेग कुछ भी नहीं है, दुःख भी नहीं है।
 पतङ्ग-नपरे निचमम्प जो चान्द्रमा परिणमन उमसे
 परिपूर्ण भावनाता जेवा मै डन लोहम आपहीरि अपने
 एक या ममम्परा शत्रुमय रंम् । रस्तुत मै शुद्ध चेत
 न्यक ममम्प नेत्र पेंडरा निरि हैं।

विना—मोहके स्थानम, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया,
 लाभ, रम, नोकर, मन, यवन दाग, श्रोत, चक्षु, घ्राण,
 रसन, स्पर्शन ए मोल पद कन क्रमसे रखर अथका
 पुन पुन विना मनन करना चाहिये।

स्तुतुष्टु धनम् ।

नास्ति मर्षोऽपि मम्यन्व परद्रव्यात्मतत्त्वयो ।

रुत्तममममममभाव, तत्तत्तुता कुत ॥ ८ ॥

अर्थ—परद्रव्यका और आत्माका मोह भी मय नहीं
 है। कर्ताकर्म मयवर्क अभावम परद्रव्यका रत्तीपना कैसे
 समझ है? यथात् किमो भी प्रकार नही।

वमनतिलका धनम् ।

नानी करोति न न वदयते च कर्म,

जानाति कंजलेमय मिल तत्त्वमानम् ।

जानन्पर, ररखवेनयोरमोपात्,

शुद्धस्वभावनियत सहि मुक्त एव ॥ ९ ॥

अर्थ-जानीत कर्मको कर्ता है और न ही उसका वेदन करता है । मात्र कर्मस्वभावका ज्ञाता है । मात्र ज्ञाता होता हुआ, कर्मकर्तृत्व और कर्म मोक्षतृत्वके अभावमें, शुद्धस्वात्मस्वभावमें नियत है । अतः निश्चयसे मुक्त ही है-कर्मोंसे रहित ही है ।

अपि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली स

अनुमय भवमूर्च्छं पारर्ववर्त्तो मुहूर्त्तम् ।

पृथगथ मिलसत स्व समालोक्य येन,

त्यजसि भगिति मूर्च्छा साकमेकत्वमोह ॥२३-१॥

अर्थ-अरे भाई ! किमी तरह हो, मरकरके भी आत्मी-कतस्वका प्रेमी हो और दो घड़ीके लिये शरीरादि सर्व मूर्तीक पदार्थोंका तू निकटवर्ती पड़ोसी बन जा, उनको अपनेसे मिला जान और आत्माको अनुभव कर । तो तू अपनेको प्रकाशमान देखता हुआ मूर्तीक पदार्थके साथ एकताके मोहको भूट ही त्याग देगा ।

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन

स्वयमपि निमृत् सन् पश्य यणमासमेकः ।

हृदयसरसि पु स पुद्गलाद्भिन्ननाम्नो

ननु किमनुपलब्धिर्माति किं चोपलब्धिः ॥२४॥

अर्थ-अरे भाई ! वृथा अन्य कोलाहलसे विरक्त हो

अथ च विद्येन्ते । करेण भ्रामनेकतो एह आत्मतत्त्वका ।

२- 'सुखे तेन हृदयकपी भरोवरम' पुद्गलसे मित्र तेज

॥ १३ ॥ तूकी कर्मा प्राप्ति न होगी ? अथवा होगी ।

११ गौतमपुत्रमही रागिण्यो नित्यमत्ता? - १ -

८७॥ यन्मिन्नपदमपठ तद्वियुध्यमन्त्राः । ॥ १ ॥

१२३ मिदमिद यत् नैतन्यधातु - १११ - १२

शुक्लं हृदे. गुरुतमस्तथापि भावतमेति ॥६७

१-६ अ प पुत्सो । अनादि मगारसे लेखर प्रत्येक

१. वे ग़ज़ी-उ-मक़्त होने लुए निम्न पदमें सो रहे हैं

न-तारा न-तारा है, ब्रह्म तेरा पद नहीं है ऐसा भले प्रकार

७ तू तूँ तूँ घर आ, - डूँर आ, तेरा 'पद' यह है जहाँ

रतन्व धातुमय आत्मा द्वयकर्म वः भारकर्म दोनोसे शुद्ध

अपने व्यापारिकरससे पृथक् भेदा ही प्रियचिन्तमान रहता है ।

१. आत्मभावान्कृत्यात्मा परमागन्मना पर' । ११ ।

आत्मनः ह्यग्निना भाग्यं परमं परमं तत् ॥११-३॥

अथ-आत्मा आत्ममित्रिकी-इति-हृदये पदाय
विष्णोः कर्तुं च महाभास्य विष्णवे च । अथ आत्ममित्रे

नित्यने मात्र हैं यह साधनरूप ही है। साधने नित्यने मात्र हैं

ये परम्य ही हैं ।

॥ आत्मा ज्ञान-स्य ज्ञान-ज्ञासादन्यन्करोति ॥ १ ॥

परमानस्य कर्त्तात्मा मोक्षोऽय व्यग्रहाणिनाम् ॥ १७३॥

अर्थ-आत्मा ज्ञानमय है, स्वयं ज्ञान ही है। वह ज्ञान के विनाय और क्या करेगा ? वह ज्ञान ही है, यह व्यवहारी जीवों का भाव है।

ज्ञानिनो ज्ञाननिवृत्ता मयः ॥ १ ॥

मर्त्येऽप्यनाननिवृत्ता भवन्त्यज्ञानिनः ॥ २ ॥

अर्थ-ज्ञानीके मय ही मात्र ज्ञान ही है। ज्ञान ही होते हैं और अज्ञानीके मय ज्ञान ही होते हैं। अज्ञान ही होते हैं और अज्ञान ही होते हैं।

व्याप्यव्यापकता तदात्मनि ॥ १ ॥

व्याप्यव्यापकभावमभ्यस्तं ॥ २ ॥

इत्युदाहरणैकधम्मरमो ॥ ३ ॥

ज्ञानीभूय तदा स एव ज्ञानि ॥ ४ ॥

अर्थ-व्याप्यव्यापकता तदात्मनि ही होता है अतः स्वरूपमें नहीं होता है। व्याप्यव्यापक भावके मय विना कर्ताकर्मकी स्थिति कैसा हो सकेगा ? अर्थात् कुछ भी नहीं। ऐसा उदाहरण विवस्वतः धर्मरमो कहिये ममीको ग्रामाभूत करनेका स्वभाव धर्मरमो ज्ञानाला ऐसा जो वात स्वरूप तेजप्रकाश, उभक्त धर्मरमो अज्ञानरूपी अघातकी भेद रुके और ज्ञानी गेहवत् आमा उम मय परमा-यक कर्तापिनेसे रहित हो जाता है।

भावात्-तो गर्वा अवस्थाओंमें पाया जावे-व्याप्त
है तब व्यापक कहते हैं और जो अवस्था विशेषमें पाया
जाय कहते हैं। ऐसे द्रव्य व्यापक है और
विशेष। व्यापक अनेकरूप ही है। जो द्रव्यका
व्यापक पर्याय आत्मा, मोक्षमा व्याप्यव्यापकभाव
ही होता है, अवत्स्वरूपमें नहीं। बिना व्याप्य
व्यापक कर्ताकर्मभाव नहीं हो सकता ऐसा जो जानता
है पृथक् और आत्माके कर्ताकर्मभाव नहीं जानता है
जानी होकर कर्ताकर्मभावसे रहित होता है अतः यह
भाव ज्ञाता और द्रष्टा ही है।

प्राणो ह्येदमुदाहरन्ति मरणं, प्राणः। किलास्यात्मनो ।

ज्ञान तत्समयेन शङ्कततया, नोच्छिद्यते जातुचित् ॥

तस्यातो मरण न किञ्चन भवेत्तद्भी कुतो ज्ञानिनो ।

नि शङ्क मनत स्वय स महज्ज, ज्ञान सदा निन्दति ॥८७७

अर्थ—प्राणोंके वियोगकी मरण कहते हैं। निश्चयसे इस आत्माका प्राण ज्ञान है और वह मर्य ही नित्य है, उमका कभी भी नाश नहीं होता है अतः उमका मरण हो नहीं सकता। तब ज्ञानीको मरणकामय कहाँ ? वह सतत नि शङ्क रहता हुआ सदा ही स्वयं अपने सहज ज्ञानका स्वाद लेता है।

न जातु रागादिनिमित्तभाव,—मात्माऽऽत्मनोयाति
यथार्ककान्त । तन्मिनिमित्त परसङ्ग एव, तस्तुस्वभावोऽय-
मुदति तावत् ॥ १३ ८ ॥

अर्थ—यह आत्मा अपनेसे रागादिकके निमित्तभावको
कभी भी प्राप्त नहीं होता है, उस आत्मामें रागद्वेषादि विभा-
घोंमें परिणमनेका निमित्त परद्रव्यका संग ही है, जैसे सूर्य
कान्तमणि आप ही अप्रिरूपपरिणमन नहीं करती है, परंतु
उममें सूर्यका मित्र अप्रिरूप होनेके लिये निमित्त है, इसी
प्रकार आत्मामें जानना । यह वस्तुका स्वभाव स्वय ही
उदयको प्राप्त हो रहा है किसीका किया हुआ नहीं है ।

जानी करोति न न वेदयते च कर्म,

जानाति केवलमय किल तत्स्वभाव ।

जानन्पर कारणवेदनयोरभावा

शुद्धस्वभावनियत सहि मुक्त एव ॥६-१०

अर्थ—जानी न तो स्वतंत्र होकर कर्मोंको करता है न
उनको वेदता है । केवल उनके स्वभावका ज्ञाता ही है ।
कर्त्ता भोक्तापनाके अभावसे मात्र जानता हुआ ज्ञानी अपने
शुद्धस्वभावमें नियत है अतः निश्चयकरि मुक्त ही है—कर्मोंसे
छुट्या हुआ ही है ।

भावार्थ—जानी कर्मका स्वाधीनपनेसे कर्त्ता भोक्ता
नहीं है, केवल ज्ञाता ही है इसलिये शुद्ध स्वभावरूप
हुवा मुक्त ही है । कर्मका उदय भी हो तो
कर

कुछ नहीं, अवतक

कर्म भले ही जोर चला लें परन्तु कर्मका तो निर्मूल नाश करेगा ही ।

गुरुः परमार्थं कलयन्ति नो जना ।

गुणैर्धर्मिभ्यः बुद्धयः कलयन्तीह तुष न तदुलम् ॥४९-१०॥

अर्थ-तो जन व्यवहारमें ही मोही बुद्धि हो रहे हैं वे परमार्थको नहीं जानते हैं । जैसे लोकमें जो जन तुसहीके (तुमीकाके) ज्ञानमें मोही बुद्धि हैं वे तुम ही को तदुल जानें हैं । तदुलको तदुल नहीं जानते हैं । अर्थात् परमार्थ आत्मस्वयंको जाने बिना परमार्थ आत्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती जमे परालके हटनेवालेको तदुलकी प्राप्ति नहीं हो सकती ।

निगल तु कर्मनिपतस्फलानि मम भुक्तिमन्तरेण ।

मचेतनेऽहमवल चतन्यात्मानमात्मान ॥ ३७ १० ॥

अर्थ-कर्मरूपी निपटवोके फल मेरे भोग बिना ही गल जाओ । मैं तो अपने ही निश्चल एक चैतन्यमात्रको ही भोगता हूँ ।

उभयनयविरोधघमिनि म्यात्पटाङ्गे,

चिनवामि गमन्ते य स्वय नात्ममोहा ।

मपत्ति ममयमार ते पर ज्योतिस्त्वं

रनरमायषचाश्रुणमीक्षन्त एव ॥ ४॥

१११ अर्थ—निश्चयनय और व्यवहारनयके विरोधको मेटनेवाली, 'स्यात्' पदसे अङ्कित जिनवाणीमें जो रमण-करते हैं, उनका मिथ्यात्वभाग स्वयं गल्ल जाता है। तब-बेशीघ ही अतिशय करके परम ज्योतिस्वरूप, प्राचीन, किमी-भी छोटी युक्तिसे अग्राह्यत शुद्ध आत्माका अनुभव कर ही लेते हैं।

आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका यः, १०, ३३

, १३ ज्ञानानुभूतिरियमेव मिलेति शुद्धया, १०,

आत्मानमात्मनि निश्चय मुनि प्रकम्प—१०, १०

‘मेकीऽस्ति’ नित्यमवरोधघनं समस्तात् ॥१३॥

११२ अर्थ—शुद्धनयस्वरूप जो शुद्ध आत्माकी अनुभूति है यही ही निश्चय सम्पन्नानकी मन्ची अनुभूति है, आत्मा जान करके जब कोई अपने आत्माको अपने आत्मामें धारण करता है तब वहाँ सब तरफसे नित्य ही एक ज्ञानघन आत्मा ही स्वादम आता है।

‘ज्ञानदिन ज्वलनपर्वसौराष्ट्रवैत्यव्ययस्था, १०, १०

‘ज्ञानदिनोन्मूलसति लोणस्वादमैव पुटाम्’

ज्ञानादयः स्वरमविकमन्नित्यचेतन्यधातोः

को गन्धे प्रभवति मिदा भिन्दती कल भागम् ॥१४-३॥

अर्थ—अग्नि और जलकी उत्पत्ति या शीतपणाकी व्युत्पत्ति

ॐ नमः प्रवचन साराय ॐ

—ॐ श्री प्रवचन सार-पद्य ॐ—

ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन

(हिंगीत)

सुर असुर नरपतिवधने^१, प्रणिष्ट घातिकर्मने ।
प्रणमन करू हूँ^२ धर्मकर्त्ता तीर्थ श्रीमहासीरने ॥ १ ॥
बली^३ श्रेय तीर्थकर अने सौ^४ मिद्ध शुद्धास्तित्तने ।
मुनि ज्ञान दग^५-चारित्र-उप-गोपाचरण सयुक्तने ॥ २ ॥
ते सत्तने माधे तथा प्रत्येकने प्रत्येकने ।
बहु बली हूँ मनुष्य क्षेत्रे वर्तता अर्हत्तने ॥ ३ ॥
अर्हत्तने श्री मिद्धने य^६ नमस्कारण करी ए^७ रीत ।
गणधर अने अज्ञापकोने^८ मर्ध माधु समूहने ॥ ४ ॥
तसु शुद्ध दर्शन ज्ञान मुरय पवित्र आश्रम पामीने^९ ।
प्राप्ति करू हूँ साम्यनी, जेनाधी^{१०} शिष्यप्राप्ति पने^{११} ॥ ५ ॥
सुर असुर मनुजेन्द्रो तथा विमर्शो सहित निर्गणिनी ।
प्राप्ति करे चारित्रयो जीव ज्ञानदर्शन मुरय थी ॥ ६ ॥
चारित्र छे^{१२} ते^{१३} धर्म छे, जे^{१४} धर्म छे ते साम्य छे ।
ने^{१५} साम्य जीवनो मोह बोभ मिहीन निन परिणाम छे ॥ ७ ॥

१ को । २ मैं । ३ अततर । ४ सत्त । ५ दर्शन । ६ भी ।
७ इस । ८ उपाध्यायो को । ९ प्राप्तकरके । १० जियमे । ११ हो ।
१२ है । १३ यह । १४ जो । १५ और ।

१. 'आत्मा अशुभं' नश्य, ते काल तन्मयते ऋषु,
 १. 'अप्य' तवी प्रममां प्रथमेन धर्म जं जाणवुं ॥८॥
 २. 'अशुभ' प्रथमता शुभ के अशुभ आत्माने ।
 ३. 'उद' परिणाम स्वरूपी होइने ॥ ९ ॥
 ४. 'आ' ३ पदार्थ, नेन पदार्थ विण परिणाम छे ।
 ५. 'पर्य' मित ने अस्तित्व सिद्ध पदार्थ छे ॥१०॥
 ६. 'परिण' स्वरूप जीव शुद्धोपयोगी होय तो ।
 ७. '१. ८।' निर्वाण सुख, ने स्वर्ग सुख शुभ युक्त जो ॥११॥
 ८. 'उ' तादय आत्मा कुनर तिर्यच ने नारकपणें ।
 ९. 'उत्प' महत्त दु मे पीडित समारमा अति अति भमे ॥१२॥
 १०. 'आ' आत्मोत्पन्न, निपयातीत, अनुप अनत ने ।
 ११. 'निच्छेद' हीन छ सुख अहो । शुद्धोपयोग' प्रमिद्व ने ॥१३॥
 १२. 'सु' निश्चित शुभ पदार्थ, मयम तप सहित वीतराग ने,
 १३. 'सुख' दु गमां मम भ्रमणने शुद्धोपयोग जिनो कह ॥१४॥
 १४. 'जे' उपयोग विशुद्ध ते मोहादि घाति रज थकी ।
 १५. 'स्व' पमेन रहित थको थको ज्ञेयान्त ने पामे सही ॥१५॥
 १६. 'सर्व' श, लघ स्वभावो प्रियगोत्र पूजित ए रीते ।
 १७. 'स्व' पमेन जीव ययो थको तेने स्वयभू जिनो कह ॥१६॥

१ निस । २ परिणमित हो । ३ अशुभ । ४ हा । ५ प्रममा ।
 ६ होकर । ७ विना । ८ यदि । ९ प्राप्त करता है । १० नारक रूप ।
 ११ भ्रमे । (भ्रमण कर) । १२ वाच्यरहित । १३ शुद्धोपयोगी को ।

व्ययहीन छे उत्पाद ने उत्पाद हीन विनाश छे ।
 तेने ज बली^१ उत्पाद ध्रांय विनाशनो समाय छे ॥१७॥
 उत्पाद तेम^२ विनाश छे मो^३ कोई^४ उस्तु मात्र ने ।
 गली^५ कोई^६ पर्यय की दमक^७ पदार्थ छे मद्भूत खरे^८ ॥१८॥
 प्रचीण घाति कम, अनहद वीर्य, अधिक प्रकाशने ।
 इन्द्रिय अतीत थयन आन्माज्ञानसोन्धे परिणमे ॥१९॥
 कड^९ दहगत नवी मुरा के नथी दु ग केवलज्ञानीने ।
 जेथी अनीन्द्रियताथद^{१०} त कास्तो ए जाणनो^{११} ॥ २०॥
 प्रत्यक्ष छे मो^{१२} द्रव्यपर्यय ज्ञान परिणम^{१३} नारने ।
 जाणे नहीं ते तेमने अग्रह रूहादिक्रिया रटे^{१४} ॥ २१ ॥
 न परोक्ष कड^{१५} पण^{१६} मरत सर्वाङ्गगुण समृद्धने ।
 इन्द्रिय अतीत मदव ने स्वयमेव ज्ञान थयेलने ॥ २२ ॥
 जीव द्रव्य ज्ञान प्रमाण भारयू^{१७} ज्ञान ज्ञेयप्रमाण छे ।
 ने ज्ञेय लोकालोक तेवी^{१८} मरगत ए^{१९} ज्ञान छे ॥ २३ ॥
 जीव द्रव्य ज्ञान प्रमाण नहि-ए मान्यता छे जेह^{२०} ने ।
 तेना मते जीव ज्ञानथी हीन के अधिक अग्रथ छे ॥ २४ ॥
 जो हीन आत्मा होय, नव जाणे अचेतन ज्ञान ए ।
 ने अधिक ज्ञानथी होय तो वण^{२१} ज्ञान क्यम जाणे अरे ॥ २५ ॥

१ और । २ युक्त । ३ उसी प्रकार । ४ मय । ५ तो भी । ६ प्रत्येक ।

७ अग्रय । ८ हुये । ९ बुद्ध । १० जानता । ११ परिणमित होनेवाले को । १२ द्वारा । १३ भा । १४ कहा । १५ इसलिये । १६ १७ निस्संख्यी । १८ विना ।

नृ तान तेयी जीव द्वेष त्रिधा कहेलु' द्रव्य छे ।
 ए द्रव्य पर ने आत्मा, परिणाम मयुक्त जेह छे ॥३६॥
 ने द्रव्यना मद्भूत' अमद्भूत पर्ययो मौ' वर्तता ।
 तत्कालना पथाय जेम', त्रिनेष पृथक् तानमा ॥ ३७ ॥
 ने पर्ययो अणजात' छे उली जन्मीने प्रविनष्ट जे ।
 त मौ अमद्भूत पर्ययो पण ज्ञानमा प्रवक्ष छे ॥३८॥
 ज्ञाने अज्ञात विनष्ट पर्यायो तणी' प्रत्यक्षता ।
 नर' होय नो' तो तानन ए त्रि-य मोक्ष कह भला ॥३९॥
 ईहादि पूर्वक जाणना जे अक्षपन्नित' पदार्थ ने ।
 तेने परोक्ष पदार्थ जाणवु शक्यना ' जिनची क' ॥ ४० ॥
 जे जाणतु अप्रदेशने सप्रदेश, मूर्त अमूर्तने ।
 पर्याय नष्ट अनातने', भावयु अतीन्द्रिय तार ते ॥ ४१ ॥
 नो द्वेष अर्थे परिणमे ज्ञाता, न क्षापिक तान छे ।
 ते कर्मने ज' अनुमवे छे एम जिनदेवो कह ॥ ४२ ॥
 भाग्या निने कर्मो उदयगत नियमयी ममारीन ।
 ते कर्म होता' मोही रागी द्वेषी यद्य अनुमवे ॥ ४३ ॥
 घमोपदण, विहार, आमन, स्थान' श्रीअर्हतने ।
 वर्ते महज ते कालमा मायाचरण ज्यम नारीने ॥४४॥

१ कहागया । २ जा । ३ विद्यमान अविद्यमान । ४ समस्त ।

५ मन्त्र । ६ अनुपन्न । ७ अयथा । ८ पर्याय । ९ भी । १० की ।

११ न । १२ यदि । १३ इन्द्रियगोचर । १४ अशक्य । १५ अनुपन्न

की । १६ ही । १७ जेमा । १८ होमे । १९ टहरता । २० जैसे ।

१. 'पुण्यपद' १ 'गहन, न अहंतकिरिया उदयिनी' ।
 मोहादि वा ग्रहित तेवी ते क्रिया नायिक गणी ॥४५॥
 २. '१' निरु भाव यी नो शुभ अशुभ चने नहि ।
 ३. '२' निरु भाव ने समार पण चर्ते नहि ? ॥४६॥
 ४. '३' अवतमान विचित्र विषम पदार्थ ने ।
 ५. '४' जाणतु ते ज्ञानजायिक जिनरुह ॥४७॥
 ६. '५' पुण्यपद विचालिक विभुवनस्थ पदार्थ ने ।
 ७. '६' एक पण नहि द्रव्य जाणतु शक्य छे ॥४८॥
 ८. '७' एक द्रव्य अत पर्यप तेम द्रव्य अनत ने ।
 ९. '८' पुण्यपद ७ जाये जीव, तो ते कम जाणे मर्कने ? ॥४९॥
 १०. '९' जो ज्ञान'नानी' नु उपजे प्रमश अरथ, अगली' ने ।
 ११. '१०' तो निरु नहि, चायि नहि ने सरगत नहि ज्ञान ऐ ॥५०॥
 १२. '११' निरु विषम, विधविध, मरुलपदार्थगण मरुत्रनो,
 १३. '१२' जिनज्ञान जाणे पुण्यपदे, महिमा अहो ए ज्ञाननो ॥५१॥
 १४. '१३' ते अर्थरुप ७ परिणामे जीव नर ग्रह नर उपजे ।
 १५. '१४' मी अर्थ न जाणे छेता ' तेवी अरधरु निन रह ॥५२॥
 १६. '१५' अथान ज्ञान अमूर्त, मूर्त, अतीन्द्रिने ऐन्द्रिय' छे ।
 १७. '१६' छे सुर पण एवज' त्या परधान' जे ते ग्राह्य छे ॥५३॥

१ श्री-विष्णु । २ जीव समूह को ३ संपूर्ण । ४ मर्कत । ५ पया
 यमहित । ६ अनत पयाय जाला । ७ के । ८ अर्थ । ९ सहायता ।
 १० असमान जातीय । ११ अनेक प्रकारक । १२ तोभी । १३ ऐन्द्रि-
 यर । १४ ऐसा ही । १५ प्रधान (उत्तम) ।

- देखे अमृतिक, मूर्तमाय^१ अतोद्विज ने प्रच्छन्न ने ।
 ते मरने-पर-क स्वकाय ने, ध्यान त प्रत्यक्ष छे^२ ॥ ५४ ॥
 मोते^३ अमूर्तिक जीव मूर्त-शरीरगत ए मर्त थी ।
 ५ कदी^४ योग्य मूर्त अग्रही जाणे कदीक^५ जाणे नही ॥ ५५ ॥
 रस गंध, स्पर्श उली^६ वर्ण ने शब्द जे पाँदलिक ते ।
 छे इन्द्रिय त्रिपयो, तेमने य त इन्द्रियो युगपद ग्रह ॥ ५६ ॥
 ते इन्द्रियो परद्रव्य, जीवस्वभाव भासी न तेमने,
 तेनाथी जे उपलब्ध ते प्रत्यक्ष बड^७ रीत जीवने ॥ ५७ ॥
 अथो तर्णु^८ जे ज्ञान परत वाय^९ तेह परोक्ष छे, -
 ८ जीवमात्रथी ज ज्ञाय जो, तो ज्ञान ते प्रत्यक्ष छे ॥ ५८ ॥
 स्वयमेव जात, समत अर्थ अनतमा विस्तृत ने ।
 ९ अग्रह-ईहादि रहित, निर्मल ज्ञान मुख एकान्त छे ॥ ५९ ॥
 जे ज्ञान 'केवल'^{१०} तेज मुख, परिणाम पण उली तेज छे ।
 १० भार्यो न तेमा सेव^{११} जेथी धातिर्कर्म विनिष्ट छे ॥ ६० ॥
 अर्थान्तगत छे ज्ञान, लोकालोक, विस्तृत दृष्टि छे ।
 छे नष्ट, मर^{१२} अनिष्ट ने जे इष्ट ते-सौ प्राप्त छे ॥ ६१ ॥
 सूणी 'धातिकर्मनिहीन' मुख सौ, मुखे उत्कृष्ट छे^{१३} । -
 १३ श्रद्धे न तेह, अभव्य छे^{१४}, ने भव्य ते समत, करे ॥ ६२ ॥

१ मूर्तिमा को भी (मूर्तपदार्था को भी) । २ स्वयं । ३ कभी ।
 ४ कदाचित् । ५ तथा । ६ भी । ७ विमप्रकार । ८ से । ९ हावे
 १० समत, अग्रह । ११ मात्र अथवा केवलज्ञानात्मक । १२ आकु-
 लता । १३ वे । १४ स्वीकार करने हैं ।

मयः शान्तः स्वयमेव निरीक्षितं चर्तुं सहजं इन्द्रियं बद्धं,^१
 १. मीं ऊरे तं दुःखं तेथी रम्य विषयो मा रमे ॥६३॥
 २. — शान्तं जेमने, दुःख छे स्वामावकि तेम^२ ने,
 ३. — स्वमात्र तो व्यापार नहि विषयो विषे ॥६४॥
 ४. — ताथत इष्ट विषयो पामीने,^३ निज भावथी ।
 ५. 'स्वयमेव' स्वयमेव मुखरूप थाय, देह धर्तो^४ नथी ॥६५॥
 ६. वा स्वयमेव देह करे नहि मुख देखीने ।
 ७. निषयधन स्वयमेव आत्मा मुख वा दुःख थाय छे ॥६६॥
 ८. जो दृष्टि प्राणीनी तिमिरहर तो कार्य छे नहि दीपथी;
 ९. जा जी, स्वयं मुख परिणमे, विषयो ररेछे शु^५ तहीं? ॥६७॥
 १०. यम आनामा स्वयमेव भास्कर उष्य, देव, प्रकाश छे,
 स्वयमेव जोके सिद्ध पण त्यम^६ ज्ञान, मुख ने दंन छे ॥६८॥
 ११. गुरु-द्वय चरितपूजा विषे बली दान ने सुशील विषे ।
 १२. जीय रक्त^७ उपवामदिक, शुभ उपयोग स्वरूप छे ॥६९॥
 १३. शुभयुक्त आत्मा देन वा^८ तिर्यच वा मानव घने ।
 १४. ते पर्यये तानत्समय इन्द्रिय मुख विघविध^९ लहे ॥७०॥
 १५. सुरनेय सौख्य स्वभासिद्ध^{१०} न मिद्ध छे आगमनिषे ।
 १६. ते देहवेदन थी पीडित रमणीय विषयो मा रमे ॥७१॥

१ स्वाभाविक । २ द्वारा । ३ नहीं । ४ जिसको । ५ उसको ।
 ६ प्राप्त करके । ७ परिणमता है । ८ होता । ९ आत्माको । १० जहा ।
 ११ कय । १२ बहा । १३ जैसे । १४ वैसे । १५ आसक्त, लवलीन,
 आरुढ़ । १६ अथवा । १७ विविध । १८ स्वाभाविक, आत्मीक ।

तिर्यच नारक सुर नर १ - गत दुःख अनुभवे ।
 तो जीवनी उपयोग २ शुभा अशुभ कई रीति छे ॥ ७१ ॥
 चरि अने देवेन्द्र शुभ-व्याग मूलरु भोगथी ।
 पुष्टि करे दहादिना ३ गुण मम दीसे ४ अभिरत रही ॥ ७३ ॥
 परिणामजन्य अने ५ वर ना पुण्यनु अस्तित्व छे ।
 तो पुण्य ६ द्रव्यन्त नारन विपयवृष्णोद्वर करे ॥ ७४ ॥
 ते उदित वृष्ण जागे ७ गिरत वृष्णा थी विपयिक ८ सुखने ।
 इच्छे अने आभरण ९ समतप्त नने भोगने ॥ ७५ ॥
 पर्युक्त, माध्यामहित गदित, बधमाग्य, विषम छे ।
 जे इन्द्रियो थी लब्ध ते सुख ए रीति दुखन खरे ॥ ७६ ॥
 नहि मानता-१० रीत पुण्ये पापमा न विशेष छे ।
 ते मोहयी आच्छन्न घोर अपार समार भमे ॥ ७७ ॥
 त्रिदितार्थ ११ गीत, रागद्वेष लह न जे द्रव्यो विषे ।
 शुद्धोपयोगी जाय ते क्षय दहगत दु खनो करे ॥ ७८ ॥
 जीव छोटी पापारभने शुभचरितमा उद्यत भले ।
 नो नर तजे मोहादिने तो नर लह शुद्धात्मने ॥ ७९ ॥
 ज जाणतो अहंतेने गुण, द्रव्य ने पयय पणे ।
 ते जीव जाणे आत्मने तमु १२ मोह पामे लय खरे ॥ ८० ॥

१ जिस । २ मालूम पड़े । ३ यह । ४ विषयजन्य । ५ मरण
 कर । ६ भ्रमण करता है । ७ स्वरूप जानकर । ८ करे । ९ नहीं ।
 १० उसका । ११ अर्थ ।

१२ मत्तु री र आ-ममन्प मम्यक् पामीने ।

नो रमन्प रमिह नो पामतो शुद्धामने । ८१ ॥

१३ तमा तपो री नाग म ज मिधिरडे ।

१४ ममज री, निशु मया, नमु तेमने । ८२ ॥

१५ मृद म न रते जीमने, ते मोह छे ।

१६ म्यान्डन मगी द्वेषी यद् चोमित पने । ८३ ॥

१७ म्प या मगरूप या द्वेष परिरुत जीवने ।

१८ मधे धार मर, तेयी मर ते छपयोग्य छे । ८४ ॥

१९ मालु अयवाग्रम, करुणा मनु न नियंचमा ।

२० ममे तपो रली मग, -लिंग जलमा आ मोहना । ८५ ॥

२१ मात्ता रड मयचयादिथी जाणतो जे अर्थ ने ।

२२ तनु मोह पामे नाग निश्चर, शास्त्र ममस्वनीर्य छे । ८६ ॥

२३ द्रव्यो गुणो जे पयलो मी अर्थ मना थी रक्षा ।

२४ गुण पर्यया नो आमा छे द्रव्य चिन उपदेशमा । ८७ ॥

२५ जे पामी चिन उपदेश हणतो रामद्वेष विमोहने ।

२६ त जीम पामे अस्वशाले मर दूर विमोहने । ८८ ॥

२७ जे ज्ञानरूप निज आ-मने, परने चली निश्चर वडे ।

२८ द्रव्यस्थी समुद्र जाणे मोह नो चय ते करे । ८९ ॥

१ प्रात फाके । २ प्राप्ति करता ह । ३ तेसा हा । ४ पर द्रव्या
दिता म । ५ वि चय, अनेकप्रकार का । ६ अन्यथा प्रहण, (विप
रान्त श्रद्धा) । ७ आत्माप्रीतिपरिणाम । ८ अध्ययन करनेयोग्य, मन-
नीय । ९ स्वरूप, मत्त, समूह । १० नष्ट करवा, छय करवा ।
११ स्वयोग्य द्रव्यस्व से ।

તેથી યદિ જીવ ઇચ્છતો નિર્મોહતા નિજ આત્મને ।
 જિન માર્ગ થી દ્રવ્યો મઠીં' જાણો સ્વ પરને ગુણ મહે' ॥૯૦॥
 શ્રામણ્યમા મત્તામયી મનિશેષ આ દ્રવ્યો તણી ।
 થદ્વા નહિ, તે શ્રમણ ના, તમાવી ધર્માદ્વિવ નહિ ॥ ૯૧ ॥
 આગમ ત્રિપે 'કોશલ્ય' છે, ને નોહદટિ પિનટ છે ।
 વીતરાગ-ચરિતારુ છે, તે મુનિ મહાત્મા 'ધર્મ' છે ॥૯૨॥

જેયનત્ત્વ પ્રજાપન ।

છે અર્થ દ્રવ્યસ્વરૂપ, ગુણ-આત્મકુ રહ્યા છે દ્રવ્ય ને ।
 તણી દ્રવ્ય ગુણ વી પર્યયો, પર્યાયમૂઢ પરસમય' છે ॥૯૩॥
 પર્યાય મા રત જીવ જે તે 'પર સમય' નિર્દિષ્ટ છે ।
 આત્મસ્વભાવે સ્થિત જે તે 'મ્ચક સમય' જ્ઞાતવ્ય છે ॥૯૪॥ ।
 છોડ્યા પિના જ સ્વભાવને ઉત્પાદ વ્યય ધ્રુવ યુક્ત છે ।
 વલી ગુણ ને પર્યાય સહિત જે 'દ્રવ્ય' માગ્યુ તેહને ॥૯૫॥
 ઉત્પાદ ધ્રાવ્ય પિનાશધી, ગુણને ત્રિવિધ પયાયથી ।
 અસ્તિત્ત્વ દ્રવ્યનુ સર્વદા જે, તેહ દ્રવ્યસ્વમાર્ગ છે ॥ ૯૬ ॥
 ત્રિધત્રિધ લક્ષણીનુ સરવગત' 'સત્ત્વ' લક્ષણ એક છે ।
 એ ધર્મ ને ઉપદશતા' જિનવરવૃષ્ણમ નિર્દિષ્ટ છે ॥ ૯૭ ॥
 દ્રવ્યો સ્વભાવે સિદ્ધ ને 'મત્'—તત્ત્વત શ્રી જિનો કહ ।
 એ સિદ્ધ છે આગમ થયી', માને ન તે પરસમય છે ॥ ૯૮ ॥

૧ મ । ૨ દ્વારા । ૩ પ્રવાણતા । ૪ મિથ્યા દ્રાષ્ટ । ૫ સમ્યગ્દ્રષ્ટિ ।
 ૬ દ્રવ્યત્વ । ૭ સરવગત । ૮ ઉપદેશ । ૯ દ્વારા, સે ।

૧. તે પ્રવચ્ચિત તેવી 'સન્ મોદ્વ્ય છે ।

૨. નિનાશપુત પમિગામ દ્રવ્યસ્વભાવ છે ॥૧૯॥

૩. નરિ, મરાર મર્ગે વિના નહિ ।

૪. મગ ધ્રોપ પદાર્થ વિગ ર્ને નહિ ॥૨૦॥

૫. ૪ ગ્રાંધ ને મહાર વર્તે પયર્થ ।

૬. ને નિયમથી, મર્ગે નેરી દ્રવ્ય છે ॥ ૨૦૧ ॥

૭. નાશમતિ અર્થ મહ મમરેતલે ।

૮. મપ ૧૧ દ્રવ્ય નિષાપ, તથી ૮ ત્રિસ દ્રવ્ય છે ॥ ૨૦૨ ॥

૯. નો અન્ય પર્યય અન્ય સો વિરલે વલી ।

૧૦. નો નથી નષ્ટ ક ઉપત્ત દ્રવ્ય નથી તરી ॥૨૦૩॥

૧૧. સમત્ત સ્વય દરર ગુણથી ગુણાતર પરિણમે ।

૧૨. થી વલી દ્રવ્ય ન કયા છે મર્ગગુણપર્યાયને ॥ ૨૦૪ ॥

૧૩. જો દ્રવ્ય હોય ન મત્ ઠરે જ અમત વને કયમ દ્રવ્ય ?

૧૪. યા મિષ્ઠ ઠરતુ મત્તવી । તેવી સ્વય ને મત્ત છે ॥ ૨૦૫ ॥

૧૫. વિન બીશ્નો ઉપદેશ ઇમ - પ્રથસ્ત્ર મિષ્ઠપ્રશ્નતા ।

૧૬. અન્યત્ર જાણ અતત્પણુ, તહિ તે-પણે ત એક કયા ? ॥૨૦૬॥

૧૭. 'સન્ દ્રવ્ય' 'મન્ પયાય', 'મત્ ગુણ'—મ વનો વિસ્તાર છે ।

૧૮. નથી તે પણ 'અન્યોન્ય તદ અતત્પણુ જ્ઞાત' છે ॥૨૦૭॥

૧ વ્યય । ૨ ઉત્પાદ । ૩ ચોર । ૪ પર્યાયમ । ૫ પ્રયાત્મન ।

૬ વોદ । ૭ તથા । ૮ સત્તામાન્ય । ૯ નિશ્ચિત હોવે । ૧૦ પેસા ।

૧૧ સદશ ।

स्वरूपे नहीं जे द्रव्य ते गुण, गुण ते नहि द्रव्य छ ।
 आने अतत्पणु' जाणतु, न अभावे, भावतु जिने ॥१०८॥
 परिणाम द्रव्यस्वभाव जे, ते गुण 'सत्' अतिगिष्ट छे ।
 द्रव्यो सभावेस्थित सत् छे'-ए ज आ उपदेश छे ॥१०९॥
 पर्याय के' गुण एतु कोई न द्रव्य मिष्ट मिश्रवे टीसे ।
 द्रव्यत्व छे बनी भाव, तथी द्रव्य पोते' मत्त छे ॥ ११० ॥
 आयु' दरब द्रव्यार्थ पर्यायार्थथी निजभाव मा ।
 सद्भाव अपमद्भावपुत उत्पादने पामे सदा ॥ १११ ॥
 जीव परिणामे तथी नरादिक ए थशे, पण ते-रूपे ।
 शु छोडतो द्रव्यत्तने ? नहि छोडनो क्यम अन्य ए ॥११२॥
 मानन नहीं सुर, सुर पण नहि मनुज के नहि सिद्ध छ ।
 ए रीत नहि होतो थको' क्यम' ते अनन्यपणु धरे ॥११३॥
 द्रव्यार्थिके वधु द्रव्य छे, ने तज पर्यायार्थिके ।
 छे अन्य, जेथी' ते समय-तद्रूप होई अनन्य छे ॥११४॥
 अस्ति, तथा छे नास्ति, तेम ज द्रव्य अणुक्तव्य' छे ।
 गली उभय को' पर्याय थी, मा अन्यरूप क्याय' छे ।
 नहीं 'आज' एवो' कोइ ज्या किरिया सभावा निपन्न' ।
 किरिया नहीं फलहीन, जो निष्फल घग्म उत्कृष्ट छे ॥११६॥

१ अयो-याभाव । २ अथवा । ३ स्वत-स्वय । ४ एता ।
 ५ कैसे । ६ ता । ७ कैसे, क्यों । ८ जिससे । ९ अवश्य-य
 १० पदानाता । ११ यही । ऐता । १२ निपन्न ।

અમારૂં જી નિન જીવદ્રવ્ય સ્વમાપને ।

તરૂં દય, મનુષ્ય વા નારક રૂર ॥૧૧૭॥

૧૧૭- જીવ જીવ નામરૂં નિપજ છે ।

પરિણમન જીવ અમારૂં લઈ નેતે મને ॥૧૧૮॥

૧૧૮- વિગત નજી મગ મગ મગ જો ।

૧૧૯- જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ ॥૧૧૯॥

૧૧૯- જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ ॥૧૧૯॥

૧૨૦- જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ ॥૧૨૦॥

૧૨૦- જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ ॥૧૨૦॥

૧૨૧- જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ ॥૧૨૧॥

૧૨૧- જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ ॥૧૨૧॥

૧૨૨- જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ ॥૧૨૨॥

૧૨૨- જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ ॥૧૨૨॥

૧૨૩- જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ ॥૧૨૩॥

૧૨૩- જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ ॥૧૨૩॥

૧૨૪- જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ ॥૧૨૪॥

૧૨૪- જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ ॥૧૨૪॥

૧૨૫- જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ જીવ ॥૧૨૫॥

૨૦૫ પત્નિતાપ ર્મ જર્મ વલી આકાશને ।
 ૨૧ ૨ ખનેર, તદિ વર્ને પ્રદેશો કાલને ॥ ૧૩૫ ॥
 ૨૨ ૩ આમ જોઈ અધર્મ વર્મ આ વ્યાપ્ત છે ।
 ૨૩ ૪ જાન, ને જોઈ પુરુષો ત શેષ છે ॥ ૧૩૬ ॥
 ૨૪ ૫ પ્રદગ, ને રીત શેષ દ્રવ્ય પ્રદગ છે ।
 ૨૫ ૬ ગાણુ પટે ઉદ્ભવ પ્રદગ તણો રને ॥ ૧૩૭ ॥
 ૨૬ ૭ આ પ્રદેશ ઇક પદશ પરમાણુ યદા ।
 ૨૭ ૮ આ પ્રદેશ તણો પ્રદશ અતિક્રમે વર્તે તદા ॥ ૧૩૮ ॥
 ૨૮ ૯ જાન, અતિક્રમણ મમ છે 'મમય', તપૂર્ણપરે ।
 ૨૯ ૧૦ જોઈ છે તે જાન છે, ઉત્પન્નધર્મી 'સમય' છે ॥ ૧૩૯ ॥
 ૩૦ ૧૧ પ્રાણ જે અણુ-પાપ, આમ પ્રદશ મના તેહ ને ।
 ૩૧ ૧૨ તે ઇક મૌ પરમાણુ ને અપકાશ દાન મમર્થ છે ॥ ૧૪૦ ॥
 ૩૨ ૧૩ વર્તે પદશો દ્રવ્યને, જે ઇક અથવા ૩ રને ।
 ૩૩ ૧૪ યદુ વા અસર, અનત છે, ચલી હોય સમયો કાલને ॥ ૧૪૧ ॥
 ૩૪ ૧૫ એક જ સમયમા ધર્મ ને ઉત્પાદ નો સદ્ભાવ છે ।
 ૩૫ ૧૬ જો કાલને તો કાલ તેહ સમાપ મમસ્થિત છે ॥ ૧૪૨ ॥
 ૩૬ ૧૭ પ્રત્યેક સમયે જન્મ ધ્રોવ્ય વિનાશ અથા કાલને ।
 ૩૭ ૧૮ વા સરપદા, આ જ વમ કાલાણુ નો મદ્ધાવ છે ॥ ૧૪૩ ॥

૧ આકાશ । ૨ વા । ૩ જન । ૪ તર । ૫ આકાશ પ્રદેશ ।

૬ મય । ૭ ધર્મ । ૮ માત્ર ।

जे अर्थने न बहु प्रदश, न एक वा परमार्थथी ।
 ते अर्थ जाणा शून्य केवल अन्य जे अस्तित्वथी ॥१४४॥
 मप्रदेश अर्थोधी समाप्त समग्र लाख मुनित्य छे ।
 तसु जाणनागे जीव प्राण चतुष्पथी सयुक्त जे ॥१४५॥
 इन्द्रियप्राण, तथा बली बलप्राण, आयुप्राणने ।
 बली प्राण श्यामोच्छ्याम ए मौ जीव केरा प्राण छे ॥१४६॥
 जे चार प्राणे जीवतो पूर्व, जीवते, जीवगे ।
 ते जीव छे, पण प्राण तो पुटल दग्ध निष्पन्न छे ॥१४७॥
 मोहादिकर्म निषधथी सवन्धपामी प्राण नो ।
 जीव कर्मफल उपभोग करता नव एमो कर्म नो ॥१४८॥
 जीव मोहद्वेष वडे करे राधा जीवो ना प्राण ने ।
 तो बध छानावरण आदिक कर्म नो ते थाप छे ॥१४९॥
 कर्म मलिन जीव त्या लगी प्राणो धरे छे करी करी ।
 ममता शरीरप्रधान विषये ज्या लगी छोडे न हि ॥१५०॥
 करी इन्द्रियादिक विजय ध्यावे आत्मने उपयोगने ।
 ते कर्मधी रजित नहि, क्य प्राण तेने अनुसरे ॥१५१॥
 अस्तित्व निश्चित अर्थनो को अन्यअर्थ उपजतो ।
 जे अर्थ तेपर्याय छे, ज्या भेद मस्थानादि नो ॥१५२॥

१ निश्चय से । २ के । ३ जीवित रहंगा । ४ सवन्ध ।

५ पुन पुन, बारबार ।

त्रिगुण, - १ १ ताम्ररमो दय बडे ।
 ८ १ १ १ गिह मध्यानादिके' ॥ १५३ ॥
 १ १ १ १ रागपने त्रिभिरूपने ।
 १ १ १ १ मोह परद्रव्ये लह ॥ १५४ ॥
 १ १ १ १ उपयोग दर्शन ज्ञान छे ।
 १ १ १ १ शुभ वा अशुभरूप होय छे ॥ १५५ ॥
 १ १ १ १ ज्ञान, सत्य थाय पुण्य तणी तहीं ।
 १ १ १ १ शुभगी, उग्र उभय नहि सचय नहि ॥ १५६ ॥
 १ १ १ १ जह, अह सिद्धने, अणुगार' ने ।
 १ १ १ १ प्रपत्ति प्रीति, उपयोग छे शुभ तेहने ॥ १५७ ॥
 १ १ १ १ गति अभ्युत्त, विषय कषाये मग्न जे ।
 १ १ १ १ उरने उन्मार्गपर, उपयोग तेह अशुभ छे ॥ १५८ ॥
 १ १ १ १ उपस्थ परद्रव्य थतो अशुभोपयोग रहितने ।
 १ १ १ १ शुभमा अयुक्त, हुँ ध्याउँ छु निज आत्मने ज्ञानात्मने ॥ १५९ ॥
 १ १ १ १ हुँ देह नहि, वाणी न मन नहि, तेमनु' कारण नहि ।
 १ १ १ १ कर्ता न, फारयिता न, अनुमता हुँ कर्ता नो नहि ॥ १६० ॥
 १ १ १ १ मन, वाणी तेमज देह पुद्गलद्रव्य रूप निन्दित छे ।
 १ १ १ १ ने तेह पुद्गलद्रव्य बहु परमाणुओ नो पिंड छे ॥ १६१ ॥
 १ १ १ १ हुँ पौंड्रलिक नथी, पुद्गलो में पिंड रूप कयों नथी ।
 १ १ १ १ तेथी नथी हुँ देह वा ते दहनो कर्ता नथी ॥ १६२ ॥

પરમાણુ જે અપ્રદેશ, તેમ પ્રદેશમાત્ર, અગદ્ર છે ।
 તે સ્નિગ્ધ સ્પર્શ વની પ્રદગદવાદિયુત્તર અનુભવે ॥ ૧૬૩ ॥
 એકાગચી આરમી જ્યા અવિભાગ અશ અનત છે ।
 સ્નિગ્ધત્વ યા રૂક્ષત્વ ણ પરિણામ થી પરમાણુને ॥ ૧૬૪ ॥
 હો સ્નિગ્ધ અથવા રૂક્ષ અણુ પરિણામ સમ વા ત્રિપમ હો ।
 વધાય જો ગુણદ્વય અધિક, નહિ વધ હોય અધન્યનો ॥ ૧૬૫ ॥
 ચતુરણ કો સ્નિગ્ધાણુ મહ દ્વય અશમય સ્નિગ્ધાણુનો ।
 પચાશી અણુ મહ વધ થાય ત્રયાશમય રુક્ષાણુ નો ॥ ૧૬૬ ॥
 સ્ફુન્ધો પ્રદગદવાદિયુત, સ્ફૂલ સુદ્ધમ ને મારાર જે ।
 તે પૃથ્વી-આયુ-તેન ઝલ પરિણામથી ત્રિજથાય છે ॥ ૧૬૭ ॥
 અવગાદ ગાદ ભરેલ છે સર્વત્ર પુદ્ગલરૂપ થી ।
 આલોક પાદર સુદ્ધમથી, કર્મત્તયોગ્ય અયોગ્યથી ॥ ૧૬૮ ॥
 સ્ફુલો કરમ ને યોગ્ય પામી જીવતા પરિણામ ને ।
 કર્મત્તને પામે, નહિ જીવ પરિણમાને તેમને ॥ ૧૬૯ ॥
 કમ-વ પશિણત પુદ્ગલોના સ્ફુન્ધ તે તે ફરીફરી ।
 જરીરો વને છે જીવને, સક્રાન્તિ^૧ પામી દહની ॥ ૧૭૦ ॥
 જે મહ ઔદારિક, ને વૈત્રિય તેનમ દહ છે ।
 કાર્મણ અહારક દહ જે, તે સર્વ પુદ્ગલરૂપ છે ॥ ૧૭૧ ॥
 છે ચેતનાગુણ મધ-રૂપ રમ શદ્દ વ્યક્તિ^૨ ન જીવને ।
 વલી લિંગગ્રહણ નથી અને મસ્થાન માર્યુ ન તેહને ॥ ૧૭૨ ॥

१. गाय त्रिपादि गुणयुत मूर्तने ।
 २. १. १. पुद्गल कर्म ने ॥ १७३ ॥
 ३. त्रिपादिनु गुणद्रव्यनु ।
 ४. प्रति रक्षितने पण मूर्तनु ॥ १७४ ॥
 ५. त्रिपादि उपयोग आत्मक जीव जे ।
 ६. म. १. परिणमे त वध छ ॥ १७५ ॥
 ७. मन त्रिपादि विपगत अर्थ ने ।
 ८. उदरगत रत्नी कर्म बधन ते रहे ॥ १७६ ॥
 ९. आत्मा तणो न स्पर्श मह पुद्गलतणो ।
 १०. १. १. १. तणे वध उभयात्मक कणो ॥ १७७ ॥
 ११. छ त जीव, जीवप्रदशमा आये अने ।
 १२. १. १. १. रह वयोचित, जाय छे, बधाय छे ॥ १७८ ॥
 १३. जाय रक्त वधे कर्म, रागरहित जीव मुराय छे ।
 १४. आ जीव तेरा वधनो सत्त्व निश्चय जाणजो ॥ १७९ ॥
 १५. परिणाम र्था छे वध राग विमोह-द्वेषयी युक्त जे ।
 १६. छे मोह द्वेष अशुभ, राग अशुभ वा शुभ होय छे ॥ १८० ॥
 १७. पर माही शुभपरिणाम पुण्य, अशुभ परमा पाप छे ।
 १८. निजद्रव्य गत परिणाम ममये दु स वध नो हेतु छे ॥ १८१ ॥

१. कैम, विमप्रकार । २. विविध अनन्यप्रकार । ३. आत्मा
 ४. गाय । ५. छोड़ता ।

स्थावर अने व्रम पृथ्वीयादि जीवमाय कहल' ये ।
 ते जीवर्था छे अन्य तेमज जीव तेवी अन्वछे ॥ १८२ ॥
 परने स्वने नहि जाणतो ए रीत पामी म्भामने ।
 ते 'आहु, आमुज' एम अव्ययमान' मोह धर्मी करे ॥ १८३ ॥
 निज भाव करतो जीव छे कर्ता खरे' निज भावनो ।
 पण ते नथी कर्ता मरुल पुद्गल दरमय भावनो ॥ १८४ ॥
 जीव सर्वाकाले पुद्गलो नी मध्यमा उतें मने ।
 पण नव ग्रहे न तजे, करे नहि जीव पुद्गलकर्मने ॥ १८५ ॥
 ते 'हाल' द्रव्य जनित निजपरिणाम नो कर्ता घने ।
 तेवी ग्रहाय अने कदापि मृत्ताय छे कर्मा बडे ॥ १८६ ॥
 जीव रागद्वेषयी युक्त ज्यान परिणामे शुभ अशुभमा ।
 ज्ञानावरण इत्यादि भाषे कर्म धूलि प्रवेण त्या ॥ १८७ ॥
 सप्रदेण जीव समये कपायित मोहरागादि धडे ।
 सगन्ध पामी कर्मरजनो बधरूप कथार्य छे ॥ १८८ ॥
 -आ जीव कैरा रजनो सलेप निश्चय भासियो' ।
 अर्हतदेवे योगाने, व्यवहार अन्य रीते रज्यो ॥ १८९ ॥
 'हुं' आ अने आ मारु' ए ममता न देद' पने दजे ।
 ते छोडी जीव श्रामण्यने' उन्मार्ग नो आच्छादये ॥ १९० ॥

१ कहे गये । २ परिणाम । ३ मृत्ताय । ४ द्रव्य ।
 ५ अमी । ६ महागथा है, निर्दिष्ट निश्चय है । ७ अर्हत न के
 श्रमणताको ।

ए रीत तेयी आ । १॥ नाभीने ।
निर्ममपणे' रहा । २॥ तु छु हुं ममत्वने ॥२००

३—चरणात् १ चक्र चूलिका ।

ए रीत प्रणमी । ३॥ अभ मुनिने फरी फरी ।
आमरण अगोत्रन । ४॥ अनाप जो दुखमुक्ति नी ॥२०१॥
बसु जनोनी मि । ५॥ पुन वडीलो' थी छूटी ।

दग ध्यान मप चाग्रि २०५॥ अगोत्रु करी । २०२ ॥
'मुज ने प्रहो' २०६॥ प्रगुनथड , अनुगृहीत थाय गणी' बडे
वपरूप कुल त्रिगिष्ट थागी, गुणाढ्य ने मुनिष्टजे ॥२०३॥
परनी न हुं पाल न मुन, मारु नथी कर्ट' पा जगे ।

ए रीत निश्चित न जितेद्रिय माहजिरुप' धरवने ॥२०४॥
जन्म्याप्रमाणे' २०५॥ लु चनवेशनु, शुद्धवने ।

हिंसादिथी शून्यत्व, दह अमस्तरण' २०६॥ निग दे ॥२०५॥
आत्म गृह्याशूयता उपयोग योग विपुदता ।
निर्गुणता परथी जिनोदित' मोक्षकारस लिग' २०६॥ आ॥२०६॥
प्रहो' परमगुरु दीधेल' २०७॥ लिग नमस्कार रगी तेमने ।

त्रन ने क्रिया सूखी, थई उपस्थित, था २०८॥ मुनिराज ए ॥२०७॥

१ नममत्व । २ गुरुवना, पूज उनी । ३ धिजयमुक्त प्रदान
करके । ४ आचार्य । ५ गुणमन्द । ६ कुद । ७ यथाज्ञातरूप धार
जन्मसमय के सरीखा रूपारा अर्थात् निम्रय । ८ निर्दिष्ट,
दिगम्बर । ९ अगार रहीं करना, वराभूष मुक्त न करना । १० इन्द्रि
निरूपित । ११ चिह्न, कारण । १२ महल कर । १३ दिने गये

१००० यथा ३०००, गायत्री, अणुचेल' इन्द्रियरोधन,
 १००० यथा ३००० एव भोजन भूषणमभ्यति भोजन ॥ २०८ ॥
 २००० यथा ३००० निन्देयशीघ्रप्रसङ्गे ।
 १००० यथा ३००० छेपेय्यापक धाय छे ॥ २०९ ॥
 १००० यथा ३००० उत्तर तेगुरु जाणगा ।
 १००० यथा ३००० कर न शेष मुनि निर्यापका' ॥ २१० ॥
 १००० यथा ३००० प्रयत्न पद कृत कायनी चेष्टात्रिपे ।
 १००० यथा ३००० गुरु किया कर्तव्य छे, ते साधुने ॥ २११ ॥
 १००० यथा ३००० गुरु मुनि, श्रमण व्यवहार विह्व कने' जई ।
 १००० यथा ३००० दोष प्रालोचन करो, श्रमणोपदिष्ट करे विधि ॥ २१२ ॥
 १००० यथा ३००० पारत्यामी मत्ता अधिवास अगार विवाम' मा ।
 १००० यथा ३००० भूतिगज विहरो सर्वदा थईछेददान आमरणमा ॥ २१३ ॥
 १००० यथा ३००० जे श्रमण जान दगादिक गतिगर्ह' रिचरे मर्षदा ।
 १००० यथा ३००० ने प्रयत्न मूलगुणो त्रिपे, आमरण छे परिपूर्ण ह्या ॥ २१४ ॥
 १००० यथा ३००० मुनि छपण' माहीं, निगामस्थान, विहार वा भोजनमहीं ।
 १००० यथा ३००० उपधि श्रमण विरुधा नहीं गतिगर्धने' इच्छे नहीं ॥ २१५ ॥
 १००० यथा ३००० आमन शयन गमनादिक चया प्रयत्न विहीनजे ।
 १००० यथा ३००० ते पाण्डी हिंसा सत्ता मतानगाहिनी' श्रमण ने ॥ २१६ ॥

१ दिगम्बरत्व । २ दत्तौन । ३ नियामक, उपदेश आदि से
 मार्गमें हट करनेवाले । ४ निकट । ५ एकलविहारी, गुरुसे अलग
 रहकर । ६ मुक्त । ७ उपवास । ८ मन-लगानेकी । ९ सर्वदा, सतत ।

जीरो मरो जीव, यत्नहीन आचार त्या हिमा नका ।
 समिति-यत्नसहितने नहि उघ हिंसा माग्यो ॥ २१७ ॥
 मुनि यत्न हीन आचार पत छत्रायनो हिमरू उघो ।
 जल कमलपत्र निर्लेप भाग्यो, नित्य यत्न महिन नो ॥ २१८ ॥
 दैहिक क्रिया थकी जीव मरता बघ थाय न थाय छे ।
 परिग्रह थकी ध्रुव बघ, तेथी मनस्त छोडथो योगी ॥ २१९ ॥
 निरपेक्ष त्याग न होय तो नहि भाग्युद्धि मित्रु ने ।
 ने भाग्यमा अविशुद्ध ने चय कर्म जो कई रीत वने ॥ २२० ॥
 आरम, अखमयम अने मूर्छा न त्या एक्यम वने ।
 पर द्रव्यस्त जे होय ते कई रीत भावे आत्म ने ॥ २२१ ॥
 ग्रहणे निमर्गे सेवता नहि छेद जे थी थाय छे ।
 ते उपनि मह वतों मले मुनि काल चैत्र विनाशान् ॥ २२२ ॥
 उपाधि अनिदितने, अमयत जन थकी असुप्रार्थने ।
 भूद्यादिजननरहितने ज ग्रहो श्रमण, थोडो सज्ज ॥ २२३ ॥
 क्यम अन्य परिग्रह होय उघ कही टडने वाजिद भूयो ।
 मोच्छेच्छु ने देहेय निष्पतिर्म उपदेष्टे विनो ॥ २२४ ॥
 जन्म्या प्रमाणेरूप भाग्यु उपकरण विन पाषा ।
 गुल्लचन ने स्याध्ययन, वली विाय पत दास्यवना ॥ २२५ ॥

१ निश्चित । २ से द्वारा । ३ प्रयोजनरहित । ४ छिन्न प्रकार ।

५ जानकर । ६ अप्रार्थनीय ७ निर्पेक्षता, निर्द्वन्द्व ।

આત્મર મારિતપેશને પરલોર-અણપ્રતિષદ્ધ છે ।
 તાત્પર્ય રહિત તે વી યુક્ત આર' નિહારી છે ॥૨૨૬॥
 આત્મર અનેપર તે ચ તપ, તત્ત્વિદ્વિમા ઉદયત રહી ।
 આત્મર અણ મિત્ત વલી તેવી અનાહારી મુનિ ॥ ૨૨૭ ॥
 આત્મર મુનિ ત્યાય 'મારુ ન' જાણી વણ-પ્રતિકર્મ છે ।
 આત્મર શક્તિના ગોપન વિના તપ માથ તન યોજેલ છે ॥૨૨૮॥
 આત્મર તે એક જ ઉચ્છોદર ને થાય ઉપલબ્ધ છે ।
 આત્મર વડ, દિગ્ગે, રસેન્દ્રાદીન વણ-મધુમાસ છે ॥ ૨૨૯ ॥
 આત્મર, ચાલપણા મિત્તે, મ્લાનસ્થ, આતદશા મિત્તે ।
 આત્મર ચરો નિજયોગ્ય, જે રીત મૂલઝેદ ન થાયછે ॥ ૨૩૦ ॥
 આત્મર દશ કાલ તથા અર્ધા શ્રમ ઉપધિ ને મુનિ જાણીને ।
 આત્મર અદ્વારનિહારમા તો અલ્પ લેખી શ્રમણ તે ॥ ૨૩૧ ॥
 આત્મર અથ જ્યા યેનાથ, ને યેનાથ વસ્તુનિશ્ચયે ।
 આત્મર નિશ્ચય વન આગમ વડે, આગમ પ્રવર્તન મુખ્ય છે ॥ ૨૩૨ ॥
 આત્મરરહિત જ શ્રમણ તે જાણે ન પરને આત્મને ।
 આત્મર પદાર્થ અજાણ તે અથ કર્મનો કહ રીતિ કરે ॥ ૨૩૩ ॥
 આત્મર આગમચક્ષુ ને મૌ મૂત્ત ઇન્દ્રિય ચક્ષુ છે ।
 આત્મર અગ્રધિચક્ષુને સર્વત્ર ચક્ષુ સિદ્ધ છે ॥ ૨૩૪ ॥

૧ આત્મર । ૨ આત્મરન્દ્રાસે રહિત । ૩ વિના, રહિત । ૪ રહિત ।
 ૫ રામીપના, વ્યાધિયુક્તા । ૬ સહનશક્તિ । ૭ વિચાર, મતન ।
 ૮ પ્રાણ ।

मौ चित्र' गुण ण्याय युक्त पदार्थ आगममिद्व ठे ।
 ते सर्व ने जाणें श्रमण न दगो ने आगम रहे ॥ २३५ ॥
 दृष्टि न आगमपृष्ठि न चीजने मयम नहीं ।
 -न मूत्र रेह छे उचन, मृति कम होय यमपमी ? ॥ २३६ ॥
 मिद्धि नहीं आगमधका, श्रद्धा न जो अर्थों तली ।
 निराण नहीं अथा तणा श्रद्धावी, जो मयम नहीं ॥ २३७ ॥
 अज्ञानी जे कर्मा रपवाव लज कोटि भवो बडे ।
 त कम ज्ञानी त्रिगुप्त वम उच्छ्रयाम मात्र थी क्षय कर ॥ २३८ ॥
 अणु मात्र पण मझा तपो मझार जो दहानि क ।
 तो सर्व आगम २२' भल पण नर लह मिद्धयने ॥ २३९ ॥
 जे पचममित, त्रिगुप्त इन्द्रिनिरोधी रिचयी क्वापनो ।
 परिपुण दशन जानधी, ते श्रमण ने मुयत क्या ॥ २४० ॥
 निंदा प्रशमा, दुःख सुख, अरि बहुमां ज्या माम्यज ।
 बली लोट-कनके, जीवित मरणे साम्यछे ते श्रमण छे । ४१
 दग, ज्ञानने चारित्र, यथमा युगपत् आत्त ज ।
 तेने कथो ऐराग्यगत, आमरण त्या पापपूर्ण छे ॥ ४२ ॥
 परद्रव्य ने आश्रय श्रमण अज्ञानी पाप मोने ।
 या गगने यो द्वेपने, तो गिरिव बाध कर्म न ॥ ४३ ॥

१ अन्तः प्रसारणे । २ का, क्त, द्वा तथा । अपस्त शास्त्रो
 का ज्ञाना । ३ प्राप्त होता है ।

आ शुभ चर्चा श्रमगान, उली सुग्य होय गृहस्थ ने ।
 तेना' उडे ज गृहस्थ पामे मोक्षमुखउत्कृष्टने ॥ २५४ ॥
 फल होय छे विपगत तन्तु विशेष थी शुभ रागने ।
 निष्पत्ति विपगत होय भूमि विशेष थी ज्यम बीज ने ॥ २५५ ॥
 चक्षस्थ अभिहित ध्यान दाने तत नियम पठनादि के ।
 रत जीव मोक्ष लक्ष नहि रम भाव शाखात्मक सह ॥ २५६ ॥
 परमार्थ थी अनभिज्ञ, विषयकषाय अधिक जनो परे ।
 उपहार सेवा दान सब कुदेवमनुजपणे, फले ॥ २५७ ॥
 'विषयो रूपायो पापद्वे' जो गम निरूपण शास्त्र मा ।
 तो केम तत्प्रतिपद पुरुषो होय रे निस्तारका ॥ २५८ ॥
 ते पुरुष जाण सुमार्ग शाली, पाप-उपरम जेह ने ।
 ममभाव ज्या मी 'शामिके, गुणमगृह सेवन जेह ने ॥ २५९ ॥
 'अशुभोपयोग रहित श्रमणो शुद्ध वा शुभयुक्त जे ।
 ते लोकने तारे, अने तद्भक्त पामे पुण्यने ॥ २६० ॥
 प्रकृत वस्तु देखी अम्युत्थान आदि प्रिया यमी ।
 वतीं श्रमण पछी वर्तनीय गुणानुसार विशेष थी ॥ २६१ ॥
 गुण थी अविश्रमणो प्रति मत्सर अम्युत्थान ने ।
 अजलिकरण, पोषण, ग्रहण सेवन अर्धी उपदिष्ट छे ॥ २६२ ॥

जाणी यथार्थ पदार्थ ने, तना मय अतर्वाणि ने ।
 आमक्त नहि विषयो रिपेवे शुद्ध माग्या समने ॥२७३॥
 रे ! शुद्ध ने आमरण माग्यु, ज्ञानदर्शनशुद्धने ।
 छे शुद्ध ने निर्माण, शुद्ध ज निद्र प्रणम तेइने ॥२७४॥
 साकार अण आमार चर्चा युक्त आ उपशुने ।
 जे जाणतो ते अल्प काल माग्यवचनो लहे ॥२७५॥



शुद्धशुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
६	१७	चिताचिह्न	चिरचिह्न
७	१०	पासभनादिबिद्या	पासभनादिभाषिद्या
७	२१	भव्योको	वज्रकि
१२	१०	ना	न न,
१४	१५	कोट	कोटि
१६	१	देख	दख
१६	१२	दुरस्त	दस्त
१७	२	मुजत	मुक्त
१८	१७	भक्त	भक्ति
२०	१४	अपने	अपनी
२८	१४	कवि	कविस्वरूप
७२	१४	आपके जन्म लेते हा	अनन्तज्ञानादि
		लोभमें सुखानि गुणोंकी	गुणोंका अभिनंदन
		बद्वारा होजानेसे	करनेके कारणसे
८०	१४	हेयोपादेयके ज्ञानसे शुभ	×
८१	१९	धार्मिक क्रियाकारणरूप	तप आदि

प्रश्न	पक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
८१	२०	करनेकी	करनेके
८१	२१	इच्छासे	आशासे
८८	३	सदैव परिणामोंको	शुभ परिणामोंको
		निर्मल करनेमें	विषयके
१४२	४	विषयमें	
१४४	३	सुख	दुःख
१४५	६	तजि	चस्थि
१४८	६	सफल	सकल
१५०	११	गि नै	गिने
१५९	१०	ज्ञाना	ज्ञान
१६५	१५	साम्क	सामी
१६५	१६	जारी	वशारी
१८९	८	सुमती हित	सुमतिहि
१९९	२१	कलैर	करलै
२०७	७	सद्यत्र	सर्वत्र
२३०	१८	दर्शननमयो	दर्शनमयी
२५०	१२	निस	नाहि जिस
२५०	५	घन	घन
२६६	१०	जत्र गुरु	जत्र
२७१	६	समैय	समै
२८४	१२	साहि	साहि
३०६	१६	धिग्धिगिद्	धिग्धिगिन्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
३१३	१०	उसमे	उसके
३१८	७	रागादिविकारोंमे	अन्यभावोंसे
३२२	६	निमित्तकारणसे	प्रत्ययभावसे
३५१	३	रहत न यहै	रहत यहै
३६१	४	होत न यहै	होत यहै
३६१	६	निमल	निर्फल
३६२	६	साधो	साधो
३५८	९	भोगबधनकी	भोगबधनकी
३९६	२	सहमे	इससे
४७६	११	बढ़	बध
५१६	६	लाकाडल कमान	लौकालोकमान
५३६	८	एक चेतना	दर्शनचेतना और ज्ञानचेतना
५४२	१	शत्रु मित्र	शरीर
५४२	४	धान्यादिका त्याग	धान्यादिका मोह त्याग
५४२	६	स्थिररूप आत्मधन	स्थिररूप अपने अभेद स्वरूपका आत्मधन
५४५		पदार्थोंके अमली	पदार्थोंको जानकर अपने असली
५८६	१५	एव	एव
५६५	५	भावसे	व्यावर्ते

पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
६०१	३	कहा	कहा
६०१	१६	चरणानुयोगान्क	करणानुयोगादिक
६०२	१७	अप्रत्यक्ष	प्रत्यक्ष
६०२	१८	अप्रत्यक्ष	प्रत्यक्ष
६०३	१	निर्विकल्परूप श्लेष्मै	श्लेष्मै निर्विकल्पा
६०४	९	उद्यमका	उद्यममै
६०४	१६	स्वमुखपाविर्ष	स्वस्वरूपविर्ष
६१८	६	क्रोधाग्नि	शुभाशुभ
६३३	१०	भक्त्यो	भार्यो
६७६	१५ १६	साथ रागभाव करते हुए	स्पर्शनेको
७२६	५	पिप्पल्लोदुग्धरत्न	पिप्पल्लोदुग्धरत्न
७२८	१४	अनशनादिक तर्पिका	स्वरूपपरमण्वारूपी तर्पिका
७३०	१८	वि दशवत्तर्पाणि	वित्त दशवत्तर्पाणि
७३४	१७	तर्पिस्थ	ताट्टार्हस्थ
७३८	११	भिदस्तमो	भिदस्तमो
७४४	१५	परद्रव्यको ग्रहणके लिये	परद्रव्यके स्पर्शनेकी



पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
६०१	२	कहा	कहा
६०१	१६	चरणानुयोगादिक	चरणानुयोगादिक
६०७	१७	अप्रत्यक्ष	प्रत्यक्ष
६०२	१६	अप्रत्यक्ष	प्रत्यक्ष
६०३	१	निर्विकल्परूप श्लोकों	श्लोकों निर्विकल्परूप
६०४	९	उद्यमका	उद्यममें
६४	१६	स्वमुक्ताविषे	स्वरथरूपविषे
६१६	६	क्रोधाग्नि	शुभाशुभ
६३३	१०	भरयो	भाल्यो
६७६	१५ १६	साथ रागभाव करते हुए	स्पर्शनेको
७२६	५	पिप्पलोदुम्भरलक्ष	पिप्पलोदुम्भरलक्ष
७२८	१४	अनशनादिक तपोंका	स्वरूपपरमणुत्वात्की तपका
७३०	१८	वि दशवत्तपाणि	वित्त दशवर्षाणि
७३४	१७	तद्वास्थ्य	ताद्वाहस्थ्य
७३६	११	भिदस्तमो	भिदस्तमो
७४४	१५	परद्रव्यको ग्रहणके लिये	परद्रव्यके स्पर्शनेको



